

हौसला

लेखक- 'अश्वत्थ'

[illegible]

~~[illegible]~~

हँसली

— अश्वत्थ

अश्वत्थ

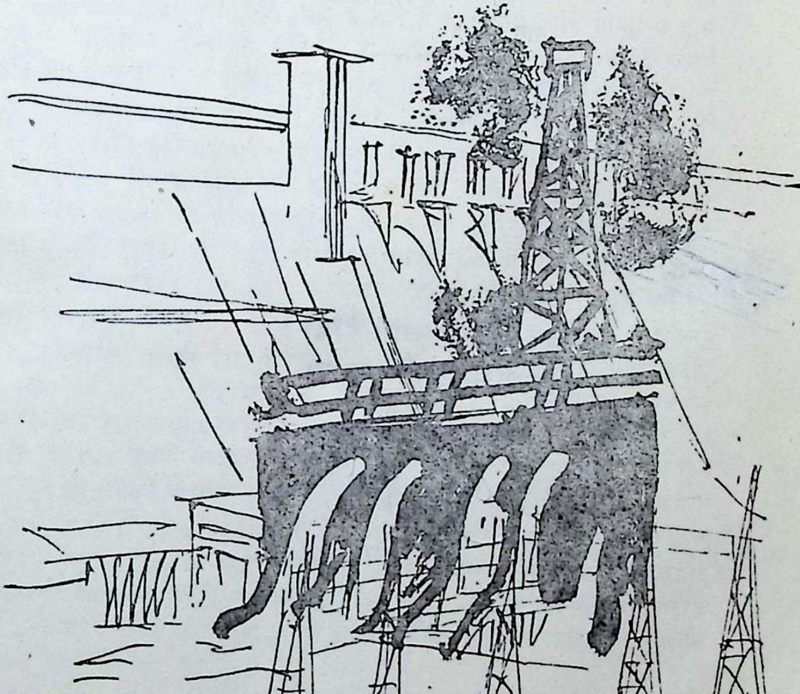
'अश्वत्थ' के० नारायण राव का साहित्यिक नाम है। सन् १९१२ में जनमे अश्वत्थ नारायण राव पेशे से इंजिनियर होते हुए भी कन्नड़ साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ कथाकार हैं। इन्होंने नौ कहानी-संग्रह, पाँच उपन्यास और दस नाटक लिखे हैं। कई कृतियाँ पुरस्कृत भी हो चुकी हैं।

सम्पर्क सूत्र—
के० अश्वत्थ नारायण राव
नं० ८, ९वां मुख्य रास्ता (उत्तर)
सरस्वतीपुरम्, मैसूर—९ (कर्नाटक)

अनुवाद : सु० रामचन्द्र, अध्यक्ष : हिन्दी विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, गुलबर्गा

प्रचारक बुक क्लब
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो०बा०१०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१

हैसला



भारत के प्रथम बुक क्लब
प्रचारक बुक क्लब
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो० बा० १०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१ के लिए
विजय प्रकाश बेरी द्वारा प्रकाशित तथा
भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित
सन् १९७६

Aswattha
HOUSALA
Novel

मूल्य : ९.००

: १ :

"इसके बाद ? इसके बाद.......अब आगे ?" यही एक मात्र तान !

गंगाधर दीक्षित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का छात्र है। इंजीनियरिंग की अन्तिम परीक्षा दे चुका है। यह तान अब उसके दिल में छिड़ गई है और इसी लय के साथ उसके हृदय की गति ताल दे रही है। मशीनी गति से उसके हाथ चल रहे हैं। किताबें, धोबी के धुले कपड़े, आईना, कंघी, साबुन आदि वस्तुएँ बक्से में भरी जा रही हैं। बिस्तर भी लपेटा गया। फालतू चिट्ठी-पत्रियाँ फाड़ी जा रहीं। यात्रा की तैयारियाँ जारी रहीं। लेकिन; आँखें खुली रहने पर भी देखने में असमर्थ-सी हो गई थीं। वे अन्तर्मुखी होकर खोज में लग गई थीं। नक्षत्रों की रंगीन झिलमिलाहट की भाँति चमकते रहने वाली अस्पष्ट स्वप्न-लालसाओं को परखने में परेशान थीं। अब केवल अँधेरा-ही-अँधेरा है, अब थोड़ी-सी धुँधली झलक, दूसरे ही क्षण कुछ साफ ! अरे तुरन्त ओझल !....... यह क्या है। अन्तर्दृष्टि के लिए क्षिप्र गतिवाली वस्तुओं को कैमरे में घर लेने की आतुरता, हिरण का शिकार ! कान भी नयनों का साथ देने लगे हैं। बाहरी जगत् का कोलाहल सुनाई नहीं दे रहा है। भीतर से केवल वही क्षीण ध्वनि 'इसके बाद, अब आगे ?' उस वक्त जगत् में उसके लिए यही एक मात्र प्रणवनाद है। छात्रावस्था के कई द्वार पार कर दीक्षित उसके महाद्वार पर आ पहुँचा है। जल्दी ही वह भी खुलने वाला है। उसकी सूराख से ही वह झाँकने लगा है। इसके खुलते ही सामने विशाल संसार सम्पूर्ण जगत् फैला हुआ दिखाई देने लगता है। यही है उसके संघर्ष की रंगस्थली। वह संसार कैसा है ? संघर्ष का स्वरूप क्या होगा ? लक्ष्य कहाँ ? कैसी साधना ? और चरितार्थता ? अंडे से बाहर निकलने वाले अंडज की भाँति उसके मन में सहज ही इस अनन्त संसार के प्रति आश्चर्य, भीति, आशंका और अनिश्चय के अतिरिक्त अस्पष्ट आशा, आश्वासन के मिश्रित भाव घर कर गए हैं।

"हलो, डिक् !" के सम्बोधन से पीठ पर जोर की थपकी देते हुए स्नेही आनन्द ने उसे जगाया। दीक्षित की शून्य समाधि टूटी। मौन भंग हुआ। जवाब में वह मुस्कराने लगा।

"कहो मित्र ! दुनिया से बेखबर कल तक की पढ़ाई की भाँति आज अपने काम में भी तल्लीन हो गए ? मैं भी पाँच-छः मिनट देहली पर खड़ा चुपचाप देख रहा; तुम सुध-बुध खो काम-काज की निराली दुनिया में भूले कुछ न कुछ किए जा रहे हो। तुम्हारी एकाग्रता की बलिहारी है। अगर मैं निजी वृत्तियों को

तुम्हारी तरह केन्द्रित कर पाता, तो किसी परीक्षा में प्रथम श्रेणी दूसरा नहीं मार सकता। पिछले वर्ष तुमने उस बंगाली के हक में वह छोड़ दिया था। मैं तुम्हारी भूल न दुहराता, लेकिन कम किताव हाथ में ले पन्ना उलटने लगते ही सिनेमा की अभिनेत्रियाँ, सिगरेट, मच्छर आदि से आतंकित हो जाता। इस आखिरी दाँव में अगर पासा हक में हो गया, तो उसे भगवान का अनुग्रह ही मानूँगा। पिंड छूटा सोचकर चैन से रहूँगा। यह क्या ? तुम मौन साधे रहो और अकेला मैं ही नर मेंढक की तरह टरटराता जाऊँ। तुम्हारी इस चुप्पी की वजह भी तो मालूम हो। 'खामोशी न भली बालमा, सूरत दिखला दे !' 'तेरी सोच का दाम एक दमड़ी लगाऊँ ? ना—एक रुपल्ली।'

आनन्द गंगाधर को गले लगाए कहता चला गया। वह भी बड़ा अनुरागी, बड़ा मिलनसार था।

"कोई खास बात नहीं प्यारे ! कोई-न-कोई काम रहता ही है।"

"ब्याह नहीं, बाल-बच्चे नहीं ! फिकर-फजीहत की पलटन अभी से तैयार हो गई ? काहे की परेशानी और कितनी !"

"बेहिसाब।"

"हटो भी, तुम किताबी कीड़ों के लिए एक ही पीड़ा सताने वाली रहती है। तापत्रय में केवल ताप है, त्रय नहीं। अव्वल दर्जा या आत्महत्या ! इतना ही न ? रहने दो। मिल ही जाएगा।"

"भारी भूल में हो। जरा दिमाग दौड़ाओ भी।"

"अच्छा ! घर से माँ-बाप से उनके प्रिय विषय की सूचना आई क्या ? शादी का सुझाव ! लड़का जो ठहरा, उम्र भी हो आई तो किसी लड़की का हाथ थाम ले। यही न उनका इरादा ? वह कौन बुद्धू होगी भाई, जो तुम्हारे गले में गजरा डालने की उतावली में पड़ी होगी ?"

"वैसी कोई आए, तो तुम्हारी तरह ही निठल्लू हो !"

"ऐं !" आनन्द दीक्षित के कंधे से हाथ हटाते चौंका। "अच्छा ! अक्लमन्दी की निशानी लगती बानी" कहते हुए उसने हामी भरी और हँस पड़ा।

"लेकिन इस वक्त वह सब नहीं। सूझ से काम लो। एक और सम्भावना की गुंजाइश है। बोलो तो........!"

"यह कौन-सा नया पचड़ा है, भाई ! अन्तिम परीक्षा में बैठे प्राप्त-वय पुरुषार्थ की पीड़ा। इसके बाद, अब आगे के बादल घिर आए हैं क्या ? असहाय विधवा की भाँति चेहरा छिपाये सिसकियाँ भर रहे हो ? वाह रे बुद्धिमानी !" वह गंगाधर के नयनों से नयन मिलाकर बोलता गया।

"ठीक कहा........खूँटी के सिर पर ही चोट मारी।"

"धत् तेरी ! प्रथम श्रेणी की लालसा रखने वालों की यही दुर्दशा है।

सैकड़ों पुस्तकें घोख लेते हैं, उत्तर-पुस्तिकाएँ अथ से इति तक पोत देते हैं और दुनियाँ को याद हो आते ही जान जोखिम में पड़ जाती है। ग्रन्थ-योद्धाओं की यन्त्रणा वर्णनातीत है। फिलहाल तुम पर क्या बन आई है कि तुम पहली बार ससुराल जाने वाली नई बहू की तरह विकल हुए जा रहे हो ?"

"वह बात नहीं मित्र ! तुम भ्रम में हो। प्रथम श्रेणी की पीड़ा का भार स्वीकार है लेकिन यह तो स्वर्णयुग है। अधैर्य का आतंक नहीं। जीविका के लिए अनगिनत अवसर हैं। अनुकूल चुनाव करना ही दूभर हो गया है। उद्योग-व्यवसाय के अनन्त क्षेत्र खुले पड़े हैं। देश के जीवनकाल में यह एक अनुपम क्षण है। पहले कभी यह सुसन्धि न रही होगी········मेरा मतलब युग की बखानगी करना नहीं। छोड़ो इस बात को। अब बताओ, तुमने क्या तय किया है ?"

"तय, सो तो हो ही चुका है। इंजीनियरी का ठप्पा लग गया तो बस, पीछे पाँचो उँगलियाँ घी में।"

"हाँ, भाई ! और क्या धरा है ? राम को चौदह साल का बनवास भोगना पड़ा, तो शिक्षा के नाम पर हमको भी सोलह साल की सजा भुगतनी पड़ी न ? आगे भी आराम से हाथ धो लें ? रकम लगी है, तो उसके ब्याज की वसूली न हो ? दही मथा गया, तो नवनीत चखा जाए। तुम खुद कह रहे हो यह बड़ा स्वर्णयुग आया है। सरकार भी चारों ओर अरबों रुपए लगा रही है। अन्धे के हाथ बटेर लग गई है। बहती गंगा में हाथ धो लेना ही अक्लमन्दी है। हा-हा-हा ! हम भी जेब भर लें, कुछ रकम जुटाए रखें। पछताए क्या होत है ···। उजली धूप में ताप लेना ही बेहतर है।"

"देश को पुनरुज्जीवित करने के लिए हमारी जनता के महान् प्रयास का मूल्य तुम्हारी दृष्टि में इतना ही होगा। सो भी राष्ट्रीय योजनाओं की सारी जानकारी रखते हुए ! टूर (भ्रमण) में भाखरा, हीराकुंड आदि अपनी आँखों देख भी आए हो। कितना असाधारण महत्कार्य है वह !"

"रहने दो भी उन सब बाजीगरों सरीखे खेलों को ! जानते नहीं, चारों ओर पैसे का बोलबाला है। मैं अभी घर जा भी न रहा। दिल्ली की ओर कूच कर रहा हूँ। वही तो राष्ट्र का खलिहान है। हजारों चूहे चैन से मस्ती लूट रहे हैं। हम भी उनमें शरीक न हो जाएँ ? जमात के साथ जान भी बचे, जेब भी भरे। वहाँ 'चाचा मामा' आदि सगों की कमी कैसी ? एक-न-एक विभाग को खोदकर बिल बना लें और बढ़िया नौकरी में लग जाएँ। सरकार की पंचवर्षीय योजनाएँ हैं ही। हमें भी अपने-अपने जीवन में वही करना होगा, भाई ! अपनी पंचवर्षीय योजना बता दूँ ? पाँच वर्षों में कम से कम पाँच सौ रुपए मासिक वेतन की व्यवस्था कर लेनी चाहिए। वह कोई बहुत मुश्किल काम भी नहीं। उसे भी लाँघने की ताकत है। देख लेना········बंगलोर में एक बंगला, 'कैडि-

लियाक' न हो तो 'फोर्ड' माडेल की कार और एच० एम० वी० रेडियोग्राम·····"

"बस करो, तुम्हारा यह मौलिक वेदांत, स्वार्थी वेदांत। वह तुम्हारे दायरे तक ही रहेगा या कुछ और आगे भी जाएगा?"

"मतलब?"

"समाज, देश·······"

"रहने दो भी, कैसा समाज, कहाँ का देश! ध्येयवादियों की बातें भूल जाओ। देश भर में वे फैले मिलेंगे। तुम गाँधी का चेला या नेहरू की पूँछ न बनो। बगुलाभगतों की बकझक मैं पसन्द नहीं करने का। सेवा जानते हो किसे कहते हैं—जो भी मिल जाए, धर-पकड़ करके मुँह में डालते जाओ; डकारते जाओ। एसी सेवा कोई नई है? सेवा किसकी? किसी ने पूछा कि 'हम दूसरों की सेवा के लिए हैं, तो उनसे सेवा किसकी होगी?' समझे?"

"पते का सवाल किया, पट्ठे! हम सब जमात की तरह जड़ हैं? कल ही प्रोफेसरों की ओर से हुई दावत में प्रो० देवरय्याजी की बातें भूल गये? राष्ट्र में साक्षरों की संख्या करीब १७-१८ प्रतिशत है। इनमें से विश्वविद्यालय की देहली लाँघने वाले नहीं के बराबर हैं। इनमें भी १-२ प्रतिशत इंजीनियरी आदि बड़ी महँगी शिक्षा की सुविधा पाते हैं। मतलब यह दस-बारह हजार पीछे एक इंजीनियर, एक डाक्टर बन पाता है। हम इन भाग्यशालियों में से हैं, याद रहे।"

"ठीक है। हो सकता है। यह सब तो अपने-अपने कर्मों का भोग है।

"कर्म की बात रहने दो, भले आदमी। मुझे मालूम है कि तुम बड़े कर्मवादी हो। उस दशा में भी प्रो० साहब के अनुसार भाग्य के अनुपात में सफल जीवन-निर्वाह का दायित्व भी बढ़ जाता है।"

"वह खूसट आदमी जो भी बक जाय, तुम्हारे लिए वह वेदवाणी है। बकने में क्या बिगाड़? प्रोफेसर की परिभाषा ही बताती है कि 'अपने से जो न सधे उसकी साधना का विधि-विधान दूसरों को समझाने वाला।' बस।"

"बड़े धूर्त्त हो! कोई ऐसा है भला जो तुम्हारी नजरों में उठ सका है? न भूतो न भविष्यति। लेकिन उनके प्रति मेरा बड़ा पूज्य भाव है। उनमें किस किस्म का नुख्स निकाल सकते हो, बताओ तो सही। बड़े अध्यवसायी हैं। नये-नये विषयों की जानकारी लगन से हासिल करते रहते हैं। अध्यापन की सरस-सुबोध शैली का क्या कहना है। इतने पर भी गर्व उन्हें छू तक नहीं गया है। बहुज्ञता का ढोंग नहीं। अपनी अज्ञानता स्वीकार करते हैं और तथ्य-संग्रह के बाद उन विषयों का प्रवचन उत्तम मानते हैं। बड़े उत्साही हैं। कैसा जोश जगा देते हैं। मिस्त्री की भाँति आदेश जारी कर काम नहीं करवाने वाले, हम लोगों से मिल-जुलकर खुद करते और सबसे कराते जाते हैं। उनका मूल मन्त्र ही तो है कि 'एक दिन या परिस्थिति विशेष की निष्ठा महत्व की नहीं; इंसान को बुढ़ापे

में पश्चात्तापरहित परितृप्ति के लिए प्रतिक्षण की सच्ची निष्ठा की अपेक्षा है। आत्मवंचना भली नहीं। यही वास्तव में तपस्या है।' इसके वे स्वयं मूर्त्तरूप हैं। कभी आने में देर लगाई, कभी पल भर भी बरबाद होने दिया है ?

'मौके-बेमौके बेकार का वेदान्त नहीं झाड़ते ? पढ़ाई नाम के लिए इंजीनियरी। मैं विषय-निर्वचन सह भले ही लूँ, वह वेदान्त-प्रवचन बर्दाश्त नहीं कर पाता ...।'

"मेरी दृष्टि में उससे हमारी इंजीनियरी सत्वपूर्ण हो गई है। उसके विना जिन्दगी लाख तरक्की करे, सो किस काम की ? हरियाली की छाया नहीं, सुरभित सुमन हैं, सुमधुर फल नहीं। उसमें दर्शन की दीप्ति-माधुरी नहीं। पनपते ही पाहन मात्र हैं। उनकी इंजीनियरी पढ़ाई की अपेक्षा उनकी पथ-प्रदर्शिका शिक्षा का मूल्य बहुत बड़ा गिनता हूँ। गुरु कोई मशीन है कि किताब की सामग्री उगल दे ? अनुभूति से संचित जीवन-विभूतियों के वितरण द्वारा शिष्य की मानसिक क्षुधा-पूर्ति न हो ?"

"पाँच सौ माहवार दो और एक आराम कुर्सी पर बिठा दो, तो मैं भी सैकड़ों कापियाँ भरने लायक विवेक-वाणी सुनाता जाऊँ। बड़ी-बड़ी बातें कौन नहीं जानता ? उसके लिए न तो बुद्धि की जरूरत है और न सिद्धि की।"

"सब कुछ जानते हुए भी पाँच सौ माहवार का ताना मारने में तुम्हारा जी कैसे करता है ? आज पास हुए कि नहीं कि कल तीन सौ हम ही पा जाते हैं उत्तर भारत में। वे चाहते तो कितना कमा ले सकते और कैसे ऊँचे ओहदे पर पहुँच चुके होते। उन सबकी परवाह किए विना ही मालवीय जी के जमाने में एक सौ रुपल्ली पर ही यहाँ खुशी से रह गए। यह बात किससे छिपी है ? इधर हाल में ही यूनिवर्सिटी वालों का वेतनमान बदला, तो उन्हें भी कुछ ज्यादा मिलने लगा। उनकी प्रवृत्ति दुराशा, असंतोष, नोचखसोट आदि में होती ही नहीं। रह गई वेतन-विनियोग की बात। हममें से कितनों को उसके उपभोग का अवसर नहीं मिला है।"

'अरे, भोलानाथ ! यह संसार प्रचारप्रिय है। सुना सब सच है क्या बचपन में हर छापे का अक्षर प्रमाण मान लेने के समान ? जो भी सफेद है, वह दूध नहीं होगा प्यारे ! वैराग्य बोध के पीछे कोई-न-कोई दमिल वासना काम करती रहती है, समझे ?"

"वैराग्य बोध में कहाँ लगे रहते हैं, भाई ! इसके विपरीत उनका तो कहना है कि परिश्रम से कमाओ, पुरुषार्थी बनो।............पहले घर संभालो—भी कहते हैं और साथ ही............उसका दायरा वहीं तक नहीं कह कर चेताते भी हैं। उपाधि, अधिकार, सम्पत्ति आदि उत्कर्ष-सिद्धि के साधन बनें, अपने में ही साध्य न हो जायँ। उन्होंने जो कार्य-क्षेत्र अपनाया है। हर साल चन्द निष्ठावान नौजवानों को सक्षम और कार्य-पटु बनाकर उन्हें दुनिया के लिए

भेंट में देते जाना। उसे अपने लिए पर्याप्त माना है। उसका प्रभाव औषधि के समान बताया जाता है। उचित अनुपात में रोग का उन्मूलन कर दें, बढ़ जाने पर जीवन को ही विकृत बना दे। उसके अलावा उसे हासिल करने के तरीके में भी फर्क हैं। वे कभी उनके पीछे लगे नहीं रहते। उनका एक प्रिय सुभाषित है। याद है तुमको ? मुझे तो वह बड़ा पसन्द है।''

''अब हद हो गई। बन्दा उनकी इन्जीनियरी पढ़ाई का नोट ही नहीं बनाता, इन उलूल-जलूल बातों को तुम्हारी तरह गाँठ बाँध कर रटा करूँ ? भाई, वह कथा बाँचना तुम्हारा काम।''

''वही तो कर रहा हूँ। 'सज्जन अन्यों की सेवा के माध्यम से अर्थसिद्धि उत्तम मानते हैं।' यही वह सुभाषित है। सम्पत्ति सेवा-प्रक्रिया से प्राप्त आनुषंगिक फल है। इनमें पूर्वापर का व्यत्यय ही जीवन को ऊपर-नीचे कर देता है। यह उनका पथ है। हम भी इस योग्य हों........।''

''बस ! बस ! कॉलेज की पढ़ाई से छुट्टी मिलते ही जरा दम लेने ही लगा था कि तुम्हारी बर्राहट शुरू हो गई। सो सब ताक पर धर दो। जब प्राध्यापकी मिल जाएगी, तो उन अभागे छात्रों का दिमाग चाट लेना। तुम्हारी हर जगह खुर्दबीन लगी छानबीन वाली विद्या मेरे लिए तो पहाड़ है। भगवान से मेरी प्रार्थना भी है कि वह उसी रूप में रहे भी। इतनी माथापच्ची से निकला माणिक्य 'इसके बाद ....अब आगे ?' तुम्हें मुबारक हो। इस जन से उसे दूर ही रखो। मैं क्यों वह झंझट मोल ले लूँ ? तुम ही सुभाषित-सुजन उपाधिदारी रहो। मैं मना करने का नहीं। दीक्षित होने की सार्थकता सिद्ध कर लो। मेरे ललाट में वह अंकित नहीं, समझे ? उससे प्राप्त सुख सारा स्वयं लूटो। मुझे कोई डाह नहीं। इस नसीहत से मुझे बख्श दो। बेटा ! स्यार की यह सीख किसे पढ़ाते हो, बोलो ? दो साल दुनिया का चक्कर खा लो, असलियत खुल जाएगी। चालबाजी में मुझे भी पछाड़ दोगे। तुम्हारे-जैसे लोग ही पीछे काइयाँ होते देखे गए हैं। मेरी बात गाँठ बाँध लो।'' कहते हुए आनन्द ने गंगाधर की पीठ पर हाथ दे मारा।

गंगाधर क्या जवाब दे ? वह आनन्द का प्रतिवाद करे ? सौगन्ध खाए ? पराजय कबूल ले ? वह अपनी क्षमता-अक्षमता की थाह नहीं जानता था, भविष्य का कोई निश्चय न था। अधैर्यजन्य अनिश्चय से मुँह पर ताला पड़ गया था। वह आनन्द का व्यंग्य मुसकान के साथ चुपचाप सह गया। लेकिन इसक खेती की जमीन, चौहद्दी के घेरे का नमूना, दी जाने वाली खाद, सिंचाई का स्रोत और उसका उपयोग आदि बातें अनबूझ पहेलियाँ ही रह गईं।

''खाने के लिए बुलाने आया तो फँसी हुई मछली की भाँति तेरी नसीहत के मारे छटपटाता ही रह गया ! खूब ! थकान से मुझे दुबारा भूख लग गई।

पहले उठो भी। काशी एक्सप्रेस साढ़े तीन बजे छूटेगी। साढ़े बारह बज चुके हैं। गुरुदेव ! सेवा के सपने देखते-देखते यथार्थ जगत् की उपेक्षा न हो जाए। मुझे भी अपर इण्डिया पकड़नी है। रिक्शा लाने जा रहा हूँ, साथ ही चला जाय, अच्छा !" आनन्द की यह सामयिक चेतावनी गंगाधर को होश में ले आई।

'दो रिक्शे ले आना। हमारे माल-असवाब भी तो हैं। अकेले बेचारे की जहमत बरदाश्त न की जाएगी।"

"इस वक्त एक भी मिल जाए, तो गनीमत समझो। यूनिवर्सिटी ही खाली होने जा रही है। दो कहाँ से लाऊँ ? आज भर के लिए अपनी हमदर्दी जरा काबू में रख लेना.......खैर, देखा जाएगा। जल्दी करना।" 'आनन्द मेरा जूता है जापानी' की धुन गुनगुनाता हुआ बाहर निकला।

●●●

: २ :

गंगाधर ने विस्तर वक्स पर रखा। चारों ओर कमरे में नजर घुमायी। इतने साल तक वह उस घोंसलेनुमा कमरे की लम्बाई-चौड़ाई, सँकरे जंगले, काँचहीन खिड़कियों के तख्ते और लोहे की कुर्सी आदि से चिढ़ गया था। कई बार शिकायतें भी कर चुका था। लेकिन इस आखिरी घड़ी में वही अपने घर के समान प्रिय लग रहा था। किवाड़ लगाया और ताला बन्द कर सरपट मेस की ओर भागा। बरामदे से गुजरते समम वहाँ के चार सालों की घटनाएँ क्रमशः स्मृति-पटल पर आतीं, मिट जातीं। कितनी ही स्नेह-भरी क्रीड़ाएँ, पढ़ाई, हास-परिहास, छेड़छाड़, होहल्ला, फिल्मी गीतों के तराने, नोकझोंक, गाली-गलौज, प्यार की फुहारें, समय-समय पर की मारपीट इन सबके लिए वही रंग-मंच बना रहा। उन दिनों की मुश्किलें इस वक्त आसान प्रतीत होती थीं। उन दिनों न रुचने वाली साहसिकता और शोरगुल आज भले लग रहे थे। दरवाजे की खटखटाहट, पैर घसीटे जाने से या तेज चलने से होने वाली चर्र-चर्र फट्-फट् की ध्वनि ताल देती लग रही थी। विंगों के दरवाजों पर अंकित नाम, दीवारों पर की चित्रकारी व्यौरेवार अपनी कहानी सुनाती कई स्मृतियों को जगाती रहतीं। कुछ कमरे खाली पड़े थे। दरवाजा खुला रखा गया था। उन्हें देखते ही बिछुड़े हुए साथी याद हो आते। गला भर आता। असह्य पीड़ा होती। इधर-उधर से सुनाई देने वाला 'हलो' सम्बोधन इस वियोग को दारुण बनाता जाता। गंगाधर को राजा आर्थर के 'गोल मेज सरदारों' की याद हो आई। वह अपने को सर बेर्ड वियर महसूस करता। तेजी से कदम बढ़ाते हॉस्टल के पिछवाड़े स्थिर मेस में पहुँचा।

खाने बैठा तो नीची छत वाला अँधेरा कमरा, वहाँ का धुआँ सब कुछ साफ दीख रहा था। छात्रों ने कई बार अर्जियाँ दे रखी थीं कि मेस का पुनर्निमाण हो। काफी शोर भी किया था। पर, सब बेकार ! इस वक्त उसे लगता कि मैंने व्यर्थ का कोलाहल मचा दिया। थोड़ा सह लेते तो क्या नुकसान हो जाता। हमेशा के लिए यहाँ रहना तो था नहीं। परोसने वाला लड़का जब रोटी लाता, महाराज मनहूस चेहरा बनाए दरवाजे के सहारे खड़ा रहता तो उन्हें सुनाई गई अशोभनीय बातें याद हो आईं। रसोई की तैयारी, उनके कपड़े, उनकी गन्दी आदतें, बेईमानी तथा और भी बहुत सी बातों पर फटकार बताई थी। जब मेस का व्यवस्थापक था, तो सुधार के कुछ कदम उठाए भी। दो रुपए माहवार बढ़ती की थीं। साबुन दिलाया था। समझाया-बुझाया था। जो खुद जानता था, उस व्यंजन को बनाने का तरीका दिखाया था। थोड़ा-बहुत सुधार भी हुआ। लेकिन उनका रवैया फिर वही हो जाता। इस वक्त वह गम्भीर चिन्तन का शिकार हो गया था। सोचता नाहक इन्हें डाँट रहा था। ये निरक्षर हैं, अनपढ़ हैं, गरीब हैं। कमाई दस-बीस की हो, तो खाने के लिए भी दस-पाँच पेट हैं ही। बचपन से ही पिसाई, तिस पर पेट भी भरता नहीं। क्या कोरी डाँट-डपट से हालत सुधारी जा सकेगी ? अपनी दुर्दशा के लिए वे ही जिम्मेदार हैं ? गलती दूसरी ओर नहीं है ? इसके लिए मैं भी अपराधी नहीं ? इनकी हालत सुधारने की जिम्मेदारी मुझ पर भी नहीं ? लेकिन, ऐसे कितने करोड़ भाई ऐसी ही मुसीबतें झेलते दर्दनाक हालत में सड़ नहीं रहे होंगे ? भिखारियों से मिलते-जुलते। मैं इनके लिए क्या कर सकता हूँ ? इतनी बड़ी सरकार, बड़ी रहमदिल सरकार ही इसे दुश्वार, दुर्निवार अनुभव कर रही है। समस्या बड़ी गम्भीर मान, सोच में पड़े हार मानते चुप रह लिया जाए ? प्रो० देवरप्पाजी का इसी ओर संकेत था न 'चारों ओर की गन्दगी देखते ही जवानी में' दुनिया को बदला जा सकता है, बदलना चाहिए का जोश रहता है, इरादा पक्का हो जाता है। दुनिया कितनी बड़ी है, अपनी हस्ती क्या है आदि का कोई विचार नहीं सताता। क्रम से जीवन की वास्तविक कठोरता का आभास होता है। उस दशा में अपने आसपास की जमीन का कूड़ा-करकट साफ कर उसे बगान में बदलते जाएँ, तो काफी होगा। सारा राष्ट्र नन्दनकानन बन जा सकता है। ठीक है। इन बेचारों को दोष देना बेकार है। उन्हें क्यों उस तरह सताया, चोट पहुँचायी इनमें संवेदनीयता कुछ बची भी होगी ? ये विराट प्रश्नचिह्न का अंग मात्र हैं। वह हल हो जाय, तो ये भी निहाल हो जाएँ। 'राष्ट्र की समस्या व्यक्ति की समस्या है। हर कोई अपना-अपना सँभाल ले, तो समूह का भला हो जाय।' सही है। लेकिन, क्या सब अपना-अपना सुधार करने योग्य हैं ? उन्हें जानकारी कहाँ, साधन-सम्पन्नता कहाँ ? इस दृष्टि से देखने पर राष्ट्र की समस्या दस-पाँच भाग्यशालियों से सम्बन्ध रखने वाली मानी जाय तो कोई एतराज न होना

चाहिए। उनमें से मैं भी एक हूँ। बगान बनाने की अपनी जमीन कौन सी ?

"बाबू जी, चावल ठंडा हो रहा है।" परोसने वाले लड़के की यह आवाज सुनते ही दीक्षित चौंक पड़ा, चार-पाँच कौर मुँह में ठूँस लेने के बाद उठ खड़ा हुआ।

दरवाजे पर ही हाथ धुलाने के लिए लड़का पानी लाया। पानी के लिए दीक्षित हाथ बढ़ाने वाला ही था कि टामी दुम हिलाता नजदीक आया। नाक में दम करने वाले यहाँ के कुत्तों की धाँधली याद आई। आठों पहर भूँकते-भिड़ते थे, हॉस्टल की शान्ति में बाधक थे। इनके काट खाने पर हर साल कोई-न-भोई सूई लगवाता रहता। यह प्रथा-सी हो गई थी। सड़कों पर, मेस के बाहर, भीतर, कमरे पर, हर जगह ये पैर में लगते ही रहते। चारों ओर गन्दगी कर देते थे। एक बार तो सब कुत्तों को बटोर कर गंगा जी के उस पार रामनगर में छोड़ा गया था। लेकिन, न जाने कैसे ये दूसरे ही दिन हाजिर हो गए थे। इस पर छात्रों का आग्रह था कि जहर देकर या गोली मारकर इनका नामोनिशान मिटा दिया जाए। आवेदन में खुद भी हस्ताक्षर किए थे। सदा की भाँति इसका भी कोई लाभ न हुआ। कूकर-संतति बेरोकटोक बढ़ती ही जा रही थी। किसी कुघड़ी में नाराज होकर उसने टामी पर लात जमा दी थी। लेकिन, वह इससे दूर न रह सका। आज स्वयं उससे वह दूर होने जा रहा था। दीक्षित ने बाएँ हाथ से टामी का माथा सहलाया। अधमुँदी आँखें, खड़े हुए कान, हिलता बदन, 'कूँ कूँ' की अ वाज आदि के द्वारा टामी अपनी प्यार-खुशी जताने लगा। यह देख लटकते हुए स्तन-मूह वाली ठठरीनुमा एक कुतिया अपने चार पिल्लों के संग आगे बढ़ आई। उसे देखते ही 'कुत्ते की जिन्दगी' का रहस्य स्पष्ट हो जाता। गंगाधर को लगा कि वह टामी का ही परिवार होगा। उसी क्रम में उसका मन सोचने लगा—कई इंसानों की जिन्दगी भी इसी प्रकार की होगी, हर सूरत से। सच्चाई में फर्क कैसा ? फिर वह मन ही में गुनने लगा—इन सबको ऊपर उठाना होगा, मानव बनाना होगा। कितना बड़ा काम।

अचानक अनजाने ही उसका दिल गाँव में अपने घर की ओर झाँकने लगा। बेफिक्र बाप, चौबीसों घण्टे खटने वाली माँ, इस समय तक आठ संतानें ! छिः !

इस वक्त उनका विचार ! 'माँ-बाप मेरे लिए पूज्य है' कहता हुआ उनकी चिन्ता से मुक्त होना चाहता था। लाख कोशिश करने पर भी वह चिन्ता रह रह कर धँसती जाती थी। टामी दुम हिला ही रहा था, कुतिया सूनी दृष्टि से देखती थी, पिल्ले कस कर ऐन चूसते थे।

"बाबूजी, पानी और लाऊँ ?" लड़के ने पूछा।

गंगाधर ने नाहीं की। हाथ पोंछ लिये। मेस में काम करने वालों को एक-एक रुपया दिया।

"कितने अच्छे थे आप बाबूजी ! समझ की बातें बताते रहते......." महाराज बोलता गया। उसकी आँखें गीली हो गई थीं।

"दुनिया का यही दस्तूर है। भले बने रहें। अपना काम मन लगाकर करें। मेहनत का फल मिलेगा ही।" कहते हुए गंगाधर सीधे कमरे की ओर चल पड़ा। उसे अपनी बातों से कोई तसल्ली न हुई। उनकी मेहनत के मुताबिक उन्हें मेहनताना मिलेगा। यह संदेह उसे सताने लगा। बख्शीश का एक रुपया भी कोई काम न आएगा, यह भी साफ था। पल भर के लिए थोड़ी-सी प्रसन्नता हो जाए वह अलग बात है। असल में रुपया उन्हें नहीं दिया गया। वह तो अपनी हीन भावना के घाव पर मलहम लगाने के लिए था। वह इस तथ्य से अपरिचित न था कि यह घाव भरने वाला नहीं। इंसान को उसका हक नहीं दिया जा सके या देने की इच्छा नहीं रहे, तो 'दान धर्म' का ढोंग रचा जाएगा। यह घाव की पीड़ा भुला देने के लिए अफीम खिलाने के समान है।

वह कमरे में आया। दो रिक्शे आ पहुँचे थे। आनन्द ने एक में सामान रख दिया था और दूसरे में बैठा हुआ था। चौकीदार ने दीक्षित का सामान रिक्शे पर रख दिया। मुँह बनाए खड़े चौकीदार के हाथ में कुछ रखते हुए दीक्षित बोला, 'मेरे कमरे में आने वालों की सेवा-टहल खूब करना। भगवान भला करे तेरा।' और आनन्द के साथ रिक्शे पर बैठ गया। रिक्शे हॉस्टल के फाटक की ओर बढ़े। दीक्षित मुड़-मुड़ कर पीछे देखता जाता। उस अकेले का नहीं, ढाई सौ लड़कों का चार साल तक का यही निवास रहा। अब सूना पड़ गया है। सफेद किलेनुमा वह इमारत, उसका कोना-कोना, बीच की फुलवारी आदि की अमिट छाप दिल में रह जाए, ऐसी कोशिश करता गया। आनन्द की बातें उसके कानों में पड़ती ही न थीं। वह 'हाँ-हूँ' करता जाता था।

फाटक से बाहर ही सामने का मैदान—हाकी, फुटबाल आदि में उसे विजय का गौरव दिलाने वाली रंगभूमि। शाम के वक्त तरह-तरह के खेलों से सैकड़ों क्रीड़ाभिमानी छात्रों की सराहना से वह अपने को सजा लेता था। यही उसके कौशल के प्रदर्शन का अखाड़ा था। यहाँ प्रेक्षकों ने कितनी ही प्रशंसासूचक करतल-ध्वनि की थी। कितनी ही बार निन्दा की बौछार की थी। यहाँ वह कितनी ही बार पारितोषक पाया था। कितनी ही बार चेहरा लटकाए धीमी चाल से वहाँ से हटना पड़ा था। यहाँ के उत्थान-पतन में हार-जीत का स्वाद चख लिया था, अपने को उनके अनुकूल बना चुका था। इसका सबक सिखाने वाला वह मैदान कितना प्रिय था, वही एक कर्मभूमि प्रतीत होने लगा था। उसकी दृष्टि और आगे दिखाई पड़ने वाले पीले-लाल भवन पर जा लगी। वही कॉलेज है। वहाँ के बड़े-बड़े हॉल, वर्कशाप, ड्राइंग हॉल, लेबोरेटरी आदि की याद ताजा होती गई। वहाँ भारत के कोने-कोने से आए सैकड़ों युवकों के सम्पर्क से कई

बातों की जानकारी पाई थी, अपनी कमजोरियाँ दूर करने में समर्थ हुआ था। कितने विस्तृत जगत् के दर्शन कर चुका था ? कैसा सुनहला अवसर ! मन को रमाने वाली पद्धति से जमकर पढ़ाने वाले कितने ही प्राध्यापक उसके अंतर्नयन से होकर गुजरे। उनका कितना निर्व्याज अनुराग अनुभव कर चुका था। यहाँ के प्राध्यापक गद्दीधारी नहीं, साथ रहकर हौसला बढ़ाने वाले। हाँ, इसके अपवाद स्वरूप भी कुछ तो रहे ही। कइयों को बनाया भी था। वे प्रसंग याद आते ही चेहरे पर हँसी दौड़ आती है। दूसरे ही क्षण मुद्रा गम्भीर हो जाती। समय उपहास-परिहास के अनुकूल न था। यह स्थान उसके लिए प्रिय ही नहीं, पवित्र भी था। यहीं उसने किशोरावस्था से यौवन में कदम रखा था। चार साल तक पाला-पोसा जाकर कलम बना था। यह उसकी अपर माता है। जननेवाली माँ ने जन्मरक्त बहाया, तो इसने कर्मरक्त संचरित किया था। दोनों का वात्सल्य हिमालय-सदृश था। वात्सल्य के अनुरूप ही विवेक की मांग। यही उसे कँपा भी देती और उत्साह-संकल्प भी जगाती जाती। माताओं की मांगें नहीं ठुकराऊँगा, उनकी आकांक्षा-प्रतीक्षा से बढ़कर आचरणशील होऊँगा; उनका ऋण चुकाऊँगा। मन में बार-बार यही जपता रहता।

रिक्शा राजपुताना होस्टल के चौराहे पर रुका। आनन्द नीचे उतर पड़ा। टीन की चादरों से खड़ी दुकान से पान खाया। वहीं तपाक से पीक की पिचकारी छोड़ी। पनामा सिगरेट का पैकेट लिया। वहीं नारियल की लटकी जटा की आग से सिगरेट सुलगा ली। आकर रिक्शे पर सवार हो गया। रिक्शा बढ़ता गया। गंगाधर की दृष्टि बाएँ लम्बी कतारों में खड़ी हॉस्टल की इमारतों और दाएँ दूर पर स्थित कॉलिज के महोन्नत भवनों पर घूमती रहती। वाह ! कितना मनोरम स्थल है यह मालवीय नगर। डेढ़ हजार एकड़ चौड़ा, मील भर लम्बी पच्चीस पक्की सड़कें, आम, नीम, इमली, अमलतास के झूमते हुए पेड़ों की कतारें, संगीत से लेकर इंजीनियरी तक के तरह-तरह के चौदह कॉलेज, प्रत्येक में १०० से ५०० तक के छात्रों को बसाने लायक तेरह हॉस्टल, आठ हजार शिक्षार्थियों को एक स्थान पर एक साथ विद्यादान, पाँच सौ प्राध्यापकों के लिए आवास का प्रबन्ध, अपूर्व पुस्तकालय, बाबा विश्वनाथ जी का गगनचुंबी मन्दिर, अन्य भी कई दस-पाँच संस्थाएँ—ये सब अकेले का, एक महामना मालवीय जी का, एक कर्मयोगी का पुरुषार्थ है। उनके भव्य स्वप्नों के साकार स्वरूप है। उनका अद्भुत तपोबल है। सर्वशक्ति सम्पन्न अंग्रेजी शासन का सामना करते हुए, सारी विघ्न-बाधाओं को सहते हुए विपत्तियों पर विजय प्राप्त कर राष्ट्र को अर्पित अनमोल निधि है। कैसी महिमामयी भेंट है। यह ठीक है कि सैकड़ों महानुभावों ने मुक्तहस्त हो दान दिए हैं, कइयों के सतत निःस्वार्थ परिश्रम से यह बढ़ा है, आगे भी बढ़ता जाएगा। लेकिन, इन सबके पीछे पहले और आज भी प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से रही-रहने वाली आत्मा, महती प्रेरणा

एक ! वाह ! अकेले के सतत प्रयत्न से कितना बड़ा काम हो पाता है ! हाँ, कितना बेजोड़ !

गंगाधर दीक्षित झट कमर सीधी कर बैठा। विश्वविद्यालय उसका चिर-परिचित हो चुका था। चार साल के उसके प्रतिदिन के जीवन में घुलमिल गया था। इस वक्त वह उसे छोड़ कर जा रहा है, तो उससे सम्बन्ध रखने वाली बातें एक साथ उसके मन में जागृत हो उठी हैं। यह सहज है। यह सब मालवीयजी की श्रद्धा-सेवा के मूर्त्त रूप हैं। सैकड़ों सभाओं में यह सुन चुका था। अनेकों बार स्वयं इसी का आलोड़न-मन्थन कर चुका था। अपरिचित कुछ भी न था। 'मधुर मनोहर' कुलगीत भी विश्वविद्यालय की इन पावन स्मृतियों को जागृत करता था। ईंट-ईंट पर उन महामना की मुद्रा अंकित है, यहीं उस गीत की ध्वनि भी है। लेकिन, इस समय उसका मन 'इसके बाद, अब आगे' की गूँज से डाँवाडोल हो उठा है। जो इस मनोदशा में उन दृश्यों को, उन चिन्तनों को विशेष भव्यता प्राप्त हो गई। कानों में पड़ी बात और नयनों के सामने नाचते चित्र अब बुद्धि में भी भूमि पाने लगे थे, नए अर्थबोध में सहायक होने लगे थे। आज दिन उसे अतीत के दृश्यों के वर्णनों में नई प्राणसत्ता का अनुभव होने लगा या उसके जीवन में यह एक शुभ घड़ी थी। 'इसके बाद, अब आगे' का कोई, अस्पष्ट ही सही, जवाब 'अकेले के सदुद्योग से कितना बड़ा, कितना बेजोड़ काम हो सकता है' से मिलने लगा था। उसके सीने में आज तक कसी पड़ी स्प्रिंग झट से खुलने लगी थी, फैलने लगी थी। इसका आभास उसे हो आया। ढाढ़स बँधता जा रहा था। सहारे के लिए टटोलते हुए अन्धे के हाथ कोई दीवार मानो लग ही गई। यह मालूम न था कि वह किस घर की दीवार है, भीतर क्या होगा, वह कितनी लम्बी होगी, कहाँ रुकने वाली थी, उसे वह कितनी दूर पहुँचा देगी। लड़खड़ाने की अपेक्षा मौके पर सहारे की एक दीवार मिल गई थी। 'अकेले की आत्मसाधना से, लगन से, उत्साह से, एक देह की दमक से, शरीर-यज्ञ से, एक बृहत् कार्य की भूमिका तैयार हो सकती है, उस पर ईंट-ईंट जोड़कर भव्य भवन भी निर्मित हो पाता है। निःस्वार्थ भाव से आरम्भ हुए सत्कार्य की सिद्धि के लिए हजारों की सहायता-सहकारिता मिलेगी ही। छत्ता मजबूत पकड़वाला हो तो हजारों-लाखों मधुमक्खियाँ मिहनत से उसका आकार बढ़ाते-चढ़ाते मधुसंचय करेंगी। इस अनोखी सूझ से उसके दिमाग पर का बोझ कुछ हल्का हुआ। उसने ठान लिया कि ऐसी संस्था की गोद में पलने पर यहाँ की रोशनी-हवा साथ ले जानी होगी, अन्यत्र फैलानी होगी।

गंगाधर को इसका पता न था कि उसे क्या करना होगा। लेकिन 'मैं कुछ कर पाऊँगा' यह हुलास उसके हृदय में जड़ें जमाता गया।

विश्वविद्यालय के प्रवेशद्वार पर रिक्शा पहुँचा ही था। इस बीच आनन्द गंगाधर से बातचीत करने की कोशिश में विफल हो गया था। तेरी जगह अगर इस रिक्शे पर बिस्तर-बक्सा ही रख लेता तो अच्छा होता' का तीर भी खाली गया। हताश हो वह रिक्शाचालक से ही बातें चलाता आया। गंगाधर के एकाएक निकले उद्गार 'कैसी महती संस्था से बिछुड़ कर जाना पड़ रहा है' सुन आनन्द बोल उठा, "अब चूँकि सदा के लिए जाना पड़ रहा है, इसलिए तुम्हारा अनन्य अनुराग इस पर फूट पड़ा है। तुम तो उस गँवार आदमी की तरह हो, जो अपनी औरत को जीवित अवस्था में नाना कष्ट दे कर उसकी साँस छूट जाने पर छाती पीटने लगता है। यहाँ रहते समय हर घड़ी इसकी नुक्ताचीनी ही तेरा प्रिय व्यवसाय रहा। तू बड़ा भावुक है, भाई!" बात की कड़ी यहाँ कट गई थी। टीका-टिप्पणी के लिए गंगाधर का मन इस वक्त तैयार न था। उसमें आत्मबोध की आतुरता तीव्र हो गई थी। 'बाल को खाल खींचने वाली अक्ल से कोई शक्ल खड़ी नहीं हो सकती' कह कर उसने आनन्द को निरस्त्र बना दिया।

●●●

: ३ :

विश्वविद्यालय का अहाता छूटा। लंका मुहल्ला तक आते-आते दो बज चुके थे। मई महीने की कड़ाके की धूप से झुलस कर बनारस की भूमि तप्त तवे की भाँति हो गई थी। लू चल रही थी। धूल उड़ रही थी। तातानगर के ब्लैस्ट फर्नेस की याद आ जाती थी। दुकानदार दरवाजा बन्द किए भीतर ही लुके बैठे थे। शायद पंखे के नीचे लेटे होंगे। सड़क सूनी पड़ गई थी। लेकिन मरम्मती काम जारी था। मजदूर गिट्टी ढोए आ रहे थे। सड़क पर इंजिन धुआँ फेंक रहा था। भाप निकल रही थी। ब्रायलर फाटक से आग उगल रहा था। फैलाई गई गिट्टी पर उसके चौड़े पहिये चल रहे थे। गिट्टी बैठती जा रही थी। इंजिन का मिस्त्री ब्रायलर का फाटक खोल कर, एक हाथ से आँखों के लिए आड़ देकर दूसरे से पसीना पोंछते हुए आवें में कोयला झोंक रहा था। कई मजदूरों के बदन पर कपड़ा ही न था। जिनके कपड़े थे, वे भी धूल से ढक गए थे, पसीने से तर हो जाने से चिपक गए थे। रिक्शे वाले का भी यही हाल था। पसीना उसके अवयवों से चू रहा था। कमानी की छाँह में बैठा आनन्द 'कैसी धूप, कितना पसीना' कहते हुए हाथ से ही हवा ले रहा था, दीक्षित के सामने भी हाथ हिलाने लगा। दीक्षित ने मना किया। बोला, "रहने दो। इनकी ओर देखो।" फिर इशारा किया।

"उनके लिए तो आदत पड़ गई है। मोटी खाल और वज्र-सरीखी हड्डी! अपने जैसे थोड़े हैं?" आनन्द बोला।

"उनकी बिछाई सड़क पर, इसी परिश्रम पर, हम जैसों की सवारी। हम सब इनके ऋणी हैं।"

"ऋणी कैसा? वे अपना काम करते हैं, हम अपना। सब एक ही काम कैसे करें? हर कोई प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति बनना चाहें तो? सनक है और कुछ नहीं।"

"सही है! नहीं बन सकते! लेकिन समस्या इतनी आसानी से नहीं सुलझ पाएगी। यह दूरी कम भी न हो? यह विषमता बनी रहे, तो हम-जैसों को और कई प्रकार के कष्ट झेलने ही पड़ेंगे। हमारा-उनका अन्तर कम होना होगा। हमें भी हयादार जिन्दगी बितानी होगी।"

"इसके लिए पार्टियाँ बना कर 'इनकलाब जिन्दाबाद!' का नारा बुलन्द कर क्रान्ति जगायी जाए? रहा-सहा काम भी खराब कर लें और मौजूदा तकलीफ और बढ़ा लें।"

"हरगिज़ नहीं। वह ज़माना लद गया। यह अभावात्मक-निगेटिव-जीवन का नहीं भावात्मक-पाजिटिव-जीवन का युग है। कोहराम की जरूरत ही कहाँ, सरकार क्रांति-ध्वजा पर ही कायदे-कानून अंकित करती जा रही है। क्रान्तिकारी योजनाएँ बन रही हैं और क्रम से लागू की जा रही हैं। इतना ही नहीं, बड़े सस्ते में हम ऋणमुक्त भी न हो पाते।"

"मतलब? यह ऋण कैसा? मैंने पाई-पाई चुका दी है। बाकी रखी ही नहीं।"

गंगाधर ने फौरन इसका जवाब नहीं दिया। वहीं पेड़-तले बैठे मोची को देखा। सामने ही लोहे की छड़ों से लदे ठेले खींचने वाले दो आदमी देखे। दूसरे ही क्षण गोचर दृश्य से बहुत दूर मन पर बनते चित्र देखे। समूचे अभागे भारत के श्रमजीवी उसमें दिखाई दे रहे थे—खेतों में, बगानों में, खानों में, कारखानों में, रेल की पटरियों पर, बाँधों-नहरों में, बन्दरगाहों पर, शाला-कचहरियों में, शहरों-देहातों की सफाई में—इन सब क्षेत्रों में लगे मजदूर उसमें थे। वह कल्पना-चित्र इन सबका समाहित स्वरूप था। पल भर के बाद वह धुँधला पड़ गया। उन सबके सामूहिक सत्प्रयास से ही अपने जैसे इनेगिनों का जीवन सरल है, इससे भी कम लोगों का जीवन सुखमय है और एकाध का जीवन विलासमय है। किन्तु उन बेचारों के लिए दाना-पानी भी दूभर! उनके परिश्रम से ही विद्यालयों का निर्माण होता है, जहाँ चन्द लोगों को शिक्षा मिल जाती है, लेकिन वे स्वयं निरक्षर ही रह जाते हैं। विद्या, सम्पत्ति, सुख, पद, अधिकार

आदि के मूल स्रोत होकर भी, वे उन सबसे वंचित हैं। विद्वान, धनी, अधिकारी ये सब उनके ऋणी हैं। फिलहाल जो भीख, मज़दूरी दान दिए जा रहे हैं उससे वह ऋण चुकाया नहीं जा सकता। तब दूसरा उपाय कुछ सोचना होगा न ?

"आनन्द ! सुना, अब मुझे जवाब सूझने लगा है। हर कोई प्रधानमन्त्री नहीं बन सकता। लेकिन जो भी प्रधानमन्त्री बनेगा, उसे अपने पद—भाग्य कह लो—के अनुरूप आचरण करना होगा। जी चुराये बिना खटना पड़ेगा, अथक परिश्रम करना होगा। प्राप्ति के अनुरूप नहीं, शक्ति से बढ़-चढ़ कर। काम पहले, दाम पीछे। चाल उल्टी न हो। वैसे ही हम-तुम सरीखे भाग्यशाली—ऋणी लोग—भी अपनी-अपनी जगह पर ईमानदारी से निज को निर्विशेष भाव से पूर्ण दान कर दें तो राष्ट्र के ऋण से उनकी मुक्ति सम्भव प्रतीत होती है।"

"अरे यार ! विनोवा की लटकन की तरह 'दान-दान' क्या हांके जा रहे हो ? वही झक सवार है ?"

"विनोबा आजकल दान नहीं, समर्पण की चर्चा चलाते हैं। जो कुछ किया जाए, समर्पण-भावना से किया जाए। यही युग की मांग है। जहाँ से हमें शक्ति मिली है, वहीं उसे लौटा दी जाए। प्रोफेसर साहब की बात याद है ?……… 'सरवर का नीर सरसी में ही अर्घ्य दिया जाए, वरदान का पात्र बना जाए। हरिकृपा से प्राप्त सौभाग्य हरि-सेवा में ही अर्पित कर जीवन सार्थक बनाया जाए।"

"यह कौन-सी नई बात है, हटाओ जी ! मेरी छोटी बहन गायन शुरू करने लगी थी, तभी इस भाव का पद सुना था। यहीं से गायन-कला का श्रीगणेश….।"

"मैंने भी सुन रखा था। गांव में हिरियण्णाजी की बिटिया गाती थी। सुन लेना कोई बड़प्पन नहीं सूचित करता। उसका कोई प्रभाव उस वक्त नहीं मालूम पड़ा था। प्रोफेसर साहब ने जो दुहराया तब भाव का अभिप्रेत वेद्य होता गया। पद ही सब कुछ नहीं, सुनाने वाले और सुनाने का प्रसंग इनकी भी महत्ता कम नहीं। कल इन दोनों तत्वों का रुचिकर समाहार हुआ था। वाह, कितना अनूठा पद था वह ! सात्विक जीवन का निचोड़ उसी में निहित है ! यह राष्ट्र ही श्रीहरि है। उसी की महती करुणा से हमारा सौभाग्य है—यह शरीर, विद्या, शक्ति आदि। जीवन की पूरी सार्थकता हेतु यह सारा सौभाग्य उसी को अर्पित हो जाए………खूब !"

"गुब्बारे की तरह अधर में लटकते दीख रहे हो। तुम्हारी यह सूरत, यह नसीहत ! पहले तो कभी ऐसे विकृत न थे ? उस 'लौह सरदार' की तरह मौन

साधक गिने जाते थे। सालों बाद यह मेरी हवा तुमको भी लग गई क्या ? यह कैसी बचकानी बौखलाहट है, भाई ? गनीमत है, परीक्षा के बाद तुम पर यह पागलपन सवार है।"

"ठीक तो, प्रोफेसर साहब ने कहा नहीं 'मस्ती के बिना कोई महान कार्य नहीं सधता।' सनक, पिनक जो भी सवार हो जाए। कम-से-कम उसी नशे में थोड़ा-बहुत सत्कार्य बन पड़े तो अच्छा ! आनन्द ! क्या किया जाए, कैसे किया जाए—इसका कोई अता-पता सूझ नहीं रहा है।"

"सुन लो प्यारे ! बनारस की गरमी है। तुम्हें लू लग गई होगी। बुखार चढ़ा है। जरा इधर हाथ लाना तो। बेहोशी की हालत में अनाप-शनाप बके जा रहे हो। घर पहुँच जाओ। ठंडी जगह में जाने पर सब ठीक हो जाएगा। 'क्या करना चाहिए ?' का माकूल जवाब सूझेगा। न सूझे, तो तुम्हारे माँ-बाप सुझा देंगे। परेशान न हो। मेरी बात मानोगे तो यही कहूँगा कि कोई नौकरी कर लोगे, विवाह हो जाए, तो सन्तुलन आ जाए। तुम्हारी बुद्धिमानी असंदिग्ध है। रेलवे सेवा की परीक्षा दे लो। उच्च श्रेणी निश्चित ही है। फिलहाल वहाँ जगहें कई हैं। सैकड़ों को अफसरी के लिए चुन रहे हैं। मैं भी सोच रहा हूँ कि हो सके, तो हाथ मारूँ। पीछे काम में सिर खपा लेना। भाग्यरेखा को विधाता भी मिटा नहीं सकता। उतनी सेवा अल्प है। ऋण चुक जाता है। जहाँ तक बन पड़े टेनिस, ताश आदि का थोड़ा-बहुत शौक रख लो। जीवन संतुलित हो जाएगा। शुरू के दो-एक वर्षों में ही कमर नहीं टूट जाएगी। व्यर्थ ही समर्पण, समाधि का ख्याली पुलाव न पकाओ। ठोस धरती पर कदम बढ़ाओ। बुद्धू मियाँ, हम ही दुनिया को सिर पर लिए फिरें ? बकझक बन्द करो, फजीहत मोल लेने का क्या फायदा ? विवेक से काम लो।"

आनन्द की बातें गंगाधर के अन्तर को स्पर्श नहीं कर पाती थीं। वह उस तिलमिलाने वाली लू में भी शीतलता अनुभव करने लग गया था। 'सरवर का नीर........' की गूँज उसके भीतर रह-रह कर उठती जाती। इससे कोई निष्कर्ष नहीं निकलता था। कोई राह नहीं सूझ पड़ती भी। फिर भी आराम तृप्ति के अनुकूल मनोभूमि बनने लग गई थी। आध्यात्मिक पीठिका की प्रतिष्ठा का आभास होने लगा था, आशा-किरणें झिलमिला उठी थीं।

रिक्शा स्टेशन की ओर बढ़ रहा है। रास्ते पर मिले फेरी वाले, मेवे वाले आढ़तों के मजूर, चाय बेचने वाले पटरी-पति, रिक्शा के स्टेशन पर पहुँच जाने के बाद सूनी दृष्टि और धसे हुए पेट वाले भिखमंगे, सामान लादे कुली, पंक्ति-बद्ध मुसाफिर, प्लेटफार्म पर जूते में पालिश लगाने को दौड़े आए छोकरे, वहीं दूरी पर मालगाड़ी के डिब्बों में माल रखते पोर्टर आदि सभी पहले की अपेक्षा

इस समय दीक्षित की दृष्टि में अर्थपूर्ण व्यक्तित्व वाले हो गए थे। ये केवल पेट पालने के लिए खटने वाले नहीं, राष्ट्र के सच्चे प्रतिनिधि बन बैठे थे। उनकी दृष्टि मानो उससे कहती प्रतीत होती कि 'तू इंसान बन गया, इतना नमक खाया, हमारे प्रति तेरा कर्त्तव्य क्या है?' कुछ तो हाथ बढ़ाते ही थे, लेकिन याचना-वृत्ति से नहीं, अधिकारी-वृत्ति से।

काशी एक्सप्रेस खड़खड़ाती दम्भहीन दीप्ति से शोभायमान हो समय पर ही आ पहुँची। उसके भरे हुए डिब्बों के प्रदर्शन में भी व्यंजना दीक्षित के लिए स्पष्ट थी कि 'देखो, मैं काई धोखेबाज नहीं, मुफ्तखोर नहीं, वक्त की पाबन्दी तोड़ने वाली नहीं, जितना भी लाद दिया जाए ढोये चलती हूँ। हजारों मील का फासला बिना उचाट तय कर लेती हूँ। तमाम अड़चनों को पार करते हुए पटरी से हटे बिना अबाध गति से बढ़ती रहती हूँ। धूप-वर्षा की कोई गिनती नहीं। साबित रहने तक सतत सेवा में तत्पर हूँ।"

गाड़ी रुकी। गंगाधर डिब्बे में चढ़ा। आनन्द दो लेमनेड सोडा लाया। दोनों उसे पी गए। इंजिन की सीटी हुई—'निकलने वाली हूँ। कोई मुझे रोके न। राष्ट्रसेवा ही सर्वोपरि है।' उक्ति की ही भाँति कृति भी। कर्मयोगियों का लक्षण! गाड़ी चल दी।

आनन्द चलती गाड़ी के संग थोड़ी दूर तक साथ देता गया और कहता गया—'जा रहे हो बन्धु! जीवन नया मोड़ लेने लगता है तो सहज ही कई विचार, भावनाएँ उदित होती हैं। उनके मोह में नहीं पड़ना चाहिए। दिमाग ही क्रियाशक्ति का मूल है। उसी में गड़बड़ी मच जाए, तो काम बने कैसे? जितना बन पड़े, उतना करें। अरे! मेरी गाड़ी—अपर इंडिया एक्सप्रेस—के लिए अभी एक घण्टा बाकी है। इस वक्त दोनों की गाड़ियाँ अलग और रास्ते अलग हुए हैं। भविष्य में कभी-न-कभी मिलेंगे ही। मिलन-स्थल कोई पागलखाना या जेल न हो तो अहोभाग्य! अच्छा, गुडबाई।"

"आनन्द, अभी कोई चीज साफ नहीं, होगा या नहीं यह भी न बता पाता। कई कारणों से मैं तुम्हारे कथनानुसार बदल भी जाऊँ और इस क्षण की चित्त-वृत्ति एक झीना आवरण भर हो जाए। इतने पर भी यदि यही चित्तवृत्ति स्थायित्व पा जाए, युगधर्म के अनुरूप आचरण में प्रेरक तत्व बन जाए, मेरी आकांक्षा के अनुकूल जीवन की चरितार्थता में पोषक रह जाए, तो मैं अपना भाग्य सराहूँगा। देखा जाएगा। फिर मिलने पर हिसाब लगाएँ। नमस्कार।"

आँखों से ओझल होने तक दोनों साथी रूमाल हिलाते ही रहे।

● ● ●

: ४ :

तीन दिन का लंबा सफर ! सोलह सौ मील का फासला ! रविवार ! गंगाधर (प्रकाशपुर रोड) 'बेलगूर रोड' स्टेशन पर गाड़ी से उतर पड़ा। सुबह के आठ बज चुके थे। बिस्तर-बक्स दरवाजे पर ही रख लिया था। उतरते ही उन्हें भी उतार लिया। तीन रातें बैठे-बैठे ऊँघते बितायी थीं। डिब्बे में नींद कैसी ! झपकियाँ लेने भर को सुविधा मिल जाए, तो बहुत है। नींद के बिना सारा बदन दुःखने लगा था। पहले सफर के अवसरों पर वह लड़-झगड़ कर डिब्बे में अपने लिए ठिकाने की जगह बना लेता था। बाकी मुसाफिर एक-दूसरे को धकियाते-ठेलते दरवाजे पर खड़े रह जाएँ, बला से, खुद अनजान बने टाँग पसार कर सो जाता। अबकी बार यही तरीका अपनाने को उसका जी न माना। उतना ही वह शर्म के मारे गड़ भी गया। एक कोने में बैठा—कल्याण और पूना के बीच खड़े-खड़े ही—वह सहयात्रियों, स्टेशनों पर दिखाई देने वालों की ओर मुग्ध-दृष्टि फेरता रहा। दिन में उसकी दृष्टि आर-पार की खेती, अनवरत चहल-पहल मचाने वाली आकृति आदि को निहारती रही। इस निरीक्षण-व्यापार में उसका समय कटता था। बनारस में जागृत चिनगारी, इतनी देर तक, उसके चित्त में चमक लाने वाली परिणत हुई। कोई हल नहीं निकल सका था। कोई निर्णय सम्भव न हो पाया था। वह बाहर जो भी देखता जाता, भीतर जो भी सोचता रहता, इन दोनों के परिणामस्वरूप उसकी भावना गहरी होती जाती, धारणा दृढ़तर बनती जाती।

गरमी के दिन थे। गाड़ी में तंगी थी ही, देह शिथिल हो गई थी। मन जंग खा गया था। कभी-कभी पलकें झप जातीं, तो वह हिचकोले खाता रहता। जरा सा धक्का खाते ही चौंक कर उठ बैठता। ये ही घड़ियाँ उसके लिए विश्राम-दायिनी रहीं। पहले के सफरों में दिन के निकलते ही वह टाइलेट केस उठा लेता। किसी ऊँचे दर्जे के डिब्बे में घुस जाता। दाढ़ी बनाकर नहाता, कपड़े बदल लेता और उतरते समय टीमटाम से उतर पड़ता था। इस सफर में सजधज की कोई आवश्यकता प्रतीत न हुई। सिर पर गर्द-गुबार, बिखरे बाल, मैले कपड़े आदि उपेक्षित ही रह गए थे। इतने पर भी सफर पूरा होते-होते अपने जन्म-स्थान की ओर से बहती आई ठंडी हवा के स्पर्श मात्र से वह पुलकित हो उठा। सफर की थकान हल्की मालूम पड़ी। इस वातावरण में वह संतोष की साँस ले ही रहा था कि घण्टी हुई, सीटी बजी, गाड़ी सरक भी गई। ये बाहरी व्यापार उसे भावलोक से विचलित न कर सके। इनके लिए वह आदी हो ही गया था न?

"कहो भाई, गंगाधर, मजे में हो ?" स्टेशन मास्टर की वाणी सुनाई पड़ी, जो गार्ड को बिदा कर लौट रहे थे। यह सुन, गंगाधर अपने को सँभालने लगा।

"जी हाँ—आपकी कृपा से यहाँ का नया हालचाल क्या है ?" गंगाधर ने जवाब दिया। स्टेशन मास्टर की ओर मुड़ते समय उसकी दृष्टि, उनकी मैली धोती, पुराना नीला कोट, दाग़वाली पगड़ी, मिश्रित वर्ण की तीन दिनवाली दाढ़ी आदि पर भी गई। वह मन-ही-मन कहता गया कि 'अपने देश के कर्मचारियों में रेल विभाग के कर्मचारी उन्नीस-बीस हैं।'

"हालचाल तुम ही सुनाओ भी। इस उपेक्षित कोने में क्या धरा है ! इस मार्ग पर चार गाड़ियाँ बढ़ाई गई हैं। सवारी, माल—यही सर्वाधिक—का ताता बढ़ने लगा है। यह भी कोई ख़बर हैं ? यहाँ भी थोड़ी-सी क्रियाशीलता गोचर होने लगी हैं, जैसे सोया पड़ा जगकर आँखें मलने लगा हो। उसका रूपरंग क्या है, मैं नहीं जानता। यही रवैया देश के कोने-कोने में होगा। यह नया समाचार थोड़े ही है। तुम लोग पढ़े-लिखे हो, देश में इधर-उधर घूम आए हो, बड़े-बड़े शहर, काम-धाम आदि को देखरेख करने वाले, नए-नए समाचार तैयार करने वाले। तुम ही बताओ न ?" उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए मुस्कान के साथ वे बोल रहे थे।

"क्या कहा आपने ? हम, नए-नए समाचार तैयार करने वाले ?" गंगाधर को यह वाक्य सर्वाधिक व्यंजक लगा। वह आगे बढ़ा—"ठीक है, समाचार कहलाने लायक कोई ठोस काम भी तो हो भला ! मास्टर साहब ! राष्ट्र में बड़े पैमाने पर तेजी से काम तो हो रहे हैं। उसमें अपना हिस्सा क्या है, कैसे किया जाए, इसी बात की चिंता सता रही है........।"

"कैसा बेसुरा राग अलाप रहे हो जी ? तुम जैसे लोग न करें, तो क्या फरिश्ते आएँगे, उन्हें पूरा करने ? रेल विभाग की सेवा में परीक्षा देने की सोच रहे हो ? बड़ा अफसर बन जाओ....... हम लोगों का........।" उनकी बात पूरी भी न हो पायी थी कि दफ्तर के टेलिफोन की घंटी की आवाज हो गई। वे चले गए।

अब बूढ़े पोर्टर की बारी आई। सीकचेनुमा पैर, नीले रंग की कमीज, नीली जाँघिया, पिचके हुए गाल—ये ही उसके भेदक-लक्षण थे। वह नीले रंग का साफ़ा समेटता हुआ सामान के लिए झुक कर बोला, "अच्छे हैं, बाबूजी ?"

"अच्छे हैं मुद्दण्णा ! तुम लोगों का क्या हाल है ?" बिस्तर उसके सिर पर उठा रखते दीक्षित ने पूछा।

"ठीक है, प्रभु की किरपा है !........छोटे भाई की शादी हुई, भैयाजी !" उसकी आवाज में 'यह सुनाने लायक एक अनोखा समाचार' का सा गर्व और 'आखिरकार वह होकर रही' की तसल्ली दोनों स्पष्ट होते थे। आगे बोला, "बक्सा दीजिए, भैया जी।"

"रहने दो। खुद उठा लूँगा। चलो।"

"राम कहो, यह हरगिज नहीं हो सकता। इधर दीजिए, भैया जी।" कह कर बूढ़े ने गंगाधर के हाथ से बक्सा ले ही लिया।

"मैं जानता ही न था कि तुम्हारा एक छोटा भाई भी है। उसकी शादी में कौन-सी नई बात थी? यह क्या तीसरी या चौथी……।" मुद्दण्णा के साथ विश्रामालय की ओर बढ़ते हुए गंगाधर ने जिज्ञासा व्यक्त की।

"ऐसा कोई झमेला नहीं। अरे, अभी यही पहली।"

"उसकी उम्र क्या होगी?"

"पचास के करीब होगी।"

"पचास!"

"हाँ, मुझसे चार ही साल कम है, भैया जी! मेरी ही उम्र कितनी हो गई होगी, आप ही अंदाज लगा लो न।"

"इतने दिन तक रुकी क्यों रही?"

"रुकी रहने का सबब यही है, उस खूसट को कन्या कौन दे? वह ब्याह कर भी कैसे लेता? एक एकड़ की धानवाली खेती ही हमारी बपौती थी। तालाब के पास ही की जमीन। लेकिन वह तालाब बहाई मिट्टी से भर गया था, बरसों से सूखा पड़ा था। मिट्टी खोद फेंकने वाले ही नहीं हैं। गाँव वाले यह कहते चुप लगा गए कि लगान वसूलने वाली सरकार मिट्टी फिकवावे। उन्हें अपनी खेती की बरबादी का कोई ख्याल न रहा। सरकार का रुख था कि गाँव वालों को ही यह सब काम कर लेना होगा। उसके लिए पैसे कहाँ हैं? सालों से वह भी हाथ-पर-हाथ धरे रही। गाँव का हाल सबको मालूम ही है न। फलाना करे, ढेका करे। झगड़े के मामले को छोड़ कोई किसी से हाथ मिलाता ही नहीं। फिर क्या था! तरी जमीन खुश्की जमीन में बदल गई। उतनी आय से तीन जने का पेट कैसे चले। इधर भगवान की किरपा हुई। यह नौकरी लग गई, सालों के उपवास-बनवास के बाद। वह यही खेती कर लेता था। फसल अकेले के लिए एक जून तक भी न अटती थी। दूसरी खेती कर लेने की सोचे, तो गाँव भर में भूमिहीन जन ही अधिकांश थे। इसके लिए भी बड़ी होड़ाहोड़ी ही मची रहती। उसे मिलेगी क्योंकर? ऐसे की सगाई कैसी सोची जा सकती? बोलो बाबूजी! क्वाँरा ही रहा। मैं थोड़ी-सी मदद करने का विचार करता, तो मेरा हाल ही डाँवाडोल था। इस नौकरी के बाद ही दो वक्त का खाना पेट में जा सका है। काम का समय कोई ठीक नहीं, सो रसोई पकाने के लिए कोई रह जाए, इस विचार से शादी कर ली। दनादन ग्यारह सन्तानें हुईं, जिनमें दो चल बसीं। उस वक्त की कमाई ही क्या थी? दाना-पानी के लिए भी कम पड़ती थी। बहू क्या लाया, खुद को भाड़ में झोंक लिया। हाल ही में चार साल से सुराज मिलने

के बाद तरक्की हुई है। दोनों जून अन्न खाते हैं, जी भर सो लेते हैं। मैं अपने छोटके की मदद ही क्या कर पाता? लाचार था, हाथ खींच लिया था। इधर मन्त्री, अफसर, तुम्हारे सरीखे पढ़े-लिखे आदमी, बड़े-बड़े कहलाने वाले कई सदल-बल गाँव आए। सुना कि सभी कुदाली, गडारी साथ लाए थे। कमर कस कर मिट्टी की खोदाई और फिकाई में जुट गए। ताज्जुब की बात यह कि काम भी हो गया। तालाब पुराना था ही, बड़ा भी रहा। दो महीने में दुरुस्त हो गया। पानी भी भर गया। पारसाल छोटे ने धान की खेती भी की। थोड़ी-सी रकम भी हाथ आई। पास सोना रहे तो कन्या की कमी कैसी? ब्याह भी हुआ। प्रभु की दया रहे, तो बाल-बच्चे भी हो ही जाएँगे। बाहरी लोगों को भी एक वक्त खिला सकता है। वह भी एक इंसान बन जाएगा। जुग बदल रहा है, भैयाजी! यही अपने छोटके की चारु चरितावली है।''

बूढ़ा कहे जा रहा था। गंगाधर सावधानी से वृतान्त सुनता जा रहा था। स्टेशन से बाहर आते ही उसने सामान उतरवा लिया। इससे पहले यदि ऐसी रामकहानी सुनता, तो न जाने उसकी प्रतिक्रिया क्या होती? लेकिन इस समय, इस गँवार की कलाहीन कहानी, उसे पढ़ी हुई कहानियों एवं उपन्यासों से ज्यादा दिलचस्प लग रही थी। कहानी कहते समय बूढ़े की आँखों में जंगी जोश और ध्वनि में व्यक्त उत्साह कहानी को रसात्मकता का पुट देने वाले सिद्ध हुए। दीक्षित को इसमें उन दिनों के भारतीय जन-जीवन की व्यापक कथा-इतिहास-सार आदि की झलक दिखाई पड़ी। उसे भासित हुआ, मानो आँखों में लगे इस अंजन से मलिनता हटती गई और दृष्टि अधिक साफ होती भी गई। यही कहानी बारबार याद किए जा रहा था।

''घर कैसे पहुँचेंगे, भैया जी!'' बूढ़े का यह प्रश्न उसे धरती पर ले आया, 'बेलगूर से कोई सवारी नहीं है। डाकगाड़ी के वक्त तक आ जाय तो आ जाय।'

इस प्रश्न के उत्तर-रूप में ही मानो किसी सवारी के आने की सूचना गाड़ी में जोते गए बैलों के गले में बँधी घंटिकाओं की ध्वनि से मिली।

''लो, अणदय्या महाराज की गाड़ी आ गई।'' मुद्दण्णा ने ध्वनि की पहचान के बल पर कहा।

'अणदय्या महाराज' उस ओर आसपास में विख्यात बेलगूर के हिरियण्णजी थे। गंगाधर के लिए तो ये पितृ सदृश थे। वह उनके परिवार में घुल-मिल गया था। उनसे पर्याप्त सहायता भी प्राप्त की थी।

गंगाधर के लिए घंटिकाओं की वह ध्वनि अपरिचित न थी। दूसरे ही क्षण मोड़ पार कर बड़ी कमानी वाली गाड़ी दिखाई दी। वही थी, कोई भ्रम न हो सकता। बैल भी वह पहचान गया—राम तथा लक्ष्मण। दोनों उसके लिए लंगोटिया यार के समान थे। बचपन में कई बार बदन रगड़ कर नहलाये थे।

दूब खिलाई थी। कभी-कभी गाड़ी भी हाँकता था। सीधी लम्बी सींगवाली जोड़ी थी। गोरा रंग। उभरे अवयव। डीलडौल का चाल। गले में दस घंटिकाओं की लड़ी। जोड़ी इठलाती, बलखाती आ रही थी। घंटिकाओं की ध्वनि दिशाओं में मंगल वाद्य का माधुर्य फैला रही थी। पदचाप ताल का काम दे रहे से। पदन्नति से उत्पन्न धूल, धूप का-सादृश्य उत्पन्न कर जाती। जोड़ी तेजी से आकर नन्दीश्वर के जुड़वे का प्रत्यक्ष अवतार प्रतीत हो रही थी। काले चमकते नथुनों से धौंकनी की सी साँस, मुँह से टपकती लार.का फेन, गोल तथा विस्फारित नीलम सरीखे नयनों की ज्योति आदि में दीक्षित को स्वामिनिष्ठ सेवकों की शक्ति, श्रद्धा, श्रम, उत्साह आदि के दर्शन हुए। प्यार से 'राम, लक्षण !' पुकारता वह उनके पास दौड़ा, उनके चेहरे पर हाथ फेरा और गले को थपथपाया।

"गंगप्पा ! कब आए ? इसी गाड़ी से ?" गाड़ीवान बूढ़ा मादप्पा जुए पर से कूदते पूछने लगा।

"कौन, गंगाधरय्या !" एक लड़की गाड़ी के पिछवाड़े से छलांग मार कर उतरती हुई आश्चर्य प्रकट करने लगी।

"लो।" कहती एक दूसरी धीरे-धीरे उतरी।

गंगाधर को इन आवाजों को पहचानने में देर न लगी। आँखें चौड़ी हुईं। उत्सुकता से भीतर झाँका। लेकिन, इतने में दोनों उतर पड़ी थीं। नाटक में दृश्य के पटाक्षेप से उत्पन्न प्रभाव की भाँति, उसका संसार पल भर में ही निराला हो उठा। तीन दिनों की चिन्ता, यन्त्रणा फुर्र हो गई। जादू की छड़ी असर कर गई थी! प्रत्यक्ष ही उसके लिए सर्वस्व हो चला था। अब तक शिथिल पड़ी, उसकी चेतना वेश बदल कर थिरकने लगी। माद्दा को सम्बोधित कर 'हाँ, अभी अभी आया। सब ठीक है न ?' कहते हुए वह गाड़ी के पीछे की ओर तेजी से बढ़ा। तभी भागीरथी सामने आती मिली। उससे वह टकरा ही जाता। वह हिरियण्णाजी की इकलौती कन्या थी। दीर्घकाल तक सन्तान न हुई थी। यह दूसरी पत्नी से पैदा हुई थी।

"कहो गुड्डी ! कैसी हो ?" गंगाधर विस्फारित नेत्रों से नख से शिख तक निहारते हुए उसकी ओर से आते परिमल से स्नान करते बोला।

"वाहियात बात है, गुड्डी ! मैं इतने दिनों के बाद भी गुड्डी ही हूँ ? भगवान का दिया कितना प्यारा नाम है ?" बनावटी रोष से त्योरियाँ चढ़ा कर, तरेरती हुई काली आँखें उस पर गड़ाकर, दाएँ हाथ के अंगुल भर रूमाल से गुलाबी मुँह तथा कुन्द से दाँतों की हँसी छिपाती, वह बिगड़ गई।

गंगाधर ने छूटते ही जवाब न दिया। थोड़ी देर उसे निहारता रहा।

"गुड्डी नहीं तो फिर क्या हो? अपनी रंगाई-पुताई, वेश-भूषा, सजावट और हाव-भाव आदि पर गौर करो न! कठपुतली ही! ये सारे प्रसाधन फालतू हैं, शायद इसका पता तुम्हें अब तक न लगा। निरी बुद्धू! खूब, नागरिकता की प्रतिमूर्ति हो तुम।" मुस्कराते हुए वह उसकी आलोचना करने लगा। उसकी दृष्टि भुजाओं पर से उठकर सीने पर लटकती हुई छोर पर खुली दो वेणियों, नानूभाई हीरे के लोलक, तरह-तरह की चूड़ियाँ, पालिश से रंजित नाखून, वैनिटी केस, खटाऊ की हरी फूलदार वायल की साड़ी, मेरून ब्लाउज, सफेद एँड़ीदार जूते आदि सब पर गुजर गई। उसके तानों में छिपी तारीफ भागीरथी को मालूम थी। वह उससे छह साल बड़ा भी था। गरीब होने पर भी बुद्धि-शाली मानकर जिस घर में उसे सम्मान मिला था, वही उसे भागीरथी को सालों गोदी में लिए खेलाया था। बड़ी हो जाने पर 'तू-तू मैं-मैं' भी हो चुका था। जब से वह बंगलोर की हाईस्कूल में दाखिल करायी गई, तब से हर ग्रीष्मावकाश में हिसाब पढ़ाया था। इधर चार वर्षों से उसकी अध्यापकी बन्द हो गई थी; क्योंकि भागीरथी ने ज़िद करके इण्टर (आर्ट्स) में नाम लिखा लिया था। फिर भी छुट्टियों में भेंट और जोरदार बहस जारी थी। दोनों में परिवारियों की-सी बेमुरौवती का नाता था। उसकी यह सारी शान-शौकत बंगलोर होस्टल से आमद हुई थी।

"बस करें टीका शिखाध्वज जी महाराज! अभी भेंट हुई ही, तुम्हारी गलने लग गई। हुलिया अपनी देख लो—पूरा भालू! उसी तरह रहना होगा न?"

"ऐं! ठीक कहा!" दोनों लड़कियाँ खिलखिला कर हँस पड़ीं, तो गंगाधर को अपनी अवस्था का बोध हुआ। तभी उसे लगा कि पार्वती से भी पहले ही दो शब्द कह देना था। पार्वती गाँव के शानभोग रामण्णाजी की लड़की और गंगाधर के लंगोटिया यार गुण्डण्णा की छोटी बहिन थी। साथ खेली-कूदी सहेली। इसने भी बंगलोर में पास की। आगे पढ़ाई नहीं हुई। कुछ समय कस्तूरबा शिविर में रही।

"यह क्या पारू भी आ गई है?" उसकी निगाह पार्वती पर पड़ी और ऊपर से नीचे तक परखने लगी। सौन्दर्य में वह भागीरथी से कम न थी। आकृति का विश्लेषण करने पर उससे भी विशेष रूपवती लगती थी। उसकी दृष्टि में स्निग्धता, सौम्यता थी, भागीरथी की दृष्टि-सरीखी चमक-चपलता नहीं। वह दर्शक को मोहित ही न कर जाती, बल्कि उसे आत्मीय बना लेने की क्षमता भी रखती थी। बार-बार देखने की अभिलाषा जगाने में समर्थ थी। वह पूर्णिमा की चन्द्रज्योत्स्ना की तरलता से सम्पन्न शोभामयी थी। अनलंकृत होने पर भी उसका रूप-लावण्य खिला रहता था। भागीरथी की विभक्त वेणियों में

गुलाब शोभित थे, तो पार्वती की सम्पृक्त केश-विन्यास-रचना में शुभ्र सुमनों का गुच्छा शोभावर्द्धक था। उसके ललाट पर वृत्ताकार टिकुली थी, चमक-दमक नहीं थी। हल्की रंग वाली ब्लाउज पर श्वेत साड़ी। पैर में चप्पल। गहने इने-गिने ही, सुन्दरता में सरलता की रक्षा करने वाले। जैसा रूप, वैसा ही स्वाभाव। भागीरथी बरसाती नदी के उच्छृङ्खल आवेग का स्मरण दिलाती, तो पार्वती संयत प्रशान्त निर्मल धारा की स्मृति जगाती।

"आज यह कैसा शुभ संयोग है कि दोनों श्रीमतियाँ यहाँ साथ पधारी हैं।" दृष्टि पार्वती से होकर भागीरथी पर फेरते गंगाधर ने पूछा।

"और किसलिए, तुम्हारे स्वागतार्थ।" भागीरथी बोली।

"अनेक धन्यवाद ! इस दीन पर इतनी दया की। अच्छा, यह तो बताओ तो सही कि मेरे आने की सूचना तुम्हें मिली कैसे ?" उसके कथन को आधारहीन सिद्ध करते गंगाधर ने पूछा।

"टेलीपैथी !" भागीरथी ने चतुराई से कहा।

"अभी तेरा कोई पति है कहाँ कि हमको ही बनाने चली हो। झूठ बोलने से काम न चलने का। भूलना नहीं कि मैं तुम्हारा गुरु रहा हूँ। अण्णाजी ने कुछ……।' हिरियण्णाजी को वह भी भागीरथी की तरह 'अण्णाजी' ही कहता था।

"ना-ना डाकगाड़ी से नंजत्ते आने वाली है।" नंजत्ते हिरियण्णाजी की छोटी बहिन थी।

"वही बोलो न।"

"उनका लाड़ला भी……।" मुसकाती पार्वती कड़ी जोड़ने लगी।

"ऐसी बात ! विषकंठ शास्त्री जी……अमरीका से लौटे क्या ? तब ठीक है……तभी तो गुड्डी की सजावट उत्कट है।" बात विनोद में कही गई थी, फिर भी चेहरा कुछ फीका हुआ। तुरन्त ही अपने को सँभाल लिया।

"उत्कट है ? हूँ।" भागीरथी जरा नाक चढ़ा कर फुत्कार निकालने लगी।

"गलती हो गई क्या ? उत्कट की जगह महोन्नत या तुम्हारी अमरीकियों की तरह नवोत्थित कहना चाहिए था ?"

"कोई व्याख्यान आवश्यक नहीं। भला चुप रह जाओ तो। इसी उद्देश्य से मैंने कोई अतिशय बनाव-सिंगार नहीं किया है। यह तो मेरी आदत है। इतने पर भी यहाँ तक आने की गरज क्या थी। अण्णाजी को अचानक जरूरी काम पड़ गया। मुझसे जाने को कहा। आ गई, बस ! हवाखोरी के लिए पार्वती को भी साथ लाई……।" कलाई पर लगी घड़ी की ओर देखते— "ऐं, साढ़े आठ बज चुके !" कहने लगी।

"मैं भी इस बीच सभ्य नागरिक का बाना क्यों न धारण कर लूँ।" कह कर गंगाधर दाढ़ी पर हाथ फेरने लगा।

"अब समझे, हम महिलाओं पर फब्तियाँ कसने वाले आप पुरुष लोग ...।"

"मैं-हम किसके लिए मरते हैं, आपके लिए ही तो! तुम महिलाएँ यहाँ पर हैं—भालू की तरह रहना अशोभन जान कर ही।"

"अथवा अमरीका से लौटे हुए से प्रतिद्वन्द्विता हेतु ही?" पार्वती हँस पड़ी।

"हट, कहाँ-से-कहाँ का मिलान! नर के सामने खर की भाँति। कहो गुड्डी! तुम्हारा विचार क्या है?"

"कहीं भ्रम से कुली समझ कर सामान उठाने के लिए न कह दें, यह आशंका होगी।" भागीरथी ने चोट की।

"हाँ-हाँ, सही बात है। वही राज होगा।" पार्वती ने भी योग दिया।

"सहज ही मिली मर्यादा भी आपके लिए अमान्य है, मेरा वश क्या चले? मुझे कहीं से चार आने भी मिले तो मैं नकारने वाला नहीं।"

डाकगाड़ी के आने में थोड़ी और देर थी। गंगाधर ने वेटिंग रूम खुलवाया। सामान भीतर रखा। लड़कियाँ भी पीछे हो लीं। पोर्टर पानी खींच लाया। गप्पें हाँकने वाली प्रगलभाओं की बातचीत में यदाकदा भाग लेते हुए, उपहास का पात्र बनते हुए यह भालू भीतर बाथ रूम में घुसा। थोड़े समय में ही सँवारे केश, चिकना चेहरा, शुभ्र श्वेत कुर्ता-पाजामा आदि से सुसज्जित नर-वेशधारी होकर बाहर निकला।

"पहले से जटा ठीक जँचती है?" उसने भागीरथी की ओर देखा।

"हाँ......थोड़ी ......सुधरी है।" आवाज खींचती वह बोली।

"इससे भला और क्या सुधार चाहिए?" पार्वती के मुँह से छूटा। उसका चेहरा रागरंजित हो उठा।

"थैंक्स, पार्वती!" उसकी ओर भी देखते मुस्कुरा उठा। चेहरे पर ललाई और बिखर गई। भागीरथी की मुद्रा गम्भीर थी।

गाड़ी आने वाली ही थी। घन्टी हो चुकी थी। तुरन्त भागीरथी का वैनिटी केस खुल पड़ा। उसने संग्राम से रही-सही कोर-कसर पूरी कर लेने का प्रयास शुरू किया। पार्वती ने चेहरा भर हाथ से साफ कर लिया। गंगाधर तेजी से सामान सहेजने लगा।

गाड़ी आई। भागीरथी आगे-आगे और गंगाधर, पार्वती दोनों पीछे-पीछे चार कदम बढ़े भी न होंगे कि प्रथम श्रेणी के डिब्बे से नंजत्ते 'भागू! भागू!' पुकारती इशारा करने लगीं। ये डिब्बे के पास पहुँचे तो विषकंठ शास्त्री जी वहीं लगे आईने के सामने खड़े हैट, टाई दुरुस्त करते दिखाई पड़े। मादप्पा डिब्बे में चढ़ गया था। सामान निकाल कर देता जाता था। गंगाधर ने उन्हें उतार

लिया। देश-विदेश के पर्चे चिपकाई गई चमड़े की अगणित पेटियाँ, दो ओल्डाल, टोकरियाँ, गट्ठर और बोरियाँ आदि को देखकर उसको सहज ही सन्देह हुआ कि बैलगाड़ी में अपने सामान के लिए जगह होगी भी या नहीं। इस पर उसे थोड़ा संकोच भी हुआ। स्थूल शरीर वाली नंजत्ते को डिब्बे के फाटक से बाहर निकाल कर नीचे उतार लेने में गंगाधर और भागीरथी दोनों ने सहारा दिया। फाटक से खिसक कर नीचे उतरी नंजत्ते को पहाड़ से उतरने का-सा भान हुआ। स्टीम इंजन की भाँति आवाज़ निकल रही थी। उसी तर्ज़ पर बातें शुरू करने लगीं। गंगाधर को लगा कि इंजिन को वाक्सिद्धि हो जाए, तो उसकी वाणी इसी ढब की होगी।

प्रथम श्रेणी; जान बची! कोई तकरार नहीं, कोई मुरौवत नहीं! निचली श्रेणियाँ, गन्दगी, गलीज भरी! कैसे लोग! कितनी बदबू! भगवान बचावे! कंठी ने कह दिया, "दस रुपए ज्यादा हो जायँ, बला से, यही दर्जा—इससे नीचा नहीं।"

"विदेश में कैसा अच्छा बन्दोबस्त है, कंठी का कहना है।" धर्मावरम् की लाल साड़ी का आँचल सिर पर सरकाती विधवा नंजत्ते के बोल खुल गए थे। बात अधूरी ही रह गई।

"वही तो; तिस पर स्टेट्स का सफर! पुलमैन की बराबरी की दूसरी सवारी नहीं।" कहने लगे शास्त्री जी। अब तक वे ठीक-ठाक उतर पड़े थे। अद्भुत कोणाकार में लगाई गई फेल्ट हैट की सतहों की सफाई से 'चेरि ब्लासमर' पालिश से चमचमाते हुए जूतों की मुलायमी तक, एँड़ी से चोटी तक—वे भरे-पूरे लगते थे। उनमें और आजकल के नव मन्मथों और दर्ज़ी की दुकानों पर लगी फैशनपरस्ती की तस्वीरों की आकृति में बड़ा साम्य था। दुनिया की नज़रों को मानो उन्होंने मोल लिया था। मूँछ, चेहरा आदि को देख गंगाधर को हालिवुड के अभिनेता क्लार्क गेबल की याद आई। उसकी व्यंग्य भरी मुस्कान की जगह पर चेहरे से चार्ल्स लाॅपटन की कड़ाई और उपेक्षा प्रकट होती थी।

"नंजत्ते, अच्छी तो हैं?" गंगाधर ने जरा ऊँचे लहजे में ही कुशल पूछी।

"मुझे भूल तो न गई हैं, नंजत्ते?" पार्वती ने पूछा।

दोनों ने चार साल पहले नंजत्ते को देखा था, सो भूलभाल की सम्भावना सहज थी।

"तुम भी आए हो?" इस प्रश्न के साथ नंजत्ते ने उन दोनों को पहचाना। भागू की ओर रुख किए पूछने लगीं, "बेटी! अण्णाजी नहीं दिखाई दे रहे हैं। आए नहीं?"

"आने के लिए चल पड़े थे, फूफी! बीच में कोई.......।" भागीरथी बोली।

"तेज सिर दर्द आ गया ।" गंगाधर बीच में बोल उठा और उसने बात पूरी की ।

जवाब में आँचल के आवरण में से नंजत्ते की फेरी गई तीखी दृष्टि गंगाधर को दहलाने के लिए पर्याप्त थी । भागीरथी पहले मुस्कुरा दी, पीछे उसकी भौंहें तन गईं । लेकिन, उसने गंगाधर का प्रतिवाद न किया । पार्वती दूसरी ओर मुँह फेर कर मुस्कुराने लगी ।

"बेचारा कंठी अपने फूफा जी से मिलने को कितने अरसे से व्याकुल रहा ।" नंजत्ते का कहना जारी रहा ।

"जल्दी कीजिए, नंजत्ते ! चलें । सधे हुए बैल हैं । छह मील ही तो है । घण्टे भर में पहुँच जाएँगे । मैं खुद बैल सँभाल लूँगा । अण्णाजी बड़ी प्रतीक्षा करते रहे होंगे !" गंगाधर की यह दस्तन्दाजी नंजत्ते को अनुचित प्रतीत हो रही थी । उसका बीच में बोलना उन्हें प्रतिष्ठा के विरुद्ध लग रहा था । लेकिन, जिद्दी गंगाधर उन्हें सावधान करने से बाज नहीं आता था ।

"तू क्या करता है रे ? मुहर्रिरी, मास्टरी ………… ?"

"अभी ऐसा कोई अपराध नहीं हुआ, नंजत्ते ! अभी पढ़ाई……… ।"

"ऐसा क्यों ……इतने दिनों तक ?" नंजत्ते विस्मय प्रकट करने लगीं । उसकी पारिवारिक दशा वे भूली न थीं ।

"यों ही, अण्णाजी की इस जन पर कृपा दृष्टि पड़ी……… ।"

"कौन अण्णाजी ?"

उन्हें विदित था कि गंगाधर का संकेत हिरियण्णाजी की ओर है । लेकिन, उन्हें यह पसन्द न था ।

"वही हिरियण्णाजी ।"

"अब ठीक कहा तूने ।"

"इंजीनियरी ……… ।"

"अच्छा ? हमारा कंठी भी……… ।"

"मैंने एम० ए० परीक्षा पास की है, अम्मा ! सो भी स्टेट्स में । इस देश में उसकी व्यवस्था नहीं । आप यहीं के बी० ई० तो……… ।" शास्त्री जी वाक्य पूरा न कर सके ।

यहाँ की नहीं । बनारस की बी० एससी० इंजीनियरी ।"

"बनारस की ? तब तो यहीं की हुई न ?"

"अपने कंठी का कहना है कि वहाँ के कॉलेजों में अरबों खर्च करते हैं । उनकी तुलना में इन सबको तिनके के समान बताता है ।"

"ये उद्गार नंजत्ते के हैं । इसे स्पष्ट करने की आवश्यकता ही क्या ?

"जरूर……वहाँ अपार धन व्यय होता है। मैंने भी सुना है। अच्छे काम करने वालों के लिए अनेक अवसर भी सुलभ हैं।" गंगाधर ने स्वीकार किया।

"हमारे प्रिंसिपल भी अमरीका से आए हैं। 'येल' विश्वविद्यालय से पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। उस संस्था के सम्बन्ध में इतना सुनाते रहते थे कि सुनने वाले दंग रह जाते। कक्षाओं में, सभाओं में सर्वत्र उसका उल्लेख करना कभी भूलते ही न थे।" भागीरथी के इस कथन से शास्त्री का समर्थन भी होता और अमरीका-सम्बन्धी अपनी जानकारी का प्रदर्शन भी।

"'येल' की क्या हस्ती, 'हार्वड' के मुकाबले! हाँ, उससे भी पुराना! मैंने एम० एस० वहीं से की।" शास्त्री की उक्ति विशेषता ऐसी ही थी कि भागीरथी का चेहरा कुछ छोटा पड़ गया। इसे भाँप कर वे आगे बढ़ते गये, "विश्व-विद्यालय जो भी हो जाय, इंजीनियरी स्टेट्स से ही करनी चाहिए। मैंने बी० ई० करते समय यहाँ का रवैया देख लिया है। कोई लाभ नहीं। अन्य विषयों में जो स्थिति है यहाँ की, वही इंजीनियरी की भी समझिए।"

गंगाधर ने कालेज में चार एम० एस० अधिकारियों के सम्पर्क का अनुभव प्राप्त किया था। चारों कॉलेज में अध्यापक वर्ग के थे। एक महाशय में अवश्य विशेष योग्यता के लक्षण थे। वे सहज ही प्रतिभाशाली थे। उन्होंने अमरीका में प्राप्त सुविधाओं का सदुपयोग किया था। वहाँ के लोगों का उमंग-उल्लास, धृति, कार्य-प्रणालियाँ आदि का परिचय उनके आचरण से हो जाता था। अन्य तीन महाशय पोशाक, हाव-भाव और बातचीत के ढंग आदि तक ही अमरीकी मुद्राधारी थे। उनकी प्रतिभा का कोई उन्मेष हुआ हो, इसका आभास तक न होता था। गंगाधर को खुद की पढ़ाई, तत्सम्बन्धी चर्चा के फलस्वरूप अमरीका के बारे में कई विशेष बातें मालूम थीं। लेकिन, वह इतना असंस्कृत न था कि प्रथम साक्षात्कार में ही चर्चा-प्रहार शुरू कर दें। तिस पर भी चर्चा से फायदा क्या होता उसे मौन ही भाया।

नंजत्ते को थोड़ी सी तसल्ली हुई।

"इसको जानते हो, कंठी।"

"क्या कहा अम्मा……"

"जानते कैसे नहीं? आप तब अण्णाजी के यहाँ आते थे, लड़कपन के खेल-तमाशे साथ देखे हैं, मौके पर कभी-कभी झगड़ते भी रहे।" गंगाधर सुनाता गया। दोनों की आपसी लड़ाई-झगड़े, शास्त्रीजी की माँ से शिकायतें, नंजत्ते से मिली डाँट-फटकार आदि गंगाधर को याद हो आई। दो-एक बार नंजत्ते ने उसे धकिया कर हिरियण्णाजी के घर से बाहर निकाल भी दिया था। बहुत कुछ धमकाया भी था। लड़कपन में भोगी यातना, उपेक्षा, अपचार आसानी से नहीं भुलाए जा सकते। विशेषकर उपेक्षा-तिरस्कार के सम्बन्ध में यह और

भी सही है। कई बार नंजत्ते हिरियण्णाजी के पास भी शिकायत लेकर पहुँच जातीं। वे हँसी में सब कुछ टाल देते थे। एक बार की उनकी निर्दयता भरी वाणी "ऐरे गैरे नत्थू खैरों के लिए यह घर सराय बन गया है। यह मुझे पसन्द नहीं है। प्रतिदिन उत्पात-उपद्रव मचा रहता है। जन्म से गँवार नेक चाल-चलन क्या सीखे ? बड़ा उजड्ड है। चला अपने कंठी पर हाथ चलाने यह छोकरा ! भागू को गोदी पर लेने-खेलाने के लिए दूसरे नौकर-चाकर नहीं हैं ? आवश्यकता पड़ जाए तो एक लड़के को रख भी लिया जा सकता है।" इस वक्त पर सुनाई गई सी मर्म को भेदने लगी।

गंगाधर का इस सहज रूप से स्नेह जताना शास्त्री जी को दुस्साहस मात्र लगा। उन्होंने अवज्ञा के स्वर में कहा, "मुद्दत की बातें हो गईं। इन मामलों में मेरी याददाश्त भी वहीं-ही-वहीं सी है।"

गंगाधर इसे चुपचाप पी गया। उसे अपने दर्जे के लिहाज से विनम्र ही रहना पड़ा था। अगर कोई चूक हो गई, तो अण्णाजी क्या सोचने लगेंगे ?

इस बीच मादप्पा सामान वगैरह गाड़ी में ठिकाने से रख चुका था।

"चलिये नंजत्ते ! शास्त्रीजी !" कहते मेवे-मिठाई की टोकरी थामे गंगाधर कदम बढ़ाने लगा।

"वहाँ, विलायत में, शास्त्री, इस्त्री कहने पर उन लोगों के लिए ये शब्द कुछ अर्थ ही न रखते हैं, कहता है अपना कंठी। कंठी ने इसीलिए वह पुछल्ला छोड़ ही दिया है। सुना है कि 'विष' का उच्चारण उनकी जीभ कर ही न पाती। वह यहाँ की जीभ थोड़ी ही है। इसीलिए अपने कंठी को दूसरे ही नाम से पुकारते थे वे लोग......वह नाम क्या है लल्ला ?"

"वी कैंट" शास्त्री जी के स्वर में दर्प था।

"विलायत की विद्या के अनुरूप ही नाम है। कंठी की भी इच्छा है कि यह बदला नाम ही रह जाय। यहाँ भी इस समय सभी इसी नाम से पुकारने लगे हैं। मैं उसका उच्चारण नहीं कर पाती।" नंजत्ते गर्व से कहती गईं।

गंगाधर 'मेवे मिठाई की टोकरी भारी है' कहते प्रसंग बदलने का उपक्रम करते हुए जोरों से हँस पड़ा। पार्वती दो कदम पीछे रुक गई। उसकी हँसी कोई न देख सका। भागीरथी का चेहरा अकारण ही तमतमा उठा था।

बैल खोले गए। जुआ उनके कंधों पर रखा गया। तैयारी के बाद नंजत्ते को पीछे से गाड़ी पर चढ़ाया गया। दोनों लड़कियाँ सामने से चढ़ीं और सामान से सटकर जैसी की तैसी बैठीं। कैण्ट साहब सवार हुए। गाड़ी में जगह न रह गई। गंगाधर को बैठने के लिए किसी ने बुलाया भी नहीं। मादप्पया जुए के पास शायद रस्सी कसने में लगा था। गंगाधर ने चाक में तेल दिया। मादप्पया ऊपर चढ़ा, तो उसने भी उसके सामने कूद कर अपने लिए जगह बना ली और

रास हाथ में ले ली। बैलों की पीठ थपथपाते हुए 'चल बेटे। मेरे राम-लक्ष्मण।' की आवाज़ दी। पुचकार भरी यह ललकार सुनते ही बैल तेज़ हुए। गाड़ी हवा से बातें करती घड़घड़ाती चली।

●●●

: ५ :

"कहाँ का सिरफिरा यह! रे माद! रोको बैलों को! चाल कम करो। सिर पर कोई भूत सवार है?" नंजत्ते की कड़कती आवाज़ में गाड़ी की घड़घड़ाहट भी विलीन हो गई।

गंगाधर ने रास खींची। मुड़कर भीतर कमानी के झांका। परिस्थिति निश्चय ही वश के बाहर हो गई थी। नंजत्ते झोंके से स्थिरता खो बैठी थीं कैंट साहब पर सरकती जाकर धावा बोल रही थीं। हजरत कैंट जान के लाले पड़े हुए की भाँति कमानी दोनों हाथ से थामे रहे। तिस पर भी वे पूरे के पूरे बाहर फेंका गये थे। उनकी फेल्ट हैट हवा के हवाले हो गई थी और धूल भरी सड़क पर लेटाई गई थी। सावधानी से सँवरे बाल बिखर गए थे। कमानी की छत से टकरा कर सिर दो-एक जगह चोट खा चुका था। दोनों ही सुकुमारियाँ, हाथ से मजबूत खूँटे थामे, गाड़ी में मेंढकी की कुदान का मजा ले रहीं थीं।

'क्यों रे माद! नालायक! दो चार कुल्हड़ चढ़ा चुके थे क्या कि होश हवास खो गया—बैल थाम ले।' हांकने वाला गंगाधर था, यह जानते हुए भी, नंजत्ते ने बातें घुमा-फिरा कर दिल की जलन निकाली।

'क्षमा करें, नंजत्ते! जल्दी पहुँच जाने की उतावली में ढील छोड़ दी। बैलों की मर्दानगी का गलत अन्दाज लगा लिया। अब आगे चाल धीमी कर ली जाएगी।' गंगाधर ने मादप्पा को कटूक्तियों का शिकार बनने न दिया, अपना अपराध स्वीकार कर लिया। मादप्पा गाड़ी के रुकते ही, नीचे कूद पड़ा और हैट उठा लाने चला गया। उसके हैट लाते ही गाड़ी फिर से चल दी।

'बैल बड़ी गठन के हों तो बूढ़ों को हाँकना पड़ेगा, वे बुढ़ा जाएँ तो जवानों की बारी आएगी।' हँसते हुए मादप्पा बोला और गंगाधर से रास ले ली।

कैंट साहब हैट पर जमी धूल झाड़ न पाए। हाथ दोनों खाली न थे।

'यह देश हर सूरत से बैलगाड़ी का ही देश अभी रहा है।' आवाज़ से ही साहब का मिज़ाज ज़ाहिर होता था। ये सड़कें, ये गाड़ियाँ.......' यहीं उनकी मर्म भरी वाणी रुक गई।

'यह लाख दर्जे अच्छी है, कंटप्पा! यह चौड़ा रास्ता निकल जाय तो बादवाली और भी बदतर है।' मादप्पा ने सतर्क किया।

'पादण्णा ! कंटप्पा नहीं भाई, क्याटंप्पया साहब ।' गंगाधर ने मादप्पा के कान में धीमे स्वर से कहा ।

'वह किस भगवान का नाम है, भैया ।' गाड़ीवान ने भी जिज्ञासा व्यक्त की ।

'वह अमरीका का परदेशी भगवान ।' गंगाधर ने अपनी चुहलबाजी शुरू की । उसी क्षण उसे पीठ पर चिकोटी काटने का-सा बोध हुआ । यह किसका काम होगा, सो जानने में देर न लगी । उसे पता चल गया कि यह भागीरथी का ही साहस होगा । 'हाय' कहते वह हँस पड़ा । पार्वती के नाखून तेज न थे । उसे डर लगने लगा कि उसकी फुसफुसाहट उतनी दूर तक सुनाई पड़ी होगी ।

'स्टेट्स में तो.........'क्यांट महोदय कुछ रुक कर बोले और अपनी पुरानी गठरी खोली ।

"चल लक्ष्मण !.........कौन स्टेट ?" गंगाधर ने बीच में ही सवाल किया ।

"दूसरा है ही कहाँ ? वही यूनाइटेड स्टेट्स ।"

"क्षमा चाहता हूँ । मेरा मन कहीं और था.........वहाँ ।"

"वहाँ की सड़कें बिलियर्ड मेज की तरह, रजत या कनक की थाली के समान होती हैं । सकपठ सपाट और मुलायम भी । यहाँ साल भर की पढ़ाई की अपेक्षा वहाँ का एक दिन का निरीक्षण विशेष ज्ञान बढ़ावे वाला होता है ।"

"यह बात ?" गंगाधर ने ताज्जुब दिखाया ।

"बिन कारवाला ही वहाँ अभागा है । कैडिलियाकों की कोई गिनती ही नहीं । बैलगाड़ी की बात ही नहीं । वहाँ वाले इसकी झंझट से खाली हैं । उस देश की जनता इन सब चीजों से परिचित ही नहीं । वह देश इतना समृद्ध है कि एक बार का गया वहाँ से लौटना पसन्द नहीं करता ।" कैंट ने उन्हें सराहा ।

"स्वर्ग की शोभा—नन्दनवन के समान बताया जाता है ।" नंजत्ते ने भी पुट दिया ।

"फिर क्या ? इस देश में क्या है, खाक ।"

"अवश्य यह देश—अपना भारत—गरीब है । गरीब देश होने पर भी अपना जो है । हम जैसे रचें, वैसे रचता जाता है । इधर थोड़े-बहुत सुधार के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे हैं.........।"

"क्या दृष्टिगोचर होने लगे हैं ? सफेद झूठ ।"

"यह क्यों कहते हैं आप ? उतना हेय नहीं । चारों ओर कोई-न-कोई प्रयास जारी है । अब तक साढ़े तीन हजार करोड़ रुपए लगाए जा चुके हैं । यह पहली पंचवर्षीय योजना का किस्सा ठहरा । इस बार छह-सात हजार करोड़........." गंगाधर ब्यौरे पेश करने लगा ।

"सब बेकार । निरा गोलमाल ! ये क्या जानें करना-धरना, देश को बनाना ?"

"भला सबको छोड़ दें तो भी भाखरा नंगल, हीराकुंड, दामोदर घाटी, हाल में ही नागार्जुन सागर.......प्रत्येक की लागत सौ-डेढ़ सौ करोड़ से ज्यादा ही तो है।"

"बात उठाइए तो यहीं एक स्वर, सुग्गे का स्तवन! स्टेट्स में बाउल्डर बाँध, टेनेसी घाटी इनको देखना चाहिए उनके मुकाबले इनकी गिनती ही क्या?"

"मान लिया कि वे विशाल परिमाण की योजनाएँ हैं। लेकिन दुनिया में इनका भी महत्व है ही.......।"

"काहे का महत्व? कुछ नहीं! यह केवल सरकारी प्रोपगंडा है—प्रचार मात्र है।"

"बस इतना हीं?"

"और क्या?"

"आप यहाँ की योजनाओं के क्षेत्र देख ही आए होंगे?"

"न देखा हो तो नुकसान क्या है? पढ़ देने से ही काफी नहीं? जानकारी हो जाएगी ही। इनमें उल्लेख्य अंश ही क्या है?"

गंगाधर को लगा कि व्यर्थ की उलझन का कोई प्रयोजन नहीं। फिर भी चुप लगाए जाना असंभव हो उठा।

"मेरी दृष्टि में अपना देश अब तक पर्याप्त प्रगति कर चुका है और प्रगति-पथ पर निरन्तर बढ़ रहा है। बड़ी-बड़ी जल-विद्युत् सिंचाई की बात रहने भी दें, तो मिल-परिमाण की योजनाएँ अंगणित हैं। महाराष्ट्र में कोयना, बिहार में कोसी आदि। करोड़ों एकड़ों की सिंचाई की व्यवस्था हुई है, हो रही है। उद्योग के लिए बिजली का उत्पादन क्रम से बढ़ाया जा रहा है। ताता में नई निर्माण-योजना को भी मिलाकर तीन-चार वृहत् कारखानों में इन पाँच सालों के भीतर प्रतिवर्ष साठ हजार टन का इस्पात तैयार होने वाला है। सिमेंट, कागज, खाद किस-किसको गिनाएँ। आवश्यकता की पूर्ति के लिए उत्पादन बढ़ा है बढ़ रहा है। इन भौतिक समृद्धियों के बल पर हमारा जीवन-स्तर भी उठा है, बढ़ता जा रहा है। सांस्कृतिक क्षेत्र में साहित्य, संगीत, नाटक, नृत्य जैसी कलाओं को प्रोत्साहित कर जागृति पैदा की जा रही है। सड़कों की ही बात लीजिए, हजारों मील की नई सड़कें बिछाई गई हैं, पुरानी की मरम्मत भी हुई है। केवल रेल के विकास-प्रसार हेतु चार-पांच सौ करोड़ लगे हैं, इधर हजार करोड़ से अधिक व्यय का अनुमान है। इनके अतिरिक्त भी कई फुटकल योजनाएँ भी हैं। सामुदायिक योजनाएँ, राष्ट्रीय विस्तार-प्रणाली उनके माध्यम से राष्ट्र शिक्षा, स्वास्थ्य, लघु उद्योग आदि की सर्वतोमुखी......." गंगाधर को बैलगाड़ी पर सवार रहने का होश न रहा। उसे वाद-विवाद प्रतियोगिता का जोश हो आया था। आवेश में स्थान, समय, श्रोता आदि का ध्यान ही न रहा। चुपचाप कहे जा रहा था।

देह को ऐंठाकर गाड़ी के भीतर झांकते हुए गाड़ी की घड़घड़ से होड़ लगाकर बात करते जाने का आभास भी उसे पीड़ित न कर सका। न जाने इस व्याख्यान का अन्त कहाँ होता। कैण्ट साहब के कान पक गए थे।

"इस बखानगी का कोई प्रयोजन भी है? ऊहा-उत्प्रेक्षा ही अधिक हैं। पहले ही कह चुका हूँ कि ये सब सरकारी प्रचार के हथकंडे हैं। स्पष्ट ही आप भी उसके फेर में पड़ने वालों में से एक हैं।" कह कर सिलसिला समाप्त करना चाहा।

"इस दशा में विदेश के विशेषज्ञ जो सम्मति दे रहे हैं, क्या उसे आधारहीन मान लिया जाए? उनकी मान्यताओं का कोई महत्व नहीं?" गंगाधर ने और कुरेदा।

"हटाइए, इन प्रशस्तियों में लगता ही क्या है? बाहर से आए लोगों का भव्य स्वागत-सत्कार होता रहे, तो सराहने के सिवाय वे दूसरा तरीका क्यों अपनावें? समझे।"

"बस! अब क्या कमी होगी? आप तो आ ही चुके हैं? गंगाधर के मुख से अनजाने ही ये बातें छूट गयीं। वह तुरन्त सँभल गया और तिक्तता को कम करने का बहाना बनाते बोला, "मेरा मतलब है कि राष्ट्र में जानकारों की संख्या के अनुपात में काम भी अधिक होता जाएगा।"

"लेकिन अपने कंठी को काम करने का मौका यहाँ कहाँ?" गंगाधर के कथन पर विश्वास करते हुए नंजत्ते बोलीं।

"यह क्या कहती हैं, नंजत्ते? ऐसे विद्वान मिलेंगे भी? इन जैसों के लिए........"

"इसीलिए तो यह कंगाल देश कहा जाता है—अपने कंठी सरीखे कुशल व्यक्ति के लिए जमीन-आसमान एक करने पर भी आठ महीनों से लायक नौकरी न लगे? इतने के लिए भी तीन-पाँच होने लगे।"

"आश्चर्य?" गंगाधर को वास्तव में ही विस्मय हुआ। युग धर्म था कि परीक्षा समाप्त होते ही इंजीनियर के लिए दस-पांच जगहें खाली रहतीं ही। कॉलेज में चार साल का अनुभव भी इसी को पुष्ट भी करता। हम जैसों के लिए छूटते ही नौकरी मिल जाएगी। यही व्यापक आस्था थी।"

"हट, दो-तीन सौ रूपल्लियों की नौकरी!" कैण्ट साहब अवज्ञा से बोले।

"वही अपने कंठी को भी कर लेने को कहें? इसे स्वीकारे कैसे भला? इतनी रत्ती भर के लिए खजाना लुटा देने का तुक! बीस-तीस हजार जेब से खाली कर विलायत हो आने के बाद भी कंठी ही कहा करता है न, मूलधन के बराबर ब्याज भी न निकले! अलावा इसके खटना भी ऊपर सवार! कम-से-कम हजार रुपये भी तो देते? गधा-घोड़ा मेल में रखे जाएँ? कैसा न्याय है?

इसीलिए तो कहा जाता है कि वहाँ वालों की बुद्धि मारी गई है। उन देशों में साधारण मजदूर भी पाँच सौ-हजार तक कमा लेते हैं ?"

"अब दूसरा उपाय क्या सोचा है सर, आपने ?" गंगाधर ने कंट साहब को सम्बोधित किया। कोई जवाब न मिला।

"दूसरा उपाय ही क्या होगा ? यह देश ही बड़ा सत्यानाशी है। घर-बार छोड़ कर परदेश का पथ पकड़े ? कुछ-न-कुछ तो करना ही होगा। छह सौ, आठ सौ ही सही उसी को कर लिया जाए। यहाँ जिस कॉलेज में पढ़ता रहा, वहीं प्रोफेसरी के लिए आवेदन भेजा है। चुनाव समिति के प्रत्येक सदस्य का दरवाजा खटखटा आए हैं। कइयों से कहलाया भी है। अपने देवर की प्रमुख अधिकारी से बड़ी घनिष्टता है। आजकल ही में आर्डर आने वाला होगा। अपनी ओर से भरसक जोर लगाया है। आगे की बात कैसे कही जाए। इतने पर उस ईश्वर को—परमपिता की मांया कौन जाने। निष्पक्षता से चुनाव हो तो अपना कंठी ही चुना जाना चाहिए। मुझ जैसे के लिए योग्य पद न हो, यह सब कैसी धाँधली है इस आशय से मुक्त एक जोरदार पत्र उस दिल्ली सरकार के नाम भी भेजा है।" नंजत्ते ने ही विस्तार से विवरण उपस्थित किया।

"जो भी हो, आप कॉलेज की नौकरी ठुकरा दीदिए, सर !" अन्त में सर का प्रयोग हो जाने पर वाक्य का कथ्यांश जो भी हो, हानि नहीं होने की, यही गंगाधर के मन में भी था।

"मतलब ! वह कोई घटिया काम है ?" नंजत्ते बिगड़ कर बोलीं।

"सो बात नहीं, नंजत्ते ! ठाठ का काम है। कभी गए, लेक्चर झाड़ दिया तो छुट्टी। फिर क्लब, टेनिस, ताश में रम गये। यह मेरा आशय न था। उन सरीखे प्रतिभा सम्पन्नों के लिए वहाँ अवसर नहीं के बराबर मिलेंगे। बाहर हो तो कोई ठोस काम बन सकता है—राष्ट्र के पुनर्निर्माण की दिशा में।"

"सरकार बड़ी मूर्ख है। उसे इसका बोध रहे तब न !" नंजत्ते सरकार पर उबल पड़ीं, लेकिन गंगाधर की उक्तियों से प्रसन्न ही नहीं, पूर्ण तुष्ट भी हुईं। पर कैंट के गांभीर्य-मौन यथावत् रहे। उन्हें बातों में खींचना सम्भव न मान गंगाधर शान्त पड़ गया। नंजत्ते का उत्तर रोचक लगने पर भी मन में उकताहट पैदा कर चुका था। लड़कियाँ वाद-विवाद से दूर रह गई थीं। कैंट और नंजत्ते की उपस्थिति में उनकी जबान खुलती भी कैसे ? लेकिन दोनों सारी बातें ध्यान से सुनती जातीं और आपस में ही कुछ फुसफुसाती रहीं। गाड़ी गड्ढों भरी सड़क पर लुढ़कती-उछलती चुपचाप सरकी जा रही थी। नंजत्ते को प्रतिपल का अभिशाप उस गति में बाधक सिद्ध न हो पाया।

बात का सिलसिला रुक गया, तो गंगाधर को आमने-सामने तथा आसपास के दृश्य-निरीक्षण का मौका मिल गया। वास्तव में जिस मार्ग से होकर गाड़ी

गुजरती थी, वह किसी भी गाँव को लज्जित करने वाला था। उसके निर्माण में मनुष्य का कोई हाथ न था। गिट्टी उस पर पड़ी ही न थी। प्रतिवर्ष सग्गड़ों के आने-जाने से लाल धरती पर पड़ी लीकों से ही ऊबड़-खाबड़ सड़क की सीमा स्थिर हुई थी। बीच में उभार। दोनों तरफ जंगली झाड़ियाँ, ताड़ के पौधे, लम्बी-लम्बी घास आदि की बाढ़ थी। पग-पग पर रुकावट पैदा होती। कमानों पर छाई चटाई से टकरा कर 'सर्र' की आवाज होती। आगे-पीछे बैठी सवारियों को स्पर्श-सुख भी प्राप्त था। गंगाधर और मादप्पा उन्हें हाथों से हटाकर अपने को बचा लेते थे। कैंट साहब इस सुखद-स्पर्श का मजा चखते रहे। 'हाय! कितनी छोटी सड़क—पाँच-छह मील ही लम्बी! इसे ठीक करने वाला इतने बड़े गाँव—अपने बेलगूर—में कोई नहीं!'

गंगाधर चिंतित हुआ—'यह मनोवृत्ति नवोदित भारत की जागृत चेतना से मेल न खाने की।' उसकी व्यथा तीव्र हुई। गाँव के लोग चाहते तो यह कितना बड़ा काम था! महीनों थोड़े ही लगते! कितनी बढ़िया सड़क बिछ सकती है! सरकार की राह देखते पलथी मार कर बैठ जाएँ तो सालों बीत जाएँ! उसके सामने और भी कितने बड़े-बड़े कार्य पड़े हुए हैं। इसी दिशा में उसका चिंतन-क्रम गतिशील हुआ। यों ही उसकी दृष्टि आसपास के टीलों पर दौड़ी। लाल मिट्टी के ही तो ढूह थे। 'बदन पर का श्यामल वसन गया, चमड़ा भी अब झरता गया है, पीछे अपना-आपका हाल क्या होगा।' की आर्त्त ध्वनि करते से लगे वे टीले। झाड़ियाँ-पौधे गाँव वालों के जलावन, भेड़-बकरियों के लिए भोजन हो चुके थे। वर्षा की बौछारों से मिट्टी बह गई थी, खाइयाँ पैदा हो गई थीं। गंगाधर को ये सूने टीले सिसकियाँ भरते से भासित हुए। दूर-दूर पर छिटपुट पेड़, जोताई से रेखांकित खेत इसका सबूत देते दिखे कि यहाँ उर्वरता नहीं के बराबर है। 'इस कोने तक भी वह जन महोत्सव की पुकार भी न सुनाई पड़ी थी—कई जगहों पर कर्ण-कुहर में उसका प्रवेश होने के बाद ही रह गया है, यह अलग बात है। पौधे लगाना ही सब कुछ नहीं, सिंचाई आदि उपचार से उनका पोषण भी प्रधान है। यह 'थियरी' भी कोई नई नहीं। भला! इस ढलुई भूमि की सिंचाई का प्रबन्ध हो जाए तो! तरी जमीन की जमी मिट्टी बह न जाए, ढाल की डौल कुछ खिल जाए तो! जमीन के किनारे-किनारे पेड़-पौधे लग जाएँ तो!' गंगाधर स्वप्नलोक में पहुँचा था—कल्पना की छवि निहारने में लीन था। 'लेकिन! वही तो ......लेकिन ......पानी कहाँ से और कैसे मिले?'

अचानक गाड़ी रुक गई। गंगाधर की कल्पना भी हवा हो गई। आँखें खुलीं। बाहरी दुनिया पर पड़ीं। गाड़ी टीलों पर से होती हुई आकर उतर रही थी कि वह सुबरन धारा की कीचड़ में धँस गई। यही दशा गंगाधर के मनोवेगों के कल्पनाचक्रों की भी हुई। मादप्पा 'हा-हुँ-बढ़! रे राम ओ लक्समन।' चिल्ला

रहा था। बैलों की पूँछे मरोड़ रहा था। लेकिन, सारा प्रयास खाली। गंगाधर ने जूते उतार रखे और कीचड़ में कूद पड़ा। मादप्पा भी उतर पड़ा।

"एक तो अकाल फिर ऊपर से खरवाँस की तरह यह कौन शनिचर सवार हुआ! अगल-बगल के धक्के, ऊपर-नीचे की फेकौवल के कारण पहले ही हड्डियाँ टूट गई थीं, बदन पिस गया था। भगवान ही बचावें! सबसे भयावह यह कि इस नाले का कोई भरोसा नहीं। घड़ी भर में लबालब भर जाए और दूसरे ही क्षण दुबला जाए। कितनी जानें इसमें खो गई हैं! बचपन से ही इसका हाल हमें मालूम है। ठीक है, देव जो चाहे करे-करावे! नर मानुष क्या कर सकते हैं भला!' नंजत्ते की सहन-सीमा का बाँध टूट चुका था।

"यहीं तो हर दिन का रवैया है। लीक से हटी नहीं कि धँस ही जाती है। इस वक्त बोझ भी भारी है। थोड़ी मसक्कत और होगी। घबराने की कोई बात नहीं।" मादप्पा ने धीरज बँधाया।

"ब्लडी थिंग—कैसी हरारत!" कैंट साहब का पारा भी चढ़ गया था।

गंगाधर धँसे हुए चाक में कंधा लगा कर उसे ऊपर निकालने में लग गया।

'हाँको मादण्णा! ओ राम! रे लक्ष्मण!' वह कहता जा रहा था।

"ठहरो गंगप्पा! मैं खुद उस तरफ आ रहा हूँ।" कहते मादप्पा आया, चाक की हालत देखी-परखी।" दोनों चाक उठाने पड़ेंगे, भाई। गाँव का कोई इधर से गुजरता भला।" मन-ही-मन बोलने लगा।

"तुम उस चाक पर जाओ तो। मैं हूँ यहाँ।" गंगाधर ने समझाया।

"वैसा न होगा, गंगप्पा! यह गहरे में धँस गया है। मैं तजुर्बेकार हूँ, आहिस्ते उठा लूँ। तुम उस तरफ कंधा लगाओगे?" मादप्पा सकुचाते बोला।

"उसमें क्या धरा है, मादण्णा! तुम तजुर्बा ही नहीं रखते, बूढ़ा होने पर भी हम नौसिखुओं से ज्यादा ताकतवर भी हो।" कहते गंगाधर हँस पड़ा और बैलों पर हाथ फेरते हुए उस चाक की तरफ बढ़ा।

दोनों कुमारियाँ सामान पर तिरछे बैठीं सारस की तरह गला बाहर निकाल कर झाँक रही थीं। गंगाधर की निर्मल पोशाक कई जगहों पर छींटें पड़ जाने से मटमैली हो गई थी। सँवारे केश में मिट्टी भर गये थे।

गंगाधर और मादप्पा दोनों ने पूरा दम लगाया। साँस रोक कर चाक खींचकर उठाने में जुट गये। बैलों को भी ललकारा, लेकिन सब अकारथ गया।

"रास थाम कर उन्हें साधने के लिए कोई और होता........"

"मैं साधूँगी।" पार्वती तपाक से बोली। ऊपर उठी। बगल में ही खोंसी रास हाथ में ले ली।

"चुप रह, निर्लज्ज कहीं की। तू रास थामेगी? तगड़े बैल काबू में आएँगे भी? कहीं भड़क गए, तो इससे भी गहरे गड्ढे में न गिरा दें। रहने दे तेरी

मदद और सेवा की बात । हटा ले हाथ !" नंजत्ते ने टोका। पार्वती में हिम्मत कहाँ कि वह उनका प्रतिवाद करती। आँखों में आँसू छलछलाने लगे थे। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई।

"तुमने गाड़ी कभी हाँकी न होगी, बहिन ! मैं हाँक चुकी हूँ। रास इधर ला।"

भागीरथी सामानों पर से सरकते आगे बढ़ी और पार्वती से रास ले ली।

"यह क्या उपद्रव कर रही हो, भागू ? कहीं गिर पड़ो तो ? अण्णाजी सुनेंगे तो क्या कहेंगे ? तू भी सँभाल न सकेगी, बिटिया ! खिलवाड़ मत कर। हाथ समेट ले।" नंजत्ते गिड़गिड़ाने लगीं।

"घबराइए नहीं फूफी ! सतर्क रहूँगी.......मादण्णा ! बैल साधूँ ?....... गंगाधर ?"

भागीरथी काम में लग गई।

"खूब, गुड्डी !" गंगाधर की बातें भागीरथी को भली लगीं। चाक खींचकर ऊपर उठाने तक शोर के साथ सीटी बजाती भागीरथी रास कसती-ढील देती जाती थी। बैल कुछ हटे-बढ़े। गाड़ी हिली। चाक जरा ऊपर हुए, फिर धँसक गये। बाकी दो बार की कोशिशें भी विफल हो गयीं। पार्वती नंजत्ते की कटूक्तियों के प्रहार से घायल हो गई थी। धीरे-धीरे खुद को सँभाल रही थी।

"बोझ थोड़ा कम कर लें तो ठीक होगा, मादण्णा ?" गंगाधर ने पूछा।

"अच्छा होगा, भाई !"

पार्वती और आगे सरक गई तथा नीचे कूद पड़ी। लाल कीचड़ के छींटे श्वेत साड़ी पर ऊपर-नीचे तक पड़ गए।

"इसकी ढिठाई देख भला ! सयानी होने के बाद भी कोई शील-संयम का ध्यान नहीं ?"

नंजत्ते की आलोचना का उस पर कोई प्रभाव न हुआ।

"यह क्या पारी ? तुम न भी उतरती......." प्रशंसा भरी दृष्टि फेरते गंगाधर बोला। 'कोई बात नहीं' पार्वती गंगाधर की दृष्टि से पुरस्कृत अनुभव करने लगी। यही उसके लिए पूर्ण तृप्ति का अवलम्ब बना।

"अच्छा !" इस एक शब्द में ही अपने सारे मनोभावों को व्यक्त करते हुए कैंट साहब भी उतरने को उद्यत हुए। तब तक गंगाधर गाड़ी के पीछे आ पहुँचा था।

'कंठी ! कम-से-कम जूते उतार दो बेटा !' नंजत्ते ने चेताया। लेकिन कैंट साहब दूर सूखी धरती पर कूदे। चमचमाते जूतों की नोक पर मिट्टी लग गई। बार-बार उनकी दृष्टि उसी पर पड़ती रही।

"नंजप्पे ! आप कोई कष्ट न करें। हम सँभाल लेंगे।" गंगाधर इतना कह फिर चाक पर आ गया। उनसे इतना भी कहने की आवश्यकता न थी।

इस बार की कोशिश में पार्वती ने भी चाक पर हाथ दिए, उसे धकेला। यह देख गंगाधर को विनोद-परितोष दोनों हुए।

"वाह रे पारी ! इस प्रयास के लिए तुम्हारे मुलायम हाथ भी जरूरी पड़ गये !"

गंगाधर हँसा।

"केवल नैतिक बल ही", पारी प्रसन्न हो उठी।

"उसका प्रभाव तुम क्या जानो ? अब दुगुनी ताकत हो गई मेरी। इधर का चाक ऊपर उठ ही आया था।

धँसे हुए चाक हिल तो गए थे, किन्तु ऊपर उठने के लक्षण नहीं दिखाई देते थे। अब कोई उपाय न देख मादप्पा ने गाड़ी में से एक-एक करके सामान निकाल कर अलग रख दिया। उसमें गंगाधर ने सहयोग दिया था। दोनों के प्रयास से सामान किनारे पर पहुँचाया गया। इसके लिए उन्हें पानी में हेल कर भी जाना पड़ा था। लौट कर दोनों ने जोर लगाया। चाक ऊपर उठे। चारों कंठों से तीव्र हर्षध्वनि हुई।

"बड़ा थक गया हूँ, थोड़ा पानी पी आऊँ।" कहते मादण्णा उस किनारे पर केवल दस फुट चौड़ी चट्टान पर बहते सोते की ओर गया।

गंगाधर भी थका था, उसे प्यास भी लग रही थी। लेकिन, वह सुबरन धारा पर से बह आई शीतल हवा के स्पर्श से ही तृप्त हो उठा था। कैंट साहब इतने में चाँदी के 'केस' से सिगरेट निकाल कर 'लाईटर' से उसे सुलगा कश के धुएँ से छल्ले रचते जाते थे। पार्वती इधर-उधर देखने का स्वांग रचकर दोनों युवकों को क्रमशः कनखियों से ही परख रही थी। भागीरथी रास खींचते समय टूटे हुए नाखून की नोंक साफ करने में लगी थी।

गंगाधर बाएँ मुड़ा, तो ढलुए टीलों के बीच से बहती आई धारा पर उसका ध्यान गया। हाल ही में भाखरा का भ्रमण कर लौटा था। बाँध के पास बहती शतद्रु नदी झट याद हो आई। 'वाह, कितना सादृश्य !' कह बैठा। हाँ, यह स्थान उसे लघु भाखरा-सा प्रतीत हुआ। उसकी दृष्टि टीलों को भेद तो न सकती थी, पर कल्पना के सहारे और आगे पहुँची। कई बार उन टीलों पर शाम के समय वायुसेवन निमित्त आकर बैठता था। उस क्षण की अनुभूति उद्दीप्त हो उठी। धारा का पात्र एक चौड़ी बटलोई की आकृति-सा भासित हुआ। बाढ़ के दिनों में भी वह यहाँ आ चुका था। कितना पानी ! यहाँ एक बाँध, तालाब बन पाएँगे ? गाँव का इतना सौभाग्य है ? एक हाथ देख लेना चाहिए ! इंजीनियरी की अन्तिम वर्ष वाली पढ़ाई इस वक्त काम न दे, तो

फायदा ही क्या ? दिमाग में बात आते ही उसका मन धारा के पात्र पर चल कर वहाँ पहुँचने और टीले पर चढ़कर देखने के लिए अधीर हो उठा। इतने में मादप्पा लौट आया था। 'सब गाड़ी पर सवार हो जाएँ' उसकी आवाज कानों में पड़ी। गंगाधर ने आज ही शाम जाँच-पड़ताल कर लेने की ठानी और अधिक उत्साह नहीं दिखाया।

"मादण्णा! बोझ से दुबारा कहीं धँस जाए तो! मैं पानी हेल के पार पहुँचूँगा और किनारे पर सवार हो जाऊँगा। हाथ भी तेल-मिट्टी आदि के लगने से गन्दे हो गए हैं, उन्हें भी धो लूँगा। पानी कोई गहरा तो नहीं ?" पूछते हुए गंगाधर आगे बढ़ा।

"घुटने भर से ज्यादा नहीं।" कहते हुए मादण्णा गाड़ी तक पहुँच गया।

"मैं भी आऊँगी।"

"पार्वती गंगाधर के साथ हो ली।

"पारी ! थोड़ा-सा कीचड़ है। कपड़े भी भींग जाएँगे।"

"कोई बात नहीं।" कहती हुई पार्वती उसके पीछे-पीछे बढ़ी।

हाथ धो लेने के बाद पार्वती साड़ी-लहँगा घुटने तक चढ़ाए अपने गोरे-गोरे, कोमल पैर पानी में बढ़ाते जरा फिसली।

"धीरे-धीरे देखते चलना, किसी चिकने पत्थर पर पैर पड़ा होगा।" हाथ पोंछते देखता हुआ गंगाधर बोला और उसकी बाँह धर ली। कहा, "रुक जाओ। मैं भी साथ चलूँ। पानी में बड़ा खिचाव है।" और उसने उसकी दोनों भुजाएँ पकड़ लीं। उससे सट कर ही उसे थोड़ा उठाये पार पहुँचा दिया। किनारे पहुँच कर उसका अरुणिम आनन गंगाधर सी स्मित मुखाकृति की ओर ही लगा हुआ था।

"देखा पारी, अकेली पार होने का हौसला !"

"मैं अकेली थी तो नहीं।"

इतने में गाड़ी की ओर से आवाज सुनाई पड़ने लगी और दोनों उस दिशा में मुड़े।

"तुम क्यों उतर पड़ी, माई !" मादप्पा पूछ रहा था।

"भागू, यह क्या कर रही है, उस छोकरी की तरह !" नंजत्ते चिल्ला उठीं।

भागीरथी ने उस ओर कान न दिए। वह गाड़ी से कूदी। नंगे पैर कीचड़-कंकड़ थापती तेजी से धार के किनारे तक आ ही गई। उसके चेहरे पर गिरने-फिसलने का कोई आतंक न था। उसने पार्वती की ही भाँति दोनों हाथों से कपड़े चढ़ाये नाले में पैर रखे।

"गुड्डी ! यह कैसा साहस ? ठहर जाओ। अभी आया, पार लगवाता हूँ।" गंगाधर तेजी से लौट आने को बढ़ा ही था।

"कोई चिन्ता नहीं। मैं खुद पहुँच जाऊँगी।" वह लड़खड़ाती हुई डग बढ़ा रही थी।

वह दो एक हाथ आगे बढ़ी ही थी कि गंगाधर ने पहुँचकर उसकी बाँहें पकड़ ली।

"मैंने तुम्हारी सहायता मांगी कब थी?" और 'हट' कह कर उसने गंगाधर के हाथ झटक दिये।

गंगाधर हँसी रोक न पा रहा था। हाँ हाथ जरूर हटा लिए। लेकिन, एहतियाती तौर पर हाथ भुजाओं के करीब ही रखे थे। भुजाएँ अब तक हाथ में लग जाती थीं। पर, भागीरथी स्वयं धारा पार कर किनारे पहुँच गयी।

"गुड्डी बड़ी जबरदस्त है, जिद्दी भी!" गंगाधर ने सहज प्रशंसा के उद्‌गार निकाले।

"तुम्हारे पुरस्कार-तिरस्कार के लिए दूर से ही नमस्कार! अकेली ही आ पहुँची कि नहीं?" दोनों को लक्ष्य कर शान से भागीरथी बोली। पार्वती का खिला हुआ चेहरा थोड़ा कुम्हला-सा गया।

"चुपचाप जुए पर या गाड़ी के भीतर दुबके रहने के बजाय यह मुसीबत क्यों मोल ली?" गंगाधर ने चिढ़ाया।

"तुमसे मतलब? इच्छा हुई चली आई। तुम लोग क्यों चल पड़े थे?" भागीरथी ने फटकारा।

"बोझ कम हो जाए, गाड़ी की गति में सुविधा हो, इसी विचार से आई यहाँ।" पार्वती का उत्तर अनिश्चर्य का द्योतक था।

"मेरा भी वही विचार था।"

"ठीक कह रही है, गुड्डी को भी हमें साथ कर लेना था।" गंगाधर सान्त्वना-भरी वाणी से बोला।

"उन लोगों के रहते ········।" पार्वती विवरण देने लगी।

"रहने से क्या होता पारी! वह नंजत्ते का गुट जो है। अपनों की टोली थोड़ी है?" बनावटी हँसी चेहरे पर लाते हुए गंगाधर ने विनोद किया। पार्वती भी उसी का अनुकरण करने लगी। लेकिन भागीरथी की भंगिमा में परिवर्तन न हुआ।

उधर नंजत्ते का पारा खूब चढ़ गया था। सिवाय मादप्पा के और कोई पास न था।

"हूँ········कैसी लौंडिया हैं? नाम के लिए स्त्री जात की हैं। चार अक्षर पढ़ लिए, तो लाज-शरम को धता बताती और उछल-कूद में लग जाती हैं। घिन आती है इन करतूतों पर। शालीनता का नाम नहीं। पुरुषों की उपस्थिति-अनुपस्थिति की परवाह नहीं। कहा भी क्या जाय? वे ही क्यों, आजकल के

लौंडे क्या कम हैं ? गुड्डी ! पारी । कैसे बेढंगे नाम ? सम्बोधन करने वाला वह भी मनचला और उसे प्यार से सुनकर इठलाने वाली ये छोकरियाँ भी सिरफिरी। पहले के युग में पति-पत्नी को भी ऐसा अशोभन आचरण एकान्त में भी पसन्द नहीं था । हट, कैसी मनमानी ! वे बातें, कहकहे·······हाय राम ! अपने कंठी को देखकर ही थोड़ी-बहुत अक्ल सीख लेते ? विलायत से कितनी बड़ी विद्या प्राप्त कर लौटा है । वहाँ के लोग बड़े ही मिलनसार बताए जाते हैं । पढ़-सुन कर, सिनेमा-नाटक आदि देखकर ये भी उनकी नकल कर रहे हैं क्या ? अपना कंठी उन आदतों का शिकार न हुआ । उन दोनों की बात जो भी हो । दोनों लाख नाचें कूदें । निगोड़ी भागू को भी वही सनक सवार है । खूब, मेरी धारणा के विपरीत ! हेलमेल का मतलब गोलमाल ! समझ लूँगी ? वहीं जा भी रही हूँ न ।'' उनकी बातें स्वोक्ति शैली की होकर भी मादप्पा को भी लक्ष्य में रखकर कहीं गई थीं ।

मादप्पा बेमतलब की बातों में पड़ने वाला उजड्ड नहीं था । चुप लगाए रहा। गाड़ी जरा घुमायी और दूसरे ठौर से हाँकते कैंट साहब के समीप ला खड़ी की । वे ऊपर चढ़ गए । बड़ी सावधानी से नाला पार कर ठंडी साँस ली ।

किनारे पर खड़ी लड़कियाँ गाड़ी पर चढ़ने को हुयीं । उस अवसर पर भी एक असाधारण घटना घटी । वे चाहतीं तो पीछे से गाड़ी पर चढ़ सकती थीं । कैंट साहब नीचे उतर कर उनके लिए प्रायः जगह बना देते । दूसरी ओर भी जगह की कोई कमी न पड़ती । लेकिन नंजत्ते को लाँघ कर सामने तक आ जाना निरा असम्भव काम था । गले में अटके आलू की भाँति वे गाड़ी में फिट हो गई थीं । खूँटे की छड़ का सहारा छोड़कर वे कुछ आगे सरक भी जातीं, तो सामने का बोझ बढ़ जाने से बैलों की मौत हो जाती । इस दशा में भागीरथी आगे से ही ऊपर चढ़ने का प्रयास करने लगी । जुआ ऊँचा था । प्रथम प्रयास विफल हुआ । उसकी हठीली प्रकृति से परिचित गंगाधर चुप खड़ा ही रहा । मदद करने के लिए उत्साह न दिखाया । दुबारा वह उछली तो 'चढ़ा दूँ ?' कहकर उसकी भुजाएँ छू दीं ।

"कोई आवश्यकता नहीं, अबकी अवश्य चढ़ ही·······" उसने गंगाधर को हटाने के लिए पीछे की ओर हाथ घुमाए । कुहनी उसकी भौंह में लग गई । 'अनर्थ हो गया । चोट आई ?' भागीरथी चढ़ना भूल गई । गंगाधर को ही देखने लगी । उसकी दृष्टि तीखापन भूल गई थी ।

"गहरी !" गंगाधर हँसा ।

भागीरथी ने मुँह फेर लिया । चढ़ने का प्रयास शुरू हुआ । पहले की भाँति गंगाधर ने उसकी भुजाएँ पकड़ कर उसे चढ़ने में सहारा दिया । भागीरथी ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की । उस अवस्था में मानो उसकी घुँघराली लटें

हवा में उड़कर उसके गाल को छू गई। भागीरथी ऊपर चढ़ी, तो उसके चेहरे पर की हँसी गंगाधर को दृप्तिदायिनी लगी। पार्वती गंगाधर से सहारा पाकर शांति से सवार हो गई। दोनों के माथे निकट हुए, तो गंगाधर की साँस सहज ही पार्वती के गाल पर पड़ी। उसके वेग से चिनगारी पर ढकी रही-सही राख भी उड़ गई। चेहरा फिर से चमक उठा। दूसरे ही क्षण दोनों सहेलियाँ पूर्ववत् ठिठोली में मग्न हो गयीं।

"धुआँ भीतर तो नहीं आ रहा ? वरना सिगरेट फेंक ही दूँ !" कैंट साहब दोनों सहेलियों को स्निग्ध दृष्टि से देखते कहने लगे।

सहेलियों ने एक-दूसरे का भाव परखा। भागीरथी बोली, "कोई कष्ट नहीं।"

"अपना कंठी जहाँ गया था, वहाँ यह शिकरोट पीनेवाले ही न मिलेंगे। कहा जाता है कि स्त्रियाँ, कम उम्र वाले सबको इसका शौक रहता है। कोई साथ न दे, तो उसे जंगली करार देते हैं और उसे परिहास का पात्र बनना होता है। खाना इसके बिना पचता ही नहीं ! सिर दर्द, नाक में कष्ट, एक-न-एक कष्ट सताने लग जाता है। यह सब कंठी के मुँह से सुन चुकी हूँ। इस देश में भी वह सब होने लगा है न ! एक बार चस्का लग गया, तो बस ! बचाव का उपाय नहीं ! हमें जिस प्रकार चाय-काफी की लत सताती है, उसी प्रकार समझो। अगर इंजीनियरी की पढ़ाई हुई, तो यह परम आवश्यक है। उसमें गिनती-हिसाब आदि का जो अनुमान लगाना पड़ जाए तो यह आयास-निवारण का उत्तम साधन माना जाता है।"

"चल वे राम !" गंगाधर बाहर पुकार रहा था। बैल तट पर की चढ़ान तय कर रहे थे। लड़कियाँ उधर मुड़ीं, तो गंगाधर को हँसी में लोटपोट पाया।

"अम्मा ! मैं तो कोई ज्यादा पीता भी नहीं। अब तब दो-एक पी ली तो बस ! रोज दो पैकेट भी खर्च नहीं होते ! और साधारण सिगरेट तो छूता ही नहीं। माइल्ड-हल्की खुशबूदार ही चुन लेता हूँ।" लड़कियों की तरफ रुख किये कैंट कह रहे थे।

"ठीक कहते हो, लल्लू ! विद्या-बुद्धि के विकास की आकांक्षा हो जाने पर तरह-तरह के साधन अपेक्षित हो जाते हैं।"

"चल राजा, लक्ष्मण !" गंगाधर ललकार रहा था।

चढ़ान समाप्त हुई, आगे के टीले पर गाड़ी चढ़ने लगी। गंगाधर जुए की धरन पर खड़े, सिर ऊपर किए मानस में अंकित नाले के पात्र को स्थिर दृष्टि से परखने लगा था। वह दृश्य पूरा दिखाई भी न देता था। पर जितना गोचर था, वही आशादायक प्रतीत होता था। बीच में टीले की आड़ आती गई, दृश्य धुँधलाता गया। गंगाधर भी फिर से बैठ गया। वह बड़ा ही उल्लसित हो उठा था।

भविष्य की संभावनाओं की परिकल्पना में उसकी वृत्तियाँ लीन हो गई थीं। उत्सुकता बढ़ती जा रही थी। जितना सोचता जाता अस्पष्टता, आतुर कल्पनाओं के परिणामस्वरूप, बेचैनी उतनी ही बढ़ती जाती।

"वह देखो, गाँव आ ही गया !" भागीरथी इशारा करती हुई बोली।

"वही तो !" पार्वती भी हर्षित हुई।

गंगाधर ने भी उस ओर देखा। इसमें कोई भ्रम न था। बैलगाड़ी टीले की चक्करदार चढ़ाई पार कर मुड़ी, तो मील भर की दूरी पर जीर्ण किले की दीवारों के दोनों पार्श्वों में काली-लाल खपरैलों से छाये मकानों से बना बेलगूर गोचर हो रहा था। उसके मानस-पटल पर अंकित झील पीछे पड़ गई थी। दिखाई दे रहा गाँव अधिक प्रत्यक्ष हो उठा। मन मुदित हो गया। अनजाने ही वह गुनगुनाने लग गया—'अपना गाँव मन का ठाँव। धरती पर वह ललित ललाम।'

गीत समाप्त हुआ। सहेलियाँ हँस पड़ीं और सहर्ष करतल ध्वनि करने लगीं।

"तुम्हारे पुरस्कार का लो लम्बा नमस्कार ! किसी ने साथ ही न दिया। गाँव वाले सब जानते हैं इसे.........तुम लोगों को बाजे, संगत वगैरह चाहिए ? भागीरथी तो वीणा के बिना बोल ही नहीं निकाल पाती।"

"फिर क्या ? तुम्हारी तरह बेसुर-ताल गाने लग जाएँ ?" भागीरथी ने मुँह बनाया।

"वैसे तो सुर-ताल-रहित न था !" पार्वती ने गंगाधर का पक्ष लिया।

"ये सब बहाने हैं। असली कारण है—सभ्यता का अभिमान। देहातियों के रोम-रोम में उमंग रहनी चाहिए। शहरातियों के बनने में क्या रक्खा है—केवल हड्डी और खाल ही तो ! न रक्त है, न मांस ही। सहज-सरल-सुन्दर जीवन की आकांक्षा रखने वाले प्रतिक्षण यथार्थ जगत् में ही नाटक का-सा अमित आनन्द लूट सकते हैं। उसके विपरीत बड़प्पन की झूठी शान से परेशान होकर कृत्रिम रूढ़ि-शृंखलाओं से जीवन को जकड़ देने वाले हम-जैसे लोग गतिहीन हो जाने से अभिनीत नाटकों से तृप्त रह जाते हैं—जीवित मानव के बदले उसकी तस्वीर से ही जी बहला लेते हैं।" कहते हुए गंगाधर ने अपने उस क्षण के मनोभाव का परिचय दिया। साथ ही मादण्णा से पूछा, "मादण्णा ! तुम भी यह लावनी गाते हो न ?"

"मैं भी गाया करता था, गंगप्पा ! लेकिन बहुत पहले।"

"अब क्यों नहीं गाते ?"

"लड़कपन का शौक बुढ़ापे में अपने-आप ठप हो जाता है। सब कुछ भूल जाता है। जीवन ही भारी हो जाता है, सूना लगने लगता है—हद से ज्यादा खटने-पिटने, घिसने-पिसने, झुकने-पकने से.........।"

उसका अवसाद गंगाधर के उत्साह को घटाने लगा, लेकिन उसे मिटा न सका।

"ऐसी बात नहीं, मादण्ण।........जब तक रहें काम करें, स्वर भरें, यही जीवन है—माननेवाले भी हैं ही।"

"मुझसे तो वह स्वर ही नहीं निकलता, भैया।"

"हमारा यह ग्रामगीत राष्ट्रगीत के समान पुनीत है। गाते समय सबका स्वर साथ मिल जाए तो कितना सुन्दर, यही मेरा मतलब था।" इस प्रकार उत्साह कुछ और धीमा पड़ जाने पर भी अपने पक्ष के समर्थन में वह हर सम्भव तर्क काम में लाता गया।

"इस बुढ़ापे में उन सबसे क्या सरोकार है, गंगप्पा! गाँव, धाम, देस, कोस आदि से क्या प्रयोजन?"

यह सुनकर गंगाधर को मानो बिजली लग गई। वह जितना भी सोचता जाता, उसे रह-रह कर मादप्पा की निराशा, उत्साहहीनता, यातनाएँ आदि काट खाने लगीं। चुभन तीव्र होती गई। उसका मन बनारस से निकलने वाले दिन के दृश्यों की ओर मुड़ा—इसका कोई उपाय भी है? इसके समान कितने ही लोग होंगे—हैं भी! आँचल का आसरा न देने वाली, स्तनपान से वंचित करने वाली स्त्री को माँ न मानने वाली संतान का दोष कैसा? आश्चर्य कहाँ! अपने राष्ट्रगीत की धुन, ध्वजा का लहराना, स्वतन्त्रता का पर्व आदि इन निरीहों को न जगा सकें, इनके उत्साह को बल प्रदान कर सचेतन न बना सकें, व्यक्तित्व के जीवन-रस से सींचकर राष्ट्र के प्रति अनुरागमयी आस्था उत्पन्न कर अंग-अंग को पुलकित और हृदय को उल्लसित न कर सकें, संतोष की लहर के स्पर्श से स्वाभिमान का स्वर उनके कंठ से फूटने लायक न बना सकें, तो उस क्षण तक वे समारोह-संगीत केवल दिखावे हैं, नाटक मात्र हैं, बनावटी हैं, मंच पर से अपनाया गया अर्थहीन वीरव्रत मात्र हैं? इसी चिंता के मारे वह मन ही मन बड़ा रुष्ट हुआ। अपराधी की भाँति असहायता से बदन को नोचने लगा। उसी विचार में डूबे 'यह सम्भव हो कैसे?' का सवाल अपने से किया और 'ठीक तो है! रोटी-कपड़े से चिंता-मुक्ति हो इसकी नींव........पीछे?........व्यक्तित्व का अभिमान, उसके विकास का अवसर........अंत में? बाकी चीजें बाद में! जीवन का स्तूप महोन्नत हो उठे। उस ऊँचाई पर अपनी ध्वजा फहराई जाय! तब उन्मुक्त कंठ से समवेत स्वर से गाएँ........

नंजत्ते अगर न टोकती, तो गंगाधर इसी चिंतन-प्रवाह में न जाने कितनी दूर पहुँच जाता! उनको गंगाधर का गीत और लौंडियों की प्रशंसा इन दोनों को सुनकर प्रायः ताव आ गया होगा—स्वयं गीत सुनाने का उत्साह अथवा इस क्षेत्र में भी कैंट साहब की गति-योग्यता के प्रदर्शन की लालसा या उद्देश्य जो भी

हो—'अपना कंठी भी उस देश का भजन गुनगुनाता ही रहता है, सुनने में बड़ा मधुर लगता है' कहती अपना मनोभाव दर्शाने लगीं।

"भजन ! किस देश का ? स्टेट्स का ?" गंगाधर की उत्कंठा तीव्र हुई। चिंतन की कसावट ढीली पड़ी। मनोरंजन की अकुलाहट बढ़ गई। लड़कियों के नेत्र चमक उठे। उनके कान खड़े हुए।

"हाँ, वही तो ! दो एक सुनाओ मुन्ना !"

'यह भी कोई सुनाने की घड़ी है ? ना.........ना.........' कैंट साहब सहज ही अरुचि दिखाने लगे।

"यह भी कोई बात है ! सीखा किस दिन के लिए है ? यहाँ के लोगों को वैसे भजन सुनने को मिलें भी कैसे ? तुम्हारा विचार क्या है भागू ?"

"ठीक कहती हैं, फूफी ! सुनायें तो सुना जाय।"

"बड़ा मजा आएगा, नजंत्ते !" पार्वती का भी उत्साह बढ़ा।

"सुनाइए, सर ! अंग्रेजी गीतों से बड़ा शौक है मुझे भी।" गंगाधर ने चढ़ाया। पर, इतने पर भी कैंट साहब मौन रहे।

"इसमें शरमाने का तुक ! वैसे भजन सबके सामने सुनाने में हिचकते क्यों हो ? उन विदेशियों के सामने गाकर प्रशंसा के पात्र बने हो ?" नजंत्ते की ध्वनि से अधिकार का भान होता था।

कैंट साहब थोड़ा मुस्कराये। सबको इसमें संकोच का प्रदर्शन दिखाई पड़ा।

"आपको सुनाना ही होगा।" गंगाधर का आग्रह बढ़ा।

अब गीत सुनाना न सुनाना नंजत्ते की मर्यादा की कसौटी बन बैठा था। वे कुछ भी ठान लें, तो उससे टस-से-मस न होती थीं। कैंट को यह भली-भांति मालूम था। ऐसी दशा में विवश होकर खँखारते हुए 'यह एक देवता का भजन है। शांति से सुनें।' कह कर हँसी रोक ली। सुकुमारियों ने रूमाल मुँह पर लगाए अपनी हँसी दबा ली। गंगाधर ने भी वही किया। पीछे कैंट साहब—

"शीतल स्निग्ध चांदनी में
बाँहों में अपनी आ जाओ।"

सरस लय में ही गाते गये।

गीत समाप्त होते ही गंगाधर समेत दोनों सहेलियों ने जोरों से ताली बजायी। नंजत्ते ने मुँह फेर लिया। कैंट साहब का चेहरा गाड़ी से बाहर था।

"कितना अनूठा है ! पसन्द आया आपको ?" नंजत्ते बड़े गर्व से पूछने लगी। भला वे चुप कैसे रह जातीं ?

"बड़ा मधुर है, नंजत्ते ! राधाकृष्ण का भजन !" गंगाधर बोला। लड़-

कियों ने केवल 'हुँ-हुँ' की। सभी हँसने की मूड में थे। कोई बहाना तुरन्त बनाना था।

"ह-हा ! भैंस पर कौवा किस ठाठ से बैठा है, वाह !" गंगाधर जोर से हँस पड़ा। दोनों सहेलियाँ भी खुल कर हँसने लगीं।

"वह भी कोई विनोद है ?" नंजत्ते कड़कने लगीं।

लेकिन सब हँसी में लोटपोट थे।

"ब्लडी-वाहियात है !" कैंट साहब तेज आवाज में बिगड़े। सबको दृष्टि उन पर गई। झट उन्होंने इत्र लगे रुमाल से नाक बन्द कर ली।

"भद्दा है—भद्दा है !" लड़कियों ने भो उनका समर्थन ही किया।

गंगाधर अनजाने ही नाक बचा चुका था।

सचमुच ही बदबू तेज आ रही थी। गाँव करीब आ ही गया था।

"बाप रे ! कितनी बदबू ! गाँव वालों का क्या बिगड़ जाएगा अगर वे निवृत्त होने के लिए थोड़ी दूर और क्यों नहीं जाते लोटा लेकर ! इनको ही क्या गया है ? बड़े गन्दे लोग हैं।" नंजत्ते श्राप देती साड़ी का आँचल धीरे-धीरे नाक पर ले गयी।

मादप्पा पूर्ववत् ही अविचल रहा। गंगाधर को गाँव की दुर्दशा घिनौनी प्रतीत हुई। ऊबड़-खावड़ सड़कों का हाल ही कष्टप्रद हो गया था। अब सड़क के दोनों किनारे जंगली झाड़ियों के टेढ़े-मेढ़े फैलाव का मनोहर दृश्य भी। इन सबसे बढ़कर यह बदबू ! यह गाँव का राजपथ ! पल भर के लिए गंगाधर को उन सबकी टीकाएँ उचित मालूम होने लगीं। वह स्वयं भी जानता था कि ऐसे बड़े गाँव में शौचालय रहने वाले घर ही इने-गिने थे। कई घरों के लिए पीछे अहाता ही न था। शौचालय जहाँ थे भी, वे पतली नीची दीवार के होते, जिनमें तीन-तीन पत्थर मात्र रखे रहते। वहाँ की मक्खियों की भिनभिनाहट की याद से ही उसे घृणा हो जाती। ऐसी दशा में—'मर्ज-बीमारी के लिए दरवाजा खुला रहेगा ही—उसने सोचा। ऐसा सोचते समय घर के समीप गन्दगी-गलीज से खाली मैदान की व्यवस्था ही भली लगी। यही गाँव के बाकी प्राणियों की दशा थी। स्त्रियाँ, बच्चे, बूढ़े, बीमार, आलसी थे, सारे दूर जाते ही न थे। रात के समय चीतों की भीति रहती थी। छोटे बच्चों को तो घर के सामने ही बिठा दिया जाता था। कुत्ते, सूअर ही इस गाँव में भंगी का काम पूरा करते थे। ये भी कितना कर पाते ? कुल मिलाकर गाँव भर और उसके आस-पास यही गलीज था.......इसका निवारण ? उसे गाँवों के लिए उपयोगी 'सफाई के तरीके' विवरण सहित मालूम थे। उनकी निर्माण का विधान भी प्रयोग द्वारा बता सकता था। लेकिन उनके लिए लगनेवाले सैकड़ों रुपये कितने जने लगा पाते ? ....अतिरिक्त इसके ?........आर्थिक दशा सुधरती जाए तो जीवन-स्तर भी

उन्नत होता जाता है। तभी ज्ञान-विज्ञान, कला और संस्कृति आदि ऊँचे आदर्शों की साधना में प्रवृत्ति प्रेरित हो पाती है। उनकी प्रगति के अनुकूल अवसर भी खुलते जाते हैं। गंगाधर का तर्क निदान ढूँढ़ता गया।

"विदेश में सर्वत्र देहाती इलाके, घर-द्वार बड़े ही स्वच्छ बताए जाते हैं। वहाँ के शौचालय मैसूर-बंगलोर में रहे शौचालयों को मात कर देने वाले कहे जाते हैं। उनकी सुधराई-स्वच्छता को देखने के लिए ही वहाँ जाना लाभप्रद माना जाता है। फर्श, दीवार ये सब चमकीले रहते हैं—चाहे तो चेहरा भी उनमें देख लो। बिना किसी हिचकिचाहट के वहाँ थाली भी लगायी जा सकती है—अपने कंठी का कहना है। इतनी स्वच्छता है। एक भी मक्खी, मच्छर, दुर्गन्ध, नाक में दम आ जाना इन सबका कोई झमेला नहीं।" नंजत्ते तल्लीनता से कहती गयीं।

"सच है, स्टेट्स में मामूली बस्तियों तक में भूगर्भ नलिकाओं का प्रबन्ध है। यहाँ तो घर-द्वार, पथ-हाट सभी मोरियाँ हैं, शौचालय हैं। कैंट साहब ने समर्थन-विरोध से अपनी माता जी की उक्तियों का पुष्टीकरण किया।

"इन्हें कौन बीमारी लग गई है। यहाँ भी सरकार है, इन्जीनियरी विभाग है, लगान-टैक्स वसूले जाते हैं। लेकिन कोई काम-धाम नहीं।"

"हट ! यह भी कोई राष्ट्र है, देश है ?" कैंट साहब मुँह बनाते अवज्ञा भरी वाणी में बोले।

गंगाधर कुछ बोला नहीं। यह वाद-विवाद का विषय भी न था। सम्भव हो, तो उन सबको कार्य रूप देना था। लेकिन समस्या पर वे—जानकारों के जमातवाले—जिस हल्के ढंग से विचार व्यक्त करते जा रहे थे, यह देख वह कुछ चकित हुआ। उसका कुतूहल जागृत हो गया था। मन खर्च का हिसाब लगाने में जुट गया था। उसी साल कॉलेज की पढ़ाई के अंग रूप में उसने बाकी छात्रों के साथ हिन्दू विश्वविद्यालय के क्षेत्र के लिए भूगर्भ-नलिकाओं की योजना तैयार की थी। बेलगूर में ऐसी व्यवस्था पर लगने वाले व्यय का अनुमान लगाया। इससे काम कैसे बने ? पानी के बिना ऐसी व्यवस्था का लाभ ? फिलहाल जितने कुएँ हैं, उनसे माँग पूरी न हो पा रही है। इतना ही क्यों ? पानी के लिए हाहाकार ही मचा रहता। उसमें कितना व्यय लगेगा ? इसके अनुकूल गाँव की बनावट में थोड़ा-बहुत परिवर्तन भी आवश्यक था। देश भर में ऐसे गाँव कितने ! इन कामों के लिए ही चार-पाँच हजार करोड़ रुपए ! इस पंच-वर्षीय योजना पर सरकार का कुल व्यय इसी मद के लिए हो जाए ! अत्यावश्यक सम्पद समृद्धि लाने वाले कार्यों द्वारा दस-पन्द्रह प्रतिशत आर्थिक उन्नति, यथा-सम्भव निरुद्योग का परिमाण घटाना तथा अन्य समाज-कल्याण के उपयोगी कार्य ये ही प्रस्तुत योजना के अन्तर्गत स्वीकृत अंश हैं। इसे कार्यान्वित करने

में ही लगभग हजार करोड़ कम पड़ रहे हैं। इस कमी को पूरा करने के फेर में ही सरकार की नसें ढीली हो रही हैं। गंगाधर मन-ही-मन हँसा।

दाईं तरफ अछूतों की बस्ती थी। निश्चित क्रमहीन मकान। एक लम्बा कमरा। बरसात में भींग कर इधर-उधर मिट्टी के बह जाने से छेद पड़ी मिट्टी की दीवारें। भिखारियों के बिखरे मैले केश के समान यत्र-तत्र उड़ी हुई फूस की छतें। खिड़की का नाम नहीं। सड़क, मोरियाँ—इनके बारे में कहना ही क्या—बेलगूर में भी इनका अभाव था। बस्ती आस-पास की गन्दगी के अनुरूप ही थी। इस दशा में मकान के भीतर का क्या हाल होगा? ऐसे मकान गाँव के बीच में देखने को मिल जाते, तो अछूतों की बस्ती में इनका अस्तित्व गंगाधर को चकित क्यों कर दे! उसे लगा कि कैंट साहब इस पर भी अवश्य छींटा मारेंगे और वही हुआ भी।

"हुँः! ये भी मकान हैं—धरती पर रहने वाली गुफाएँ! मर्ज-बीमारी की जड़! समूल जला देने चाहिए।" उनकी अतृप्ति, असन्तोष गंगाधर में न रहे हों, सो बात नहीं। वह मन-ही-मन कुछ पहेली बुझौवल कर रहा था।

"मिटा देने में क्या लगता है, उठाने में ही तो झंझट है—हर हालत में यही लागू है।"—गंगाधर के मुँह से अनायास ही निकल पड़ा।

"क्या कहने हैं! अपना कंठी, वहाँ के मकानों का वर्णन करते-करते अघाता नहीं। सुनने में बड़ा आनन्द आता है। भागू! इतनी स्वच्छता और आराम का प्रबन्ध है कि केवल स्विच दबा देने से खड़े या बैठे ही सारा काम हो जाता है। बर्तन-भाँडे की सफाई, कपड़ा कचारना, रसोई पकाना आदि सबके लिए 'मशीन' है। बनी-बनायी चीजें रखने के लिए जो मशीन है—उसका नाम 'रम्पजिटर' या उससे मिलता-जुलता—बड़ी अद्भुत कही जाती है। उसमें रखी चीजें दिनों तक शुद्ध रहती हैं, सड़ती नहीं। कोई मामूली बात है, बिटिया। रेडियो की तरह कोई वस्तु कही जाती है, जो घर-घर में है। उसकी सहायता से संसार के कोने-कोने के दृश्य देखे जा सकते हैं और ध्वनियाँ सुनी जा सकती हैं। अपने देश में इसका अस्तित्व ही कहाँ? नंजत्ते ने अपना ज्ञान-भांडार खोल दिया।

"टेलीविजन, फूफी।" भागू ने सहायता की।

"हाँ, देखा न? विद्याविहीनों की वाणी इन नामों का उच्चारण भी नहीं कर पातीं। कारों की कोई गिनती ही नहीं, एक ढूँढो, तो हजार। सोफे, कालीन, दरी, रंग-बिरंगे कागजों से चिपकी दीवारें—सब कुछ रंगशाला का स्मरण दिलाने वाले कहे जाते हैं। मैसूर, बंगलोर ही नहीं, दिल्ली द्वीपान्तरों में भी ऐसे दृश्य दुर्लभ हैं, समझी! सुनते-सुनते वहीं पहुँचकर बस जाने की इच्छा हो गई है मेरी। अपना कंठी भी रोज यही कहता रहता है—यह देश

ही दरिद्र है, जी ऊब जाता है, मन नहीं लगता आदि। अभी अपने देखे-सुने रिश्तेदारों से दूर कैसे हो जाऊँ, इस फेर में मैं ही पड़ी हूँ।"

"आप जो कुछ कह रही हैं, उनकी व्यवस्था के लिए अमरीका को यहाँ लाकर रोपने के लिए, कितना व्यय लगेगा मालूम है, नंजत्ते? इस समय की हजारों-करोड़ों की योजनाओं के बदले लाखों-करोड़ों की योजनाएँ अनिवार्य हो जाएँगी। पूरा हिसाब लगाया जाए, तो मजा आ जाए। करोड़ों अरब लग जाएँ। मान लीजिए, बाकी सब रहने दीजिए, ये मकान हम फूँक देंगे। वे फूँकने लायक हैं भी। देश की जनसंख्या चालीस करोड़ से ज्यादा है अर्थात् आठ-दस करोड़ परिवार हुए। तीन-चौथाई परिवार चाहे शहरों में रहें, चाहे देहात इन्हीं घोंसलेनुमा घरों में रहते हैं। छह करोड़ ही रख लीजिए। उनके लिए आपकी बताई गई चीजें जरूरी नहीं, केवल हवा-रोशनी की व्यवस्था रहे, सिलन-दीमक का प्रकोप न हो, आरामदेह मकान चाहिए। अनिवार्य व्यवस्था वाले आवास के बारे में सोचें भी और प्रति आवास पीछे केवल पाँच हजार खर्च मान भी लिया जाए, तो देखिए तीस हजार करोड़ हो जाते हैं न। अब बिजली, पानी, भूगर्भ-नलिकाएँ इनका अलग हिसाब लगाइए। बाद को टेलीविजन, रिफ्रिजरेटर इत्यादि। यह केवल आवास की बात रही। सड़क, गाँव, देश—इन्हें भी लेना होगा। अनगिनत काम हैं। इनके लिए कितना धन अपेक्षित होगा?"

"बाप रे!" भागीरथी बोली।

"निरा भ्रम है।" पार्वती कह उठी।

"हिसाब न लगाना ही हितकर है। इसका फायदा? पूरा हवाई किले का निर्माण—आकाश-पुराण। इस समय हजार करोड़ की योजना भी ठप होने वाली लग रही है।" गंगाधर के स्वर में निराशा व्यंजित थी।

"जितना भी लगे, करना तो पड़ेगा ही।" कैंट साहब का वही पुराना तर्ज था।

"हुँ, नहीं, नहीं कहते रोते रहने से काम बन जाएगा? धन का जुगाड़ करना ही होगा।" नंजत्ते भी उछलने लगीं।

"अभी लोगों की शिकायत है कि लगान, टैक्स आदि के बोझ से कमर टूटने लग गई है।" गंगाधर ने निवेदन किया।

"हूँ, गलत क्या कहते हैं?" बंगलोर में घर का टैक्स दिन-प्रतिदिन बढ़ाया जा रहा है, जो आसमान तक छू रहा है। अपने ससुरजी के पिता जी के समय जो ८ रु० थे वही अब ५२ रु० हो गये हैं—१०, १६, २४, ४० होते-होते अब

५२ रु० हैं। वह सब कहाँ जा रहा है, कौन बताए!" संख्याएँ नंजत्ते की जबान पर ही नाचती थीं।

"सरकार सबकी सम्पत्ति अपने हाथ ले ले—कस्तूरबा कैम्प में रहते समय लोग कहा करते थे।" पार्वती ने सोत्साह अपना सुझाव दिया।

"चुप रह नादान छोकरी! तेरी सूझ भी निराली है! रहने दे। बाद को हम लोगों का हाल क्या हो—धूल फाँका करें? तेरा नुकसान ही क्या? इसी से हांके जा रही है। कह देने में क्या लगता है? इसे तो भुगतेंगे जमीन-जायदाद वाले। तेरे जैसे फटेहाल वाले यही सुर अलापते हैं।" नंजत्ते ने पार्वती पर करारी चोट की। भागीरथी का मनोभाव प्रकट न हुआ। गंगाधर मुस्कुरा रहा था।

"टैक्स भी न देना पड़े और बड़े-बड़े काम भी हो जाएँ! चावल भी न घटे, मेहमान भी न हटे, वाली बात हुई। ज्यादा टैक्स दिया जाए, तो यथासम्भव नए-नए काम भी हाथ में लिए जाएँ! इसके लिए भी·······।"

"भरपेट खाने को न रहे तो लोग टैक्स भरें भी कैसे? देने लायक रहने वालों को तो अभी चूस लिया गया है। दुहने के लिए अब रहा ही क्या? ऋण-उधार का रास्ता ढूँढना चाहिए। सम्पन्न राष्ट्रों के सामने झोली फैलानी चाहिए। बड़प्पन के झूठे दावे भुला देनी चाहिए।" कैंट साहब इस प्रकार राजनीति के धरातल पर धमके।

"मतलब! सदियों की साँसतों के बाद मिली स्वतन्त्रता बिक जाए, कौड़ी के मोल लुटाई, इज्जत की तरह।" गंगाधर बोला वह अपने को रोक न सका।

"मजे से उसका स्वाद चखा जाए, सुबह काफी के बदले स्वतन्त्रता पी लें, दोपहर भोजन के बदले स्वतन्त्रता खाएँ, रात में भी खान-पान के बदले स्वतंत्रता! यही न है आपकी स्वतन्त्रता का निचोड़? हा-हा।" कैंट अट्टहास करने लगे, उनके सुनहरे दांत दमक उठे।

"हूँ; पेंट पर गीला कपड़ा लगा लें! ह ह ह! खूब बोले, कंठी।"

भागीरथी भी हँसी, पता नहीं क्यों। लेकिन, पार्वती की भौंहें कुंचित हो गयीं। गंगाधर हँसता ही जा रहा था। उसके लिए यह कोई नई दलील न थी।

"इज्जत लुटाने को तैयार होइए, झोली फैलाते जाइए या देश को दांव पर ही लगा दीजिए! किसी भी हालत में 'पुनर्निर्माण तथा अभिवृद्धि के लिए आवश्यक धनराशि का हजारवाँ हिस्सा भी न मिलने का! उतना देने की औकात ही किसी में नहीं है।" गंगाधर ने जाना-बूझा उत्तर दिया।

"तब तो खुली छूट है, यही रवैया जारी रखें—रेंगते-अटकते। न सांप

मरे, न लाठी टूटे। अपने पोतों-परपोतों तक की पीढ़ियों तक भी कोई योजना पूरी न हो पाए। आज की भाँति धूल में ही लोटा करे यह देश।" कैंट साहब ने निष्कर्ष सुना दिया।

"और क्या हो सकता है? यही इनकी प्राप्ति होगी।" नंजत्ते ने भी हामी भरी।

"सच है, कल-परसों ही राष्ट्र की सम्पूर्ण अभिवृद्धि होके रहेगी, इसकी प्रतीक्षा व्यर्थ हो जाएगी। सरकार द्वारा निर्मित योजना पड़े हुए बृहत् कार्य के अनुपात में साधारण ही कही जाएगी। लेकिन, इस समय की क्षमता के अनुरूप देखा जाए, तो वही योजना बहुत बड़ी है, प्रामाणिक है और वस्तुस्थिति पर आधारित भी है। कालान्तर में हमारी स्थिति सुधरती जाए, शक्ति संचित होती जाए तो इससे भी बड़े पैमाने की योजनाएँ बारी-बारी से बनती जाएँगी। मैं मानता हूँ कि वर्तमान योजना का परिमाण बढ़ाया जाए, जल्दी-जल्दी काम होते जाएँ, जनता सुखी बने और देश की सर्वतोमुखी उन्नति सम्भव हो, लेकिन अकेली सरकार इसमें समर्थ नहीं है। उसके साधनों की सीमाएँ क्षितिज को छू गई हैं—पारी के कहे अनुसार सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण का प्रस्ताव ठुकरा दिया जाय तो।"

"तब तेरा आशय क्या है? एक ही स्वर से योजना के परिमाण को बढ़ाने की आवश्यकता भी नपुंसक मानता है और सरकार की असमर्थता भी स्वीकार करता चलता है—उस पर तुर्रा यह कि स्वयं साकार सरकार का दम्भ भरते उससे बड़ी सहानुभूति भी जताता जाता है। अब बच क्या रहा? हम सब फावड़ा उठाने लगें? सब हमी करें? हम क्या सरकारी अधिकारी हैं अथवा उसके अधीन रहने वाले कर्मचारी? बड़े-बड़े मन्त्री महोदय, ऊँचे-ऊँचे अधिकारी, लाखों इतर अतिरथ, महारथ ये सब गद्दीधारी किस काम के? हजारों रुपयों का वेतन हड़पने के लिए? उपाय निकालना चाहिए।" अपने इस कथन के अन्तिम वाक्य के साथ नंजत्ते आवेश में आ गईं, ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया और युद्ध की इतिश्री मान बैठीं।

सचमुच गंगाधर का युद्ध समाप्तप्राय ही था। उसे अपार हर्ष हुआ। विचार में ही लीन वह दीप्ति-मुसकान-भरी दृष्टि नंजत्ते की ओर फेरता गया। उसमें कृतज्ञता भी झलकती थी।

"वह! नंजत्ते! ये बातें बड़ी कीमती हैं, मोती हैं—आपके कहने का ढंग दूसरा भले ही रहा हो। वास्तव में मैं, आप, हम ही असली सरकार·······।"

"वह बिलकुल ढोंग है। बस कर! हमें आसमान पर चढ़ाया ही इसलिए जाता है कि कुछ प्राप्ति हो जाए।"

"सही बात है ! हम न दें, न करें तो दूसरा कौन हमारी जगह पर आए—हम ही सरकार के हाड़-मांस जो हैं ? वे अतिरथ, महारथ, महोदय आदि सब हम ही हैं। सोच-समझकर सूत्र-संचालन करने वाले वे लोग हैं—हमारे ही अंग मात्र हैं। चाहें तो आप उसे बुद्धि का नाम दीजिए। लेकिन पूरी जिम्मेदारी हम सबकी है। बुद्धि पथ प्रदर्शित करती है, लेकिन कर्म में तत्पर हाड़-मांस ही होते हैं।"

"सब सुन रखा है—निरा ढोंग—ढंग।" कैंट साहब तिलमिला उठे।

"वही तो, वही-धोआ है न ?" नंजत्ते ने संतोष-भरी तृप्ति सूचित की।

"लेकिन गंगाधर ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न की। वह अपने-आप उन प्रश्नों के उत्तर दे लेता था।

"और करें क्या ? हम ही फावड़ा उठाएँ ?' यही न आपका सवाल था—हाँ, वही अपनी समस्याओं का हल प्रतीत होता है………।"

"रहने दे, रहने दे ! मैं खोदना शुरू करूँ ? तुमसे कौन सलाह माँगे, अजीब बात है ! वेतुकी बात है !"

लड़कियों को हँसी सूझी। लेकिन नंजत्ते की आँखें देखते ही वे ठंडी पड़ गईं।

"सुनिए, यह योजना व्यावहारिक है, इसका आकार बढ़ाया जाना चाहिए, इस विषय पर आप भी सहमत हैं न ? उसकी पूर्ति के लिए हम सबकी ओर से कोई भेंट अनिवार्य होगी, यह भी………।"

"क्या कहा ? कोई भेंट ? अब जो गिना रहे हैं, उसके अलावा भी ? फिर धान, धर्म पर आया क्या ?"

"धर्म न बन पड़े तो ऋण ही सही-सूद पर। उसके लिए सरकार की ओर से कई सुविधाएँ दी गई हैं।"

"यह देखो, धन किसके पास पड़ा है जी, जब सरकार ही नोच-खसोट में लगी है ?"

"धन न सही, श्रम ही सही ! परिवार अपना, परिश्रम भी अपना !"

"हथेली पर सरसों जमाने की तरह, धन, साधन-सामान इनके बिना खाली हाथ से क्या होगा ?"

"धन, सामान आदि सबका मूल श्रम ही है। बुद्धि से प्रवृत्त होकर हाथ से परिश्रम करने पर ही तो सामान भी मिलें चाहे खान में हो, खेत में हो, कारखाने में हो या कहीं और जगह ? उससे बहुत कुछ किया जा सकता है। इससे पूर्व अपनी योजना के लिए कम पड़ने वाले हजार, करोड़ रुपयों को जुटाना

होगा। पीछे योजना का आकार भी बढ़ाना होगा। यह बड़ा जरूरी है—अगर हम अपनी मुक्ति चाहें तो।" गंगाधर ये शब्द सुचिंतित ढंग से कहता गया। इस निर्णय से उसे विशेष प्रसन्नता हुई।

"मैं इसका ओर-छोर नहीं लगा पाती, भाई! धन के बिना कार्यसिद्धि! जादू-टोना! किताबें रट-रट कर तेरा दिमाग खराब हो गया है, जरा दम ले ले।" नंजत्ते उसका मुँह बन्द करना चाहती थीं।

"वह सब कैसे करेंगे, बताइए भला! हवा में बातें बनाने से न बनेगा, जनाब!" कैंट साहब ने खिल्ली उड़ाई।

"अपने उन कार्य-विवरणों में सरकार ने सैकड़ों तरीके सुझाए हैं! उनमें से अपने अनुकूल पड़ने वाले तरीकों को चुन लेना ही रह जाता है। मैं अभी कोई निश्चय नहीं कर पाया हूँ।"

"मेहरबान! सरकार की योजना ही लागू हो जाने दीजिए। नतीजा क्या निकलेगा, उसे भी देखते जाइए न।" कैंट साहब ने सन्देह प्रकट किया।

"ऐसा क्यों? पहली योजना पूरी हुई कि नहीं? धन जहाँ से मिले, वहीं हाथ बढ़ाया जाएगा, कार्य होना संदिग्ध नहीं लगता।"

"तुझे भले ही असंदिग्ध लगे! उससे क्या होगा? सोना भले ही बरसे, मगर उसे बटोरने वाले नहीं। ऐसे हैं इस देश के निवासी। घोर आलसी जो हैं!" नंजत्ते बीच में बोल उठीं।

"सच है आपका कहना, उसके लिए भी प्रोत्साहन और आवश्यकता पड़ने पर जोर-जबर्दस्ती भी अपेक्षित हो सकती है—इस कार्य का महत्व उन्हें भली-भाँति समझाया जाए। उन्हें मालूम हो कि इसके सम्पादन से कुछ द्रव्य भी प्राप्त हो जाएगा। आगे भी जीवन में आमदनी पचीस प्रतिशत बढ़ेगी। एक ढेले से दो फल गिराए जा सकेंगे। सरकार सबको इसकी जानकारी कराने के लिए जमीन-आसमान एक कर रही है। हम भी हर मौके पर यही जानकारी कराते जा सकते हैं, जैसे इस समय विश्लेषण द्वारा कर रहे हैं।"

"ऐसा करने के लिए हमें कोई वेतन देकर नियुक्त कर रखा है क्या?"

"इस समय वेतन का कोई प्रश्न नहीं है। भेंट ही तो देनी है! इस विषय पर मैं अपने प्रोफेसर साहब का अभिप्राय सुनाऊँ।" गंगाधर ने बनारस में जो अपने विचार संक्षेप सुबोध, और भावपूर्ण ढंग से प्रकट किए। उपसंहार करते हुए उसने कहा, "आपकी भेंट, बातें ही सही, नंजत्ते! आप बड़े ढंग से बोलती हैं। आप अगर संकल्प करें·······।"

लड़कियाँ हँस पड़ीं। बात अधूरी ही रह गई। नंजत्ते भी अपनी प्रशंसा सुन

खिल उठीं। लेकिन अनजाने बातों में आ जाने वालों की भाँति झट सँभल गईं।

"हूँ, बड़ी आवभगत न करो ! मुझे क्या नादान समझ रखा है कि मैं तुम्हारे जाल में फँस जाऊँ? माँगा वेतन दे ले, अपनी कंठी से प्रेम से काम ले। यहीं तक मेरी बुद्धि दौड़ती है।" नंजत्ते पत्थर पर लकीर खींचती हुई बोलीं।

● ● ●

: ६ :

गंगाधर को उनके स्वीकृति-विरोध से कोई मतलब न था। मन में उठे हुए बड़े सवालों के बारे में बनी धुँधली धारणाएँ दिखाई पड़े दृश्यों और सुनाई गई बातों से कुछ-कुछ साफ होने लगी थीं। वही उसके लिए पर्याप्त पुरस्कार था। कुछ साधारण से सन्देह, अर्थहीन आलोचना आदि के लिए उपयुक्त जवाब तैयार कर लेने में भी सहायता मिल जाती थी। रेखाओं में, अस्पष्ट ही सही, चित्र की एक आकृति की पहचान सुलभ होने लगी थी।

"नंजत्ते, शीतलामाई का मन्दिर—आपकी प्रिय देवी का !" भागीरथी हल्की मुसकान के साथ बोली। पार्वती भी हँसी।

"उसमें हँसने की क्या बात है ?" नंजत्ते पार्वती की ओर तरेरती हुई दृष्टि डालकर हुंकार कर उठीं।

"नंजत्ते, यह असभ्य देवी जो है ? इसका मन्दिर गिरा कर उसकी जगह स्टेट्स की भाँति एक चर्च-गिरजाघर.......।" गंगाधर सूचित करने लगा।

"छिः, छिः, कैसी अनर्गल बात मुँह से निकाल रहा है, रे ! 'शान्तं पायं' कहो मैया, दयामयी ! क्षमा करो ! अनजान लड़के हैं ! हर एक को अपना-अपना उपास्य बड़ा है। कितना बड़ा अविवेक ?" नंजत्ते ने अपने दोनों गालों पर हाथ रखे। गाड़ी से झुक कर झाँका। सड़क के किनारे ही सँकरे शिला-मंडप में हल्दी, कुंकुम, कनेर आदि से सुशोभित तैलसिक्त लोढ़े के प्रति हाथ जोड़े। 'तुम्हारी सौगन्ध—अपने कंठी को अनुकूल उद्योग लग जाय !' की अभ्यर्थना कीं।

"इस साल भी मेला लगा था ? आस-पास हैजे का प्रकोप है, सो रोक लगाई जा सकती है, इस आशय का पत्र मिला था।" गंगाधर ने पूछताछ की।

"हाँ-हाँ, सब कुछ हर साल की तरह सम्पन्न हो उठा।" भागीरथी बोली।

"हैजा, गिल्टी, चेचक आदि की रोकथाम के लिए ही तो महामाई की सेवा प्रतिवर्ष होती है। उसे भी रोका जा सकेगा ? भगवती के भरोसे रह जाएँ, तो

सब ठीक हो जाता है। परम्परा का पालन नियमित रूप से हो रहा है न ?" नंजत्ते आश्वस्त हुई।

"हाँ, फूफी। पांच-छः हजार तक लोग जमा थे, हालांकि सरकार ने टीका न लगवाने वालों के आने की मनाही कर दी थी, खाने-पीने, छाँह-बसेरे के लिए असुविधा के रहते हुए भी।" भागीरथी विवरण प्रस्तुत करती गई।

"सौ भैंसे बलि चढ़ाये गये, दस हजार खर्च हुए।" पार्वती ने पूरा किया।

"अद्भुत मेला-सदा ही से अद्भुत !" नंजत्ते ने प्रशंसा व्यक्त की।

"लोगों को आलसी कहती हैं ! देखिए तो, आवश्यक हो जाने पर कितनी दूर से आ जाते हैं, हर तरह की दिक्कत उठा लेने को तैयार हो जाते हैं।"

"हूँ, ठाकुरजी, भगवती इनके लिए उतना भी न हो ?"

"बताइए सही, सौ भैंसे के माने कितना लगा ! उनसे कितना काम लिया जा सकता ! जनता के पास लगान चुकाने के लिए भी द्रव्य नहीं कहती हैं। इतना धन कहाँ से आया ? यही दस हजार सरकारी ऋण-पत्र खरीदने में लगाया होता, इतनी ही कठिनाई भोगी होती·······।"

"चुप रह धूर्त्त ! भगवती की सेवा की खिल्ली न उड़ा ! बढ़-बढ़ कर बातें न कर !" नंजत्ते ने डाँटा।

गंगाधर चुप लगा गया। बाकी हँस पड़े। गंगाधर गम्भीर हो उठा था। उसे हँसी न आई। वह पीड़ा अनुभव कर रहा था।

धूप तेज हो गई थी। बैल थक गए थे। गाड़ी धीरे-धीरे सरकती जा रही थी। हनुमान जी का मन्दिर दिखाई दिया। शिलानिर्मित ऊँचा प्रासाद, काफी घेरा भी था। भीतर दीवार के सहारे खड़ी शिला-प्रतिमा। संजीवनी पर्वत लिये उड़ते आए हनुमानजी ! सिंदूर से चर्चित, चाँदी की आँखें, मुकुट आदि से मंडित मूर्ति। हिरियण्णाजी के खानदान वाले नियमित पूजन, सतत दीप-धारण आदि के लिए मुद्दत से चार एकड़ जमीन लिख चुके थे। आज तक उसमें कोई बाधा नहीं पड़ी थी। यहाँ भी एक बड़ा मेला लगता था। बचपन में गंगाधर इसी मन्दिर में भजन-मण्डली के साथ सम्मिलित हुआ था। परीक्षा में पास होने पर फल, नारियल आदि चढ़ाने की मनौतियाँ की और उन्हें पूरी भी की थी। पुजारी जी सफ़ेद कनेरों से प्रतिमा के अंगांगों पर सिंगार करने को कहा था। जहाँ-जहाँ से फूल चू पड़ता, उसके आधार पर भविष्य की कई घटनाओं का अनुमान लगाया था। "जय बजरंगबली महाराजजी की ! तू ही बेड़ा पार लगा दे।"

नंजत्ते ने अपनी जगह से ही सिर नवाया।

मन्दिर के सामने गाँव की प्राथमिक शाला। केवल एक बड़ा कमरा। बिना पलस्तर की, इंट की दीवार। रंगाईरहित दीमक-लगी खिड़कियाँ, पुरानी पड़ गई खपरैल, सामने टूटी-फूटी घेराई। इस एक कमरे में चार कक्षाएँ चलती थीं। बीच में टाट-टूटी तक नहीं। बेंच, मेज, बोर्ड, खड़िया, हाजिरी बही, दवात, कलम, बाँस की छड़ियाँ—इनके सिवा भीतर कुछ न था। चार अध्यापकों की पढ़ाई, शोरगुल। बच्चों द्वारा पहाड़े की रटन, आपसी खींचातानी, रुलाई। एक बाज़ार का-सा शोर सदा मचा रहता। यही उसका प्यारा स्कूल है? उन दिनों की पढ़ाई, खेल-कूद आदि के दृश्य उसके मानस में हरे हो उठे। पढ़ाई-पिटाई का स्वाद चखने वाले अपने पुराने अध्यापकों के प्रति आज भी उसके मन में आदर, भय और भक्ति का सम्मिलित भाव था।

मुख्योपाध्याय नारायणप्पाजी स्कूल बन्द करके लौट रहे थे। गंगाधर गाड़ी से कूद पड़ा। तब तक मास्टर साहब भी सड़क पर पहुँच गए थे। दोनों गाड़ी की चाल का साथ देते गए। "सर! कुशल तो है?" उसकी दृष्टि उनके नंगे पैर, सीवन पड़ी ऊँची लटकी धोती, मरम्मत किया गया कुर्त्ता, फटी-पुरानी पगड़ी, झुर्रियों-भरा चेहरा, धँसी हुई आँखे, उभरी उजरी दाढ़ी—इन सब पर गुज़र गई।

"ठीक है, यही चाल है जो तुम देख रहे हो! तुम बताओ, कैसे हो?" मास्टर साहब पुराने शिष्य की पीठ पर हाथ फेरते हुए पूछने लगे।

"मज़े में हूँ, सर! आपकी आशीष की ही कृपा से।"

"लड़कपन की हल्की छाप नहीं, चेहरे पर यौवन और पुरुषार्थी की कांति खिल उठी है। उम्र के हिसाब से! बड़ी प्रसन्नता हुई" उन्होंने उसके चेहरे को गौर से परखते हुए कहा। और "यही तो अन्तिम परीक्षा है, सदा की भाँति प्रथम श्रेणी निश्चित है न?" कथन से समाप्त किया।

"देखना चाहिए, सर! मेरी दृष्टि में तो पर्चे अच्छे ही हुए हैं।"

"मिल ही जाएगी, भाई! तुमको न मिले तो और किसको मिलेगी! हमारे स्कूल का गौरव बढ़ाओगे ही!"

"उतना हो जाए तो पर्याप्त है, सर!..........इधर कोई बढ़ती-बढ़ी हुई, सर?"

"हूँ परसाल तुम आये नहीं न! सुना, किसी ट्रेनिंग-वेनिंग में गये थे।"

"गया था, सर! वह भी अपने कॉलेज में पढ़ाई का एक अंग है। हीराकुंड का नाम सुना होगा आपने—एक बड़ी प्राजेक्ट योजना है।"

"हूँ, हिरियण्णाजी के यहाँ अखबार में उल्लेख देखता रहता हूँ।"

"वहीं था"......"आपकी पदोन्नति की बात रह गई, सर ?"

"मत लो नाम उसका"......"पहले एक बार दो रुपए बढ़ाए गए थे। तुमको बताया था न। सरकार भी बेचारी क्या करे ! विषय पर विचार हो ही रहा है। कोई उपाय नहीं निकल रहा है। हम जैसे इक्के-दुक्के थोड़े हैं, लाखों की संख्या में हैं। सरकार ने बड़ी-बड़ी योजनाएँ हाथ में उठा ली हैं। उन्हीं के लिए धन पूरा नहीं पड़ रहा है। इस हालत में वह हमें क्या दे सकेगी ? यह सही है, हम भी तंगी में हैं। चीज़ों के भाव तिगुने-चौगुने हो उठे हैं, वेतन-स्तर लगभग वही पुराना है। कालान्तर में सुधर जाने की संभावना है। इतने से ही तृप्त रह जा—बढ़ती के लिए बड़बड़ाए बिना, प्राप्ति के अभाव से असंतुष्ट हो अध्यापन आदि कार्यों में अरुचि दिखाए बिना—इन योजनाओं की सिद्धि के लिए अपनी भेंट समझ लें, अन्यथा ?" मास्टर साहब ने मुसकान के साथ उसकी ओर देखते हुए कहा।

"अवश्य ही, सर ! आपका मन बड़ा विशाल है, चिन्तन भी आदर्शपूर्ण है। तपःपूत साधना है। यदि सभी कर्मचारियों की प्रवृत्ति विवेकी सहिष्णुता से निरूपित हो उठे—यह कहना जितना आसान, सहना उतना ही दूभर है—तो आवश्यक सम्पत्ति की अभिवृद्धि वाले कार्य भी सम्पन्न होवे हैं। सम्पत्ति बढ़ेगी तो जाएगी भी कहाँ ? एक-न-एक ढंग से सबमें बांटी भी तो जाएगी ? अपना तो प्रजाराज्य सो भी समाजवादी सिद्धान्त पर आधारित। किसी अकेले के पास तो धन सड़ेगा नहीं ?"

"ठीक कह रहे हो, चारों ओर समृद्धि होती रहे तो हम कैसे पिछड़े रह जाएँगे ? जग का भला तो आप भी भला। कम-से-कम तुमको मेरा निष्कर्ष उचित जंचा न ! हमारे अन्य सहयोगी बन्धु यह मानने को तैयार नहीं। एक-न-एक बेसुरा राग अलापते ही रहते हैं। मैं उन बेचारों की परेशानियाँ जानता हूँ, उनके संग ही भोग जो रहा हूँ। 'पेट के लिए दो जून रोटी मिले न ? हम लोगों की ज़रूरतें पूरी न हों ? ऐसी योजनाओं से हमें क्या सरोकार जिनका फल मरने के बाद मिलने लगे ?' इन तर्कों से जूझने भी लगते हैं। मैं भी कभी-कभी उन तर्कों को अकाट्य भी स्वीकार कर लेता हूँ। लेकिन दूसरे ही क्षण अपने को उस तर्क जाल से मुक्त कर लेता हूँ। उनसे सख्ती भी नहीं की जा सकती। उनसे लेना भी अनिवार्य होता है। काम बने तो बने वरना जाय भाड़ में, यह भी नहीं हो पाता। मैं तो सरौते के बीच फँसी सुपारी की तरह हो गया हूँ। पिटाई, घुप्पलबाज़ी के सहारे लड़कों को पढ़ाने के समान ही। हम पीटना पसन्द करते हों, यह न समझो। पीटना भी हो जाता है, पीछे मन

घुट-घुट कर भी रह जाता है। तुम्हें भी पीटा ही तो है इन कम्बख्त हाथों से ?" मास्टर साहब की वाणी में परिताप था।

"उन बातों को रहने दीजिए, सर ! अन्यथा हमारी बुद्धि खुलती भी कैसी ?" गंगाधर को पढ़ाई की अपेक्षा के कारण चोट नहीं खानी पड़ी थी। एक बार शानभोग (राजस्व वसूलने वाला कर्मचारी) साहब के घर पर लंकादहन नाटक का आयोजन हुआ था। नाटक में गंगाधर ने ही हनुमान जी की भूमिका अदा की थी। पिटाई का मूल कारण यह था। नाटक खेलने के बहाने साधारण मानव देवी-देवताओं का अनुकरण करने लगें, यह मास्टर साहब को अनुचित लगता था।

"हूँ, उसे अब कैसे लौटा लिया जा सकता है ? लड़के अबोध होते हैं, तुम्हारे बारे में नहीं कह रहा हूँ—यह साधारण-सी बात है। लेकिन जो मास्टर होते हैं, वे समझ से काम लें, तो अच्छा होता है। यों तो यह बड़ा दायित्वपूर्ण कार्य भी है। आसपास की गतिविधियां, सरकार के प्रयास ये किसी से छिपे नहीं हैं। सरकार आँखों में धूल ही झोंक रही है, यह भी नहीं कहा जा सकता। गैर-जिम्मेदारी या पोल कहीं हो, तो मैं नहीं जानता। मान भी लें कि वैसा है, सेवा में रहते समय हम कोई विश्वासघात कर सकेंगे—सो भी दूसरों के पथ-प्रदर्शन माने जाने वाले हम ! छोड़ो, यह सब भारी पचड़ा हैं। कभी बन्द न होने का। कम-से-कम गाँव वाले भले हैं, थोड़ी-बहुत उनकी कृपा बनी रहती है।"

"आप निष्ठा से काम में जो लगे हैं।"

"सम्भव है, वह भी एक कारण हो। बुराई सोचें और भलाई चाहें, यह भी कोई तरीका है ?"

"गंगाधर को सुभाषित में वर्णित सज्जनों का स्मरण तत्काल हो आया। "आपसे जो शिक्षा मिली—बनारस में भी एक सज्जन हैं, सर ! उन्हीं के फल-स्वरूप मुझमें भी एक आकांक्षा जगी है, जीवन को सार्थक बना लेने की।"

"सार्थक बना सकोगे, कोई सन्देह नहीं·······मैं अपने लिए उतना चिंतित नहीं, जितना कि इस जीर्ण-शीर्ण होते स्कूल के बारे में परेशान हूँ। उसका सारा हाल तुमसे छिपा तो नहीं। इन अड़चनों को दूर करने और उसे एक व्यवस्थित रूप देने की व्यवस्था हो जाए, इसलिए बार-बार ताकीद करता रहा हूँ। अभी मुहूर्त हुआ नहीं लगता है। यही एक चिंता है। तुम्हारे जैसे व्यक्ति ऊँचे पद पर पहुँच जाएँ, तो उस समय इसका भाग्य खुल जाए। गाँव वालों से कह रखा है। आज तक उसका कोई फल नहीं निकला।"

गंगाधर कुछ सोचने लगा।

"मैं क्या बनूँगा या क्या नहीं, स्वयं नहीं जानता, सर! किन्तु ये सब—वेतनमान में वृद्धि, स्कूल की अव्यवस्था और भी हजारों छोटे-मोटे काम—एक वृहत् कार्य के ही अंग मात्र लगते हैं, सर! उसका सम्बन्ध एक क्रिया वातावरण से है। वह सँभाल ली जाए, तो बाकी सबके ठीक होने में आशा बँवती-सी लगती है.........उसके भी लक्षण गोचर होने लगे हैं देश में, इसका आभास होने लगा है न, सर?"

"मुझे भी वही लगता है।" मास्टर साहब ने सिर हिलाया।

मास्टर साहब अपने घर की राह के मोड़ पर पहुँचे थे।

"फिर कभी मिल लूँगा, सर!"

"अच्छा, गंगाधर! देर भी काफी लग गई।" कहकर मास्टर साहब मुड़े। गंगाधर गाड़ी के साथ डग बढ़ाता गया।

गाँव का मिडिल स्कूल, सरकारी इमारत, गारा मंगलूर खपरैल से निर्मित। इस समय बन्द पड़ा था। किला निकट होता गया। सौ-सवा-सौ हाथ लम्बी ऊँची दीवार और उससे सटी चौखटवाली शिलाकृति—यही किला था। उस पर कुछ शिल्प के नमूने भी थे। ज़रा ऊँचाई पर स्थित गाँव की ओर एक मार्ग इसी चौखटे से होकर जाता था। गाड़ी इसी मार्ग पर बढ़ने लगी।

"किले में रहने वाले गणेशजी के लिए दीप कौन जलाता है रे?" नंजत्ते गाड़ी के भीतर से पुकारने लगीं।

"शंकर जलाता होगा।" गंगाधर ने अपने अनुज का नाम लिया।

"काम ठीक कर ले जा रहा है तो, कोई खिटपिट तो नहीं?" नंजत्ते पूछने लगीं। गंगाधर मौन था! उसने उनकी अंटसंट बातों पर ध्यान भी न दिया।

ये गणेशजी, किले की दीवार के आले पर ही असितशिला की प्रतिमा! बचपन में गंगाधर साँझ के समय दीवार पर उभरे पत्थरों के सहारे ऊपर चढ़ जाता और ऊँचाई पर विराजते गणेशजी के समीप रखे दीये में बाती बदलकर तेल छोड़ता और दीप जला कर लौटा करता था। तेल-बाती का प्रबन्ध हिरियण्णाजी की ओर से होता था। इसीलिए उस बारे में नंजत्ते का दर्प-भरा संकेत था! एक बार साथी गुण्डण्णा, भागीरथी, पार्वती, अपनी छोटी बहिन इन सबको साथ लिए किले के पीछे से उस पर चढ़ने, वहीं खेलने, वहाँ मिले भस्म को गणेशजी का प्रसाद जान कर ललाट पर लगाने आदि की बातें गंगाधर को याद आईं। एक दिन वह विषकंठ को भी साथ ले गया था और लौट कर नंजत्ते से खूब डाँट भी खायी थी।

गाड़ी गाँव के सिरे पर पहुँची ही थी कि हिरियण्णाजी सामने आते दिखाई पड़े। उन्हें देखकर कोई भी उनकी अवस्था साठ वर्ष की नहीं कह पाता था। ऊँची कद की बड़ी गठन वाली आकृति, सौम्य गम्भीर मुद्रा बात-बात पर उत्तेजित न होनेवाली तथा दर्शकों में आदर-श्रद्धा जगाने में समर्थ। चेहरे पर अस्पष्ट रही हँसी की झलक आँखों की चमक के द्वारा साफ़ होकर अनुराग उत्पन्न कर जाती। सितासित केश का क्रांप परम्परा के बन्धनों से मुक्ति का सूचक था, तो उसकी अस्तव्यस्तता नवीनता के मोहपाश से छुटकारे का इशारा भी कर जाती थी। वे पूरे आस्तिक तो थे, पर पुराणपन्थी न थे। स्वयं कोई अर्चन-पूजन न करते, लेकिन पण्डितजी के हाथों उनके यहाँ नियमित रूप से विधिवत्-पूजन-अर्चन जारी था। व्रत, कथा, उत्सव-आराधना आदि के लिए घर पर कोई कमी न थी। लेकिन 'यही होना चाहिए, यह नहीं' का कोई दुराग्रह उनमें न था। इसका निर्णय गृहस्वामिनी ही कर लेतीं। पुराने आचार-व्यवहार श्रद्धा-समन्वित ही होते थे। गाँव के 'प्रसन्न गंगाधरेश्वर' हों या 'प्रसन्न वेंकटरमण-स्वामी' दोनों ही प्रभु के समान प्रीति-श्रद्धा, पूज्यभाव के पात्र थे। कोई उत्सव हो, रथयात्रा हो, मेला हो—इन सब अवसरों पर उनके यहाँ से चढ़ावे पहुँच जाते। स्मार्त-वैष्णव के झमेले में पड़ते न थे। गाँव की दोनों पार्टियों के मुखिये मरीगौड, करीगौड़ उनसे प्रेम से मिलने आते। ज़मीन-जायदाद, लेन-देन का कारोबार था। लेकिन असामी हों या देनदार, कोई इनके सम्पर्क से आहें भरता न दिखाई पड़ा था। स्वयं किसी मामले में जरूरत से ज्यादा दखल न देते थे। अगर कोई मामला सामने पेश हो ही गया, तो तटस्थ न रह जाते। अविरोध भाव से सबकी बातें सुन लें, किन्तु निजी निर्णय के अनुसार चलें, यह उनका स्वभाव था। थोड़े में कहना चाहें, तो कह सकते हैं कि वे अपना रुख जताए बिना, किसी से प्रभावित हुए बिना सबकी संतृप्ति के बड़े अभिलाषी थे। वे अलिप्त भाव से—पद्मपत्रमिवांभसः—पुरइन पर सजे जलकण के समान रहते थे। इस 'बसवण्ण—नन्दीश्वर—की प्रवृत्ति के कारण उनकी आलोचना न होती रही हो, सो बात नहीं। लेकिन, उनके बारे में इन आलोचकों के मन में भी कम आदर न था। आजकल की तरह उनमें धन-सम्पत्ति के बाह्य प्रदर्शन का कोई लोभ न था। महीन किनारेदार शुभ्र धोती और तनजेब का बनियान पहने थे। कंधे पर एक गमछा। पैर में चमरौधे जूते। बाएँ हाथ में अखबार और चश्मा लिये हुए थे।

"मादण्णा! इतनी देर क्यों लग गई? क्या जाने क्या हो गया हो सोचते थोड़ी दूर निकल आया।" उन्होंने वहाँ तक आने का कारण बताया।

"गाड़ी घारा के गड्ढे में फँसा दी—इधर-उधर हांकते।" गाड़ी के भीतर से ही नंजत्ते ने जवाब दिया। मादप्पा चुप था।

"ओह ओ! कौन गंगाधर! तुम भी आज ही आए? गाड़ी पर ही आए न?" हिरियण्णाजी ने नंजत्ते का जवाब सुना तो सही। लेकिन सामने मिले गंगाधर से बात शुरू की।

"हूँ, अण्णाजी! आप कुशल हैं? देखा आपने, आपने जिस दिन गाड़ी भिजवाई है, वही साईत देख कर आ पहुँचा हूँ।" गंगाधर मुस्कराते हुए बोला।

"बड़ा अच्छा हुआ।"

हिरियण्णाजी की आवाज सुनते ही दोनों लड़कियाँ गाड़ी के सामने ही से कूद पड़ीं। गंगाधर और हिरियण्णाजी दोनों सामने आए और उन्हें सहारा देकर बचा लिया।

"भाग्य! फूफी, गंगाधर दोनों को साथ ले ही आई तो! विषकंठ भी आया है?" हिरियण्णा जी ने बिटिया की पीठ सहलायी, भागीरथी का जवाब केवल 'हु' था।

"पारी! तुम भी साथ गई थी? इतनी देर लग जाने के लिए तुम्हारा बाप मुझे आड़े हाथों लेगा। कपड़ों में यह मिट्टी कैसे लगी है? गंगाधर, तुम्हारा भी वही हाल है—सबको गाड़ी धकेलनी पड़ी क्या?" कहते हुए पार्वती के सिर पर हाथ फेरा।

"हमने क्या किया भला? मादण्णा, गंगाधर दोनों ने ही सँभाल लिया। भाग्य बैल साध रही थी—धकेलते समय।" पार्वती ने संक्षेप में सारा हाल बता दिया।

इस समय तक कैंट साहब भी उतर पड़े और सामने आने लगे।

"अभी आ गया, नंजू से मिल आऊँ।" कहते हुए हिरिण्णाजी गाड़ी के पीछे की ओर बढ़े ही थे कि कैंट साहब से भेंट हो गई।

"कहो भाई, कैसे हो? सब ठीक तो है?" पूछा।

जवाब में "हाँ, फूफा जी।" कैंट ने कहा।

"तुमसे बहुत-सी बातें करनी हैं—अमरीका का प्रवास आदि के बारे में, मगर आराम से कहकर गाड़ी के भीतर झाँकते हुए नंजत्ते से बोले, "नंजू! यात्रा सुखमय तो रही? बाकी सब ठीक है न?"

"रेलयात्रा लम्बी होने पर बड़ी सुखमय थी, पहले दर्जे में। कोई हिलना-डुलना कुछ नहीं! स्टेशन से यहाँ तक ही दूरी, सो भी इस गाड़ी पर, कष्टप्रद ही तय हुई, भैया! सारा शरीर धक्के के मारे सिकुड़ गया है। लुंज-पुंज हो

गया है। शुरू में ही मनचले की तरह बैल हाँक दिए। कंठी का हैट भी धूल पर गिर पड़ा। पीछे धारा के गड्ढ में गिरा ही दी, पहले ही कह जो चुकी।" नंजत्ते ने कहा। नंजत्ते ही ठहरीं, समय मिल जाए, तो भला कब चूकने वाली! अलावा इसके भाई की उदासीनता भी उन्हें अरुचिकर हो उठी थी।

हिरियण्णाजी मादण्णा की ओर मुड़े, तो उन्हें गंगाधर का हँसता हुआ चेहरा दिखाई पड़ा। बोले, "वह धारा ही इस प्रकार की है। एक-न-एक आफ़त खड़ी करती है। या तो पानी बढ़ जाता है और रास्ता जाम होता है, या गाड़ी ही धँस जाती है। पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कोई व्यवस्था निकाल ही रहे थे कि वह भी अर्थाभाव के कारण ठप हुई-सी लग रही है। देखें कब ठीक करने वाले हैं।"

हिरियण्णाजी ने बातें धारा की ओर घुमा दी।

"तुम भी उसी योजना की चर्चा छेड़ रहे, क्यों? इतनी देर तक वही राग सुनते-सुनते कान पक गए हैं, सिर में चक्कर आ गया है।"

"जाने भी दो उन बातों को। जल्दी करो मादण्णा! हम टहलते ही आ जाएँगे।"

"तुम न जाने कैसे-कैसे आदमी बटोर कर रखते हो, भैया! किसी से कुछ कहते भी नहीं! व्यर्थ ही सबको सर पर चढ़ा रखा है।" नंजत्ते ने ये शब्द इस ढंग से व्यक्त किए कि वे मादण्णा पर भी लागू किए जा सकते थे। अण्णाजी उनके स्वभाव से परिचित थे ही। चुपचाप सुनते गए।

पाँचों पैदल जा रहे थे। अण्णाजी ने दोनों नवयुवकों से विशेष पूछताछ की। गंगाधर ने परीक्षा का हाल सुनाते हुए अपने भविष्य के बारे में बताया, "अभी देखना चाहिए। मैंने कोई निश्चय नहीं किया है। मन भँवर के इर्द-गिर्द तेजी से घूम रहा है। बचकानी उमंगे जो रहती हैं! पीछे कभी 'ऐसा होता तो कितना अच्छा था' का पश्चात्ताप न सताए, इस ढंग से जीवन बनाने की समस्या सामने है।"

कैंट साहब ने नौकरी के सिलसिले में किए गए प्रयत्नों का विस्तार से वर्णन किया, "इस देश में इंजीनियरी की प्रगति होने लगी है। विलायत से विशेष योग्यता प्राप्त कर लौटे नवयुवकों के लिए सहज ही उत्तम अवसर सुलभ हो जाएँगे। यही मेरी धारणा थी। लेकिन, यहाँ आने पर लगता है कि यहाँ किसी की कोई कद्र ही नहीं, कोई निर्दिष्ट ध्येय ही नहीं। सब कुछ डाँवाडोल है। बड़ी घपलेबाजी है! कभी-कभी मन करता है कि इतनी पढ़ाई के बाद भी यहाँ

रहने से फायदा ! बेकार है ! जहाँ योग्यता का सम्मान हो, वहीं क्यों न चलते बनें ?" उनके स्वर में निराशा, अतृप्ति और शेखी स्पष्ट थी।

उसके बाद दोनों लड़कियों ने एक दूसरे को परास्त करने के ढंग से धारा के स्थल पर घटी घटनाओं का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया। अमरीका के बारे में सुनी बातें उत्साह से कहती गयीं। भागीरथी भारत की दयनीय दशा को उभारती जातीं, तो पार्वती यहाँ की विघ्न-बाधाएँ और स्थिति को सुधारने के लिए होते रहे प्रयासों आदि की सराहना में सुध-बुध खो बैठतीं। दोनों संवाद-दाताओं से मिली सूचनाओं के आधार पर अण्णाजी को स्टेशन से गाँव तक की यात्रा की अवधि में हुई घटनाओं-वार्त्तालापों का क्रम लगाना सम्भव हो गया।

गाड़ी अण्णाजी के पुराने, पर बड़े मकान के सामने आ खड़ी हुई। गृह-स्वामिनी जयलक्ष्म्माजी ऊँचे चबूतरे से नीचे उतर आयीं। उन्हें देखने से ही पता चल जाता था कि अण्णाजी गाँववालों के लिए 'हणदय्या' (धनी-मानी) के नाम से क्यों परिचित थे। जरीदार धर्मावरम् की साड़ी, ढाई हजार की कीमत का हीरा-जड़ा करनफूल, बम्बइया पतला कंगन, पुराने ढंग के चिपटे व गोल कंगन—प्रत्येक कलाई पर छह-छह सोने के कंगन—साथ में चार-चार काँच की चूड़ियाँ भी, गले में तीन पाव वजन का गोधूमाकृति का स्वर्णहार पदक आदि से विभूषित हरिद्राकुंकुम शोभिता सुलक्षणा सुमंगली थीं जयलक्ष्म्माजी। बेलबूटेदार पातलों की पेटी में सोने की करधनी, झूलना, गाल पर लटकाने वाली लड़ी, वेणी के शोभावर्द्धक फूल, जड़ाऊ घेरा, बगलबन्दी, अंगूठी, पाजेब और बेसर आदि सब पड़े हुए थे। लेकिन, समय बदल चुका था। नव-युग की कन्या भागीरथी को इनमें कोई आकर्षण न था। लेकिन छुटपन में, विवाह के बाद भी कुछ समय तक जयलक्ष्म्माजी उन्हें पहनती थीं। उन्हें सर्राफे में बेच देने को जी भी नहीं करता था, उसकी कोई आवश्यकता भी नहीं थी। पर्व-त्योहारों पर गाँव की बालिकाओं को इन्हें पहनाकर वे प्रसन्न हो उठती थीं। पोती को पहनाकर आनन्दित हो उठने की आशा अभी बनी ही रही। एक अलग पेटी भर चाँदी के बर्तन पड़े हुए थे। ऐश्वर्य में लोटपोट होने पर भी वह आलसी न थीं। रसोई से लेकर घर का सारा कारोबार खुद देख लेतीं। आठ नौकरों के लिए रागी का पिसान पकातीं। चार गाएँ दुह लेतीं। कुएँ का निकाला पानी स्नान-गृह में भर लेतीं। रसोई के लिए स्वयं पानी भर लातीं। पति, पुत्री दोनों के लिए वे ही तेल, स्नान, भोजन, जलपान आदि का प्रबन्ध करतीं। कंडाल लिए खेत पर जाकर भीनी-ताजी फलियाँ भी खुद चुन लातीं। दशहरा, रामनवमी-

जैसे पर्वों पर होने वाले भोज के अवसरों पर गंगाधर की माँ अच्चम्मा, पार्वती की माता वेंकम्मा जैसी आप्त-सहेलियों के सहयोग से काम निभा लेती थीं। उनकी आयु पचास से अधिक थी। फिर भी प्राचीन ग्रामवधुओं की भाँति हृष्ट-पुष्ट थीं, कुशल भी थीं। भागीरथी की रोज के हरकतों के होते हुए भी उनकी देखरेख में घर की व्यवस्था सुचारु रूप से चल रही थी। भागीरथी से पहले चार सन्तानें हो चुकी थीं, पर एक भी न रही! पूजा-पाठ, व्रत-कथा आदि के शुभ प्रभाव से यही एक मात्र जीवित रही। बड़े लाड़-प्यार से पाली-पोसी गई थी। सो इसका रंग-ढंग ही निराला था।

"कैसी हो ननद प्यारी! सब ठीक है न?" गाड़ी के पास ही जाकर जयलक्ष्म्माजी ने कुशल पूछी।

"किसी तरह दिन काट रही हूँ, न मरी भी, न जीती ही।"

इस समय तक सब गाड़ी के पास आ गए थे। दोनों युवक नंजत्ते को सहारा देकर उतार ले रहे थे।

"कंठी वर्षों के बाद आया है। ओ, गंगाधर भी आ गया है—उपद्रव का सूत्रपात हो ही गया तो, भाग्य! दोनों की परीक्षाएँ समाप्त हो गई हैं। छुट्टी-ही-छुट्टी है। वह आठों पहर यहीं रह जाता है। कोई दूसरा काम भी तो हो।" जयलक्ष्म्मा मुसकान के साथ बोल रही थीं। प्रसन्न हुई! "कल-परसों आने वाला है, ठीक नहीं है, तुम्हारी अम्मा कल ही कह रही थीं। उसे तुम्हारा आना सम्भवतः ज्ञात भी न हो। यहीं खाना खा लो, कहला दिया जाए। सामान पहुँचाने के लिए गाड़ी वहीं तक जाएगी भी न।" कह कर गंगाधर को निमन्त्रित किया।

"नहीं मामी। वहीं जाऊँगा। चिट्ठी मिलते ही अम्मा रोज रसोई तैयार कर राह देखती ही रहती है, बड़ी देर तक। आपके यहाँ के भला खाने की कमी? मेरे लिए तो यहाँ रोज ही सिलसिला लगा है। आज मेंथी की चटनी, कल कटहल के बीये की दाल, परसों पापड़, तली हुई दूसरी चीज आदि। घर का खाना खाने को मिलता ही नहीं, मन कहने लगता है कभी-कभी। आपकी रसोई, आपके अन्न से ही तो यह देह दृढ़ हुई है।"

"वहीं सही, कैथ की शरबत तैयार हुई है, धूप में आप लोगों को आना जो पड़ा है। वहीं पीते जाओ। तुम भी भीतर चलो पातू......यह क्या है री, कपड़े-लत्ते आदि का हाल! यहाँ धूप है, सब अन्दर चलें।"

"मैं कहता नहीं मामी! इधर से होकर गुजरे तो खाये-पिये बिना आगे बढ़ना ही दुश्वार है!" गंगाधर के स्वर में कृतज्ञता थी।

सब अन्दर चौक में पहुँचे। यह भी कोई मामूली न था, वह इतना विशाल था कि सारा घर ही उसमें समा जाता। बीच में लकड़ी के रंगीन खम्भों की कतारें, जिन पर भारी धरन थे। कोई अटारी न थी। योजना अधूरी ही कार्यान्वित हो पायी थी। सहन के चारों ओर आठ कमरे, सोने के लिए तीन शयन-कक्ष। इनमें न जाने तीन पीढ़ियों से कितनी ही जचकी वगैरह हुई होंगी। एक मिठाई का भण्डार। इसमें साढ़े तीन हाथ ऊँचे पीतल के कंडाल थे जिनमें नमकीन, जलेबी, कड़े मोटे शेवड़े, वर्तनाकार के खील, भक्का, भूना चूड़ा आदि के लड्डू, मीठे पोतले भरे रहते। न जाने कितनी ही बाल-बालाएँ इन चीजों को जेब में ठूँस कर प्रतिदिन प्रातः शाला में पढ़ने गई होंगी। अण्णाजी, नंजत्ते, गंगाधर, भागीरथी, पार्वती सभी इसके ऋणी हैं। इस समय असंख्य बाल-बच्चों के लिए यह मिठाई-भंडार ही बना हुआ था—जयलक्ष्म्माजी प्रेम से जो बाँटतीं! एक कमरा गहने-कपड़े आदि की पेटियाँ रखने के लिए था—जयलक्ष्म्मा जी का निजी भंडार। एक कमरे में अण्णाजी की लेन-देन के कागजात रखने के लिए। उनकी कचहरी अधिकतर चबूतरे पर ही लगती थी, फिर भी यह उनका अपना कक्ष था। दोनों भंडारों में बड़े-बड़े ताले पड़े हुए थे। कोने वाला कोलाहल से दूर रहा कमरा भागीरथी का अधिकार-क्षेत्र था—वह वहीं सोती, अपनी वस्तुएँ रखती, प्रसाधन के उपकरण सजाए रहती। वह चाहे जितनी देर सोए, जितनी ही देर प्रसाधन का शौक पूरा करे—वहाँ कोई रोक न थी। कुएँ के पास का कमरा ही स्नानघर था। एक आड़ी नाटी दीवार थी, जो ठाकुरघर, रसोईघर, भोजनकक्ष, अनाज के भंडार आदि को सहन से अलग करती थी। यह हिस्सा पूरा जयलक्ष्म्माजी के अधीन था। सहन में चटाइयों से बनी धान की पिटारियाँ, बड़ी चक्की, आगन्तुकों के लिए दो-एक कुर्सियाँ, नौकरों के सामान, दीवार पर एक कतार में देवी-देवताओं की गढ़ी तस्वीरें, जमाने से चली आई मोती के दानों से बनी तस्वीरें, फर्श से ऊपर दीवार पर अंकित सिन्दूरी रेखाओं का चित्र—इनके अलावा चौकापूरी, चटाइयाँ, पलस्तर से मुलायम जमीन—ये भी दृष्टिगोचर होते थे। इस सहन में न जाने कितने ही व्याह, जनेऊ, गौने और नामकरण-संस्कार सम्पन्न हो उठे थे। गाँव के इतर निवासी भी अपने उत्सव-समारोहों के लिए इस सुविधा स्थान का उपयोग करते रहते। दूसरे घरों में भोज आदि का प्रबन्ध रहे तो पत्तल यहीं पड़ते। इसमें कोई आश्चर्य भी न था। यह सहन गंगाधर के लिए बड़ा प्रिय स्थान रहा। यहीं उसने खूब काम किया था, खाया-पिया था, खेला-कूदा था, लड़ा-झगड़ा था, प्रशंसा भी पायी थी, निन्दा भी मोल ली थी। वहीं सब चटाई पर बैठे। कैंट

साहब कुर्सी की शोभा बढ़ाने लगे। जयलक्ष्म्माजी ने चाँदी की कटोरियों में शरबत दी। सबने पी ली—नंजत्ते ने नहीं पी। वे नहाये बिना कुछ भी न लेतीं। विशेष बातें होती रहीं। बनारस की लू, अमरीका की समृद्धि इनका उल्लेख भी सहज ही था। गाँव की कुछ खबरें सुनायी गयीं। शरबत पीते समय यह सब होता गया।

"जानते हो गंगाधर! हाल में ही तुम्हारी अभिरुचि के मेल में पड़ने वाली एक घटना घट गई। गंगाधरेश्वरजूकी सजी पालकी का जुलूस निकले, तो चौड़ी सड़क वाले घर के दरवाजे लगा लें और वेंकरमणस्वामी जी का जुलूस निकले, तो सँकरी सड़क वाले किवाड़ बन्द कर लें, यह तो तुमसे छिपा नहीं। गत पूर्णिमा के दिन दोनों सम्प्रदायों के मठाधीश यहाँ पधारे थे—तुम्हें समाचार मिला?" जयलक्ष्म्माजी ने आरम्भ किया।

"मुझे कैसे मिले, मामी! उपद्रव और तूल पकड़ा न?"

"नहीं-नहीं सुनो। उनके आने के बाद से उसका रूप और भी विकृत हो गया। 'ये बड़े-वे छोटे' की रट लगाते अनुयायियों में प्रत्यक्ष-परोक्ष निन्दाएँ, विवाद ज़ोरों से चल पड़े। तू-तू मैं-मैं के बाद हाथापाई की नौबत आ गई थी। अपने-अपने महन्तों का जुलूस सुबह ही निकालने का हठ ठान लिया। इतना ही नहीं, एक की पालकी जब आ रही हो तो विरोधियों ने खान-पान ताम्बूल आदि से निवृत्त हो बरामदे में पैर पसारे लेटे रहने का निर्णय कर लिया। लेकिन जो भी हो जाए, महन्त जी महन्तजी ही हैं और सामान्य जनता अपने स्तर से नहीं उठ पाती। दोनों ने आपस में तय कर लिया और एक ही पहाड़ी पर स्नेह से रहने वाले दो देवों की भाँति एक ही पालकी में विराजे जुलूस में निकले। इन अनुयायियों पर क्या बीती होगी?"

"बड़ा अद्भुत है, मामी! इन बुद्धुओं की अक्ल ठिकाने लग गई होगी!" गंगाधर बड़े प्रसन्न-भाव से हँसा।

"उससे क्या हुआ, कुत्ते की दुम जो ठहरी! आमागी चौथ के दिन गंगाधरेश्वरजी का जुलूस निकलने वाला है। उस समय इसकी कसर निकालने पर तुले ही रहेंगे। वहीं किचपिच।" जयलक्ष्म्माजी ने पूरा किया।

"लानत है इन पर!" गंगाधर खिन्न-भाव से बोला।

"उन करीगौड़-मरीगौड़ दोनों का वैमनस्य भी क्या है? किसी काम का नहीं। साल में छह महीने खाली जो रहते हैं।"

"उस सूखे इमली-पेड़ के जगड़े में जीत किसकी हुई?"

"मरीगौड़ जीत गया। बताया जाता है कि तीन हज़ार रुपए खर्च हुए।"

"उस फालतू कुएँ का विवाद ?"

"वह भी उसी के हक में हुआ—हाईकोर्ट तक चक्कर काटना पड़ा था।"

"इस समय गंगाधरेश्वरजी का रथ पहले कौन खींचेंगे ?"

"नीची अदालत का फैसला है कि मरीगौड़ के पार्टी वाले ही खींचेंगे। लेकिन मरीगौड़ ऊपरी अदालत में इसके विरुद्ध आवेदन कर चुका है। दोनों पार्टी वाले दोनों तरफ साथ रस्सा धरने को तैयार नहीं। मूँछों पर ताव देते हैं, भला-बुरा कहते फिरते हैं, जिद पकड़े हुए हैं। नतीजा क्या होगा, राम जाने ! जबसे मोरी का मामला जीता है, तब से मरीगौड़ की धड़क और भी खुल गई है। सुना है, सदा टाँग खींचने पर ही लगा है। दोनों का दिवाला निकला ही है, इधर पार्टी वालों से चन्दा-वसूली भी होने लगी है। इस झगड़े को राजनीतिक दाँवपेंच का गौरव भी प्राप्त हो गया है। कहा जाता है कि मरीगौड़ मुख्य मन्त्री के दल का मुखिया है और मरीगौड़ केन्द्रीय मन्त्री की पार्टी का। सुबह-शाम अर्जियाँ बंगलोर की ओर कूच—अपने दल वालों से मिलने। देश का सारा कारबार इस गाँव में ही है, ऐसा दिखाई देता है।"

"वह सब बन्द होने का, भाई ! इसका मूल कारण मत, ईश्वर, ग्राम का हित आदि कुछ नहीं, ये सब तो बहाने भर हैं। इतना ही रह जाए, तो कोई सुधार हो भी जाए। लेकिन, असली कारण है—आलसियों का कमीनापन। एक-न-एक खुराफ़ात मचाने के फ़ेर में पड़े ही रहना है। अगर इनके लिए हाथ भर कोई दूसरा उद्योग रहता—जैसे, कताई, लघु व्यापार-व्यवसाय, सड़क बिछाना, पुल-निर्माण आदि, तो मन सदा उसी में प्रवृत्त होता और गाँव की इन सैकड़ों बीमारियों की जड़ ही कट जाती। यह मेरा निजी विचार है। शहरों में सम्भवतः आपसी झगड़ों-उपद्रवों के अनुपात में विशेष अभाव का कारण भी यही लगता है कि वहाँ सबके लिए पर्याप्त उद्योग रहते हैं।" अण्णाजी ने अपनी राय बताई।

बातें सुनते-सुनते गंगाधर की आँखें चौड़ी होती गयीं। उसके लिए यह एक अनोखी सूझ थी, जँचने योग्य। बार-बार उसी पर विचार करते उसे मन में अंकित करता गया।

• • •

: ७ :

शरबत पी चुकने के बाद गंगाधर—पार्वती दोनों पैदल ही घर की ओर चल पड़े।

गंगाधर गाँव का ही प्रिय बालक, तिस पर सुदूर बनारस में कोई बड़ी परीक्षा भी दे आया है। इस दशा में उसे देखते ही रोक कर बातें करने वालों की कमी कैसे हो? दोनों धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे। शानभोगजी का मकान आया। गंगाधर और उसका अंतरंग साथी गुंडप्पा दोनों तन्मय हो एक दूसरे के गले लगे। गंगाधर ने 'यह बनारस का रिवाज़ है' कहते पूर्ण आलिंगन ही किया। पार्वती सीढ़ियों पर चढ़ने लगी थी।

"लो, भाई! तुम्हारी थाती जस के तस तुम्हें सौंप दी है।" कहते हुए पार्वती की ओर देखते परिहास किया।

"क्योंजी, बड़े पराये बनते दिखाई दे रहे हो।" कहते शानभोग महाशय अन्दर से बाहर आए।

"कहो भाई, गंगाधर!" कहते वेंकम्माजी भी बाहर आयीं। उनसे बच कर निकल आना उसके लिए कोई आसान काम न था।

सड़क पर की छोटी दुकान के मालिक बूढ़े नंजुड सेट्टी ने आवाज देकर पुकारा और उसे रोका। बचपन में गंगाधर ने इसी दुकान से न जाने गुड़ की कितनी मिठाई मुफ्त ही खाई थी।

"कहीं भी कितनी ही बढ़िया मिठाई खाने को क्यों न मिली हो, लेकिन आपकी दुकान की मिठाई के सामने सब फीकी, नंजुडप्पाजी!" बूढ़े के कान में ये शब्द मधु भरने लगे। उन्हें अपार हर्ष हुआ। 'सब तुम्हारा प्रेम है, सुखी रहो' कह कर असीसा।

दर्जी खंडोजीराव भी उसे बहुत चाहते थे। गाँव में रहते समय गंगाधर भजन-मण्डली का अगुवा था। एक बड़ा लौहनिर्मित दीपाधार लिये, भगवान की मढ़ी तस्वीर के साथ यह बाल-भजन-मण्डली पर्व-त्योहारों पर गाँव भर चक्कर लगाती। गृहस्थ और व्यापारी दोनों दमड़ी से लेकर एक पैसे तक दीपाधार के तेल में चढ़ाते रहते। खंडोजीरावजी ही गंगाधर से भजन गवा कर सुनते और एक आना चढ़ाते। माँ के साथ आकर कपड़े भी वह इनसे उधार सिलवा लेता।

मार्ग में रुक-रुक कर बातें करते हुए गंगाधर जब घर पहुँचा, तो करीब एक बज गया था।

गाड़ी पहले ही पहुँच गई थी। सो गंगाधर मन्दिर की सड़क के मोड़ पर घूमा ही था कि घर के चौतरे पर ही राह देखते खड़े दोनों छोटे भाई व छोटी बहिन सबने दौड़ते हुए आकर उसे घेर लिया, घुटने पकड़ लिए। गंगाधर ने सबको सहलाया, प्यार से बातें कीं, छोटी को गोद में ले लिया और होड़ लगाते दोनों भाइयों को दाएँ हाथ की उँगलियाँ थमा दीं। सबको साथ लिए धीरे-धीरे आगे बढ़ा। मिट्टी की दीवार के सहारे पुराने खपरैल छाई छत के मकान का सँकरा चौतरा गोबर से लीपा गया था। उसी पर लकड़ी के गोल खम्भे से लग कर बाकी तीनों छोटी बहिनें, अनुज शंकर आदि खड़े थे।

"भैया! भैया! ....अम्मा! अम्मा! भैया आ गए।" सबसे बड़ी सावित्री गंगाधर की ओर हँसी की दृष्टि फेरकर चिल्लायी और अन्दर दौड़ती गई।

बाकी दो बहिनें छलांग भरती उसके पास आ पहुँचीं और भाइयों के साथ होकर उसे घेर लिया।

"भैया, कमाल किया। ठीक पहुँचने का दिन लिख दिया होता तो मैं स्टेशन ही आ जाता।" शंकर बोला। चौतरे पर ही पत्रा के पन्ने उलटते बैठे पिता जी चश्मा नाक की सीध पर सरकाते आँखें ऊपर किये, "कहो भाई! कुशल तो?" पूछने लगे और "उसे अन्दर जाने भी दो, देर हो गई है, खाना खा ले।" कहकर बाकी बच्चों को चेताया। इसी समय अन्दर से शिशु की चीख-रुलाई की आवाज सुनाई पड़ी। दूसरे ही क्षण अच्चम्माजी उसे गोदी में लिये ब्लाउज ठीक करती हुई त्वरा से दरवाजे पर ही आ गयीं। "आ गये मुन्ना!" कहकर वे गंगाधर को प्यार-भरी दृष्टि से देखती ही रह गयीं। गंगाधर को अंक में भर लेते समय का अमित आनन्द का अनुभव हुआ। उनकी आँखें चौधियाँ गईं, आँसू छलक उठे। गंगाधर की आँखें भी तर हुईं। "कहो अम्मा, कैसी हो?" का रस्म अदा किया। अच्चम्माजी ने केवल सिर हिला कर ही अपने ठीक रहने का संकेत कर दिया, कुछ बोली नहीं।

गंगाधर माँ की मुखाकृति परखने लगा। पहले की अपेक्षा वह अधिक मलिन पड़ गई थीं, सूख गई थीं। गाल पर की हड्डियाँ उभर आई थीं, उन पर गड्ढे पड़ गए थे। मुँह के आस-पास झुर्रियाँ गहरी पड़ गई थीं। आँखें अधिक धँसी हुई, गोलक अधिक पीले। चर्म की गुराई गिरती गई और कालिमा की छाया गहरी होती दीखी। केश और भी सफेद हो गए थे। माँग पर सफेदी खिच आई थी। चेहरे में बढ़ी हुई नाक, किलकते हुए दांत इनकी ही विशेष सत्ता लक्षित होती। बच्चे को थामे हाथ की टिहुनी से आगे की हड्डियाँ गिनी

जा सकती थीं। काले रंग की पुरानी मैली साड़ी, मामूली कपड़े की ब्लाउज दोनों ने अन्य विकारों को ढँक लिया था। नाक पर चिपटी नथनी, कानों में मामूली कर्णफूल, कलाइयों पर काँच की चूड़ियाँ—ये ही आभूषण थे। गाल पर हलदी, ललाट पर कुंकुम की आड़ी टीका—इनके लिए कोई न्यूनता न थी।

गंगाधर के सामने तत्क्षण जयलक्ष्म्माजी का चित्र आ गया। मन दोनों की तुलना करने लगा। उसे बड़ा खेद हुआ। वय में अम्मा से भी वे बड़ी थीं, अधिक कष्ट-सहिष्णु थीं। इतने पर भी वे ही कम उम्र की लगती थीं। उसी धुन में वह शैशव में पुचकारने वाली आकृति को स्मृतिपटल पर लाने की व्यर्थ चेष्टा में प्रवृत्त हुआ। प्रत्यक्ष आकृति ने वैसा होने न दिया। कितनी गल गई थीं यह—घर में खटाई और बाहर भी पिसाई, ग्यारह सन्तानों की प्रसव-पीड़ा व जनने बाद उनके लालन-पालन की जिम्मेदारी, रहा-सहा भी बाँट कर स्वयं आत्मवंचना से घुली, पल-पल की साँसतों को देखते-सहते, सिसकते-सिकुड़ते आदि के प्रभाव से गंगाधर की दृष्टि और न स्थिर रह सकी, अधीर हो उठी। लत्ते की गुड़िया के समान नंगा शिशु रुलाई बन्द कर नन्हीं-पैनी नजरों से गंगाधर को घूरता-सा दिखाई दिया। उसे देखते ही गंगाधर में वात्सल्य की जगह विक्षोभ ही बढ़ा। दूसरे ही क्षण उसे अपनी ग़लती का बोध हुआ। वह मुस्करा उठा। शिशु के सामने उँगलियाँ बजा 'ए ! ए !' ध्वनि निकालने लगा। शिशु भी खिल उठा। अम्मा भी मुदित हो गयीं। गंगाधर को बड़ी तसल्ली मिली।

माँ के पास ही खड़ी सावित्री को देखते ही उसे उन दिनों की अम्मा की हल्की याद हो आई। गठे बदन वाली तो न थीं, फिर भी चेहरा मुरझाया न था। अवस्थाजन्य उत्साह से अरुणाई अंकित थी। यौवन की दीप्ति की दमक से मुख चमकते हुए आँखों के प्रकाश के साथ और बाल की कान्ति के साथ होड़ लगाती प्रतीत होती। छापे की सस्ती छींट वाली साड़ी, लाल जंपर उसे ढँकने के बजाय अवयवों के उभार दर्शाने में सहायक ही सिद्ध हुए थे। मोती का कर्णफूल अम्मा का ही और काँच की चूड़ियाँ ही पर्याप्त थीं। तरुणाई ही उसके लिए लोनाई, मिठाई, सजावट सब कुछ थी। जरा सींकनुमा थी। 'सुविधाएँ रहतीं तो यह, भागीरथी-सरीखी ही सही, बढ़ती' गंगाधर मन-ही-मन कहता गया। सावित्री गाँव के मिडिल स्कूल से बाहर नहीं बढ़ी। घर पर माँ के लिए सहारा, बाकी बच्चों की बड़ी बहिन—छोटकी माँ ही—रह गई। वर्षों पहले सयानी हो गई थी—माँ-बाप के हिसाब से। अभी लगन का सुयोग ही नहीं, पिता का राग था। प्रयत्न से सम्भव हो सकेगा; माता की टेर थी।

वय के अनुपात में हट्टा-कट्टा न रहते हुए भी शंकर दुबला न गया था।

बंगलोर में सहृदयों की कृपा से उसके भोजन की व्यवस्था हो चुकी थी। सप्ताह में एक दिन एक घर बँध गया था। वहीं पढ़ाई भी जारी रखता था। बड़े भैया के कदमों पर ही आगे बढ़ रहा था। लुंगी ही उसकी पोशाक थी। सीने पर गोचर जनेऊ हिरियण्णाजी द्वारा आचरित धर्मोपनयन अनुष्ठान का प्रसाद था। गंगाधर उन्हीं की कृपा से जनेऊ धारण करने का सौभाग्य पा सका था।

बाकी बहिनें फटे-जोड़े परकार पहने थीं। केश सँवरे थे। कानों में लाल पत्थर की बनावटी खुभी, हाथों में दो-दो प्लास्टिक की चूड़ियाँ। छोटे भाई मोटे कपड़े की जंघई को छोड़ कुछ जानते ही न थे। सभी सिंचाई के अभाव में सूखे-सिकुड़े पौधों के समान थे। इतने पर भी इस समय कुछ लहलहाते, काट-छाँट से सजाये से लग रहे थे। इसके मूल में अम्मा की जागरूकता, सावित्री की मिहनत, बच्चों में मेल-जोल ही प्रेरक-तत्व हैं, यह भी उसे मालूम था।

इन सबको देख कर गंगाधर को लगा कि चार वर्ष तक हॉस्टल जीवन की सुख-सुविधाएँ भोग कर जो दिन काटे, सो उचित न जँचे। उसने स्वयं को अपराधी-सा अनुभव किया‥‥‥पर उसने भी तो कुछ कम कठिनाइयाँ न झेली थीं। उसकी दृष्टि वर्षों पहले की अपनी दशा की ओर गई वास्तव में जन्म से छह-सात साल तक चैन से दिन कटे। उसके बाद की दो सन्तानें नहीं रहीं। सावित्री, शंकर दोनों के जन्म तक वह मजे में रहा। इन बच्चों को वह भी सुख नहीं मिला था। लेकिन उसके बाद ही? हर सम्भव साँसत और आफत। पत्तल पड़ते ही न थे। अम्मा बच्चों को बिठा कर थोड़ा-सा मट्ठा-भात बाँटती जातीं। बीच में ही बर्तन खाली हो जाए, तो भोजन भी वहीं समाप्त हो जाता। आधा पेट ही उठ जाना होता। 'तीता है' कहने पर पानी ही परोसा जाता। दूध अनजानी वस्तु! लाल मोटे चावल के साथ निरा पतला मट्ठा। माँगे कपड़ों से ही तन ढक लिया जाता। मंगनी की पुस्तकें, उधार की कलमें। हाई स्कूल में नाम लिखाने गया तो बंगलोर में तीन साल तक क्या-क्या मुसीबतें झेली थीं। भोजन के लिए घर बँध गए थे। कोई घर बसवनगुड़ी में, तो कोई शेषाद्रिपुरम् में होता। ऊपर खर्च निकालने के लिए होटलों में तश्तरियाँ धोयीं, सिनेमा के टिकट बेचे। अन्त में जब 'रामकृष्ण होम्' में भर्ती हुआ, तभी से उसकी पढ़ाई का क्रम स्थिर हो सका। फ्रीशिप की रियायत मिल गई। हिरियण्णाजी अब तक कुछ दे देते। प्राइवेट ट्यूशन कर लिया। इन सबकी सहायता से मुश्किल से बी० एससी० पार हो गया। उसी अवस्था में उस पर अन्यों की दृष्टि पड़ी। इंजीनियरी पढ़ाई में रही विशेष आसक्ति अनायास ही व्यक्त हो उठी, तो हिरि-

यण्णाजी ने सहायता का आश्वासन दिया। बंगलोर कॉलेज में प्रवेश न मिला, सो बनारस पहुँच गया। बनारस के हॉस्टल का जीवन ही थोड़ा-बहुत आरामदेह रहा। पल भर में विद्युत्-तड़ित् की भाँति स्मृति कौंध तो गई, थोड़ी-बहुत तलल्ली भी मिली, पर अपराधी होने का भाव दूर न हुआ। उन सबसे आँखें हटा लीं। दृष्टि पिता जी की ओर घूमी।

वे पीतल की डिबिया से चुटकी में सुँघनी लेकर नाक में चढ़ा रहे थे। इस समूह से पृथक् रहने वालों की भाँति पुष्टकाय थे। इंची पर मेलुकोटे को किनारे-दार धोती, चढ़ाया महीन उत्तरीय मांसपेशियों को ढँक न सके थे, गठे बदन की गरिमा प्रदर्शित करते रहते। भावशून्य चौड़ा गोल चेहरा, जिसमें ललाट पर अंकित चन्दन-गुलाल की टीका सर चढ़ कर बोलती थी। श्राद्ध-भोज और दान आदि पर ही पले थे। अशन-वसन के लिए घर पर कोई बोझ न लादते। घर के बारे में विशेष आतंकित भी न थे। चार एकड़ की खुश्की खेती की उपज। दान-दक्षिणा में जो भी मिलता, लाकर पत्नी के हवाले कर देते। ज्योतिष का अनुशीलन-परिशीलन कर भाग्य की पूँछ धरे बाकी समय बिताते जाते।

"यहीं खड़े-खड़े सभी बातों में खो गए क्या? कोई तरीका है? अन्दर चलिए।" सुब्बा दीक्षितजी ने धोती का किनारा नाक के नीचे रगड़ते हुए सतर्क किया। बातें तो हुईं ही न थीं, केवल देखी-परखी ही तो थी। अच्चम्माजी "सही बात है भी, मुझे क्या हो गया! ओह, अन्दर चलो!" कहकर लौट पड़ीं। सबने उनका अनुसरण किया।

गंगाधर ने बक्से से बिस्कुट, चाकलेट निकाले। इर्द-गिर्द बैठे सब भाई-बहनों में बाँटे। बच्चे उन्हें खाते हुए घर भर नाचने लगे। शंकर ने भैयाजी का बिस्तर खोलते हुए बनारस की विशेष जानकारी हासिल की। अम्मा ने रोते हुए बच्चे को, जो पहले स्तनपान से छुड़ा दिया गया था, स्तनपान कराते कहा, "क्यों इतने दुबले हो गए बबुआ?" यह सुन गंगाधर अवाक् हो गया। अम्मा ने ही "परीक्षा, यात्रा—कोई साधारण है? कह कर खुद को बहला लिया। कपड़ों पर लगी छींटों के बारे में पूछा। गंगाधर ने कपड़े लिए, नहाने की तैयारी में लग, सारा हाल कह सुनाया। पिता जी धीरे से अन्दर आये। दीवार से सट कर उकडूँ बैठे सारी बातें सुन रहे थे। सावित्री रसोई में तत्पर हो गई थी। दूसरी बहिन शारदा, स्नानघर का चूल्हा फुँकनी से फूँक रही थी। तीसरी पद्मा झाड़ू देकर पत्तल बिछाने की तैयारी में लगी थी।

गंगाधर को उस आँगन के चारों ओर दृष्टि डालने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई। ढेले के हट जाने से ऊँच-नीच हुई गोबर से लीपी फर्श, सफेदी खुर-

चन भरी मिट्टी की छोटी-नीची दीवार, साधारण-सी आड़ी खिड़कियां, इधर-उधर झूलते काले जालों से भरी पुराने खपरैल की छाजन, सूराख से पड़ती हल्की-फुल्की रोशनी, बाँसों पर लटकते कपड़े, फटी चटाई, चीथड़ेनुमा दरियों में लिपटे विस्तरों को ढेर, चक्की, ओखली, रंधा, आले पर रखी पुस्तकें-स्लेट, टीन की चादर के चौखट का आईना, तेल, कंघी, लालटेन आदि अनेक सामान, दीवार पर लटकती मढ़ी हुई छोटी तस्वीरें, कभी अम्मा के हाथ का बनाया मणियों वाला चौक, सिंदूरी रेखा, सदा की भाँति की रँगोली, चारों ओर घिरा हुआ धुँआ ये सब गंगाधर के लिए नए न थे। बच्चों का उठना-बैठना, खाना-पीना, खेलना-कूदना, पढ़ना, सोना आदि सारे काम इसी एक आँगन में चल जाते थे। दो पुरानी पेटियाँ चन्द-एक बिस्तर तथा कुछ और सामान एक छोटे से कमरे में डाल दिए गए थे। बाँस का पालना भी शिशु के लिए यहीं बाँधा गया था। माता-पिता का यही शयनागार भी था। रसोई में ही ठाकुरजी के लिए जगह रख छोड़ी गई थी। नारियल की पत्तियों से घिरी मोटी ही स्नानघर था। इनके अलावा चौतरे पर यह एक सँकरा कमरा, जो बिठार के दिनों में स्त्रियों के काम आता। यहीं गंगाधर और शंकर के सोने का स्थान था। इस घोंसले की तुलना हिरियण्णाजी के मकान या घूमे हुए शहरों में देखे-सुने सौधों-महलों से करने की कोई इच्छा गंगाधर में नहीं रही। उसमें तुक ही क्या था? हॉस्टल की नुक्ताचीनी कर लेता था बनारस में! जाने दें इसको भी। इस घोंसले से भी बदतर झोपड़ियों का अभाव था क्या?

उसके नहाने के लिए जाने के पहले अम्मा बोलीं, "साबू, भैया को भूनी रागी का सत्तू गुड़ इमलीरस मिलाकर ला दे। पतला ही रहे। धूप में आया है। खाने में कितनी देर लगे, कौन जाने?"

गंगाधर को इसकी कोई जरूरत न थी। लेकिन अम्मा का आग्रह, टाले भी कैसे? इतना ही नहीं, ऐसा पेय कितने दिनों के बाद उसे मिल रहा है!

इतनी देर गए बच्चों ने खाना नहीं खाया था। वह नहा-धोकर लौटा, तो उसे लाइन में लगी जस्ते की थालियाँ दीखीं। उनमें ही दाग पड़ी अपनी भी थाली देखी। माँ ने सावित्री को भी सानुरोध खाने बैठाया, शिशु को पास ही चटाई पर लिटाया और स्वयं परोसने लगी। खाने में साग मिली खट्टी दाल, भूनी मेथी की बुकनी की पतली चटनी, पतला मट्ठा। कितना स्वादिष्ट था वह भोजन! अम्मा ने 'तावड़तोड़' खील की दो-चार गोलियाँ तल दीं और उसके साथ अचार भी परसा।

"भैया जी ! तुम्हारे आवे की खबर लगते ही अम्मा ने यह बुकनी पीस कर तैयार रखी—तुम्हें वह पसन्द जो है।" सावित्री कहती गई।

"हाँ, मुझे बहुत पसन्द है। अम्मा के हाथ की बनी है तो कहना ही क्या है, बहुत बढ़िया है।" गंगाधर बोला।

अम्मा के चेहरे पर प्रसन्नता खिल उठी, चमक आ गई। गंगाधर भाई-बहनों के साथ विनोद करते खाना खा रहा था। पिता जी उसी फटी चटाई पर लेटे खर्राटे भर रहे थे।

सफाई का काम सावित्री पर छोड़ अम्मा रसोईघर में ही अपने लिए पत्तल बिछाने लगीं, तो गंगाधर भी वहीं जाकर बैठा। अम्मा ने मना भी किया, "जाओ बबुआ ! थोड़ी देर आराम कर लो। बड़ी थकान हुई होगी।" लेकिन गंगाधर वहीं डटा रहा। उनसे बातचीत करता गया। अम्मा संक्षेप में दो वर्ष का सारा वृत्तांत कहती जातीं, "कम-से-कम शंकर भी तुम्हारे कदमों पर ही बढ़कर एक इंसान बनता जा रहा है। लड़के-लड़कियाँ भी बड़ी मदद करती हैं। जिद्दी-हठी कोई नहीं, यही चाहिए-वही चाहिए का आग्रह नहीं। जो भी मिल जाय उसी में खुश, तुम्हारी ही तरह। बेहद तंगी हो जाए, तो जरा रिसिया जाए, लेकिन रोना-धोना नहीं मचाएँ। अन्यथा यह गृहस्थी मैं निभा पाती ! समय पर पड़ोसी भी थोड़ी-बहुत मदद पहुँचा देते हैं। इस बच्चे की जचकी के बाद जयलक्ष्म्माजी की ओर से औषधि-पथ्य की व्यवस्था न हुई होती, वेंकम्मा जी ने घर के कामकाज का बोझ अपने ऊपर न उठा लिया होता तो क्या दशा हो जाती यह परमात्मा ही जानते हैं।"

उनके कथन में कृतज्ञता भरी तृप्ति थी।

"अम्मा ! इसके पैदा होने की सूचना ही न दी गई, क्यों ?"

"कौन-सी बड़ी बात मान कर सूचना भेजी जाती, वत्स ! यह भी कोई समाचार है ? लज्जा से सिर नीचा हो जाता है, मेरी वय में अभी !"

"तुम बड़ी दुबला गई हो, अम्मा।"

"हो सकता है, बेटा ! किया क्या जाए ? आधी उम्र भी तो निकल गई।"

गंगाधर को जवाब मालूम था। लेकिन अम्मा से कुछ कहना व्यर्थ होगा, यह भी ज्ञात था। चुप रहा—जीभ की नोक पर आई बात भी रोक ली। अम्मा उसका खाना, नाश्ता, स्वास्थ्य, अध्ययन आदि के बारे में क्रम से विवरण जानती जातीं। इतना सुनने के बाद भी उन्होंने कोई शिकायत नहीं की। गंगाधर उनके स्वभाव से परिचित था ही। उसे इस पर कोई आश्चर्य भी न हुआ। अच्छाई पर जोर दे कहना, बुराई की जिम्मेदारी अपने पर ही डाल देना था विधना के

मत्थे मढ़ देना, यह गुण भी उसके लिए नया न था। अम्मा का भी यह दृष्टिकोण था। इसी के बल पर वे कई प्रकार के कष्ट-संकट सह ले जातीं।

"चौतरेवाले कमरे में सो जाओ। कोई शोरगुल नहीं रहेगा।" कहते अम्मा हाथ धोने उठीं।

गंगाधर सोते से जगा, तो चार बज चुके थे। वह अन्दर जाने लगा, तो शंकर को दुकान से एक छोटी-सी पुड़िया लाते देखा। महक भी आई थी। आँगन में आया तो पिताजी जनेऊ के लिए तकली पर सूत कात रहे थे। वह हाथ-मुँह धोकर लौटा, तो सावित्री छौंक की महक भरी उपमा सामने रखने लगी।

"अम्मा, मैं कुछ नहीं लूँगा। देर से खाना खाया है।" गंगाधर के स्वर में संकोच था। वह जानता था कि यह उसी के लिए बनी है। बच्चों के लिए तीसरे पहर केवल दही-भात की व्यवस्था थी, यह बात उसे भूल थोड़े ही गई थी, कितने साल तक खुद भी वही तो खा चुका था!

"एक दिन के लिए कोई विरोध न होगा, प्यारे! हर दिन थोड़े ही बनाती हूँ? सबको एक-एक मुट्ठी-भर खाने को मिल जाएगी आज।" अम्मा बोलीं। उससे असलियत क्यों छिपाती? बाहरियों के सामने बातें थोड़ी ही बनानी थी?

काफी लायी गई। उसकी खुशबू चारों ओर फैलती गई। वहीं बैठे खेलों में रमते बच्चे एक बार इसकी ओर दृष्टि फेरते, फिर खेल में ही जुट गए। गंगाधर उठा, प्याले ले आया। प्रत्येक के लिए एक-एक घूँट बाँटी और खुद भी पी गया।

"यह क्या कर रहे हो, भैया! सब में बाँट दोगे तो तुम्हें क्या बचेगी?" अम्मा ने आपत्ति की।

"अम्मा, मैं कोई इसका आदी नहीं। वहाँ की बात दूसरी थी (संगत का असर था। मेलियों के आग्रह पर पी जाता। कल से मेरे लिए काफी न बने।"

"वह रहती भी कितनी? अकेले के लिए मात्र बूँद भर। किसी तरह बन जाएगी।"

"कदापि नहीं, अम्मा!"

"यह क्या, मँगाई काफी का इस्तेमाल होने तक पी लो।"

"वही सही, कल ही सबके लिए काफी बने और बुकनी खत्म हो जाए।"

"मान गई।" अम्मा जोर भी न लगा पातीं। निर्णय हो गया।

"सुबरन धारा तक हो आता हूँ, थोड़ी—जाँच-पड़ताल का काम है।" गंगाधर ने पूर्व निर्णय के अनुसार उस ओर घूमने जाने की चर्चा छेड़ दी। यह बात इतनी देर तक किसी से कही न थी। उत्कंठा तीव्र बनी ही रही। गुंडण्णा को भी साथ ले जाने का संकल्प किए ऊपर उठा।

"परीक्षाफल अगले महीने निकलेगा तो ?" बीच में ही पिताजी ने परीक्षा का उल्लेख किया।

"हूँ।"

"उसके बाद ही न नौकरी। कहाँ, कैसी नौकरी कर लेने का विचार किया है ?"

"अभी कोई निश्चय नहीं हुआ है।"

"सुना है, इस समय इंजीनियरी पास लोगों के लिए तपाक से नौकरी मिलती चली जाती है। परसों मणेगारजी आए थे, कह रहे थे। अच्छा वेतन भी, दो-तीन सौ रुपए तक आसानी से मिल जाता है।"

"तीन सौ ! एक, दो, तीन-तीन सौ !" तीसरी बहिन के आश्चर्य की सीमा न रही।

"लिंगप्पय्याजी का लड़का सुब्रण्णा पारसाल पास किया न ? उसे भत्ता वगैरह मिला कर साढ़े तीन सौ मिल रहे हैं।" शंकर ने ताजा खबर सुनाई।

"हूँ, उसके पिताजी ने अब तक बहुत-सा ऋण चुका दिया—लड़की के व्याह के लिए, उसकी पढ़ाई के लिए जो रकमें ली थीं, उसमें से अधिकांश तक। इधर दो-तीन साल में कोई बकाया न रखेंगे, चैन से रहने लग जाएँगे।" पिताजी ने सूक्ष्म रूप से ही अर्थभरा संकेत किया।

गंगाधर मौन रहा।

"दो सौ, तीन सौ क्या होता है, कैसे रहता है, यह भी हम लोगों ने आँख भर देखा ही नहीं।" अम्मा की वाणी में गर्व था। अन्तरंग में आशा भी झिलमिलाने लगी।

"नौकरी ही कर ली जाए, वही एक उपाय है ?" गंगाधर ने जिज्ञासा व्यक्त की। उसका आशय पूर्णतः किसी को स्पष्ट न हुआ।

"और क्या, मणेगारजी का कथन है कि आगे की पढ़ाई-वढ़ाई बेकार है, समय नष्ट करना मात्र है। ठेकेदारी वगैरह के लिए हमारे पास पूँजी ही कहाँ रखी है ? एक पैसा तक नहीं। कर्ज-उधार कर लेना क्या शोभा देगा ? हम जैसों के लिए नौकरी ही भली। दूसरी राह ही क्या है ? कहीं आवेदन-निवेदन किया है, वह भी कई लोग करते जो हैं ? बाद को, परीक्षाफल प्रकाशित होने पर नौकरी पर बुलवा लेते हैं न ?"

"अभी कोई आवेदन नहीं किया ?"

"कर लो, सपूत मेरे ! व्यर्थ ही विलम्ब क्यों ? एक-एक महीना एक-एक युग के समान हो गया है हमें·······सुनो, सावित्री के लिए वर ढूँढ़ना सैकड़ों

रुपए—वह चाहे हजार दो हजार क्यों न हो जाए, जुटाये ब्याह सम्पन्न करना होगा। इस समय उसकी कुण्डली के अनुसार ग्रहगति बड़ी अद्‌भुत योगवाली है। अगले वर्ष तो होना ही चाहिए यह शुभकार्य·······शारदा, पद्मा, सीता क्रम से चारों कन्याएँ सयानी हो रही हैं—ब्याह के लिए। तुम्हारा छोटा, भाई, उसकी व्यवस्था होनी है। उसे सहायता की अपेक्षा है। बचते हैं तुम्हारी माँ और बाकी बच्चे—उनका पालन-पोषण-कन्याएँ ससुराल पहुँच जाएँ और कुमार अपने-अपने पैरों खड़े होने लायक बन जाएँ तब तक। ये सब कार्य—शंकर भी कमाने लायक हो जाए, तब तक तुझ अकेले से ही पूरे होने हैं······· परिवार का भार मेरे कंधे से तेरे कंधे पर आया समझो······स्पष्ट हुआ ? हमें तुम पर ही भरोसा है। अधिक क्या कहूँ, बेटा !" पिताजी ने मुद्दत से तैयार किया अपना भाषण देना शुरू किया।

सुनते-सुनते गंगाधर के मन में गहरी हलचल मच गई। यों ही वर्षों से धीरे-धीरे संचित जीवनी-शक्ति बनारस में प्राध्यापकों की पार्टी में प्रो० देवरय्याजी की वाणी-सुधा के सेचन से रससिक्त होकर सुदृढ़ गुब्बारे का रूप धारण करती गई थी। तब से देखे दृश्यों, सुनी बातों के बल पर ऊपर ठेले जाकर निर्दिष्ट पथ का अनुगमन करते वह सूर्य की ओर चढ़ता गया था। वह अबाधित हो अंतरिक्ष में हजारों फुट की ऊँचाई पर उड़ान भर ही रहा था कि अचानक गंगाधर को उसके फट पड़ने और धड़ाम से नीचे आ गिरने का आभास हुआ। आँखों के सामने अँधेरा छा गया। मुँह पर ताले पड़ गए। ऐसी आशाओं की आशंका उसके मानस गह्वर में न रही हो, सो बात नहीं। इस सम्बन्ध में तीव्र संघर्ष भी उसके भीतर मच चुका था। लेकिन प्राथमिकता का विवेक उसे आवश्यक को आत्मसात् करने और अनावश्यक को पृथक् रखने का संकेत देता जाता था। इस समय वह आशंका पेटी खुलते ही झट कूद पड़ने वाली स्प्रिंग की गुड़िया की भाँति अचानक उभरी ही नहीं, ललाट पर जोर से आ भी लगी थी। इस झटके से शरीर-मस्तिष्क झाँय-झाँय कर उठे। उसका भावोन्माद शान्त हुआ, असलियत की पोल खुली।

·······यह परिवार, इतना बड़ा दायित्व—सब आगे उस पर ही ! पिताजी ने विरासत में उसे सौंप दिया था ! सो भी इस क्षण, जब कि मन कई विषय-विचारों का आलोड़न-मंथन कर रहा था। उनकी पदावलियों की ध्वनि उसके कानों में पड़ी, किन्तु अंतस् को उनकी अर्थ-प्रतीति न हो पाई। दीवार पर से दृष्टि हटा उसने पिताजी की ओर देखा। वे भी तकली से न आँखें हटाये इसी

को निहारने लगे। शंकर के हाथों पुस्तक खुली पड़ी थी, पर ध्यान इसी ओर था। सावित्री चावल बीन रही थी। उसके हाथ रुक गए थे। उसका भी चेहरा इसी के मुख की ओर हो गया। गोदी पर बच्चे को सुलाती अम्मा भी इसी के वदन को परखती जा रही थीं। पिताजी की आकृति में इसकी तुरन्त की स्वीकृति न मिलने से विस्मय और गांभीर्य व्यक्त होते थे। शंकर और सावित्री इन दोनों के चेहरों पर इसे अपना बोझ भारी होगा, इस कल्पना से उत्पन्न मलिनता-निराशा थी। अम्मा की आँखों में, यह और क्या सोच रहा होगा, क्या सोच रहा होगा, क्यों सोच में पड़ गया है, इस आशय की पारखी दृष्टि थी। पतिदेव ने जिस ढंग से वात उठाई, उसके औचित्य पर अविश्वास भी झलक जाता था। गंगाधर ने सबकी प्रतिक्रियाएँ सहज ही ग्रहण कर लीं। उसे लगा कि उससे भारी चूक हो गई। उसे तुरन्त कोई संतोषजनक उत्तर दे देना चाहिए था।

वह अपनी मनोदशा के अनुकूल उत्तर टटोल ही रहा था कि अम्मा ही बोल उठीं, "रहने दीजिए, अभी से वह इन सब पचड़ों में क्यों पड़े। बड़ी मिहनत से हाल ही में परीक्षा दे आया है और उसी के मारे सूख कर काँटा हो गया है। इसी क्षण लाद दें सारा बोझ उसके सिर पर? कहाँ का न्याय? उसकी उम्र ही क्या है? तिस पर आगे उसकी आसक्ति क्या होगी, निज के लिए ही कमाई अटेगी या नहीं, बेचारे को, इन दिनों। उसके मन में क्या बातें होगी, कहाँ कैसे रहना पड़े, ये सब हम क्या जानें? माता का हृदय जो ठहरा। उसने निज को भी आश्वासन दे लिया, पुत्र का पक्ष-समर्थन भी करता गया। गंगाधर कृतज्ञता से द्रवित हुआ। अम्मा ने कभी उसे प्रहारों का लक्ष्य नही बनने दिया था।

"सब कुछ करना होगा।" वह धीमी आवाज से बोला। यह उक्ति अनेकार्थ विधायिनी लगी। इससे स्वयं उसे कोई तुष्टि न मिली। बाकी लोग भी यह सुनकर निश्चित होंगे, संतुष्ट रहेंगे, इसकी आशा भी उसने नहीं रखी थी। लेकिन, मन की बात साफ़-साफ़ कहने से हिचका। यह सम्भव भी न था। समस्या पर गम्भीर चिन्तन-मनन करना जो था। इस बीच सुबरन धारा तक जाकर घूम आने में कोई अड़चन नहीं मालूम पड़ी। यह हो सकता था कि उसे टाल दे, उसे देख आना परमावश्यक था। यों ही उपेक्षा-योग्य प्रयास भी न था। 'यहीं टहल आता हूँ......समस्या के हर पहलू पर शान्त होकर सोचा जायगा' कहते हुए गंगाधर ने बिगड़ी को बनाने का प्रयास किया। लेकिन, इससे भी वे हर्षित न दिखाई पड़े। वह अपने को रोक न सका, बाहर की ओर चल पड़ा ही।

सबके मनसूबे ढ़ीले पड़ गए थे। सभी फक् हो गए थे, मौन थे। उन्हें सन्देह सताने लग गया था—उस मौन तथा परवर्ती अनिश्चित उत्साहरहित कथन के पीछे क्या रहस्य होगा।

"झट उठाकर मेंढ़की बदन पर फेंकने की तरह वैसी बात नहीं उठाई जानी चाहिए थी। अभी नादान है। बेचारा सहम गया। जवाब कोई मुझे तब न ?" अम्मा ने आपत्ति की, उलझन को सुलझाने की अपनी चतुराई भी सूचित की।

"मैंने ऐसी बात ही क्या कही, जो नहीं कही जानी थी? उचित ही तो है! एक-न-एक दिन व्यक्त होनी ही थीं। अभी मुँह से निकल पड़ी, यही न ? वह कोई अनजान थोड़े ही है ? मुझे लगा कि उसने इन सब बातों पर अवश्य ही विचार कर लिया। सोचता था कि वह एक-न-एक बहाने बात छेड़ेगा ही या कम-से-कम थोड़ा संकेत ही कर देगा। इसका लक्षण कोई न दीखा, तो उसके सामने बात रख देने का मन हुआ। अब सुनो, लगता है कि उसने यह भी तय नहीं किया है कि कैसी नौकरी के लिए आवेदन भेजना होगा। कितने ही लड़के अभी से कोशिश में लगे होंगे ? मुझसे कोई अनुचित बन पड़ा हो, यह मैं न मानने का……अच्छा, बातें हो ही गयीं, मान भी लिया कि वे असमय में ही निकल भी गई। उसके मौन, जवाब का ढंग इनके बारे में तुम्हारा कहना क्या है ?" पिताजी ने तर्क रखे, अरुचि प्रदर्शित की।

"उसमें बिगड़ने का सवाल कहाँ उठता है, आप ही बोलिए, न निश्चित रूप से कोई कह सकेगा कि मेरी नौकरी अमुक जगह अमुक वेतन की लग जाएगी ? कहा भी तो 'सब कुछ करना होगा।' यही काफ़ी नहीं है ? आवेदन न किया हो, तो समय स्थान का औचित्य जान अर्जी भेजेगा ही। वही जो न जाने उसे हम कैसे भाँप सकें ? तिस पर इसी क्षण कमाने लग जाए, इसकी आवश्यकता ? उसका कोई परिवार भी कहाँ यह सब तो अपना ही है न ! वह क्यों यह जिम्मेदारी सिर पर उठा ले ? है उसकी कोई बीबी, बच्चे ?"

"यह कौन अजीबनारा है ? इससे उसका कोई सरोकार नहीं ?"

"यह कब बोली मैं ? करेगा ही थोड़ा बहुत अपनी क्षमता के अनुरूप। कुछ बोझ उठाने को कह दें ! वह भी सयाना हो गया है। बीबी, ब्याह, घरबार—इनका कोई आकर्षण भी न हो ?

"तुम यही रटा करो, उसके सामने भी। कल हमें ही बाहर का रास्ता दिखा दे।"

"ऐसा करेगा नहीं वह। खुद जो कौर खाये वह हमें भी बांट के खाएगा।

इसमें कोई संदेह नहीं। सन्तान का स्वभाव माता-पिता न जाने ? बिना देखे-भाले जाने-बूझे यह सब न कहना चाहिए।"

"अच्छा, अच्छा ! अब रहने दो परमेसुरी ! उसकी बातचीत का रंग-ढंग मुझे तो पसन्द नहीं आया।" पिताजी शान्त हो गये। तकली रोकी, सूत लपेटा और सुँघनी की डिबिया बाहर निकाली।

अम्मा भी उससे प्रसन्न हुई हों, सो बात न थी। लेकिन वे उसे दोषी ठहराने को तैयार न थीं।

भैया इस तरह उधेड़बुन में पड़नेवाला ही नहीं.......कोई बड़ा जबर्दस्त कारण दूसरा होगा। उसे जाने बिना हमें कुछ भी कहना न चाहिए।" शंकर गंगाधर की भाँति ही जवानी की उमंग में बह रहा था। भाई के इस व्यवहार का कारण न ज्ञात होने पर भी, उसका मन थोड़ा बहुत अनुमान कर ले सकता था।

"शंकर के कथन में कोई तथ्य है अवश्य। पता नहीं भैया को क्या था ! अम्मा भी ठीक ही कह रही हैं। उसका वश चले तो वह ठाले में बैठनेवाला भी नहीं। हम सबको भाग्य के हवाले कर स्वयं चैन से बंशी बजानेवाला भी नहीं।" सावित्री भी आश्वस्त थी।

"हूँ ! उस मामूली बात—काफी पीने के प्रसंग—में ही पता चल गया न—उसका सुभाव कैसा है ? मना ही कर दिया न—आदत रहने पर भी ! सबके लिए बना देना, कल ही, बोला जो था !" अम्मा के लिए अब किसी तर्क की आवश्यकता न रह गई। बाकी भी चुप लगा गये। पिताजी ने भी अनजाने ही सुँघनी चढ़ाई।

●●●

: ८ :

गंगाधर घर से निकल पड़ा, तो उसका दिमाग गरमा गया था। अपने बर्ताव पर न जाने क्यों लज्जित हो उठा था ! उसी झोंक में 'इसमें मेरा क्या दोष ?' मैं कोई बुरा थोड़े ही सोच रहा हूँ ? कितना भव्य है ! अगर सम्भव हो, तो उसके लिए मौका न दिया जाए ? उसकी सिद्धि में आ पड़ने वाली बाधाएँ ठुकराई न जाएँ ? इस प्रकार बार-बार कहते 'अवश्य, यही सही है' का ढाढस भी अपने को देता जाता। इतने पर भी उसे चैन नहीं पड़ता था। जो भी हो, इसका निर्णय बड़ा पेचीदा हो उठा था।

इसी चिन्ता में डूबे वह सड़क पर कदम बढ़ा रहा था। मोड़ पर आया ही होगा कि गुण्डण्णा से भेंट हो गई। साथ में पार्वती भी दिखाई दी।

"यह क्या, साढ़े चार बजे आने को कह गए थे। समय बीत जाने पर भी हजरत नदारद! यह गुनते मैं ही तुम्हारी तरफ निकल पड़ा—सोचा, शायद तान के सो गए हो। इसलिए खुद चलकर जगा दिया जाए, धारा पर पहुँचने का प्रोग्राम ठप तो नहीं हुआ?" गुण्डण्णा हँसते-हँसते बोलता गया।

"हूँ, वहीं के लिए तो चल पड़ा हूँ। घर पर कुछ देर लग गई।" गंगाधर बोला। इस समय उसे संगी-साथी आदि की जरूरत न थी। वह एकांत में रहना चाहता था। लेकिन, खुद ही गुण्डण्णा को सूचित कर आया था। तब मना क्यों करता?

"हूँ, सहज है, देर लगनी ही चाहिए न? लड़के हो–सबसे बड़े भी। घर आए हो। परिवार का सहारा हो। कम थोड़ी ही रहेंगी–बातें-चीतें? पिताजी, अम्मा, भाई, कम थोड़े ही हैं? ढील छोड़ेंगे मर्जी के मुताबिक अपना वक्त रखने के लिए? खैर, कोई बात नहीं, चलो।"

गंगाधर का मुँह नहीं खुला। वह आगे बढ़ा।

"पारी भी आई हैं, इसकी भी खबर है?"

"क्यों नहीं? क्यों पारी! तुम भी आ गई?"

"मनाही तो नहीं? भूल तो नहीं कर बैठी?" पारी ने कहा। इतनी देर उससे अपेक्षित रहना पारी को खल गया था।

"भूल तुम नहीं, मैं कर गया हूँ–इतनी देर तुमसे जो बोला नहीं! आज मुझसे कई भूलें हुई सी लग रही हैं–तरह-तरह के विचारों में पड़ कर।"

"हट, वैसी कोई बात नहीं। यों ही कह बैठी।" पारी प्रसन्न हो गई।

"हाय रे, उन विचारों में पड़े तुमसे जो चूक हो रही है, सो तो है ही, तुमने पारी की खोपड़ी में भी खलबली मचा रखी है। वह मेरा भी दिमाग चाटने लगी है। यही नहीं, घर भर प्रचार करने लग गई है। तुम सुबह रास्ते पर जो-जो कह गये थे–उन कैंट साहब से बहस करते, नंजत्ते की धौंस सहते। वह सब हमारी अक्ल में ठूँस रही है। खाने के बाद जरा लेटने को मन कर रहा था, लेकिन इस निगोड़ी से छुटकारा मिले तब न। तुम तो इसे जानते ही हो, जोंक की तरह चिपक जाती है। मुझे भी कुछ-कुछ गच्चा खाया ही समझो, जानकारी कम जो है। तुम्हारी मर्जी की बात सुनाई जाए और असर हम पर इतना भी न हो? सुना है, तुमने कोई बहुत बड़ा काम सिर पर उठा लिया है।

गाड़ी की धरन पर खड़े-खड़े देर तक धारा के बनाव-कटाव को पैनी नजर से देखते भी रह गए थे। आज ही उस ओर कूच करने के इरादे के पीछे कोई राज है, कहती हुई पीछे पड़ गई। सो साथ लाया। भला पट्ठे! कैसा बढ़िया नाम ढूंढा है उनके लिए कैंट साहब।" अन्तिम वाक्य पूरा करते-करते गुण्डण्णा ठहाका मारने लगा।

गंगाधर भी हँस पड़ा। हँसमुख पार्वती की ओर देखता जा रहा था। वह उसकी बातों में कितना रस लेने लगी थी, उसकी सराहना करते हुए उन्हें सबके कानों में डालती जाती, वह उसके ध्येय को अनुमान के सहारे समझने की कोशिश करती रहती। यह सब गंगाधर को खूब रुचता था। उसे लगा कि तब तो मेरी बातें समझ से परे नहीं, उन्हें भी समझ सकने वाले हैं। इस प्रकार वह सहज ही अमित तोष का अनुभव करता गया। पार्वती उस वक्त अपने बहुत निकट हुई लगी। उसने उसको साथी मान लिया।

"पारी की सूझ बड़ी निराली है। तुम्हारी खोपड़ी में कोई बात न घुस पाती, यह सच है। तुम ही क्यों, बहुतों के लिए यह अबूझ ही होती। थोड़े समय के लिए ही सही, वह जिस नए वातावरण में रह आई है, उससे उसे बड़ा बल मिला है।" कहते हुए गंगाधर गर्व से पार्वती को देख मुस्करा उठा। पार्वती को इससे हुआ हर्ष उसके गालों पर उभर उठा।

"अच्छी बात है, भाई! इस कम्बख्त खोपड़ी में आखिर ऐसी बातें घुसें भी तो कैसे? मैं खूसट मर्दों की जमात का जो हूँ। आँखें औरतें हों, उन्हें उँगली पकड़ाओ, तो कलाई पर ही हाथ बढ़ाएँ। औरत जात ही ऐसी है। कोई मतलब निकालना हो तो उन्हें जरा बढ़ावा दो, बहका दो। कोई भी बात क्यों न हो, उनके दिमाग में फौरन जड़ें जमा लेती है। इसीलिए न हम भी बाप से काम निकालने के लिए माँ के कान फूँक देते हैं! कहावत भी तो है—'स्त्रीबुद्धिः प्रलयांतकः'। जब-जब प्रलय मचाना हो तो.........।"

'ना-ना, स्त्रीबुद्धिः क्रान्तिकारकः। जरा सोचो भी, पालने से लेकर यहाँ तक उन्हीं ने कितनी क्रान्तियों को बल प्रदान किया है?" गंगाधर बोला। उसे इस समय अम्मा की याद आई। 'अम्मा से सब कुछ कहा जाएगा। उसे मनवा लिया जाए तो आगे सब ठीक हो जायगा। पिताजी से हुज्जत करने की नौबत ही न आएगी।' इस विचार से उसका जी हल्का हुआ।

इधर-उधर की बातें होती रहीं। गंगाधर के मन का मरोड़ क्रमशः कम होता गया। उसे बनारस में उदित विचार एक के बाद एक स्मरण होते गए।

दोनों को संक्षेप में उसका परिचय कराया। बीच-बीच में गाँव से सम्बद्ध बातों का भी उल्लेख जारी था। बचपन की घटनाएँ भी झाँकती गईं। दशहरे के दिनों में ठाकुरजी के पूजन के लिए कालिगप्पा के बगीचे से कनेर के कुसुम चुराना, स्कूल में बोर्ड पर मास्टरों की आकृतियाँ अंकित करना, पेड़ों की डालियों पर लटक जाना और रथ पर चढ़ना आदि की याद गुण्डण्णा दिलाता जा रहा था और सूची में लड़कपन की और भी विनोद-भरी वानरी क्रीड़ाएँ जोड़ता जाता था। पार्वती के लिए भी यह सब मनोरंजन का साधन था। धारा पर पहुँचने तक वह दोनों के साथ खुल कर हँसता जा रहा था। उसके लिए सर्वाधिक महत्व की बात यह लगी, कि उससे सहानुभूति रखनेवालों की संख्या एक से दो हो गई थी। उसमें इस समय धर्मोपदेशक का-सा उत्साह उमड़ आया था। गुण्डण्णा से इस नए सम्प्रदाय में दीक्षित होने का कोई संकेत न मिला था। लेकिन गंगाधर की बुद्धिमत्ता पर उसे अविश्वास न था। उसकी अनोखी सूझ-बूझ का वह आदर करता था। इसलिए उसके नए विचारादर्शों का कोई विरोध नहीं किया। गंगाधर को यह अविरोधी वृत्ति अधूरी सहमति-सी प्रतीत हुई थी। गुण्डण्णा की सहमति के माने सम्पूर्ण सहयोग ही था। यह कोई साधारण बात नहीं थी। गुण्डण्णा ज्यादा पढ़ा-लिखा भले ही न रहा हो, बड़ा उत्साही तरुण था। शानभोगी कामकाज थोड़ा बहुत देख लेता था। सो गाँव की स्थिति भलीभाँति जानता था तथा उसकी गति को भी पहचान ले सकता था। इतना ही नहीं, अपने दिली दोस्त के लिए जान भी कुर्बान कर सकता था। इस समय गुण्डण्णा, पार्वती दोनों का साथ गंगाधर के लिए क्षोभकारक न होकर तृप्तिदायक ही सिद्ध हुआ।

तीनों तेजी से धारा के बाएँ रहे गौरी टीले पर चढ़े। गंगाधर रुक-रुक कर चारों ओर देखता रहता और दोनों के संग ऊपर चढ़ता जाता। चोटी पर पहुँचते ही गंगाधर साथ रहे आप्तों की उपस्थिति को बात ही भूल गया। बिना बोले ही उसने चारों दिशाओं पर दृष्टि दौड़ाई। उसकी आँखें प्रभापूर्ण हो गईं थीं। संयत स्वस्थ श्वास-क्रिया से छाती का फैलाव-संकोच साफ लक्षित होता था। दीर्घकाल तक निरीक्षण-परीक्षण जारी था। मौन धारण किए दोनों साथी वह जिधर घूम जाता, उसी ओर घूम पड़ते, एक-दूसरे का चेहरा देखते रहते—कभी गम्भीर भाव से, कभी मुस्करा कर ही। अनन्तकाल बाद वह उनकी ओर मुड़ा—लगा वह उनके अस्तित्व को बिलकुल ही भूला न था। दोनों ने ताली बजायी और हँस पड़े।

"रे मियाँ, तेरी दिशाफेरी की बारी खत्म हुई कि नहीं ? तू कोई शायर है या इंजीनियर ! मैं तो अभी तक जान न पाया। अगणित रत्नों से राजित गगन की मेघमालाओं के मध्य, हीरे के पदक-सदृश प्रभामंडित, पश्चिम में पथ खोजते बढ़ते, उस रवि तक उड़ते पहुँचकर लौट आया ? कलकलनाद कर बहती जल-धारा की मखमली सेज पर शोभित तरुदीपाधानों से सजी, पक्षियों के मंगल-मंजुल गीत से निनादित रंगशाला में विहार करतीं, उन गोपिकाओं के साथ रास रच आया ? सुबरन धारा की स्निग्ध शीतल लहरियों के स्पर्श से पुलकित हो, आनन्दातिरेक से आत्मविस्मृत हो उठा ? इस ओर, इस प्रकाश से प्रभा-मण्डित फानूसों सरीखे छोटे टीलों को ऊपर उठाये सूर्य भगवान के लिए सजधज से आरती उतारती मंगलांगी भूदेवी के सुभग सौन्दर्य में तन्मय रहा क्या ? अथवा एक टीले को खोदकर यहाँ जल संचित कर, बहाव को दूसरी ओर मोड़ते, यहाँ पथ-निर्माण कर अर्थात् धरती के रूपरंग को ही बदल दिया है क्या ? बोल तो सही।" इस प्रकार गुण्डण्णा ने कुशल नट की भाँति हाव-भाव दिखाते साव-धानी से संकलित पदावालियों के प्रयोग से परिहास किया, जिसमें व्यंग्य तथा गाम्भीर्य दोनों थे। पार्वती बारी-बारी से दोनों को देखते खिलखिला कर हँस रही थीं। गंगाधर प्रसन्नता से मुस्कराते हुए गुण्डण्णा की पीठ ठोंक रहा था।

"लो बधाई, गुण्डण्णा ! तू ने मुझे 'शायर' या 'इंजीनियर' बनाया न ! शायर अर्थात् कवि का अर्थ, दिव्यता तथा भव्यता का द्रष्टा। जो कवि नहीं, वह जीवन में कुछ भी नहीं बन सकता। इसे गाँठ बाँध ले। दृश्य ही न दिखे, तो कार्य कौन सधे ? जीवन क्या रचे ? तू भी कवि है। सबको बनना भी चाहिए, जीवन में सरसता लाने के लिए। सरसता की उपेक्षा कहीं होती है ? उसके बिना जीवन ही सूना है। तू ने सवाल किया न कि मैंने यहाँ क्या देखा, क्या किया ? मान लो, मुझे आगे जो कुछ करना है, उसे मन में अभी पूरा कर लिया। जो कुछ देखा-परखा, वही अब भी देख रहा हूँ। वह दृश्य क्या रहा होगा, यह जानना चाहेगा। वह देख, उस पार जो गंगा टीला दिख रहा है, वह और हम, जहाँ खड़े हैं—यह गौरी टीला इन दोनों के बीच की जमीन भर हजारों आदमियों का ताँता लग गया है, चींटियों की तरह खुदाई में, ढोने में, सामान पहुँचाने में, बाँधने में सब जुट गए हैं। महानदी पर डेढ़ करोड़ की लागत पर बन रहे हीरा-कुड डैम के क्षेत्र में जो देख आया हूँ, उसी भाँति। उन्हीं के साथ हम सभी हैं—मैं, तू, पार्वती, भागीरथी, सावित्री आदि। एक बांध उठ रहा है—बाँबी के उभरने की तरह। बाँध कैसा है ? मिट्टी का, बड़ी-बड़ी गिट्टियों का या मिश्रित

पदार्थ का ? पूछो मत। मान लो कि एक बाँध है। उसके पीछे सुदूर क्षितिज को छूता हुआ-सा मीलों चौड़ा जलाशय झलमलाता-नाचता दिखाई देता है। उसके आलिंगनपाश में कई टीले फँसे हुए से लग रहे हैं। वह सामने आँगन में पड़ी बड़ी बटलोई में छलछला रहा है, सुनहरी किरणों की झिलमिलाहट से सुनहला हो उठा है ! वह स्वर्णिम प्राण-धारा 'आपको स्तनपान करा चुकी न, अब और न रोकिए बाकी कई संतानें बाट जोह रही हैं—देखिए, अच्छा अभी आ गई मेरे लाडलो' चिल्लाती बाँध के घेरे में लगे फाटक से बल खाकर आगे बढ़ने वाली माँ की तरह उद्विग्न हो उठी है"""""वह जो उठान है, वहाँ, माँ की गोद में ठाट से बैठे शिशु की भाँति 'देख, कितने ऊँचे पर हूँ' कहते एक गर्वीला नाला मस्तानी चाल से बढ़ रहा है। उठान पर वह इसी प्रकार शोभित है, जिस प्रकार शिवजी के सीने पर सर्प। यह नाला कहाँ तक जाएगा, इसका अभी कोई अन्दाज नहीं हो सकता। लगता है, हजारों एकड़ की भूमि को उससे तरावट पहुँचेगी ही। नाला और धारा के बीच की तर जमीन की सीमा भी नाले के मृदुल स्पर्श से सिहर उठी है। नया रूप धारण कर चुकी है। एक तरफ धान की बालियाँ डोल रही हैं—पीले रेशम के वस्त्र मानो फैला दिए गए हों, दूसरी तरफ ईख खड़ी है जैसे चँवर खड़े किए हों, अन्यत्र नारियल-सुपारी के बाग हैं, मानो झालरदार पताकाएँ ऊँचाई पर लहरा दी गई हों। सारी धरती वहाँ की पासे के चौसर की भाँति रंग-बिरंगी हो उठी है। यह देखो प्रकाश-वाडी, बलगाँव, छातीफाड़ा, करमपुर आदि के निवासी उस उठान पर सैनिकों की भाँति साथ मिल कर खेती करने में जीतोड़ परिश्रम कर रहे हैं, फसल की राह देख रहे हैं। कुछ खलिहानों में होते उनके सामूहिक गीत गगन में गूँज उठे हैं। सब नृत्यमत्त हैं। उनके गानों, जयकारों की प्रतिध्वनि यहाँ की तलहटियों में भी सुनाई दे रही है। दोनों टीलों, बाँध आदि पर रची हुई माँग की भाँति सुहाग की सूचना देने वाली एक सड़क फैल गई है। इस तरफ गाँव की ओर की कड़ी बनी है और दूसरी तरफ स्टेशन की ओर की शृंखला। उस पर गाड़ियाँ, लारियाँ आ जा रही हैं। धान, गुड, नारियल, सुपारी आदि उन पर लदे हैं—स्वर्णिम जीवराशियों की गतिविधि का आभास देनेवाली इन सवारियों के अलावा कारों का भी आना-जाना शुरू हो गया है। हाथ, मुँह इन दोनों अवयवों के लिए फुर्सत ही कहाँ कि वे भिड़ सकें। ऐश्वर्य की समृद्धि है। नीचता का नामोनिशान नहीं, आसपास के इलाकों में लोग सुख बाँटते दिन बिताने लगे हैं। बाँध की इस तरफ नीचे एक मनोरम उद्यान बन गया है—कृष्णराज सागर में

वृन्दावन की तरह। दिन भर के परिश्रम के बाद स्त्री-पुरुष सगे-संगियों के साथ संध्या समय यहाँ विश्राम करते टहल रहे हैं। इस झोल की अमृतधारा के जादू भरे छिड़काव से अपनी यह प्रकाशवाडी तथा उसके आसपास के हल्कों में से गन्दगी, अनबन, बीमारी आदि साफ हो गई हैं। उनकी जगह सफाई, संयम, स्वास्थ्य और भाग्य आदि के खिल-खुलने से ये नमूने के गाँव आदर्श ग्राम बन गए हैं।" गंगाधर तल्लीनता से धीमे-धीमे बोलता और उन जगहों की ओर संकेत भी करता गया। वह अभिभूत हो उठा था। आँखों में न्यारी छटा छा गई थी, चेहरा खिल उठा था, चमक रहा था। उसका उत्साह संक्रामक होकर उन दोनों तक फैल गया था। बिन बोले वे उसी ओर घूम पड़ते, जिस ओर उसका संकेत होता। बातें सुन-सुन कर वे झूमते रहते।

साँझ क्षीण कालिमा के आवरण में विलीन हुई। इतने पर भी वे उन सारे दृश्यों को साफ लख लेते थे।

"हाय, यह कल्पना साकार हो जाए!" गंगाधर का वक्तव्य समाप्त हुआ।

अब गुण्डण्णा की बारी आई। उसने खूब गंगाधर की पीठ थपथपाई। बोला, "धन्य हो, गंगाधर! धन्य हो। भव्य स्वप्न! मैं यों ही बहक जाने वाला नहीं हूँ। लेकिन, वर्णन ने मुझ पर भी जादू फेर दिया है। जीवन-ध्येय सम्बन्धी रास्ते में सुनी बातें, पार्वती से मिली जानकारी आदि से मुझे लगता है कि इन सीढ़ियों पर से होकर इस स्वप्न सौध में पहुँचा जा सकता है।"

"ऐसी बात! सम्भव मानते हो तुम भी?"

"मैं कोई इंजीनियर-वंजीनियर नहीं। उसका हाल तुम जानो। मैं तो इतना ही कहता हूँ। ऐसी कोई भी सुचिन्तित योजना एक व्यवस्थित रूप धारण कर सकेगी। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। कारण बता दूँ, सरकार ने बहुत पहले धारा पर एक बाँध बनाने का विचार किया था। शायद योजना भी बनी थी। लेकिन धन का अभाव! वह विचार ही रह गया। पिताजी और मणेगार के बीच हुई वह वार्ता, अब याद आ रही है, तुम्हारी बातें सुन लेने के बाद। कहो पारी, तुम्हारे कानों पर भी कुछ......" गुण्डण्णा पार्वती की ओर मुड़ा।

"गाँव के चारों ओर की ज्यादातर जमीन तर हो जाएगी, जमाबन्दी बढ़ेगी यही आशा लगाए रहा। लेकिन फिलहाल कुछ होता-हवाता नहीं दिखता, पिताजी की अम्मा से कही गई ये बातें मुझे कुछ-कुछ याद आ रही हैं।" पार्वती ने शह दिया।

"सच! देखा न आपने! तब तो हमारे विचार कोरे हवाई नहीं। उनमें

थोड़ा-बहुत सार अवश्य है। पंचवर्षीय योजना के सिलसिले में इस पर भी ध्यान गया होगा, द्रव्याभाव के कारण टाल दिया होगा। पता लगाना चाहिए। यह सम्भव है ! योजना कार्यान्वित हो सकेगी !" इस धारणा से गंगाधर का उत्साह सौगुना बढ़ गया, उसके सन्तोष की सीमा न रही। वह आगे कहता गया, "यह सच है, इस योजना में इंजीनियरी कला अपेक्षित है। और भी कई बातों पर विचार करना बाकी है। लेकिन इंजीनियरी से बढ़ कर इसमें हिम्मत चाहिए गुण्डण्णा ! धैर्य चाहिए। 'हम भी परिश्रमी हों और उस बल पर दूसरों को भी परिश्रमी बनाएँ, यही कार्य-क्षमता का रहस्य है', यह अपने प्रोफेसर साहब का कहना था। मान लिया कि योजना के अन्तर्गत इस कल्पना को अर्थाभाव के कारण शामिल नहीं किया जा सका होगा। लेकिन सोचिए तो सही कि हम निजी परिश्रम से, अपनी उन्नति हेतु, इसे साकार होने देंगे, तो देश के लिए, यह कितनी अनमोल भेंट हो जाएगी ! हमारी यह साधना योजना के परिमाण की बढ़ती में, देश की प्रगति को तीव्रतर बनाने में सहायक भी हो जाएगी। हम अधिकाधिक अन्न उपजावें तो एक ओर अपनी सम्पत्ति भी बढ़ेगी और दूसरी तरफ रुपये का भाव, जो दिन-पर-दिन गिरता जा रहा है, कुछ ठोस हो ही जा सकेगा। मुद्रा-अवमूल्यन की यह रोकथाम सरकार के लिए बड़ी जरूरी है, उसके अन्दाज के अनुसार योजनाधीन कार्य सम्पन्न होने के लिए।"

"वही सही, मैं इन सब बारीक बातों का जानकार नहीं। इस मामले में मैं तुम्हारा साथ दूँगा, यह तय मानो। तुम और भी जरूरी जाँच-पड़ताल कर लो। कोई बात पक्की हो जाए। उसके बाद हम सब अपनी-अपनी शक्ति लगा ही दें। जो होगा, देखा जाएगा। माँ-बाप आपत्ति उठाएँगे, फटकारेंगे—'निरे नालायक, व्यर्थ ही समय बरबाद कर रहे हैं, यह शानभोगी का बही-खाता नहीं सँभालता, वह बर्तन-भाड़े नहीं माँजती, झाड़ू, बुहार नहीं करती, घर के काम से कोई मतलब नहीं, खाने-पीने के लिए हाजिर रहते हैं ......आदि।" उसने आगे कहा, "या धीरे-धीरे असली बातें जान भी जाएँ, कौन जाने। उनका रुख जो भी हो। हमारी वजह से उन्हें तकलीफ भोगनी पड़े तो भोगें, मैं तो देश के लिए यही उनकी भेंट मानता हूँ।"

"तकलीफ भोगना, उनकी ओर से भेंट ! हूँ !" गंगाधर को लगा कि उसके घाव पर मरहम पड़ गया। घाव फौरन भरा नहीं, लेकिन जलन तो कुछ कम हो ही गई।

"शुरू-शुरू में गाँव भर वाले हमें सनकी कहेंगे, हमारी खिल्ली उड़ाएँगे,

जो बदमाश हैं, वे रोड़े अटकाएँगे, दो-चार हम जैसे झक्की भी मिलेंगे या बाद को पीछे हो लेंगे—यह सब तब जबकि हम कुछ करें; डंका बज उठे। धीरे-धीरे लोगों की हमदर्दी हमारे साथ होती जाए। क्यों नहीं? अन्त में मेहनत का फल मिले या नहीं, इसका कोई महत्व नहीं। काम पूरा हो गया, तो बड़ी खुशी होगी। एक अच्छा काम बन गया, अपनी जिन्दगी भी बेकार न गई, यही तसल्ली रहेगी। अगर नहीं हुआ तो यह नाचीज जिन्दगी घिस जाए, मिट जाए तो कौन नुकसान हो जाएगा—इत्ती बड़ी दुनिया में? अपने को बढ़ा-चढ़ा लें, तो हम ही नवाब बन बैठें, खुद को ही दुनिया की धुरी मानने लग जाएँ, बस। असल में देखा जाए तो यहाँ सब कुछ ठाला है, ताश में लगाए पैसे की तरह। दांव लगा दिया जाए, दोस्त! मोरी में सड़ने के बजाय ऊँचे मनसूबों में मिट जाना ही भला लगता है।" गुण्डण्णा पूरे जोश में आ गया था।

"वाह रे गुण्डण्णा! दिलदार दोस्त!" कहते हुए गंगाधर ने उसे बाँहों में कस लिया। बोला, तुम मुझसे पीछे नहीं, अब मुझसे भी आगे।"

"भैया का यही हाल है। अगर मन नहीं है, तो किसी का कोई वश न चले। बात लग गई तो किसी से पिछड़ने का नहीं। मैं भी तुम लोगों के पीछे ही।" पार्वती के स्वर में दृढ़ निश्चय था।

"ऊहुँ, न कोई आगे है, न पीछे। सब साथ कदम मिलाए—जैसे इस वक्त चल रहे हैं। अब चला जाए।" गुण्डण्णा ने सुधारा।

"यह सब टीले पर खड़े बातें बनाने वाले नवयुवकों का सहज का उफान तो नहीं? टीले से उतर पड़ते ही हवा न हो जाएगा? यह हाल, यह उष्णता बनी रहेगी भी, मुझे इसका संदेह सताने लगा है—इतना उत्साह, विश्वास न करने लायक़ ढंग से, सहसा जो उठा है, वह टिकाऊ रहेगा भी!" वास्तव में गंगाधर अतिशय आश्चर्य तथा आशंकाओं का शिकार हो गया था। कितनी ही बार वह अपने कई साथियों के संग आवेशपूर्ण चर्चाएँ कर चुका था, बड़े-बड़े प्रस्ताव भी पास किए थे और अन्तिम निर्णय के बाद भी दूसरे ही दिन उन सबको तिलाञ्जलि दे दी थी। इसकी याद उसे सताने लगी थी।

"यह सहसा उठी भाप की तरह का भाव नहीं। तुममें तो यह जोश मुद्दत से है ही, बाहरी दुनिया का हालचाल सही-सही जानते जो हो। पारी कस्तूरबा शिविर में रही है, उसे इन बातों की थोड़ी-बहुत जानकारी भी शिक्षा के अंगरूप में मिली ही है। उसका जोश, उसकी तारीफ बेबुनियाद नहीं हैं। रही बात मेरी, सो तुम भली-भाँति जानते ही हो। यह ज्यादा फेर में पड़नेवाला जीव

थोड़े ही है। सुस्ती मैं जरा भी पसन्द न करने का। एक ही दोपहर में, जो असर हुआ है, सो भी पारी के अंकुश की चुभन मात्र से, उसका हाल क्या बताऊँ? तुमने ऊपर से आग जो लगा दी है। दैव भरोसे सीधे घुस पड़ूँगा—लपटों को अनायास ही पार कर जानेवाले साँड़ों की तरह……तिस पर, सुनो गंगाधर! अखबारों में कितनी ही बातें छपती ही रहती हैं, मुल्क भर में जो कुछ चल रहा है, उसी का शोर तो है। शोर नहीं, पुकार ही कह लो। उसकी धुँधली छाया भी थोड़ी-बहुत किसके दिल में जगह न पा जाएगी—बशर्ते वह इन्सान सूख न गया हो। रत्ती भर काफी है, जोश जगाने को। मशीन चालू रहते, पाइप में पानी की हालत की तरह समझो। टोंटी खोलना ही बाकी रह जाता है। उसके खुलते ही तेज पानी लगातार बाहर आता जाता है।"

"मुझे भी बुखार आया-सा लग रहा है—आपकी ये सारी बातें सुनते-सुनते। उसका ताप उतरने का नहीं, इसका भी भान अब हो रहा है। सामने एक सुनिर्धारित कार्य जो है! उसके अभाव ही में तो सारे विचार जड़-शाखाहीन हो हवा में उड़ जाते हैं।" पारी ने अपनी मनोदशा का परिचय दिया।

"ठीक कहती है, यह उष्णता सुरक्षित रहनी चाहिए। ताप घट जाए, तो अशक्त हो जाती है।" गुंडण्णा ने तजुर्बे का बात कही।

"बुखार, उष्णता, ताप आदि की जगह इसे बिजली कहें, तो अच्छा हो। इस मस्तिष्क की क्रिया के समान ही डायनमो लगातार चालू रहता है। 'करेण्ट' तार में बहता ही रहता है, इन नसों में बहने वाले रक्त की तरह। चाहो तो अँधेरे में रोशनी कर लो, भूख लगने पर चूल्हा गरम कर रसोई बना लो, जो भी चीज ऊपर उठाओ, नीचे उतारो, समतल पर चलाओ—जो काम लेना चाहो, सो सब करवाओ उससे। यह तो सबको जानी-सुनी बात है। हाँ, डायनमो को बराबर चलते रहना चाहिए।" गंगाधर ने उपमान बदल दिया।

"स्वीकार है! हममें से हर कोई बिजली विभाग का मूर्त्तरूप ही है। यही है न तुम्हारा मतलब! आगे काम में जुटने वाली बड़ी जमात में जोत भरने वाली चिनगारियों की भाँति।" गुण्डण्णा बड़े ठाठ से कहता गया। गंगाधर, पार्वती दोनों मान गये, फूले न समाये।

"लोग चाहे जो कह लें, हमें विचलित नहीं होना है। युवाओं के लिए बढ़ते जाने की धीरता सहजात वरदान है, पैदाइशी हक है!" गंगाधर अपनों में ढाढ़स बँधाते कह उठा।

"पीछे हटने का बोदापन बूढ़ों के लिए मुबारक रहे—उम्र जिनकी ढल गई

उन बुजुर्गों के लिए नहीं, सीने की धड़कन जिनकी बन्द पड़ी है उन जवान-बूढ़ों के लिए।"

वे लड़ाई के लिए निकल पड़े लड़ाकों की तरह बढ़े। गाँव लौटते समय रास्ते में उस समय तक सूझी बातों के ब्योरों पर बड़ी दिलचस्पी के साथ वे बहस करते आए। तवे पर रोटी की भाँति आशा-आशंका पलटती रहतीं। दूसरे ही दिन दोनों युवक चिकमगलूर के एग्जीक्यूटिव इंजीनियर से मिलने, विभाग की ओर से इस बारे में तैयार हुई योजना के विवरण जानने और किसी भी सूरत् में उनसे आवश्यक सहयोग पाने का प्रयत्न करने का संकल्प कर चुके। पार्वती गाँव की चन्द बालिकाओं को बटोर कर, उनके बीच अब तक धुँधले ही रहे बांध की जानकारी फैलाने और उनके द्वारा, घर-घर में, इस मामले में दिलचस्पी पैदा करने वाले एजेण्टों की तैयारी की जिम्मेदारी, अपने ऊपर लेने को उद्यत हुई। युवकों के मन में आया कि चिकमगलूर से पंचवर्षीय योजना से सम्बद्ध पुस्तकें, नक्शे लाए जाएँ और उनके आधार पर बने चित्रों की प्रदर्शनी के आयोजन से प्रचार-कार्य हो, जिससे लोगों में उत्सुकता बढ़े तथा उत्साह जगे।

●●●

: ९ :

वे हिरियण्णाजी के मकान के निकट आ पहुँचे। उनके घर वाले चबूतरे पर बैठे थे। उनकी बातचीत, हास-परिहास सुनाई पड़ते थे।

"कहो भाई, दोनों अभिन्न साथी कहाँ निकल पड़े थे? इतनी देर गए लौट रहे हो, अँधेरा हो जाने के बाद। यह क्या, पातू भी साथ है चहलकदमी में? बड़ा अच्छा है। सब अन्दर आ जाओ, शंकर जयन्ती की आरती का प्रसाद लेते जाना। तुम लोगों को बुलाने के लिए भाग्य घर हो आई। तब तक लोग निकल पड़े थे। घर के बाकी लोग आए थे, प्रसाद ले गए हैं।" जयलक्ष्म्माजी ने स्वागत किया।

नंजत्ते एक दूसरी ही धर्मावरम् की साड़ी पहने दीवाल के सहारे बैठी थीं। कैंट साहब रात में पहनने वाला पाजामा, शर्ट चढ़ाये, चबूतरे के सिरे पर नीचे की ओर पैर लटकाए एक खम्भे के सहारे बैठे हुए थे। भागीरथी हरे जार्जेट की साड़ी और सफेद ब्लाउज पहने थी। कंगन, करनफूल और लोलक भी बदल गए थे। वह गंगाधर, पार्वती दोनों को तीखी दृष्टि से देखने के बाद

जयलक्ष्म्माजी में विन्यास का कोई परिवर्तन दिखाई न पड़ा। कैंट साहब के लिए गुण्डण्णा अपरिचित न था, फिर भी गंगाधर को दूसरी बार उन्हें उसका परिचय कराना पड़ा।

"कहाँ तक गई थी आपकी सवारी? हम लोग भी शीतलामाई के मन्दिर तक टहल आए।" अण्णाजी ने बात छेड़ी।

"गौरी टीले तक गए थे, मामाजी!" पार्वती ने जवाब दिया।

"उतनी दूर! वहाँ क्या करने गए थे?" जयलक्ष्म्माजी ने पूछा।

"योंही सैर के लिए.......।" उधेड़बुन में पड़ा गंगाधर कहने लगा, "अण्णाजी! वह एक बाँध उठाने के लिए जगह बड़ी लायक लगती है। आपका क्या विचार है, सर! सुबह हम लोगों ने जो देखी, उस धारा से?" कोई बात कहने का ढंग जताते विषय कुछ बढ़ाकर वह कैंट साहब की ओर मुड़ा।

"मैंने उस पर कोई ध्यान ही न दिया। देखते ही झट क्या कहा जा सकेगा? सर्वे इस बात का कि कितना पानी जमा होगा, कहाँ-कहाँ काम में लाया जा सकेगा? उसका पाया परखना होगा—धरती कुरेदी जाय, वहाँ की मिट्टी ली जाए, लेबोरेटरी में जाँच के लिए भेजी जाए, टीले का आगे-पीछे का हिस्सा कैसा है, फटका-वटका कहाँ, कितने क्यों आदि सब पर गौर करना होगा। कितना खर्च पड़ेगा, लागत पर कितनी फी-सदी की आय होगी, और भी बीसियों मिले-जुले पहलुओं पर उनकी समस्त संभावनाओं के साथ सोचना होगा और उसका रेशा-रेशा जान लेना होगा। इन सब कामों में न जाने कितने वर्ष लग जाएँ! कोई हलवा खाने सरीखा थोड़े ही है एक प्राजेक्ट के माने? उसके बाद भी झंझट लगा ही है, सरकार को मनवा लेना—मक्खन लगाना। यहाँ के निरे गँवारों से काम कराना सबसे बड़ी आफत है। ये 'कांकरीट' किस्म की कोई चीज जानते ही नहीं।"

"हूँ, फिर क्या जरूरी नहीं ये सब एक बाँध बाँधें? कन्नंबाड़ी का बाँध उठाने के लिए ही कितने साल लगा दिए, दस कि बारह। वे कहा करते थे, उसकी सारी यातनाओं को। मैं भी भोग चुकी हूँ न, उस जंगल में, साथ रह कर। घर लौटते तो सूख-साख कर जीवहीन। अकेला कष्ट थोड़े ही है? कुलियों-खटालियों से सदा की खटखट सहते। खाना खाने और शौचालय जाने तक की छुट्टी नहीं। हुँ, यह सब छोड़, एकदम से गिरा जा सकता है? उसमें........" नंजत्ते लाड़ले बेटे की बात के बीच मुँह लगाने के बाद रुकने का नाम ही न लेती थीं। गुण्डण्णा खम्भे की आड़ में मुँह किए खुल कर हँसा।

पार्वती रूमाल का सहारा लेने लगी। जयलक्ष्म्माजी प्रसाद लाने के बहाने उठकर भीतर की ओर गईं। अण्णाजी मूर्तिवत् बैठे थे। भागीरथी की भवें तन गई थीं, न जाने किस पर उसका रोष-असंतोष था। अकेला गंगाधर मुस्कराते सब सुनता गया और बोला, "वह सब सही है, इन्कार कौन करता है ? कोई काम ऐसा नहीं, जो अलादीन के चिराग के जलते ही पूरा हो जाए। वह एक जादू की लालटेन है नंजत्ते·······बुद्धि लगा कर पसीना बहाने से ही कोई बन पाता है। आपका कहना सोलहों आने सच है, सर ! सो सब होना चाहिए ही। लेकिन आपही के अनुसार फैसले में ही साल एक व्यर्थ ही गँवा देने का बहाना मिल जाता है, सर ! समय ही बड़ा महँगा हो उठा है, सर ! जमाना ही ऐसा है। एक-एक दिन भी बड़ा अनमोल जो हो गया है। प्रतिदिन करोड़ों रुपए मजदूरी में बाँटे जा रहे हैं, तो रोज करोड़ों का लाभ भी हो सकता है। छिपा किससे है विषय कि चारों ओर दिन-रात काम हो रहे हैं, आठ-आठ घंटे बारी-बारी से। पुराने लोगों की कार्य-प्रणाली का ही अनुसरण होता रहे, तो हम लोग इसे नया युग क्यों मानें ? इस राष्ट्र के लिए अब ढिलाई सचमुच अभिशाप है। सब काम झटपट होने चाहिए। कितना पड़ा हुआ है करने के लिए, सुबह ही इसकी चर्चा कर चुके हैं। जरा तेजी न लाएँ, तो काम चले कैसे ?"

"जल्दबाजी करने वाले की खोपड़ी खाली, की कहावत सुनी है ?" नंजत्ते ने व्यंग्य किया।

"गंगाधर का हर काम घपले का, केवल तीन दिन का उत्साह।" भागीरथी पार्वती और गंगाधर दोनों को देखते बोलीं।

"तुमसे ज्यादा घपलेबाजी, गुड्डी ?" गंगाधर कैंट और भागीरथी दोनों को देखकर कहता गया और हँस पड़ा, "किसी बात को अपनाने में मैं उतावली कर जाता हूँ। यह मैं स्वीकार भी करता हूँ। लेकिन अपनाने के बाद कभी छोड़ने का नहीं।"

"जल्दबाजी करने पर परिणाम भी उसके अनुकूल ही निकलेगा।" कैंट साहब ने टोका।

"आपके कथन का दोहरा अर्थ निकलता है।"

"जगह देखते ही फौरन उसे ठीक मान बैठना........।"

"यह सचाई से दूर है। उसे देखते समय मेरे मन में जो बात उठी, वही कहता गया, बस ! जितना समय अनिवार्य हो, उतना लगाया जाए। आप भी

कभी उसे देख लें, सर ! यत्नसाध्य वह होगा या नहीं। इसका पता लग जाए। आपकी राय भी मालूम हो। कहिए ?"

"अच्छा, वक्त मिलने पर देखा जाएगा। हम जहाँ से पार कर आये हैं, उसी तरह की जगह हो तो वहाँ भी मिट्टी........।"

"हुं, करीब-करीब उसी मेल की है। दोनों में कोई विशेष अन्तर लक्षित नहीं होता।"

"उस हालत में वह काम लायक न होगा।"

"ऐसी बात ? मुझे तो उतना खराब न लगा........ऊपर-ऊपर ही देखा जो है............इसी कारण से सरकारी विभाग वालों ने उपेक्षा कर दी होगी, गुण्डण्णा।"

"मामाजी, इसके बारे में आपको बहुत-सी बातें मालूम रहेंगी।" गुण्डण्णा ने अण्णाजी को अखाड़े में खींचा।

"क्या बताऊँ, भाई ! जहाँ तक मुझे मालूम है, अर्थाभाव के कारण योजना उपेक्षित है।" अण्णाजी को एक ही बात बार-बार रटना पसन्द न था। अपनी बात पर अड़ जाना, उन्हें कभी रुचा ही नहीं।

"ओ, यह है किस्सा ? हमारा भी वही अनुमान था।" गंगाधर को कुछ और ढाढस बँध गया। उसने जिज्ञासा व्यक्त की, "पता नहीं कितने का अंदाज लगाया था। कितने एकड़ों की सिंचाई का हिसाब लगाया रहा होगा ?" उसका यही ख्याल था कि अण्णाजी कुछ अधिक जानकारी रखते होंगे।

"छह-सात लाख रुपए का अन्दाज हुआ था। यही सुनाई देता था। लगभग डेढ़ हजार एकड़ की सिंचाई से खुश्की के तरी जमीन में बदल जाने की सम्भावना बतायी जाती थी। उन्होंने सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विवरण प्राप्त कर उसके आधार पर कोई निर्णय न लिया होगा। यों ही नक्शे आदि के सहारे कागज पर कुछ टाँक लिया होगा। बस।"

"डेढ़ हजार एकड़ ! इस इलाके में कितनी सम्पत्ति के बढ़ने की सम्भावना है।" वह प्रसन्न हो उठा।

"हुँ, धन का प्रबन्ध एक टेढ़ी खीर जो है, भाई ! थोड़े से काम क्या बने ? गाँव वाले बेचारे उतने धनी हैं कहाँ। जो हैं भी, उनमें से दमड़ी भी देने वाले नहीं, यही मेरा अनुभव कहता है। अब तक कई मौकों पर मैंने उन्हें परख कर देखा है।" अण्णाजी गम्भीर होकर सोचते हुए कहने लगे।

"वही तो, उतना ही धन, सरकार के लिए बच जाए, ऐसा उपाय निकालना

चाहिए—इस समय उसकी असहायता को ध्यान में रखते हुए इसका भी विचार रखना होगा।'' गंगाधर विनम्र भाव से सुझाता गया।

''देख लिया भैया? मैं भी वही बोली। जवाब मिला कि खाली हाथ से ही लोगों से काम लिया जा सकता है, एक पाई भी लगाने की आवश्यकता न रहेगी। सुबह यही रवैया मेरे साथ भी किया। न मैं ही अनुभवी, न तुम ही। अकेला गंगाधर ही सबका ठेका ले चुका है। हुँ, भिखमंगे का लड्डू! उतनी बड़ी सरकार ही सकपका गई है! 'बीवी है नहीं, बेटे का नाम गोपालकृष्ण धर दिया' जैसा वैष्णव-अय्यंगार लोगों में प्रसिद्ध है।'' नंजत्ते ने नाक सिकोड़ी।

''उतना ही पर्याप्त मान भी लिया जाए, तो भी इतने लोगों को जुटा लेना कोई सरल काम नहीं। दो हों तो तू-तू, मैं-मैं, चार रहें तो चाँटा-चाँटी, यहाँ के लोगों का स्वभाव जो है।'' अण्णाजी ने गंगाधर की बातें मानते हुए समझाने के ढंग से कहा।

''कोई न आएं, तो न आए। हम चन्द चुने लोग ही शुरू कर देंगे।'' गुण्डण्णा ने न आव देखा न ताव।

''शुरू करो, शुरू करो, तुम लोगों की साँस टूटने तक, कुछ भी हाथ न लगेगा।'' नंजत्ते स्वभाव के अनुसार शाप दे गई।

''गुण्डण्णा, यह बड़ी बहादुरी की चीज है, प्रशंसा योग्य भी। लेकिन विवेक से भी समर्थित होना जो है, भाई। दस जने साथ न दें तो क्या हो सकेगा—कितना भी छोटा काम क्यों न हो? ऐसे बृहत् कार्य के लिए एक बड़ी पलटन की जरूरत पड़ेगी। अकेले से, चंद ही चुने लोगों से, क्या सधेगा, भैया? खाली हाथ हवा में चलाने की भाँति हो जाए तो?'' अण्णाजी ने बड़े स्नेह से ही कहा। बातें गुण्डण्णा से कही गई थी, लेकिन इशारा गंगाधर की ओर था।

जयलक्ष्म्माजी अन्दर से प्रसाद ले आईं और सबको बाँटा।

''अण्णाजी, शंकराचार्यजी का यह प्रसाद हाथ पर है। उन महानुभाव ने अकेले ही कितना काम पूरा किया, केवल अड़तीस के भीतर ही? अकेले मालवीयजी ने एक सपना देखा, सतत प्रयास किया। चारो ओर से मदद पहुँचाने हाथ बढ़ते न आए! इस समय छह करोड़ से भी अधिक मूल्यवाली संस्था—वहाँ होनेवाले कामधाम की बात रहने भी दें—स्थापित हुई, प्रगति कर भी रही है। एक विनोबा भावे ने ही तो भूदान का महत्व देखा, काम आरम्भ भी किया—इस समय उनके अनुयायी कितने हो गए हैं, कितना बड़ा काम हो भी रहा है।

एक गांधीजी के सत्याग्रह का ही न परिणाम है कि देश एक हो उठा, स्वतन्त्र भी हुआ……।" गंगाधर कुछ रुका।

"अकेले विद्यारण्यजी की कल्पना ही विजयनगर साम्राज्य के रूप में साकार हो उठी, एक शिवाजी ने मरहठों का साम्राज्य स्थापित किया। हम-जैसों से यह मामूली काम क्यों न शुरू हो सके ? क्रम से लोग, जनता आदि का साथ मिल जाने पर पूरा भी हो जाए ?" गुण्डण्णा बीच में बोल उठा। आदत से लाचार, ढिठाई से बाज न आया।

"वे सबके सब बड़े महानुभाव थे, महान् कार्य करने की क्षमता रखते थे। उनकी दुहाई देते……।" नंजत्ते बोलीं।

"महत्कार्य-सिद्धि से पहले सभी साधारण जीव ही रहते हैं, सिद्धि के बाद ही असाधारण महानुभाव होते हैं।" गुण्डण्णा ने मुँहतोड़ जवाब दिया।

"तुम लोग भी महानुभाव बनोगे ! ह् ह्-हा !" नंजत्ते अट्टहास कर उठीं।

"अगर आपको, उन्हें साधारण जीव कहना न रुचे तो वे भी हम-सरीखे मनुष्य ही थे, कह लीजिए। कम-से-कम इससे ही थोड़ा-बहुत धैर्य संचित हो जाए—काम में कूद पड़ने के लिए।"

"कह लेने में क्या है, जरूर जप लीजिए—इन्द्र, चन्द्र, देवेन्द्र सब हम ही तो हैं।"

"छिः, वैसा क्यों करने लगेंगे ! अभी नादान हैं। उन महानुभावों की महती साधना का ढोंग भी तो न रच रहे। खाली एक बाँध उठाने ही का काम तो ?" जयलक्ष्माजी ने लड़कों का पक्ष लिया।

"हूँ, उसके बारे में तुम क्या जानो, पूछ लो भैया से। वह भगवान के लिए भोग चढ़ाने के बराबर थोड़े है ?" नंजत्ते ने नकेल खींची। लेकिन अण्णाजी तटस्थ थे, कुछ बोले नहीं।

"गंगाधर क्या कोई गूँगा है ? वह भी तो इंजीनियरी परीक्षा दे आया है। प्रतिवर्ष प्रथम रहा है।" जयलक्ष्म्माजी चुप्पी न साध सकीं। गंगाधर में उनकी बड़ी आस्था थी।

"बड़े-बड़े इंजीनियरों का किया-कराया टायँ-टायँ-फिस हो गया है। सुना नहीं, हाल ही में चित्रदुर्ग का बड़ा बाँध बोल गया।" नंजत्ते मैदान से हटनेवाली कहाँ।

"हम अकेले अपने ही भरोसे नहीं बढ़ रहे। मैं अपनी सीमाएँ भली-भाँति जानता हूँ। अनुभवी लोगों के परामर्श से ही सब कुछ हुआ करेगा। थोड़ी-सी

जानकारी का सदुपयोग मात्र होता जाए, बस। संक्षेप में सिर्फ उत्साह का शक्ति-केन्द्र अपना माना जा सकता है !" गंगाधर की वाणी से विनय चू पड़ती थी।

"प्रयत्न करने दो, ननद, गरम रक्त वाले युवजन ! इनसे जो भी बन जाए, कौन बता सके ? किसके माध्यम से क्या होना लिखा है, यह कौन जाने ? हम क्यों उनके उत्साह पर पानी फेरें ? यदि विघ्नबाधाएँ रहें तो स्वयं जान जाएँगे, समय थोड़े ही लगेगा। तब हाथ समेट लेंगे ही। असम्भव मान कर हाथ-पर-हाथ धरे रह जाएँ, तो काम बने कैसे ? कोई भला काम किसी से शुरू हो, तो हम क्यों टोकें उन्हें ? जहाँ तक बने हाथ बँटाएँ, नहीं तो चुपचाप देखते रह जाएँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, उसी के अनुसार बढ़ते जाओ, भाई—भगवान भरोसे। जयलक्ष्म्माजी ने बढ़ावा दिया। कठिनाइयों से जूझते उन पर विजय पाते जाना, उनके जीवन का अंग हो गया था। तभी तो, बाधाओं की उपेक्षा करते आगे निकलते जाने की महत्ता का मर्म सुनाती गई। नंजत्ते के मुँह पर जैसे ताला पड़ गया।

"मामी की मनोवृत्ति वाली महिलाओं की संख्या कुछ अधिक होती, तो कितने अधिक काम बन जाते।" गंगाधर के कथन से कृतज्ञता व्यक्त होती थी। उसे लगा, मानो भगवान का ही वरदान मिल गया हो।

"शुरू कर ही देंगे, मामी, बाँध बनने लायक ठहरा तो। आसार तो अच्छे हैं, बाद को आवश्यक होने पर सहायता के लिए आपके पास आएँगे ही।" गुण्डण्णा बहुत आगे की सोचने लग गया था।

"मैं क्या सहायता कर पाऊँगी, गुण्ड ! वह कोई रसोई है जो बनाई, और परस दी........।"

"हर कोई इसमें अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार किसी-न-किसी रूप में कुछ-न-कुछ कर ही सकता, उसे करना भी चाहिए—इसकी सफलता के लिए। आपकी सेवा इसमें नहीं के बराबर होगी क्या ? देखती जाइए।"

गुण्डण्णा जयलक्ष्म्माजी और हिरियण्णाजी, दोनोंको लक्ष्य करते कहता गया।

"मामी की प्रोत्साहक वाणी ही सुनने को मिलती रहे, तो काम करनेवालों का बोझ आधा हो जाय।" पार्वती का मौन इन शब्दों में भंग हुआ।

"वाणी की भेंट चढ़ाने में लग ही क्या जाता है, यहीं अब बातों के मोती के ढेर जो लग रहे।" भागीरथी ने पार्वती को देखते हुए कहा।

"होने दो, अच्छा है। भगवान सबका कर्त्ता-धर्त्ता है। उसकी कृपा हो

जाय, तो चुटकी बजने की देर नहीं लगेगी। बनाव-बिगाड़ उसी के हाथ है। हमारी सत्ता ही क्या, उसी के बल पर काम में लगे हैं। सुख-दुःख उसकी दया पर निर्भर हैं। इसका यह मतलब नहीं कि हम कोई प्रयत्न ही न करें। उसकी शरण में समर्पण-भावना से प्रयत्न में लग जाना चाहिए धैर्य के साथ।" जयलक्ष्मम्माजी की ये बातें गंगाधर के लिए नई न थीं। कितनी ही बार वह इसे सुन चुका था लेकिन, इस अवसर पर उनके मुँह से निकली ये बातें नया अर्थबोध कराने लगीं।

उसे लगा—यह प्रवृत्ति जीवन को कितना प्रसादपूर्ण बनानेवाली है! वह बोल पड़ा—"यही होगा, मामी! इसी भावना के साथ तन-मन लगा देंगे।"

वह ईश्वर के प्रति आस्थावान् था या नहीं, यह सवाल कई बार मन में जरूर उठा था, पर उसने निष्कर्ष निकाल लिया था कि यह "न साँप मरे, न लाठी टूटे" को भाँति टेढ़ा है और अपने बूते से बाहर है। किस पर जानी-सुनी बातें ही इतनी पड़ी हैं, करोड़ों जन्म भर करने लायक काम पड़े हुए हैं, तो इसके चक्कर में क्यों पड़ा जाए। यही सोचते वह इस फन्दे में नहीं फँसा।

नंजम्मा न जाने क्यों चुप लगा गई? सोचा होगा कि इस अनजान औरत से क्या लाभ? या जयलक्ष्मम्माजी की मीठी चुटकियों से परास्त नहीं हो गई हों, या उनका खंडन करने का जी न हुआ है। कुछ भी हो, वे बोलीं नहीं। हिरियण्णाजी सहज ही प्रशांत थे। हो सकता है कि उन्हें लगा हो, यह सब अल्हड़पन की मस्ती है, उसे कौन महत्त्व दे! या किसी से उलझने का उनका स्वभाव जो नहीं है? या लड़कों के उत्साह से प्रभावित होने पर भी उसे प्रकट न होने देना चाहते हों? 'या देखा जाय, आरंभ होने दो', सरीखी तटस्थता का परिणाम हो। जो भी हो, उनका मनोभाव स्पष्ट न हो पाया। यह प्रवृत्ति उनकी पुरानी रही। कैंट साहब बिलकुल किनारा खींचे रहे। उन्हें विदित है कि जो भी बात कही जाए, ये लोग उसका टेढ़ा ही मतलब लगाते हैं और उन्हें बनाने ही में लग जाते हैं। निपट गँवार हैं—इनके मुँह लगने से फायदा? बाँध की चर्चा में भागीरथी की कोई दिलचस्पी न रही। वह इसे माथा खराब करने का मसाला मानती थी। बातें कानों में पड़ती जातीं आसक्ति बिना ही उनका अर्थ लगाती जाती। यह सब उसे कॉलेज के प्रवचनों के समान लगता था। इसके अलावा 'ये गंगाधर और पार्वती मिलकर मेरा परिहास तो नहीं कर रहे—मुझे दूर कर दोनों साथ-साथ रहते?' की चिंता उसे

चुभती रहती। दाँव में कैंट साहब ही उसके लिए पासे का काम देते थे। लेकिन इस पासे को फुदकते जाने में जाने उसे चाव क्यों न रहा। गंगाधर, गुण्डण्णा और पार्वती तीनों एक दूसरे की कॉर्बन कापी जैसे थे। उनमें भाव-साम्य था, विचार-साम्य था। तीनों के आदर्श समान थे। तब होड़ाहोड़ी की गुंजाइश ही कहाँ! जयलक्ष्म्माजी के सौजन्य का शुभ प्रभाव कहिए, सभा की प्रगति में कोई अनहोनी बाधा न पड़ी। सभा उठ गई। योद्धाओं ने बिदा माँगी और अपनी राह पकड़ चले। रास्ते में धीमी आवाज़ में गंगाधर बोला, "इतनी उतावली से मन की बात साफ़ जो कह दी, यह ठीक रहा क्या? यही सोच मुझे सताने लगी।"

"ठीक क्यों नहीं? छोड़ो भी, गंगाधर! शर्मिन्दा होने लायक कोई काम तो नहीं किया है। इंजीनियरी की तहकीकात से माकूल साबित न हो, तो वही कह दिया जाएगा, वरना इसके पीछे लग जाएँ, जान लड़ा दें। फैसला ही हो चुका न? और क्या? दुनियाँ को मालूम हो जाए। छिपाने से मतलब? कोई भला काम हाथ में लें, तो पहले उसकी डुग्गी पिटवा देनी चाहिए। दुनियाँ को बातें मालूम हो गई हैं, कम से कम उसकी निगाह में नीचे न गिरें, इस स्थल से काम पूरा कर देने का हौसला भी बढ़ जाता है, सनक सवार होती है, समझे!" गुण्डण्णा ने निडरता और इरादों की मज़बूती दिखाई।

"भैया का कहना सही है। बात साफ़ कह दी, तो कोई भूल नहीं हुई। रही-सही भी कही गई है।" पार्वती ने बल दिया।

"तब ठीक है। अब तो हरी झंडी दिखा दी है, पीछे मुड़ना नहीं, आगे बढ़ना ही है। जयहिंद।" कहता हुआ गंगाधर मोड़ से घर की ओर चला।

"मामीजी की उक्तियाँ भूलिए नहीं। दैव का सहारा रहेगा ही। उस पर अटल विश्वास रहे।" पार्वती का मनोबल और भी अधिक सत्वपूर्ण हो उठा था।

"अपनी बाँहें भी तो मज़बूत हैं।" गुण्डण्णा की बात पूरी होते-होते दोनों घर तक पहुँच गए थे।

● ● ●

: १० :

गंगाधर घर लौटा, तो अपराधी का-सा कोई भाव उसके मन में न रहा। गुण्डण्णा की ये बातें—'सबकी मुसीबतें भी इस बड़े पैमाने के काम के लिए उनकी ओर से हुई भेंट हैं, समझे।' उसकी झिझक को कम करने में सहायक हुई थीं। लेकिन इन बातों को, इस निश्चय को, घर के लोगों के सामने रखा कैसे जाए, यह उसके लिए एक जटिल समस्या हो गई थी। अम्मा चौतरे पर ही बैठी थीं। गंगाधर ज़रा झेंपा, अम्मा उसी की वाट जोह रही होंगी।

"बड़ी देर लगा दी, बेटा!" कहती हुई अम्मा उठीं।

"हुँ, अम्मा, अण्णाजी के यहाँ रुक गए थे। इधर-उधर की बातें होने लगीं, जल्द पूरी न हुईं। तुम्हें मेरी राह देखनी पड़ी न।"

"तो क्या हुआ? यह भी कोई बड़ी बात है? प्रतिदिनि क्या जल्दी ही सो जाते हैं? पड़ोस की घड़ी ने ग्यारह टनटनाए, कभी-कभी इससे भी ज्यादा देर लग ही जाती है। इससे पहले सोने को कहाँ मिलता है। एक-न-एक लगा ही रहता है। दूसरे दिन के लिए चावल बीन के रखना, दोसे के लिए पिसान तैयार करना, बर्तन-भाँड़े माँज लेना। यह सब होना चाहिए कि नहीं।" अम्मा उसके साथ अन्दर आते कहती गईं।

"सावित्री काम-धाम में हाथ बँटाती है तो?"

"अवश्य! वही नहीं, बाकी लड़कियाँ भी छिटफुट काम कर देती हैं। फिर भी सावित्री को बड़ी मिहनत पड़ जाती है। कभी बर्तन माँजती है, कभी सफाई करती है, ठाकुरजी के बर्तन साफ़ करती है, भाई-बहनों का नहान, कपड़ा, खाना-पीना इन सबकी देखरेख कर लेती है—कितना गिनाऊँ। उस पर मुझे तो तरस आ जाती है। अभी से इतना बोझ उस पर पड़ा है। आगे तो पहाड़ उठाने को पड़ा ही है। कम-से-कम इस उम्र में थोड़ा-बहुत आराम रहे, इस विचार से मैं भी यह वह कर लेती हूँ। इतने पर भी वह खाली कभी नहीं रह पाती। सबके सो जाने पर कोई अखबार-वखबार उलट लेती है। हुँ, अपनी रामकहानी का कोई अंत भी है? सुनाने लगूँ, तो चाबी घुमाने के बाद की घड़ी की तरह टिक्-टिक् जारी ही रहे। उठो लाड़ले! हाथ-मुँह धो लो।" रसोई में जाकर ढिबरी जलाते बोलीं।

अम्मा की भोली बातें गंगाधर को नुकीली लगीं। उल्लास फूस की भाँति उड़ गया। वह अम्मा से मन की बात का संकेत करना चाहता था। संकल्परूपी सिल गल गई। आँगन में बालक-बालिकाएँ एक पंक्ति में एक बिस्तर पर दो-दो, तीन-तीन के हिसाब से सोयी पड़ी थीं। शंकर, सावित्री, शारदा ये तीनों दीवाल पर लटके लैंप के इर्दगिर्द बैठे पड़ोस से मँगनी लाए अखबार के पन्ने बाँट कर बाँच रहे थे। तभी शयनागार के भीतर से पिता जी का खाँसना सुनाई दिया।

खाने बैठा, तो अम्मा भी बैठे ही सामने के बर्तनों से चीजें निकालकर परसती गईं। गंगाधर बोले बिना ही कौर मुंह में डालता जा रहा था। अम्मा सदा की भाँति गाँव की खबरें सुनाती रहीं।

"रामभट्टजी का लड़का सीनू, का ब्याह हो गया। वह तुमसे दो साल छोटा है। निट्टूर की वधू है। बहुत कुछ दिया-धराया है। हाल में ही बहू को बिदा कर लाए हैं। रतन-सरीखी है। गर्भवती है। चूड़ी पहनाने का रस्म भी हुआ। गाँव भर में लड्डू और चटपटी बाँटी गई। यह सब भाग्यवानों के लिए ही सुलभ है समझो। उस कोने वाले मकान के शेषण्णाजी के यहाँ पौत्र संतान हुई। लड़का है। घर-घर शक्कर, गरी-खड़ी गरी ही बाँटी गई। किट्टावधानीजी ने रुक्मिणी की शादी कम उम्र में ही कर दी। इस युग में जबकि लड़कियाँ क्वाँरी ही रह रही हैं। बड़भागी हैं वे भी। उनका दामाद तो बड़ा लीचड़ आदमी बताया जाता है। उन्हें खूब तंग होना है—शादी के अवसर पर ही चढ़ावे में यह नहीं मिला, वह नहीं किया; ऐसा न होना चाहिए था—आदि की तकरार (पड़ा कहते) ही मचा दी। अब कन्या सयानी हो गई है, तो सोलहवें दिन गौने के लिए लड़के वालों का दबाव पड़ने लग गया है। इस समय भी हर संभव संताप दिया जा रहा है, ऐसा कहते हैं। अभी शादी हुए दो महीने भी नहीं बीते हैं, रूढ़ि-पालन की बात अलग। लेकिन, लड़की बड़ी कमजोर है, हाल में ही बीमारी से उठी है। कुछ समय और टल जाए, तो अच्छा हो, ऐसी भावना आचारशील माता-पिता के लिए भी स्वाभाविक ही है न? सुना है, तरह-तरह के बहाने बनाने लगे हैं। समधी टस-से-मस होते दिखाई नहीं पड़ते। आगे जो हो जाए, कौन जाने! यह सब देखकर लगता है कि अपनी लड़कियाँ बिन-ब्याही ही रह जो गई हैं, वह खलेगा नहीं। आचार-पद्धति आदि की परवाह कौन करे! लेकिन सहेलियाँ विवाहिता हुई जा रही हैं, यह बात देख-सुन दिन-ब-दिन इनके चेहरे···हुँ रहने दो इन बातों को···हुँ गुण्डम्मा चल बसी बेटा! बेचारी, जचकी के तीसरे दिन ही! तुमको तो वह जान से चाहती थी,

तुम्हें मालूम भी है। उसके लड़कों में से कोई लायक नहीं निकला। बेचारी! कितनी भली थी? अशक्तता से वह हाल हुआ कहते हैं। वह मेरी उम्र की ही थी। वैसे देखा जाए तो वय के हिसाब से मैं ही मोटी-ताजी हूँ...।"

"कैसी मोटी-ताजी, अम्मा! तुम्हें देखते ही पता लग जाए!" गंगाधर इसके बाद और चुप न रह सका। इतनी देर तक वह भावी कार्यक्रम की रूप-रेखा प्रस्तुत करने का विधान ढूँढ़ता रहा, बात ओठों तक आई भी, लेकिन अम्मा की आकृति से आँखें मिलाते ही वह लौट कर गले में ही अटक जाती। अब यह जो प्रसंग आया, उसके सामने अपनी बात पीछे रह गई।

"क्या किया जाए, बेटा! अपने वश में है क्या, भगवान की दृष्टि हो जाए, तब न!" अम्मा भी इस दुविधा की गन्ध पा गई थीं।

"अम्मा, मैं कुछ कहूँ? अगर तुम बुरा न मानो तो?" गंगाधर सशंकित भाव से बोला।

"कहो न, बेटा! कहो।"

"देश में जनसंख्या की कोई कमी नहीं, सर्वाधिक बढ़ ही रही है वर्ष में चालीस लाख के हिसाब से। इतने मुँहों के लिए अन्न का प्रबन्ध करने, बदन के लिए वसन की व्यवस्था करने में ही सरकार की सारी शक्ति लगायी जा रही है, यह माना जा सकता है। 'नानी का काता सूत नाना के कमरतोड़ भर तक का हिसाब है। इस कारण जनता का जीवन-स्तर उठाना और उसे सुखी बनाना बड़ा जटिल हो गया है। मतलब इस असुविधा के लिए यह भी एक बहुत बड़ा कारण है, समझो। जो कोई भी योजना सोची जाए, तो यह उसे गले से लटकाने का प्रेरक तत्व बन जाता है। एक समय था, जब सन्तान ही राष्ट्र की सम्पदा मानी जा रही थी। आज वहीं विपदा हो उठी है—अनियंत्रित बाढ़ के कारण। इसका यह आशय नहीं कि संतान की आवश्यकता अब नहीं रह गई। अवश्य है, लेकिन इतने की नहीं। पहले संतान ही देश के लिए सौगात रही, तो आज की स्थिति में कम-से-कम संतानोत्पत्ति देश के लिए बड़ी भारी सिद्धि हो जाए-यही अपनी ओर से दी जाने लायक-भेंट है। इस दृष्टि से शादी का टलते जाना कोई बुरा नहीं। जहाँ शादी हो भी चुकी है, वहाँ एक मीयाद रखी जाए, तो वह उचित ही ठहरती है, अम्मा।"

गंगाधर खाकर उठा। उसने कम खाया था, अतः माँ ने वात्सल्य-भाव से पूछा "ठीक से खाना खाया भी नहीं, बेटा?"

"दिन का भोजन जो देर से हुआ था, अम्मा।"

खाना खत्म होने तक शंकर भैया का बिस्तरा चौतरेवाले कमरे में लगा चुका था। दोनों भाई लेट गई।

गंगाधर को नींद न आई। मन की बात घर पर कैसे चलायी जाए, यह चिंता सता ही रही थी, उससे छुटकारा मिलना भी दूभर था—भालू की भुजाओं की कसावट के समान। वह अनुकूल प्रसंगों की ताक में था। यथा-संभव अपनी बात को अधिकाधिक सुकोमल, सुनने में प्रिय लगनेवाला बनाता जाता। वह पिताजी के सामने स्पष्ट रूप से अपनी बात कहने से हिचकता न था। वे थोड़ा-बहुत बौखला उठेंगे, इधर-उधर शिकायत करते फिरेंगे। इसका कोई आतंक उसे सताता न था। संवेदनहीन हृदयवालों से जो चाहे कह दिया जाए, तो चल जाता है। बहिनों को मना लेना भी उसे दुश्वार प्रतीत न हुआ। वे पिनकी स्वभाव की न थीं। थोड़ी देर मुँह लटका लें, बस। वह भी वेदना ही तो। लेकिन अपनी ही तरह उम्र में छोटी होने से धीरे-धीरे उनकी समझ जग जाए और वे सांत्वना पा जाएँ, यही एकमात्र अनुमान था। लेकिन आशा! बावरी ठहरी। सन्देह बना ही रहा। लेकिन सर्वाधिक जटिल था अम्मा से कह देना। कब, कैसे? वे क्या सोचेंगी? सहेंगी किस तरह? ज्यों-ज्यों इसे उलटता-पलटता, त्यों-त्यों उनकी प्रभाहीन दृष्टि और जला हुआ शरीर सामने आ जाते। भोर में ही घर के पीछे बैठी काले खुरदरे हाथों से बर्तन माँजतीं, गीली लकड़ी चूल्हे में दिए बैठी पंखा करती या फूँकतीं धुएँ से लाल पड़ गये नयनों से बहता नीर पोंछती रसोई पकातीं; साँझ के समय बाल-बच्चे खेलने चले जाएँ तो अकेली घर बैठी हड्डी-मात्र की उँगलियों से खूँटा थामे अशक्तता में भी चक्की चलातीं, रात में बड़ी देर गये सबके सो जाने पर ढिबरी की रोशनी में कमर झुकाए आँखें गड़ा फटे-पुराने कपड़ों में सीवन देतीं, विलाप करते शिशु को शांत करने के लिए उसे गोदी में उठाये स्तन-पान करातीं—जैसी कई एक भंगिमाएँ अम्मा की गंगाधर को गमगीन बनाती जा रही थीं। उससे लेटा न जा सका। वह उठा। उसने खिड़की से बाहर झाँका। रसोई की खिड़की से झिलमिलाती रोशनी दिखाई पड़ी। इसी क्रम से समय-असमय पर ध्यान न दिए, प्रतिदिन इतने वर्षों तक कौन जाने कितने। उसी की अवस्था चौबीस साल हो आई थी!—अपने को सिखाती आई थी, अम्मा! कालापानी की कड़ी सजा से भी लम्बी और उससे भी यन्त्रदायक सजा भोगती आई थीं वह!

गंगाधर बिस्तर पर लोट पड़ा, पलकें बंद कर लीं। पडोस की घड़ी में ग्यारह बजे धीरे धीरे टन-टन करते। लो, दोपहर भर अम्मा शानभोगजी के

मकान पर चूड़ा कूटकर पाव भर चूड़ा गिलास में लिए आ रही हैं। इस चिलचिलाती धूप की घड़ियों में अम्मा अब भट्टजी के यहाँ मिर्चा तवे पर गरम मसाले की बुकनी तैयार कर आध पाव बुकनी लिए आ रही हैं। आज दिन भर हिरियण्णाजी के यहाँ भोज की रसोई पकाकर, रात में भी सबको परसने के बाद कंडालों में अवशेष रहे बासी भात, दाल, कुछ अन्य व्यंजन लिए आ रही हैं—अपनी संतान के लिए, अपने लिए। अन्यथा घर की चक्की कैसे चले? गंगाधर के सामने और भी कई चित्र उभरे, मिटे। चित्त की अस्थिरता को कम करने और अधीरता से बचने के लिए वह दुबारा उठ गया। बारह बजने की आवाज हुई। अब मलिन पड़ी लालटेन अम्मा के शयनागार में टिमटिमाती दिखाई दी। पिता जी का खाँसना सुनाई दिया। दरवाजा खोल बाहर जाने का मन हुआ। दरवाजा खोलते समय 'कुय्' की आवाज हुई।

"भैया, अभी तक सोये नहीं?" शंकर पूछ बैठा। उसकी आँखें खुल गई थीं।

"ऐ?...नहीं, अभी" गंगाधर ने दरवाजा लगाया और आकर बिस्तर पर लेट रहा।

थोड़ी देर सन्नाटा छा गया।

"तुम्हें कोई चिन्ता विशेष सता रही है! सो मैं भी जानूँ?" शंकर ने बल देकर कहा।

"ऐसी कोई बात नहीं। सो जाओ शंकर।" गंगाधर की तैयारी पूरी न हुई थी। मन में उखड़े-पुखड़े विचार ही मँडराते थे। यही नहीं, दूसरे दिन तक स्थगित रखने का जो विचार कर चुका था, अम्मा से बातें करते समय ही।

"शाम की आरती के लिए निमंत्रण देने भागीरथी आई थी।" शंकर बोला। वह सोया थोड़े ही। उसे भैया की परेशानी का भान हो गया था।

"गुड्डी; हुँ....कोई...समाचार?" गंगाधर अनमना ही पूछने लगा।

"तुम्हारे इरादे कई हैं, कहते मुस्कराकर सब कुछ सुना गई।"

"मुस्कराते?"

"हूँ, अवज्ञा की दृष्टि से नहीं। थोड़ा अविश्वास रहा होगा, बस। सहज ही उसे तुम्हारी बातें नई लगी होंगी।"

"इसकी उम्मीद नहीं रही...उतनी समझदारी!"

"कुछ लोगों का स्वभाव होता है, भैया, स्वीकार करने में थोड़ा अधिक अवसर चाहते हैं, अपनी-अपनी संस्कार-दशा के अनुरूप ही। वह चैन से

पली है।"

"वह क्या पढ़ी-लिखी भी नहीं ? इसी देश में रहती नहीं है ? चारों ओर की गतिविधि से आँखें मूँदे कान बंद रखना संभव भी कैसे, मनुष्य कहलाने वालों के लिए ? आश्चर्य ! इतना ही नहीं, मुझे भी वह भली-भाँति जानती-समझती है। हूँ....।"

"उसकी समझ में न आई हो, यह मेरा कहना नहीं। उसने अभी असहमति ही प्रकट की है, यही मेरा मतलब था। उन बातों को विवरणसहित बड़ी दिलचस्पी से सुनाती गई। मैं तुमसे क्या बताऊँ।"

"सुना गई सब ! कानों में उतनी बातें तो पड़ गई, बड़ा अच्छा हुआ। लेकिन सुनने-समझने में बड़ा अन्तर जो है। मुझे ठीक-ठीक अब तक समझने वाले केवल दो हैं—गुण्डण्णा, पार्वती। बस !"

"मैं भी हल्का-फुल्का ताड़ गया हूँ, भैया !" धीमी आवाज़ से नम्रता दर्शाते हुए शंकर बोला।

"आ ! सच ! शंकर बड़े भाई का हाथ अँधेरे में ही टटोल गया और गंगाधर ने छोटे भाई का हाथ पकड़ कर दबा दिया। कहा, "जो भी हो, तुम आजकल के नौजवान हो। मुसीबत में पले हो। दस-पाँच जगह घूमे हो। सैकड़ों से मिले भी हो। झट ग्रहण करने की क्षमता रखते हो।"

"तुम्हारा छोटा भाई जो ठहरा। मैं भी एक-न-एक सपना देखता हूँ। तुम्हारे ही अनुसार उसके बिना साँस लेना ही आफत है।"

"शंकर ! आज तक तुम्हारी सूझ पर ही गर्व करता था। सीना भी तुम्हें वही मिला है, मेरी भावी योजना—बाँध की कल्पना तुम्हें मालूम न होगी, है न ?"

"नहीं भैया ! सुना नही। वो क्या है ?"

"आज शाम की गुण्डण्णा, पारी, मैं—हम तीनों ने एक राय पक्की कर ली है। अभी उनमें कसर बाकी है। तुम्हें भी सुनाए देता हूँ।"

गंगाधर बाँध के बारे में ही नहीं, उससे मिलती-जुलती सारी बातें ज्यों-की-त्यों जोश के साथ शंकर को सुनाता गया। उसने कहना पूरा किया, तो दो बज रहे थे।

"भैया !"

शंकर कोई आपत्ति उठा दे। गंगाधर को संदेह हुआ। उसके मुँह से केवल 'क्या' ही निकला।

"मैं भी इसमें तुम्हारा साथ दूँ, जी बहुत चाहता है। लेकिन अभी अनुकूल समय नहीं आया है। पढ़ाई अधूरी ही नहीं छोड़ी जा सकेगी।" शंकर की वाणी में क्षमायाचना ध्वनित थी।

"उहूँ, पढ़ाई खटाई में न पड़े, यह ठीक नहीं। साधना पूरी हुए बिना सेवा के उतनी सार्थक भी न होगी। पूरी तैयारी भी एक प्रकार की सेवा ही है, शंकर! तुम्हारी क्षमता बढ़ेगी। वही कल काम आएगी। बात सही है न?"

"हाँ, भैया! मैं भी उससे सहमत हूँ। मैं पढ़ाई छोड़ने का नहीं, अध्यवसाय की साधना जारी रहेगी। तुम्हारी सलाह जँचती है। अच्छा, भैया! तुम मेरी कोई चिंता न करो, अनुज की कोई सहायता मुझसे न हो सकी, यह न सोचो। मैं अपनी व्यवस्था स्वयं ही कर लूँगा। तुम्हारी लक्ष्य-पूर्ति में वह बाधक न हो जाए।"

"शंकर, तुमने बड़े पते की बात कही है। उसकी कीमत कितनी बड़ी होगी, इसका अंदाज तुम्हें है या नहीं, मैं नहीं जानता। यह भी सेवा ही तो है। क्या इससे मेरे इस सत्प्रयास में सहायता न पहुँचेगी? दाता ही सहायक है, त्यागी नहीं? देने से न लेना ही श्रेष्ठतर है। देनेवाला, हो सकता है, पूरा दे भी न पाये। अतिरिक्त अंश मात्र दे। न लेना, इसका अर्थ है बहुत कुछ खो बैठना, हर संभव संकट सहते जाना। यही कारण है कि समाज में दानियों की अपेक्षा त्यागियों का मान बड़ा ऊँचा है। इससे बढ़कर और क्या माँगे छोटे से एक बड़ा भाई? अपने से जो बन पड़ेगा, उसका संकेत तुम दे ही चुके। तुम्हारा कितना ऋणी हूँ मैं! कैसे बताऊँ, शंकर।"

"कहाँ का ऋण! कैसा ऋणी! यह सब मन से निकाल दो, भैया।

"तुमने सीने पर से एक सिल ही उतार ली है। मैं अपना भाग्य कैसे सराहूँ। चारों ओर से इसी प्रकार का सहयोग मिल सके तो…।"

"मिलेगा ही, भैया! तुम्हारा शील ही वैसा है।"

'मैं अब निश्चिंत हो कुछ सो पाऊँगा, ऐसा लग रहा है, शंकर!"

दोनों भाइयों की आँखें थोड़ी ही देर में लग गईं।

सुबह निवृत्त होकर गंगाधर बाहर से लौटा, तो सावित्री और शंकर दोनों चौतरे पर बैठे दिखाई पड़े। अन्दर से अम्मा ने आवाज दी तो सावित्री उठी और दाढ़ी बनाने के लिए पानी लाने भीतर गई। वह स्नान-घर की ओर बढ़ा तो वहीं दोनों चूल्हे के सामने बैठे दिखाई पड़े। गंगाधर की इच्छा थी कि सब साथ काफी पीने के लिए जमा हों। बाकी सब थे, ये ही दो नहीं।

"सातू ! सातू !···कहाँ गई यह ? सुबह से ही दिखाई नहीं दे रही है··· शारदा, तश्तरी लगा दे बेटा, उपभाव के लिए-देख भैया कभी का बैठा है··· पद्दा, जल्दी करो बिटिया, दो-चार प्याले जल्द धो लाना, जल्दी कर।"

"क्या है अम्मा ?" कहती हुई सावित्री बाहर से दौड़ती आई। शंकर भी काफ़ी के समीप आ बैठा।

'दूध उतार ले, मुन्नी, उफान आने लगा है। काफ़ी छान दे तो, हाथ खाली नहीं हैं—तरकारी छील रही हूँ ! चूल्हे की दूसरी तरफ़ दाल पकने को आ गई होगी।" अम्मा कहती गईं।

सावित्री खुद्दी के चूर से बना उपभाव दिल खोलकर परसती गई।

"इतना !" गंगाधर चौंका। उसे परिमाण कुछ अधिक ही लगा।

"वह क्या ज्यादा है, भैया। भोजन कहाँ मिलेगा और कब, कौन जाने।" सावित्री को शंकर से उसकी यात्रा का संकेत मिल चुका था।

"कहाँ के माने क्या है री ?" अम्मा रसोई से पूछती गईं।

"चिकमगलूर में थोड़ा काम है, अम्मा। कल लौट आऊँगा।" गंगाधर ने सुनाया।

"यह क्या कर रहे हो, बेटा ! कल ही तो आए हो—बड़ी दूर से थके-मांदे। आज ही दूसरी दिशा की यात्रा ?" अम्मा ने आपत्ति की।

"यह कैसा काम आ पड़ा है, बड़ा जरूरी ?" ठाकुरजी के पूजन हेतु मंत्र पढ़ते घंटी हिलाते रहे पिताजी ने, दीनों को छुट्टी देकर, गंगाधर से पूछा।

"जरा इंजीनियर साहब से मिलना है।"

"यह बात ? कोई हंगामी नौकरी मिल जाए, यही विचार है ;"

"नहीं।"

"तो फिर ?"

"लौटकर सारी बातें सुनाऊँगा, पिताजी ! इंजीनियरी की पूछताछ कुछ करनी है।"

"लगे हाथों, अपना मतलब भी निकाल लो तो ?"

"अच्छी बात है।" नाहीं न कर सकने के कारण अनमना ही जवाब दिया।

"अजागरूकता न रहे, बेटा !" पिताजी ने फिर से सजग किया।

"अभी निकल जाना है ? थोड़ा और समय नहीं ?" अम्मा दूसरे ही विचार-जगत् में थीं। प्रसंग मात्र बदलने के उद्देश्य से इतना बोलीं।

"हूँ अम्मा। गाड़ी पकड़नी है जो।"

"पहले ही बताया होता, तो तड़के ही उठ जाती, रसोई तैयार करती, तुझे परस कर तसल्ली भी पा जाती न बेटा !"

"रहने दो अम्मा !" कहते गंगाधर उठ पड़ा ।

"चिकमगलूर जा ही रहे हो । वहाँ के डिस्ट्रिक्ट आफ़िस के बाबू तम्मय्याजी हैं न ? सुना है उनका एक लड़का है, ब्याहने लायक ! बी० ए० भी कर चुका होगा । कहीं स्कूल में मास्टरी करता है । तो उनसे भी मिलते और उनके कुमार की कुंडली माँग लेते, सावित्री की कुंडली से मिलान कर देखा जाए ।" पिताजी का आग्रह हुआ ।

"उन्हें पहले ही चिट्ठी भेजी है क्या ?" अम्मा पूछ बैठीं ।

"न भेजी भी है, तो क्या आपत्ति है ? मिल ले, अपना कुल-गोत्र बता दे तो कुंडली देने से अस्वीकार थोड़े करेंगे ?" पिताजी ने बिगड़ते हुए कहा ।

"पहले ही से जान-पहचान जो नहीं है ।" अम्मा कहती गईं ।

"जान-पहचान कर लेने का कोई और भी तरीका है ? बिरादरी के हीं तो हैं ? यह सब धर दो ताक़ पर । उससे संदेसा कह दो ।"

"वही होगा ।" अम्मा ने विवाद बढ़ने न दिया । गंगाधर को बीच में बोलने की आवश्यकता ही प्रतीत न हुई ।

गंगाधर बाहरवाले कमरे में खाकी जाँघिया, कमीज, सफेद मोजे आदि पहने भूरे रंग के जूते का फीता कसने लगा ।

"भैया !" कहती सावित्री तभी वहाँ आई । गंगाधर ने ऊपर देखा । सावित्री आकर दीवार के सहारे खड़ी हो गई ।

"क्या है, छोटी ?"

"कुछ नहीं, भैया,''''वह''' जो'''' पिताजी का संदेसा, ब्यास के लिए कुंडली इन झमेलों में नहीं पड़ना । अभी भागूँ, पारी सब क्वारियाँ ही नहीं, मेरी ही उम्र की ही तो हैं वे चन्द साल टल जाए, तो क्या बिगड़ जाएगा ! तुम अपना काम देख लेना, भैया ! जो भी बन पड़ेगा, मैं भी साथ दूँगी'''ठीक है न, भैया ?"

गंगाधर ने फीते कसना वहीं रोक दिया । उसकी ओर मुँह उठाए देखता ही रह गया, आश्चर्य और संतोष प्रकट करते । झट उठा और उसके निकट बढ़ा ।

"शंकर से मालूम हो गया क्या ?"

"हूँ ।" उसने सिर हिला कर कहा ।

'प्यारी बहन ! मैं तुम्हारा आभार मानता हूँ ! तुम्हारी यह सम्मति ही

सबसे बड़ी संपत्ति है मेरे लिए। मैं कितना बल संचय कर चुका हूँ, यह तुम क्या जानो? सचमुच, मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ। मेरी आशंकाएँ क्रमशः दूर हुई जा रही हैं। तुम और तुम्हारी उम्र की कुमारियाँ इस युग की हैं, युग का वेग पहचानती हैं। कितना उपकार तुम्हारा मानूँ; छोटी।'

"यह प्रशंसा रहने दो, भैया! राष्ट्र भर में न जाने कितने लोग कितने बड़े-बड़े काम में लगे होंगे! क्या-क्या कठिनाइयाँ सह ले रहे होंगे! हमारी ही कौन सी बड़ी बात है? पूरी जानकारी हो जाने पर और भी कुछ न कुछ करना ही होगा। यह भी तो अपना ही काम है, भैया!"

गंगाधर के मुँह से बोल न फूटे। वह बहन को स्थिर दृष्टि से देखता गया। आँखें छलछला उठीं, गला रुँध गया। अग्रज के सहज स्नेह से उद्वेलित होकर धीरे से उसका सिर सहलाया। गाल छू वह सयानी न हुई रहती तो उसे बाँहों से उठाकर चूम भी लेता, छुटपन में जैसे करता आया था। उसका भ्रातृप्रेम उमड़ उठा था। सावित्री मारे गर्व के शरमा गई। चेहरे पर ललाई दौड़ गई। उसे प्रकट न होने देने की संकोचशीलता के मारे, वह वहाँ से हट गई। उसके चले जाने के बाद भी गंगाधर कुछ देर तक जड़वत् खड़ा रह गया था—कलापूर्ण प्रतिमा की तरह। पीछे जूते के तस्मे कस लिए, जेब में एक नोटबुक, कलम, नपाई का फीता आदि ठूँस लिये। झोले में धोती, तौलिया रखना ही था कि शंकर कागज का एक बंडल ले आया।

"यह क्या है?" गंगाधर ने पूछा।

"इसमें अम्मा ने रास्ते के लिए कुछ बाँध दिया है। यह लो अपना शेविंग, साबुन टूथ ब्रश वगैरह।" शंकर ने सबको झोले में भर दिया।

"शंकर?"

"भैया!"

"सावित्री आई थी, जानते हो क्या कहती थी?"

"जानता हूँ, भैया! कह नहीं सकता, कितना उत्साह था उसके शब्दों में। उसका चेहरा चमक रहा था। पर उसकी बातचीत में तुम पर तो उसे निश्छल अनुराग और पूरा भरोसा है। फौरन फ़ैसला कर लिया और मुझसे कह भी दिया। वह वहीं तक रुक जाने वाली नहीं।"

"लगता है, तुमने जादू फेर दिया है उस पर।"

"भैया, जादूगरी न मुझमें है, न तुझमें ही, असल में वह किसी में नहीं मानी जा सकती। असली जादूगरी कारगुजारी में है, बड़ी-बड़ी कोशिशों में है।"

"मेरा भी यही कहना है। तुम ठीक कह रहे हो। ऐसे महान् कार्यों में व्यक्ति का हिस्सा नहीं के बराबर है, यही दृष्टिकोण चाहिए भी। उसका काम है। 'इसका काम है'—वाला भाव न हो, तो सबका सध जाता है। हर कोई उसे अपना मान लेता है और आसक्ति बढ़ती जाती है......अच्छा, अब चलना चाहिए।" कहते हुए गंगाधर ने अपनी पुरानी हैट चढ़ाई। अन्दर गया, अम्मा से विदा माँगी। बाकी भाई-बहनें साथ ले चलने का अनुरोध करते उसके हाथ थाम लेने को बढ़ीं,—"गौरी टीले पर ले चलूँगा, वहाँ धारा के गड्डे पर सबसे काम लिया जाएगा। सुना, वहाँ कोई बाँध उठने वाला है। अब छुट्टी दे दो। चिकमगलूर से मिठाई लेता आऊँगा।" इन शब्दों में गंगाधर ने सबों को आश्वासन दिया। सब मान गए। बारी-बारी से उन्हें ऊपर उठा-उतरा कर हँसते-हँसते बाहर निकला।

शंकर भैया के साथ स्टेशन तक गया। गुण्डण्णा अपने घर के बरामदे में ही खड़ा था, उसके हाथ में झोला था। पार्वती हाथ हिलाते यात्रा की मंगलकामना प्रकट करती रही।

●●●

: ११ :

बस चिक्मगलूर पहुँची, तो तीन बज चुके। दोनों साथी साथ लाई चीजें कडूर में ही उड़ा चुके थे। नाश्ता भी कोई भोजन के बराबर है? भूख थी ही। भीमय्यर होटल गए। हाथ-मुंह धो लिया। दो-दो इड्ली खाईं, काफ़ी पी ली। फिर एक्जिक्यूटिव इंजीनियर आफ़िस जाने के लिए उठे।

बाहर निकलते समय 'आप कहाँ के हैं? कैसे आये हैं?' भीमय्यर ने कुतूहलवश पूछा। दोनों ने आने का कारण बताया। यह सुनकर अय्यर साहब ने फरमाया,—सुब्बाराव जी बड़े बुजुर्ग आदमी हैं। कुशाग्र बुद्धिवाले और अनुभवी हैं। लोगों की उनके बारे में यही धारणा है। सुना है, उतने ही तुनुकमिजाज़ी भी हैं। पर दिल बड़ा नेक है।" भीमय्यर ने अपनी जानकारी की बात दी।

"गरममिज़ाज के हों तो हमारा क्या बिगाड़ेंगे? हम हाथ जोड़े भीख माँगने थोड़े ही जा रहे हैं। हम कोई कायर नहीं।" गुण्डण्णा की उक्ति में निःस्वार्थता से प्रेरित निर्भीकता उसके स्वभाव के अनुकूल थी।

अर्दली के हाथ पुर्जा भीतर भेजा गया। प्रतिक्रिया स्वरूप साहब की यह उक्ति इनका रंग-ढंग कैसा है ? इन्हें बाहर ही सुनाई पड़ गई।

"नौजवान हैं, हजूर ! एक हैट-पैंट······।"

"कह दो, साहब अभी खाली नहीं हैं।" यह उत्तर भी दोनों ने सुना।

गुण्डण्णा अर्दली के लौटकर बाहर आने के पहले ही गंगाधर का हाथ पकड़ खोदते हुए फाटक की ओर बढ़ गया।

"क्षमा कीजिए, सर।" गंगाधर ने हैट उतार ली और विनीत स्वर से बोला।

"बड़ी दूर से आए हैं, सर !···आपही से मिलने के लिए। बड़ा जरूरी काम······।"

"ऐसा कौन जरूरी काम ?···हुँ····चले आइए।" साहब के स्वर में गुर्राहट थी।

साथी कदम बढ़ाते गए।

साहब का चेम्बर आधुनिक ढंग से सजा था। मेज कुर्सियाँ, फाइलें, नक्शे, रजिस्टर, आलमारियाँ, साहब के लिए रिवालविंग चेयर, ऊपर शानदार सीलिंग फैन वगैरह।

साहब उजले केशवाले सिर पर साफा चढ़ाते हुए दर्प से पूछने लगे, "कैसा—काम ?" उन्होंने न आगंतुकों को बैठने के लिए कहा, न इशारा ही किया। दोनों खड़े ही रहे।

"आप बनारस इंजीनियरिंग कालेज में शिक्षा····।' गुण्डण्णा का मुँह खुला। वह गंगाधर का परिचय साहब को देने लगा था।

"इस समय अदली-बदली का काम-धाम कोई खाली नहीं। यही बड़ा जरूरी···।" गरजते हुए साहब ने सामने पड़े नक्शे पर नजर फेर ली।

"मैं नौकरी की तलाश में नहीं आया, सर !" गंगाधर तिलमिला उठा था।

"परिश्रम करने आये हैं। धीरे गम्भीर स्वर से गुण्डण्णा बोला।"

"क्या !····" साहब इस धैर्य-गांभीर्य से सहमते देखने लगे। पूछ बैठे "कोई ठेका-वेका ? उसके लिए····।"

"हमें उन सबसे कोई प्रयोजन नहीं।" गंगाधर ने शालीनता से उत्तर दिया।

"हूँ···तो क्या है ? झटपट कहते क्यों नहीं ? मुझे फुर्सत नहीं है और आप पहेली बुझा रहे हैं। पंचवर्षीय योजना के इतने काम सिर पर सवार हैं—

पहले से ही। इस बीच…।"

"हम भी उसी सिलसिले में मिलने आए हैं।" गंगाधर बोला।

"हूँ! वह क्या है, कौन सा काम है? बोलिए तो सही।"

"बेलगूर की सुबरनधारा…।"

"उसके फेर में क्यों पड़े हैं गड़े मुर्दे उखाड़ने के लिए क्यों बेताब हैं? आप के गाँव वालों की ओर से सैकड़ों अर्जियाँ पड़ चुकी हैं। सबका जवाब भी दिया जा चुका है—बाँध का उठाया जाना संभव नहीं, धनाभाव को पूरा करना साध्य नहीं। अब आपकी यह अर्जी…।"

"हम अर्जी देने नहीं आए।" गंगाधर दृढ़ता से कह उठा।

"तो फिर क्या दर्शन देने आए हैं?"

"बाँध उठाने।" गुण्डण्णा के कथन में दृढ़ता थी।

"क्या कहा!··वह!··बाँध उठाएँगे····आप लोग! हो हू हो हो!" साहब ने कहकहे लगाए। आँखों में पानी छलक उठा।" बड़ा मजाक सूझा है, भाई! आपको! नमूने हैं। आप लारेल-हार्डी के गुट के तो नहीं? सिनेमा-विनेमा····हूह हूह····हू।" सहसा उनकी हँसी रुकी। गंगाधर, गुण्डण्णा दोनों की गरिमामयी भंगिमा ने उसे रोका था। दोनों को बड़े अन्दाज से देखा—पारखी की सूक्ष्मता से, संदेह से और गम्भीरता से भी। दूसरे ही क्षण साहब की आकृति मृदुल हो उठी, चेहरे पर मुस्कान दौड़ गई।

"आप पर कोई झक या सनक नहीं है? सवाल समझ-बूझ कर कर रहे हैं?" वाणी में सहानुभूति थी, पर अवज्ञा-मिश्रित।

"सच मानिए, सर! हम सब कुछ सोच-समझकर क्या आप सब।" गंगाधर के कथन में आस्था की प्रतीति थी। साहब की व्यंग्यपूर्ण उपेक्षा दोनों को चिढ़ा न सकी। दोनों कर्मकुशल पुरुषार्थियों की-सी समाधि में लीन थे।

"हूँ, आप पर ही दया आती है। अभी दुनियाँ में आँखें खोल रहे हैं। अनजान हैं, नादान हैं। परीक्षा में पास-वास हो जाएँ तो नौकरी-चाकरी में लग जाइए, चैन से रहिए। इस समय तो जगहों की कमी ही नहीं। उत्तर भारत पहुँच जाइए, तो मोटी तनखाह भी हाथ लग जाय।"

"हमारा इरादा पक्का हो गया है, सर! उसे बदला नहीं जा सकता, चाहे जितने भी जंजाल आ जाएँ। कोशिश होगी ही, कामयाबी मिले या नहीं। लगा तो तीर, नहीं तो तुक्का।" गुण्डण्णा तड़ातड़ बोल उठा।

"सारे राष्ट्र में, जनता ही, जी-जान से कितने ही काम निभा ले जा रही

हैं, सर ! बिहार में कोसी नदी के उपद्रव से बचने के लिए बीस-तीस हजार लोग जुट गए और चन्द ही दिनों में तीस-चालीस मील लम्बा बाँध बँध गया। महाराष्ट्र वाले कप्तान मोहितेजी के नेतृत्व में कितनी ही सड़कें बनी हैं, स्कूल बने हैं ? हाल में ही अहमदनगर जिले में बारह हजार आदमियों ने पन्द्रह मील लम्बी सड़क तैयार कर दी। सरकार की योजना के लिए हमने अपने गांव की ओर से एक अनमोल भेंट चढ़ाने का संकल्प कर लिया है। वह पूरा होकर ही रहेगा।"

"हूँ !...हूँ....!" साहब ने सिर हिलाते हुए कहा,—"आप वैसे नहीं, जैसा मैंने पहले अनुमान लगाया था...आप तो विचित्र जीवट के आदमी लगते हैं। आपकी दिलेरी का समर्थक हूँ, प्रशंसक भी। आपने जिस उत्साह और भावावेश में इस असाधारण योजना की परिकल्पना की है, उसकी साधक-बाधक समस्त संभावनाओं पर सोच लिया है क्या...उहुँ...न....न। हुँ....बैठ जाइये, बता दूँ सारी बातें आपको। मैं खाली नहीं हूँ, फिर भी आप को देखकर इस समय दया आ रही है। लेकिन असलियत से आप अनजान रह जाएँ, यह भी ठीक न होगा। अन्यथा आप काम करने में जोश दिखाएँ और नतीजा कुछ और ही निकले। हवन करने में लगें और दाढ़ी ही जला लें। इधर हाथ लगनेवाली नौकरी भी निकल जाए, साथ ही पास रही पूँजी भी गँवा बैठें। जीवन भी धूल में मिल जाए और जनता के उपहास के पात्र भी बनें। सोचिए न इन सब फ़जीहतों से क्या फ़ायदा।"

"हम लोगों ने भी समस्या पर थोड़ा-बहुत विचार कर लिया है, सर ! लेकिन धीरज खो बैठें तो काम कैसे बने ? या तो काम बन जाए और जीत हासिल हो अथवा मजबूरी हो गई हार भी मान लें। इसमें बेइज्जती कैसी ? हम सम्भावित बाधाओं से डरनेवाले नहीं।" गुण्डण्णा ने टेक पकड़ी।

"अच्छी बात है, भाई ! हिम्मत तो होनी ही चाहिए। लेकिन उसकी भी कोई हद रहे या नहीं ? आप बैठ तो जाइए...बैठिए सही। आपकी उड़ान से कोई अरमान पूरा होने का नहीं। लेकिन आपको देखकर मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि अपने नौजवानों में इस ढर्रे पर सोचने लायक लोग भी हैं।"

दोनों साथी कुर्सियों पर विराजे।

"इन किटपिट वाले प्राजेक्टों-योजनाओं का हाल मैं खूब जानता हूँ। दस-पांच पूरे करने में ही मेरे बाल पक गये।" साहब ने साफ़ा उतारते हुए अपनी खोपड़ी दिखाई। फिर कहा, "मेरी बातों का संतोषजनक उत्तर मिल

जाए; तो मैं आपकी पूरी बातें सुन लूँ। समझे।" चपरासी को आवाज दी, "रंगप्पा!"

चपरासी आया।

"देखो, काफ़ी लाने को कह देना।"

"कोई जरूरत नहीं, सर! अभी-अभी पी आए हैं। अनेक धन्यवाद, सर!"

"हर्ज नहीं। यह किस्सा जल्द खत्म होता नहीं दिखता। लेकिन, आप सरीखे उत्साही तरुणों को टाल देना उचित नहीं लगता। पहले की बात भूल जाएँ। मैं ज़रा तुनुकमिज़ाज हूँ।"

"इसके लिए आप चिंतित न हों, सर! काम पर निकलें, तो तरह-तरह के अनुभव हो ही जाते हैं। यह स्वाभाविक भी है। आप हमें जानते ही न थे। जानबूझ कर तो कुछ नहीं कहा। तुरन्त वास्तविकता मालूम हुई, तो उसके अनुकूल बन गए। आपकी दया...।" गंगाधर नम्रता से बोला।

"छिः, छिः!...सुनिए, तरह-तरह के आदमी रोज़ धावा बोलते रहते हैं। निरे स्वार्थी—एक न एक माँग होती ही रहती है। काम भी पड़ा रहता है। इसे देखते-देखते हम भी तंग आ जाते हैं और संतुलन बिगड़ जाता है। बस।"

द्रव्य-संग्रह की चर्चा होने लगी, तो उन नौजवानों को अपने विचार और अपनी व्यवस्था दोनों को व्यक्त करने का अवसर मिल गया। वे कहते जाते और साहब ध्यान से सुनते सिर हिलाते रहते। काफी रख दी गई थी। किसी को उसके ठंडे पड़ जाने की भी सुध न रही।

"आपका ध्येय स्तुत्य और प्रयोगार्ह भी है। वर्तमान परिस्थिति भी अनुकूल हैं। आप जो कहते हैं कि जनता के श्रम से अधिकांश कार्य हो जाए, बड़ा सुन्दर हैं। लेकिन, सब केवल थियरी लगती है। वास्तव में काम करते समय वह असाध्य ही प्रतीत होगी। जनता थोड़ा-बहुत देगी भी, केवल अनिवार्य व्यय के लिए, यह मानने लायक नहीं है। आप स्वयं जान जाएँगे, जबकि इसके लिए चंदा उगाहने लगेंगे। ज़रूरी ज़मीन आप दाम पर या मुआवज़ा देकर हाथ में करना नहीं चाहते। भावेजी की तरह भू-दान-पद्धति से माँगने की बात कहते हैं। यह भी दूर की कौड़ी हांकने के बराबर है। उनको सफलता मिल गई, तो आपको भी मिल जाएगी? प्रत्येक प्रश्न के लिए आपके पास उत्तर तैयार हैं। लेकिन, उन उत्तरों से मुझे संतोष नहीं होता। उसको छोड़ दीजिए। छोड़िए, मैं आपका उत्साह कम करना नहीं चाहता। सब कुछ ठप भी हो गया, तो नुकसान ही क्या है? आपका ही समय तथा

प्रयास व्यर्थ जाएगा ? दूसरा कोई बाधित न होगा।"

इंजीनियरी के पहलुओं पर बातें होने लगीं, तो साहब का परामर्श यह हुआ, "सुवरनधारा की योजना अवश्य ही उत्तम है। मैं खुद वहाँ पर घूम आया हूँ और सब कुछ देखा-परखा भी है। मिट्टी की जाँच से भी अनुकूल तथ्य ही मिल सकेंगे, इसका विश्वास भी है। सर्वे तैयार करना और आवश्यक विवरण संग्रह करना ही रह गया। देख-रेख में काम करना अलग। हममें से कोई खाली नहीं है। विभाग की ओर से कोई निगरानी की व्यवस्था संभव नहीं है। आप भी इस क्षेत्र के लिए नए हैं—इंजीनियरी करने पर भी…हम लोगों ने प्रॉजेक्ट-संबंधी विवरण को स्पर्श तक नहीं किया। केवल नक्शे से ही अंदाज़ नहीं लगाया है। इसलिए शुरू से ही काम करना होगा।"

"करेंगे सर! मैंने कॉलेज में एक प्रॉजेक्ट तैयार किया है। बड़े-बड़े प्रॉजेक्ट देखे भी हैं। हीराकुंड में ट्रेनिंग भी हुई है। सब कुछ तैयार हो जाने के बाद आपको लाकर दिखाएँगे। आप उसे देखकर आवश्यक संशोधन सर्वे इन कामों और सर्वेइंग आदि करें और सलाहों से हमारी सहायता भी करने की कृपा दिखाएँ। मिट्टी की जाँच के लिए लेवल, स्टाफनेप आदि की व्यवस्था भी विभाग की ओर से करा दें। आगे भी आप के नेतृत्व में ही काम चलता जायगा। इसका मतलब यह नहीं कि अपना पूरा समय इसी के लिए लगा दें। मैं भी थोड़ा-बहुत देख-भाल लूँगा। आपके सुझाए तरीकों से काम करा लूँगा, इतना तो साहस इस जन में है। हमारे सामने कोई अड़चन आ जाए तो हम ही आपके पास दौड़े आएँगे…।"

"सो ठीक है, मैं करूँ या नहीं, काम तो विभाग के नेतृत्व में चलेगा ही। आप जो कह रहे हैं, वह व्यावहारिक है; अन्यथा सरकार से मंजूरी कैसे मिलेगी ? उसकी मंजूरी के बिना आप न तो जमीन ही नाप सकेंगे और बाँध उठाने की बात ही खपले में पड़ जा सकती है।"

"सही है। यह सरकार का ही काम जो है। आपके आदेशों का पालन होगा। आपको ठीक जँचे तो मंजूरी दिलाना, काम की प्रगति को तीव्र करने में परामर्श देना, यह सब काम आपके ही के जिम्मे।"

"सो तो हो जाएगा। आपकी योजना सरकार के सामने रखने में ही बड़ा भय लगता है, कुछ संकोच भी होता है। कहीं मैं भी मूर्ख न माना जाऊँ, यही आशंका है। इन्जीनियरी विभाग की कोई चिंता नहीं सता रही…हुँ…कहने-वाले कह लें, बला से! जनता का उत्साह ठंडा न पड़े, इस आशय से प्रॉजेक्ट

स्वीकार किया और मंजूरी के लिए भेज दी, यही उत्तर दे दिया जाएगा। इस समय कितने ही ऐसे प्रयास हो रहे हैं, इतना बड़ा काम भले ही न हो। आगे जो भी हो जाए, मुझसे मतलब ? उसका सारा नफा-नुकसान आप ही का तो है। पहले प्रॉजेक्ट तैयार कर लाइए, पीछे देखा जाएगा। सर्वे के लिए जो भी साधन चाहते हों, यथासंभव उनकी व्यवस्था कर देने के लिए नरगेरे के असिस्टेंट इन्जीनियर के नाम पत्र देता हूँ।"

"अनेक धन्यवाद, सर!"

"आपने इन्जीनियरी पढ़ी है, इन सबका सदुपयोग होगा, इसी भरोसे और निजी जिम्मेदारी पर विभागीय वस्तुएँ दिला रहा हूँ, विशेष सावधानी बर्ती जाए ! सिर धड़ से अलग हो जाए, ऐसा काम न हो।"

"हमारे सिर हाजिर हैं, सर ?" गुण्डण्णा ने आश्वासन दिया।

"लेकिन वह मेरे सिर की जगह कैसे, भाई !" साहब हँस पड़े। गंगाधर और गुण्डण्णा—दोनों भी अपनी हँसी न रोक सके।

"अब इसमें तो मैं फँस ही गया। देखें क्या परिणाम होता है। आपकी बातें सुन लेने के बाद आपके प्रयास पर पानी फेरना मुझे ठीक नहीं जँच रहा है। नया प्रयोग है, प्रोत्साहन मिलना ही चाहिए...।" साहब कुछ अविश्वास के साथ ही बोले।

"आपके आशीर्वाद से, प्रोत्साहन से हमारा बोझ बहुत कुछ हल्का हो गया, सर ! वरना हमारी सुने कौन ?" गंगाधर ने कृतज्ञता व्यक्त की।

"हूँ, एक प्रकार से आपका कहना सही है। आप मूर्ख हैं ही। अब एक मूर्ख मैं भी आपसे आ मिला हूँ ! ह् ह हा ! आपकी उत्साह-रूपी भँवर मुझे भी खींचती ले गई है। मुझे कोई आशा नहीं है, भाई, मान भले ही गया होऊँ। भगवान् भला करे। बस।"

"सत्प्रयासों में दैव को भी अनुकूल होना चाहिए न, सर।" गुण्डण्णा उत्तेजित होकर बोला।

"दैव जो करे, कौन जाने ! कर्म-वर्म का बड़ा शोर मचानेवाले हैं भी। हम तो ईंट-गारा से मतलब रखते हैं, इस विषय में शून्य हैं। कौन जाने आपका कर्म टेढ़ा न होकर सीधा ही रहे ? किसी भी हालत में यह प्रयास सराहनीय है, उत्तम है, यही मेरे सन्तोष के लिए पर्याप्त है।" साहब ने बात पूरी की। टाईपिस्ट को भी बुलवा भेजा।

"आपका विशेष समय ले लिया।" गंगाधर अपराधी की तरह बोला।

"इंजीनियर के लिए समय-असमय कैसा ? इस वक्त तो पंचवर्षीय योजना के कारण घर दफ़्तर दोनों एक हो गए हैं। मैंने प्रण किया है कि आज का कोई भी काम कल के भरोसे न रोका जाए। आज का कार्य आज, कल का काम कल, हो सके तो आगामी कल के काम का कुछ अंश आज ही पूरा कर लिया जाए। योचना को मूर्तरूप देने के लिए मैं अपनी सेवा में कोई कमी न रखूँगा।"

"काश, सभी अधिकारी यही तरीका अपना पाते।" गंगाधर आश्चर्य-मिश्रित हर्ष से बोला।

"जिन अधिकारियों की आत्मा मरी नहीं, वे यही तरीका अपना रहे हैं, अपनाते जा रहे हैं। इस डिवीजन के अधिकारियों से मुझे पूरा-पूरा सहयोग मिल रहा है। नरगेरे जा रहे न! वहाँ के असिस्टेंट इंजीनियर लिंगेगौडर को देखिए.। वे एक आदर्श अफसर हैं। अभी युवक हैं, खूब मेनहत करते हैं।" साहब ने प्रशंसा और तृप्ति व्यक्त की।

"आप मार्गदर्शन करें तो वे भी···।" गुण्डण्णा ने शह दी।

"यह बात नहीं। उतने से काम न बनेगा। उनमें भी स्वयं की प्रेरणा होनी चाहिए। अपने को ही देख लीजिए। यह कौन पागलपन आप पर सवार है ? उसी तरह पावन प्रतिज्ञा से प्रेरित जितने भी कार्य हैं, वे इसी कोटि के ठहरेंगे।"

"सर! ये लिंगेगाडर कौन हैं ? ए० सी० लिंगेगौडर !··· लम्बे गोरे····" गंगाधर ने कुछ स्मरण करते हुए पूछा।

"वे ही, वे ही तो! आप उन्हें जानते हैं ?"

"मैं जब बंगलौर में बी० एस-सी० का छात्र था, ये महाशय इंजीनियरी में थे। हम दोनों क्रम से यूनियन के सेक्रेटरी और वाइस प्रेसिडेंट के रूप में साथ काम करते थे। मैं जब बनारस गया तभी वे अमरीका गए।"

"यह बात ? तब तो बड़े निकट हो गए। आप दोनों की जोड़ी फबती है। खैर, प्रसन्नता की ही बात है। विभाग के नियमों का पालन करते हुए वे आपको हर संभव सहायता पहुँचाएँगे। वही लिखाए देता हूँ। यों देखा जाय तो ऐसे प्रयासों में, अपनी ताकत भर सेवा के लिए प्रस्तुत रहना, अपना पवित्र कर्त्तव्य है ही।" साहब बड़ी खुशी से बोले।

पत्र में सर्वे के लिए आवश्यक वस्तुएँ देने की बात लिखाई गई हो, साहब ने उस हल्के के विभागीय कर्मचारियों यथासंभव सहयोग प्रदान करने का

आदेश भी अंकित करा दिया। अपने आफिस में सुवरन-धारा संबंधी योजना के रहे-सहे विवरणों का वोध कराया। बिदा करते समय उठ खड़े हुए और दोनों से हाथ मिलाते हुए उन्होंने कहा, "आपका प्रयास सफल हो, यही मेरी मंगल-कामना है। प्रयास जारी रहे। आगे प्रभु की कृपा !"

बाहर आने के बाद गुण्डण्णा बोला; "देख लेना, साहब से घनिष्ठता अपनी बढ़ती ही जाएगी। झगड़ालू गिने जानेवालों का यही स्वभाव होता है। बड़े हुनरमंद और हिम्मती भी लगते हैं; वरना इतना ढाढ़स कैसे बँधाते ? झट रुख बदल गया।"

वह बड़ा प्रसन्न था। गंगाधर ने यही कहते बात पूरी की, "यह इन महत्कार्यों, प्रयासों और युग की आकांक्षाओं का प्रभाव है। जो भी बन पड़े, उसके लिए अधिकाधिक प्रयास करने की आंतरिक प्रेरणा परिणाम का है।"

दोनों ने प्रचार-कार्य हेतु योजना-संबंधी कई पुस्तकें और नक्शे भी खरीद लिए। आखिरी बस पर सवार हो कडूर पहुँचे। आधी रातवाली गाड़ी पकड़ी। भोर में ही टहलते हुए नरगेरे आ गए। 'वेलक' होटल में प्रातविधि पूरी कर ली। उनका विचार हुआ कि लिगेगौर के काम पर निकल जाने से पहले ही उनसे मिल लिया जाए। सो दोनों सात ही बजे उनके निवास की ओर बढ़े।

गोडर साहब का दफ्तर उनके निवास के सामने ही था। आफिस से उनकी आवाज सुनाई पड़ी, तो दोनों वहीं पहुँचे। मगर वे किसी से बातें कर रहे थे। अतः दोनों प्रतीक्षा करने लगे।

"अस्पताल के ऑपरेशन रूम की रूफिंग-छत की पिटाई-कल पूरी नहीं हुई ?"

"बड़ी देर जो हो गई; सर !" कर्मचारी ने उत्तर दिया।

"तो क्या होता। रात भर काम जारी रखते, काम तो पूरा हो जाता। दूसरा दल तैनात करते। किसी भी हालत में उसे पूरा करना ही था। दैनिक कार्य-सूची बनाने से क्या लाभ, जब उसके अनुसार काम ही न हो। खैर, यह सब हरगिज न चलेगा। यह दूसरी बार आप ढिलाई कर रहे हैं, शंकरप्पा। हैं तो पुराने आदमी, लेकिन यह न भूलें कि काम नए जमाने में कर रहे हैं। रोज इसकी सुमिरनी भी सरकाते जाइए—दूसरे जप की तरह। आप के कारण क्या देश का काम रुका रहे ? सोचिए तो सही, कितनी भद हो जाएगी ! उहुँ, आज कल का अधूरा काम भी पूरा हो जाए। आज ही...हुँ....पूर्व-निश्चय के अनुसार सब कमरों की छतें पट जानी चाहिए....समझे ?"

"मुश्किल है, सर ! रात में भी काम चला रखा है। दो दिन के काम एक ही दिन ! अभी छड़ें मुड़वानी हैं, 'फोर्म वर्क' बाकी है...।"

"-सुनिए, न करने के सौ बहाने हो सकते हैं, हैं भी। लेकिन 'होना है' के लिए अकेला नारा है—निश्चित प्रणाली से कर्त्तव्य-पालन। बाधाओं के रहते काम निभाना सबसे बड़ी बात है। पूरा कर दीजिए न। जरूरत पड़ने पर तीन शिफ्ट कर लीजिए।"

ध्वनि से अविश्वास स्पष्ट था।

"पहले की तरह, अब भी साथ करके दिखा दूँ ? वह भी सही। चलिए, मैं ही देखरेख कर लूँगा।"

"नाराज न हों श्रीमान्। किसी भी तरह निपटा दूँगा।"

"जो भी मदद चाहिए, ले लीजिए। मैं तैयार हूँ। काम तो पूरा होना है। मैंने सब कुछ अपनी ओर से किया है कि नहीं ?"

"किया है, सर !"

"फिर, आप अपना भी काम कीजिए। पीछे रिपोर्ट भेज दीजिए। राह देखता रहूँगा।"

"वही होगा, सर !"

"शंकरप्प ! ज़रा सोचिए भला ! यह हम दोनों का या हमारे घर का काम नहीं। देश का काम है। ढिलाई उचित नहीं। सबका सहयोग समय पर मिलना ही चाहिए। खुद उत्साह बना रहे, दबाव से काम अच्छा नहीं होता। यह कोरी नौकरी न समझें, देश में चल रहे बड़े-बड़े प्रयासों में अपनी सेवा है। समझ गए न—? गुड-शाबाश-! आपकी सर्विस तीन साल बाकी है। तीस सालों में जो न बन पड़ा, उसे अब करना होगा। विदेशी सरकार जो सौ साल में नहीं कर सकी, उसे हमारी जनतांत्रिक सरकार दस साल में, पाँच साल में ही पूरा करने के लिए कमर कसे खड़ी हुई। मान लें कि इसमें से एक हिस्सा आपके जिम्मे भी आ पड़ा है। अच्छा, अब काम देखिए।"

सब-ओवरसियर बाहर निकले। उनके चेहरे पर रोष और असंतोष नहीं, बल्कि दृढ़ निश्चय था।

गंगाधर से मिलते ही लिंगेगौडर बड़े खुश हुए। प्रेम से स्वागत किया। थोड़ी देर तक दोनों अतीत के मधुर सम्बन्धों और बाद के उतार-चढ़ाव का लेखा-जोखा लगाते रहे। लिंगेगौड़र अपने दो साल की सर्विस में तैयार तालाब; सड़कें, इमारतें, आदि का उल्लेख करते जा रहे थे। गंगाधर ने अपने ही से

सवाल किया, 'दो साल पहले इंजीनियरी न पूरी कर कोई भूल तो नहीं की ?' अपनी-अपनी शंकरप्प से हुई बातचीत का ज़िक्र भी आया।

"इस सबडिविजन में सभी काम निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार ही हो रहे हैं। यह अस्पताल, गंगापुर का तालाब, ये ही दो रह-रह कर पिछड़ गए हैं। इस दशा में, इच्छा न होते हुए भी, थोड़ा-बहुत नाराज होना पड़ता है। बंदे को भी मैदान में उतर जाना होता है। हाल ही में गंगापुर कैम्प से वहाँ का काम पूरा कर लौटा हूँ। गैस रखकर काम करना आवश्यक हो गया। देखिए न, बरसात शुरू हुआ चाहती है। तालाब का काम अधूरा रहता, तो साल भर का पानी फ़िज़ूल बह जाता। उपज से होने वाली आय, वह बड़ी छोटी ही क्यों न हो-हाथ नहीं लगती न ! अब हालत उतनी खराब नहीं है। खाली ऊपरी हिस्से का काम ही शेष रह गया है। वह भी हो जाएगा; इसी पहली योजना में। अस्पताल का काम भी पहली योजना का है। ठान लिया है, पूरा हो ही जाए। पाँच महीने के अन्दर काम पूरा करने के लिए कोई ठेकेदार तैयार न हुआ। मैंने विभाग की ओर से ही काम शुरू कर दिया है, ऊपर से मंजूरी भी आ गई है। यह मेरी तत्परता क्षिप्रता कुछेक सहकर्मियों को नहीं रुचती। उनके जमाने में एक पंचायत हॉल एक साल तक बनता रहा। यह अस्पताल उससे दस-गुना विशाल है। तो यह पाँच महीनों में क्योंकर पूरा हो, यही उनका तर्क है। बहुतेरे कुछ-कुछ समझने भी लग गए हैं। लेकिन और भी कई उसी बैलगाड़ी की चाल के क़ायल हैं। ज़माना घंटे में हजार से भी ज्यादा मीलों की चाल से चलनेवाले जेट का है, यह तथ्य अभी उनसे कोसों दूर है। यह जाना भी कोई साधारण काम नहीं। देश में कितना होना चाहिए, कितने समय के भीतर होना चाहिए, आदि की जानकारी उन्हें कराई जाए, तो अच्छा परिणाम निकलने की संभावना है। यहाँ इंजीनियर भी रहो, लेक्चरर भी झाड़ो-समय तथा कार्य की गतिविधि के अनुरूप। यह उपदेशकों का काम—ह्‌ह !" हँसते-हँसते लिगेगौडर ने पूरा किया।

"सही बात है। हम सब मिलकर देश को बनानेवाले हैं ! खाली इंजीनियर, डाक्टर, मास्टर, मिनिस्टर मात्र बने रहने से काम न होगा।"

"वह ज़माना लद गया। वस्तु-संपर्क की भाँति ही जन-संपर्क भी रहना चाहिए। मौका देखकर इंजीनियरी में ही नहीं, अन्य दिशाओं में भी जनता का मार्ग-दर्शन करना ही होगा। इसके लिए पहली बात यह कि विषयों की अपनी जानकारी पक्की होनी चाहिए। एक बड़ी मशीन में अपना स्थान-कार्य का बोध

हो और उसके अनुरूप अपना दायित्व निभाया जाए। यही कारण है कि इन सबके लिए आवश्यक क्षमता की नींव गहरी हो, पक्की हो। मैं सब जानकारों के मुँह से यही एक महत्त्वपूर्ण बात सदा से सुनता आता हूँ।"

"देश की सभी वर्गों के लोगों को युग के अनुरूप योग्यतासंपन्न होना होगा, हृदय में कैसी जागृति पैदा करनी होगी। इससे सबका काम युग की आवश्यकता के मेल में होने लगेगा और सब कुछ शुभ परिणामकारक भी हो सकेगा। वस्तुस्थिति यह है कि इस बृहत्कार्य में योग न देने लायक एक भी व्यक्ति यहाँ ढूँढे न मिलेगा। हर कोई अपनी-अपनी अवस्था-क्षमता के अनुसार इसमें विशेष योगदान करे। इसी प्रवृत्ति से कार्य में तत्पर हैं! एक्ज़िक्यूटिव इंजीनियर सुब्बरावजी ने आपकी बड़ी सराहना की—श्री गंगाधर ने साहब की बातें कह सुनाईं। लिगेगौडर का चेहरा खिल उठा।

"उनसे कब मिले थे? किस सिलसिले में?"

जवाब में गंगाधर ने उनसे लाया पत्र साहब के आगे रख दिया।

"यह क्या, यह काम, मेरी ओर से सहायता?"

गंगाधर को अब तक विषय पूरा कंठस्थ हो गया था। उसने विस्तार से सबका वर्णन कर दिया। गुण्डण्णा बीच-बीच में कोई-कोई बात जोड़ देता था।

गंगाधर का वर्णन-वैचित्र्य गौडर को मुग्ध करता गया, वे अविराम भाव से उसकी बातें सुनते गए। बातें पूरी हो जाने के बाद भी गौडर मौन ही रहे। उनकी दृष्टि अधिकतर पंचवर्षीय योजना के नक्शों पर, कभी दीवार पर लटके प्रोग्रेस चार्टों पर और कभी-कभी सामने बैठे साथियों पर घूमती जाती थी। कई मिनट बीत गए।

"कहिए गौडर साहब! हमें आप भी औरों की तरह झक्की-सनकी ही मान कर सोच में पड़े हैं क्या?" मुस्कुराते हुए गंगाधर ने पूछा।

जवाब में गौडर हँसे नहीं, उन्होंने बड़े स्नेह से गंगाधर का हाथ थाम लिया। बोले "असूया? नहीं...स्पर्धा का अनुभव कर रहा हूँ!"

"धन्यवाद!" गंगाधर आगे कहता गया, हमारी मित्रता तो पुरानी है। आपके बारे में बहुत कुछ सुनने को मिला था। आज ही सुबह अपनी आँखों के सामने ही घटी घटनाओं से उसका समर्थन भी हो चुका था। इन बातों से मुझे लगा था कि आप इस प्रयास की उपेक्षा न करेंगे। लेकिन आपके मौन से धक्का लगा। और फिर तुरन्त बाद की प्रतिक्रिया का यह रूप-रंग स्वप्न में भी

मुझे ऐसी शीतल वाणी सुनने की आशा न थी। इससे हमारा बल ही नहीं बढ़ा है, बल्कि आत्मविश्वास भी पुष्ट हुआ है।"

"सत्पात्र से कही बानी फलदायिनी।" गुण्डण्णा ने पुट दिया।

"गंगाधर, हम दोनों समवयस्क तो हैं ही, साथ ही समान वातावरण में साँस भी ले रहे हैं। प्रतिक्रिया विपरीत कैसी हो? मैं भी स्व-निर्मित चिन्तन-पथ पर अग्रसर हूँ। उसी में तृप्ति मिली है, गर्व का अनुभव किया है।"

"उचित ही है।"

"चिंतन की, कल्पना की एक ऐसी भी गति सम्भव है। पुरुषार्थ की साधना का एक यह भी विधान है। इस ढंग का आकर्षक एवं उत्कर्ष, विधायक भव्य स्वप्न देखा भी जा सकता है—आदि ऊहाएँ मुझे छू तक न गई हैं। अभी इसकी पूरी प्रतीति भी नहीं हुई है। फिर भी इसकी झलक नयनों में चमक और अवयवों में पुलक भर जाने के लिए काफी है। आप सफल होंगे या नहीं, यह महत्त्व नहीं रखता। प्रयास ही प्रमुख है। मैं इतना पौरुष रखता हूँ; इसका मुझे भरोसा नहीं। साफ स्वीकार कर लेने में मुझे कोई संकोच नहीं। कारण स्पष्ट है। हम-जैसों की संख्या ही अधिक है। पर्याप्त पौरुष रहा होता, तो आप के साथ ही कूद पड़ने को जी चाहता। आपकी योजना मन पर छा गई है। इस समय मेरा वही हाल है, जो उन वीरों का था और जिससे प्रेरित हो वे उन दिनों सत्याग्रह आंदोलन पर निछावर हो जाते। अथवा इन नए उत्साहियों का-सा है, जो विनोबाजी की पुकार पर सब कुछ समर्पित करने को तत्पर हैं।"

"आप निज-जीवन ही नियम से, संयम से, उत्साह से, उत्तमता से चला जो रहे हैं! यह एक तरीका है, वह अलग तरीका है, बस।"

"आपके दृष्टिकोण से लाभान्वित हो मुझे भासित होता है कि यही जीवन और भी अधिक सँवारा-सुधारा जा सकेगा। हाँ, उसके अनुकूल वातावरण बनाना आवश्यक होता है। देखा जाएगा। यह तो अपनी निजी राय है। अब रह गई आपकी बात। सो मैं पहले ही हाथ-पर-हाथ धर चुका हूँ। अपने विभागीय कामों में कोई कमी न हो जाए, इसका ध्यान रखते हुए, मुझसे जो भी बन पड़े, मैं उसके लिए तैयार हूँ। सरकार की भी यही आकांक्षा है, जनता की ओर से उस आकांक्षा-पूर्ति-हेतु बन सकनेवाली सेवा यही है। मैं इससे पूर्णतः सहमत हूँ।"

"गौडर साहब! आपकी बातों का जो प्रभाव मुझ पर हुआ है, उसका

वर्णन करने में वाणी असमर्थ हो उठी। इस अनजान वनपथ पर डग बढ़ाने के लिए निकले हम लोगों को हाथ मिलाए चलने के लिए एक और विश्वसनीय साथी मिल गए हैं। कइयों ने विघ्नबाधाओं का ढेर ही हमारे सामने लगा दिया। आपने तो धीरता के ही दर्शन कराए।" गंगाधर ने गौडर का हाथ दबाया।

"बिघ्नबाधाएँ कई हैं, आएँगी भी। मैंने उनकी अनदेखी नहीं की। मुझे पूरा विश्वास है कि आप भी उनसे अपरिचित नहीं। विघ्नबाधाहीन प्रयास भी कोई पुरुषार्थ है? उनकी सत्ता भी होगी? उनसे विचलित हो मुँह मोड़ लेना, हम-जैसों को शोभा नहीं देता। काम आगे बढ़ाइए सो सही। अपनी शक्ति और किस दिन के लिए काम आएगी? वह संचय मात्र के लिए कहाँ, विनियोग के लिए ही तो है?"

दोनों उठे तो आठ बज चुके थे। दफ्तर के कर्मचारी आए।

"आज का इतना ढेर हटाकर बाहरी काम पर निकलने के लिए पहले सुबह आफिस आए होंगे।"

"लेकिन हमारे आ जाने से वह पड़ा ही रह गया।" गौडर के सामने पड़े बिल, नपाई की पुस्तकें आदि की ओर इशारा करते गंगाधर बोला।

"रात में दो-एक घंटे और जगा रहूँगा। काम निपट जाएगा। इस क्षण हुए लाभ का स्मरण जो कर रहा हूँ। इससे मेरा आगे का काम दनादन होता जाए, यह भी संभव है। आपसे मैं भी, अपने ढंग की एक होड़ लगाऊँगा। आप छूटेंगे कैसे? मैं इसके लिए आपका बड़ा ऋणी हूँ। इतना ही नहीं, इस बीच आपकी योजना पर विचार-विनिमय के बहाने देश का काम भी कुछ तो आगे बढ़ा ही।"

"अवश्य। अपने पथ पर एक और गति-सूचक जो मील-पत्थर गाड़ा गया।"

शिष्टाचार का विधिवत् पालन हुआ। बाद को नपाई के फीते, नक्शे, सर्वे के लिए अन्य वस्तुएँ गौडर ने दिखाईं। मिट्टी-ऊँचाई के उपकरण ठिगनापुर धारा के पुल पर से मँगवा भेजने का वादा किया। साथ काम कर रहे नौसिखुए सब-ओवरसियरों में से नरसप्प को बुलवा भेजा। गंगाधर से परिचय कराते नरसप्प से कहने लगे—"आपको सुबरनधारा के बाँध-नाल आदि के सर्वे के लिए भेज रहा हूँ। आप प्रकाशवाड़ी में इनसे मिलिए और मन लगाकर इनके बताये काम करते जाइए। हम दोनों को अभिन्न ही मानिए। इनकी प्रेरणा से उत्तम

इंजीनियरी ही नहीं, सुपुरुष बनने की कला भी सीखने को मिल जाएगी; परिश्रम से उन गुणों का विकास कीजिए।"

● ● ●

:१२:

शाम तक जब दोनों मित्र प्रकाशवाड़ी पहुँचे, तो क्लान्त हो चुके थे। लेकिन, चेहरे चमक रहे थे। गाड़ी का समय देखकर तभी से पार्वती इनकी बाट जोहती बरामदे में ही खड़ी थी।

"जय ! जय !" गुण्डण्णा के उद्‌गार थे। उसके हाथ ऊपर उठे थे, मुट्ठियाँ बँधी थीं और अँगूठे खड़े हुए थे। अपने अमित उत्साह को संयत कर लेने का इशारा गंगाधर की ओर से हुआ। पार्वती हँसती हुई सीढ़ियों से नीचे उतरती आई।

"हम लोग बाँध उठानेवाले हैं, इसका शोर गाँव भर में मचा हुआ है। मैंने चंद बालिकाओं को बटोरकर सारी बातें संक्षेप में बता दी हैं। उनमें कुछ समझदार लड़कियाँ भी रहीं। करगौडर की बेटी रेवती, वेंकटशेट्टी की कन्या अंजली, दुर्गा, भद्रा आदि ने उछलते कहा, "हम लोगों को भी कुछ न कुछ करना चाहिए जी।" केम्पेगौडर की पौत्री लोली कि "यह सब मैं नहीं समझती।" शायद डर गई हो। शोभा, माणिक्य और सुधा कुछ दुविधा में पड़ीं। भीमाचार की बिट्टी पारिजात, कृष्णय्यंगार की कन्या शृंगारु दोनों कहने लगीं—"यह कोई नाटक, क्रीड़ा या कसीदा काढ़ना आदि की प्रतियोगिता थोड़े ही है कि इसमें हम भाग लें। यह मिट्टी-गिट्टी वगैरह से कुछ करना मर्दों का काम है।" ऐसे ही उद्‌गार कई और भी नकचढ़ियों के मुँह से निकले। यह तो सहज है। धीरे-धीरे सब रास्ते पर आ ही जाएँगी। कल मामाजी के यहाँ सदा की भाँति पुराण-श्रवण के निमित्त महिलाओं की सभा हुई थी। सुना, नंजत्ते ने सबसे बहुत कुछ कहा और कीचड़ उछाले। मगर, मामीजी कैसे सह लेतीं ! पता चला कि उन्होंने हमारा समर्थन पहले की भाँति ही किया। उनका दावा था कि 'गंगाधर ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा नहीं कि बहकी-बहकी बातें सोचता जाए। उसका संकल्प अयथार्थ कभी न होगा। गुण्डण्णा जैसे लड़के भी सम्मिलित जो हुए हैं। जनता में उन्हें सहयोग देनेवालों की संख्या क्रमश: अधिक होती जाएगी। काम होकर ही रहेगा।' अम्मा खुद कह रही थीं। लगता है, वह किसी पार्टी में शामिल न हुई। अम्मा, अप्पा हमारा साथ न दें, तो नाक में दम कर दूँगी।

मतलब यह कि जनता सही या ग़लत, किसी भी तरीके से विषय को जानने लगी है। हुँ, शंकर भी पालथी मारे बैठा नहीं है। गंगाधर! तुमने सब कुछ बता ही दिया है। वह भी ढिँढोरा पीटने लग गया है। कई लड़के मुझसे भी पूछने लगे कि शंकर की बातों में सचाई का हिस्सा कितना? पुस्तक, नक्शे सब लाए हो न? आज ही काम शुरू कर दें।" पार्वती इतनी बातें जैसे एक ही साँस में कह गई है।

"उसे रहने दो बड़बोली! अपनी ही हाँका करोगी या काफी वगैरह का डौल हमारी भी सुनोगी?" कहते हुए, गुण्डण्णा हँस पड़ा। वह उसकी पीठ पर थाप दिये गंगाधर को खींचते सीढ़ी पर चढ़ा।

"मेरे लिए क्या लाए भैया?" गुण्डण्णा का छोटा भाई रंग हाथ बढ़ाए आया।

"बहुत कुछ! पहले अच्चम्माजी के यहाँ जाओ। कह देना 'आपका लड़का सकुशल लौटा आया है। हमारे घर पर नाश्ता कर रहा है।' शंकर, सावित्री दोनों को पास बुलाकर उनके कान में 'जय! जय!' कह देना। मन हुआ, तो दोनों आ जाएँगे।" गुण्डण्णा की बात पूरी भी न हुई होगी कि रंग उल्टे पाँव ही दौड़ पड़ा।

नाश्ता-काफ़ी के बाद घर के बाहरी कमरे में एक छोटी-सी बैठक होने लगी। शंकर सावित्री स्वयं पहुँच गए थे। शंकर की सलाह हुई कि पटेल के कुँवर भीमण्णा और मंडी बसप्प के बेटे वीरप्प—इन दोनों को इस बैठक की सूचना भेजी जाए। ये गुण्डण्णा और गंगाधर के बालसंघाती थे। सावित्री पार्वती के आग्रह पर रेवती और अंजली को भी बुलावा गया।

"यह भी कोई तरीका है, गंगाधर! हम लोगों को पता दिए बिना ही घिरनी चलाने लगे। भाई से ही हमें इसकी खबर भिजवाई? कमरे में आते ही भीमण्णा गंगाधर की पीठ जोर से थपथपाते बोल उठा।

"मेरे सूचना भेजने की शिष्टता तो दिखाई। बोल तो सही, काम क्या है?" वीरप्प काम के लिए तैयार होकर ही आया था।

"सुना- भीमण्णा! तुम जैसे मेरे कितने ही मेली-मुलाकाती हैं। वे भी यह दोष मुझ पर लगा सकते हैं। इन सब बातों को एकाएक प्रकट कर देने में बड़ी झिझक हो रही थी। यही असली कारण है। आज थोड़ा-बहुत ठिकाने का निर्णय हो पाया है।"

"हाँ मुझे भी वही लगा। विषय सुनते ही बड़ा गंभीर प्रतीत होता है।"

"झिझक कैसी ? यह सब एक तमाशा है। एक हाथ देख ही लें। मैं तो हर एक के लिए तैयार हूँ। हम में से कितने तो बेकार ही बैठे हैं। इसे बैठे ठाले में कोई भला काम ही हो जाए। बंदा मिट्टी खोदने के लिए भी हाज़िर।" भीमण्णा कमर कसकर ही आया था। उसकी सुडौल भुजाएँ; फड़कती आँखें आदि को देखने से साफ़ लक्षित था कि वह जी-तोड़ श्रम भी कर लेगा।

"गाँव के लिए सड़क बनाने की बात छिड़ी, तो मुझे भी इसी मेल का कोई काम करने की इच्छा हुई। अखबारों से तो यह समाचार मिल ही रहा है कि चारों ओर जनता के परिश्रम से सड़कें फैल रही हैं, स्कूल बन रहे हैं, तालाब में जमी मिट्टी खोदकर फेंकी जा रही है, आदि। छिटफुट प्लेन भी तैयार किया। लेकिन सबके लिए समय भी अनुकूल हो, तब न!" वीरप्प कहता गया।

"कोई चिंता नहीं। यह कल्पना साकार हो उठे, तो बाँध पर सड़क भी बन जाएगी।" गुण्ड आत्मविश्वास के साथ बोला।

"अपनी योग्यता भर मैं भी काम करूँगी। पता नहीं, माता-पिता क्या कह दें, यही डर सता रहा है। इस घड़ी पार्वती से मिलने का बहाना करके आ गई हूँ। इस तरह की बैठक-बैठक...।" अंजली के शब्दों में सकपकाहट थी।

"अम्मा ने टोका, काम क्या है ? रंग ने कह दिया है, सब जमा हुए हैं। उन्होंने आपत्ति उठाई, सयानी लड़कियाँ इन सब उछल-कूदों में लगें, यह ठीक नहीं। मगर मैं तो सब सुनी-अनसुनी कर आ गई हूँ।" रेवती ने निजी हाल सुनाया।

"शुरू-शुरू में यह स्वाभाविक ही है। कस्तूरबा शिविर जाने का मेरा इरादा सुनते ही घर में कितना हंगामा मच गया था। धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा। इतने पर, यहाँ नाज़-नखड़ा ही क्या है। स्कूल के अवसर पर हम एक-न-एक काम में जुटती जो थीं।" पार्वती ने समझाया।

"गुड्डी को भी कहलाया जाय।" गंगाधर का सुझाव हुआ।

"वह शायद ही आवे।" पार्वती संदेह व्यक्त करने लगी।

"वह ठान ले तो बहुत कुछ हो जाए।" गंगाधर सोचते बोला।

"सही है। कल उससे भी बातें की थीं। चली आओ, लड़कियों को तुम भी कुछ समझाती जाओ।"...

इसका जवाब क्या मिला, सुनना चाहोगे ?" पार्वती ने वहीं रोक दिया।

किन्तु, उसे तत्क्षण इसके लिए खेद हुआ, फलतः उसका चेहरा लाल हो गया।

"क्या कहा ?" गंगाधर ने पूछा।

"वैसा कुछ खास नहीं। हटाओ उसे।"

"मैं करोडीमल की कुमारिका ! बी० ए० की परीक्षा दी है। इन बेकार की बातों में नहीं पड़ूँगी ? इतना ही तो ?" गुण्डा तीखे हो बोला।

"यह सब नानसेंस कहा ?" गंगाधर ने प्रश्नसूचक हँसी, हँसी।

"ऊहुँ। उसका यह विचार न रहा होगा। हमसे जब बोली थी, तो इसकी गंध मालूम न पड़ी।" सावित्री बोली।

"फिर ! पारी, बात क्या हुई, बोलो तो सही।"

"कहा, आप लोगों की पिछलग्गू होकर रहना पसंद नहीं।" अतिशय होने पर पार्वती ने सोचते हुए सुनाया। पर उस बात को कुछ बदल दिया था। भागीरथी का कहना था कि "मुझे गंगाधर के पीछे कदम नहीं बढ़ाना।"

"पीछे न सही, आगे ही बढ़ाए। हम पीछे हो लें···रंग ! जा तो। बुला दे।"

"उसने कहा, मैं अभी खाली नहीं।" हाँफते हुए लौटकर रंग बोला।

"कौन पहाड़ उठा रही थी, भाई !" गंगाधर ने पूछा।

"नए मामाजी के संग शतरंज खेल रही थी।"

"बड़ी टेढ़ी है। सोच रहा था कि उसे प्रचार का एक मोटा काम दें, तो उसके लिए दूसरा ही ढंग अपेक्षित लगता है।" गंगाधर हँस पड़ा। लेकिन चेहरा कुछ फीका पड़ गया। तुरन्त वह कार्य में लीन हो गया।

बैठक में गंगाधर, गुण्ड दोनों ने विवरण पेश किया। श्रोता बड़े शान्त थे।

"आगे हमें जो कुछ करना है, उसकी एक कार्य-सूची तैयार कर लेनी होगी। काम आपस में बाँट लेने होंगे।" गंगाधर ने शुरू किया।

"सबसे बड़ा काम जन-बल-संचय का है। इस समय की संख्या दसगुनी से सौगुनी करनी होगी। काम कम थोड़े ही है।" गुण्ड बोला।

"ठीक कहा। लोग सहज ही नहीं जुटते। शुरू में अपनी जान-पहचान के लोगों को घरना होगा। पहले मीठी-मीठी बातों से फुसलाएँगे, मगर जब रास्ते पर न आएँ, तो झोंटा खींचके।" भीमण्ण की सलाह हुई।

"हूँ, वह पकड़ कर होगा ही। पहला कार्य प्रचार का ही हो। ये जो चीज़ें मिल गई हैं, इनका सदुपयोग हो, तो उत्साह का अनुकूल वातावरण

बन जाएगा। आगे का काम सरल होता जाएगा।" पार्वती सोचती ही बोली।

"जरूर। इन पोस्टरों की नकलें तैयार करनी होंगी।" गंगाधर ने सराहा।

"हम सहेलियाँ घर पर ही नकल तैयार कर देंगी। कितनी प्रतियाँ चाहिए, बता दें। और भी बहिन-भाइयों को जुटा लेंगी।" रेवती ने मान लिया।

"बाद को उन्हें प्रमुख स्थानों पर चिपकाना पड़ेगा, किले की दीवार पर, दुकान के सामने, मंदिर के पास।" गंगाधर आगे बढ़ा।

"चिपकाने के लिए बहुत सारे लड़के मिल जाएँगे! स्कूल जो बन्द हैं! यह काम मेरे जिम्मे कर दीजिए। लोग शुरू में हँसी-मजाक उड़ाएँगे। रोज आँखों के सामने रह जाए तो कभी-न-कभी इसे पढ़ने गुनने की आतुरता होगी। धीरे-धीरे अनजाने ही बातें मन में घर करती जाएँगी।" भीमण्ण का मत था।

"ये पर्चे जो हैं। ऐसे हजारों पर्चे छपवाएँ। घर-घर बाँटें। मैं नर-गेरे से छपवा लाऊँगा। कई उन्हें फाड़ देंगे, फेंक देंगे। कुछ से पुलिन्दा बनाएँगे। एक फीसदी ही क्यों न हो, पढ़ लेंगे। बाकी भलेमानुस उसमें क्या है, यह जानने को उत्सुक होंगे। कहने का मतलब कि बातें फैल जाएँगी।" वीरप्प बोल उठा।

"पर्चे मैं बाँटूगा"। छः साल की उम्रवाले रंग को पर्चे बाँटने में दिलचस्पी जग गई। पर्चे के आशय से उसका कोई सरोकार नहीं था।

"वाह! वाह रे रंग! यही होगा। लगता है कि पालने में लेटे शिशु से लेकर कब्र में पैर लटकाए बूढ़ों तक से हम निकाल लेंगे।" वीरप्प हँस पड़ा।

"हूँ, आगामी पूर्णिमा के ही गंगाधरेश्वर की रथयात्रा है। आसपास के गाँवों से भी धर्म-प्राण जनता आएगी ही। अवसर हाथ से न जाने दें।" भी-मण्ण ने मौके की बात बतलाई।

"पोस्टरों-पर्चों की भाषा बड़ी चटपटी और फुदकती होनी चाहिए। एक फड़कती पद-सूची तैयार कर दूँगा। लोगों की निगाहें उन पर पड़ेंगी ही।" गुण्ड की गर्वीली वाणी सुनाई पड़ी।

"इन पोस्टरों-पर्चों में भाषा की तड़क-भड़क नहीं, तथ्यपूर्ण संख्याओं का भी संकेत रहना चाहिए। यह जमाना ही ऐसा है चकाचौंध में सूझबूझ, अन्यथा व्यर्थ। केवल शक्कर की बात लो। विश्व के विविध राष्ट्रों में प्रति व्यक्ति पीछे कितनी लगती है-इस तथ्य की संकेत संख्या द्वारा कर दिया जाय, तो मानस पर उसके साथ ही वहाँ के जीवनस्तर का चित्र अंकित हो उठता है। सौ बात या

एक संकेत वाली पद्धति का अनुसरण होना चाहिए।" गंगाधर ने सुझाया।

"अच्छा, पंचवर्षीय योजना वाली प्रदर्शनी की बात उठी थी न? उसकी तैयारी हम लड़कियों पर छोड़ दीजिए। उसके लिए उपयोगी स्थान क्या हो, इस पर निर्णय हो जाय।" पार्वती ने गंगाधर को याद दिलाई।

"इस पर चर्चा की क्या आवश्यकता? प्रदर्शनी मिडिल स्कूल में ही लगे। अंजली बोली।

"उसके लिए अनुमति मिलेगी भी, मुझे संदेह है। अपने हेडमास्टर साहब अजीब ढंग के आदमी जो हैं। न काम करने वाले हैं, न मदद देने वाले। विजय-नगर साम्राज्य का वैभव-विस्तार, मरहठों का महत्वशाली निर्माण-कार्य, रामायण महाभारत का युग, वेद-पुराण, उपनिषदों की दिव्यता-भव्यता आदि के गतवैभव की गायत्री जपने में ही रहते हैं। पर वर्तमान भारत में उनकी कोई आसक्ति नहीं। भला काम हो, तो उनकी कानी उँगली तक सहारा न देगी। यही क्यों, पढ़ाई में ही कोई रुचि नहीं। परीक्षाफल देख लीजिए, तीन साल से कैसा है? पंद्रह बीस···बात छेड़ो तो गायत्री।" शंकर ने आलोचना की।

"अनुमती माँगी जाय, वहाँ न सही, और कहीं।" गुण्ड बोला।

"बाकी का पार्वती पर छोड़ दें। जिसको चाहे जुटा ले, काम चले। हम परोक्ष ही प्रयत्न में बल देते जाएँ।" गँगाधर की राय हुई।

"नाटक खेला जाए तो उससे भी कुछ हाथ लग ही जाएगा।" अंजली की इस क्षेत्र में तीव्र आसक्ति थी।

"अपना सदानन्द जो है—मास्टर साहब का लाड़ला। बी० ए० करने पर भी ठाला है। उसे भी घसीटा जाए। कुछ-न-कुछ रचने को कहा जाए तो लिख देगा! स्कूल में रहते समय ही उसका गला कितना सुरीला था। सुना है, तीन-चार नाटक उसके लिखे पड़े हैं। वह कर लेगा। उसके साथ अपने संगीताचार्य यह जिम्मेदारी ले लें, ऐसा उपाय करना होगा। हम सब उनके मार्ग-दर्शन पर काम करने वाले रहें।" गुण्ड बोला।

प्रसंग के अनुसार इन सब में बाँध उठाने का ध्येय, उनसे संभावित लाभ, उसकी पूर्णता के लिए आवश्यक सहयोग आदि का समावेश अपेक्षित है। हाँ, पहले व्यंजक-विधान द्वारा, पीछे वर्णनात्मक ढंग पर। इससे सहज बोधकता की क्षमता आ जाएगी और जनता उसे अपनाती जाएगी। इसके बाद अनुनय-अनुरोध का स्थान रहेगा-'यह हो रहा है, आपका सहयोग अनिवार्य है, साधन सुलभ बनाते जाएँ, बाधन कम होते जाएँ, आदि। यह तरीका कहाँ तक सार्थक होता जा रहा

है, इसका पूरा पता लगाने का यही विधान है।" गंगाधर ने बाँध का इन अभिनयों से संपर्क जोड़ा। उसने आगे कहा, "प्रचारकार्य सफल हो या विफल, बाँध उठाने का अपना कार्य होकर ही रहेगा। बाकी उसमें सहायक तत्व मात्र हैं। इनका अनुकूल प्रभाव न भी दिखे, तो भी इससे हमें निराश नहीं होना है। किसी-न-किसी प्रकार बांध का काम शुरू कर देना ही, उसका वास्तविक प्रचार सिद्ध हो जाएगा। उस समय तक न मिली सहायता भी तब सुलभ हो जाएगी।

इस ढंग से काम के बँटवारे का फैसला हुआ और सबों ने अपना-अपना काम छाँट लिया।

"कल से मुझे दो-एक साथियों को लेकर सर्वे के काम पर जाना होगा। जहाँ तक बन पड़े, जल्दी ही प्रॉजेक्ट तैयार कर लेना है। उसे चिकमगलूर ले जाकर वहाँ से मंजूरी के लिए ऊपर भेजना है। साथ काम पर एक अप्रेंटिस-नौसिखुआ भी आने वाले हैं।"

"मैं भी चलूँगा। आसपास टहलते नपाई करते समय खेतिहारों से भी भेंट हो जाएगी। उन्हें भी समझाना जो है। कल उनका ही तो भरोसा है। नाला बनाने के लिए आवश्यक ज़मीन भी दान में माँगनी पड़ती है। इन सबके लिए नींव डालनी होगी न?" गुण्ड बोला, "साँकल भी खींचूंगा। स्टेशन से यहाँ तक मैं ही तो उसे ढो लाया। कल की तरह तुम पेटी उठा लो, इंजीनियर-मज़दूर साथ-साथ।"

',मेरे लिए वह कोई नया काम नहीं। कॉलेज में हमें कारीगर बनाया गया है, बाज़ीगर बाबू नहीं।" गंगाधर सगर्व बोला।

"इसकी नौबत ही क्यों आए? मैं भी तो हूँ? कल दो मजदूर साथ न लाया तब कहना! घर पर रोटी खिला दूँगा। पर्चे चिपकाने का काम शाम को हो जाए।" भीमण्ण जोश में आ गया।

"अपनी दुकान का एक नौकर साथ लगा देने की कोशिश करूँगा। न हो तो उतने दिनों की मज़दूरी दो-तीन आदमी पीछे जो लगे, वही दे दूँगा। ज़रूरत पड़े, तो साथ भी चलने को तैयार। पिछड़ने वाला न समझो। पर्चे-वर्चे की छपाई के लिए नरगेरे जाना चाहता था। किसी और को रवाना कर दूँ?" वीरप्प ने पूछा।

"तुम्हारे पिता जी मानेंगे यह सब करने-धरने को?" गुण्ड हँसा।

"मैं क्या कोई नाबालिग हूँ? मैं भी थोड़ी-बहुत स्वतंत्रता रखता हूँ। बांध के उठ जाने से अपनी ज़मीन की सिंचाई की सुविधा के सिलसिले में कुछ बातें

पिताजी से कह रखी हैं। बाँध बनकर तैयार भी होगा, इस पर भले ही उन्हें संदेह हो। लेकिन खुश्की के तरी में बदल जाने की संभावना से हुई आशा जो है। केवल स्वार्थ ही देखें, तो भी अपनी ओर से भरसक सहायता करना संगत भी है, अनिवार्य भी। बाकी ज़मीनवालों को भी खुले दिल से इस कार्य में मदद पहुँचानी होगी। सरकार की ओर से काम हो जाय तो ये ही लोग कांट्रि-ब्यूशन-अतिरिक्त कर देने को विवश न बनाए जाते ?" वीरप्प ने तर्क दिया।

उसे सुबह ही नरगेरे जाने को कह दिया गया।

यों कार्यक्रम बन गया। बैठक समाप्त हुई। सब अपने-अपने घर लौटे। गंगाधर गुण्ड से बोला, "चलो तो, अण्णाजी के यहाँ हो आएँ। देखें क्या चल रहा है। गुड्डी को ज़रा गुदगुदाएँ।" और दोनों चल पड़े।

● ● ●

: १२ :

हिरियण्णाजी के चबूतरे पर एक दूसरी ही बैठक चल रही थी। शाम के वक्त का यही प्रोग्राम सदा से चला आया था। मिडिल स्कूल के हेडमास्टर गणपति पुराणिक और पोस्टमास्टर निर्वाणय्य दोनों हिरियण्णाजी के साथ चटाई पर पालथी मारे विराजे थे। सामने ही काफ़ी के प्याले और पान-सुपारी की तश्तरी आदि रखी थी। वहीं एक अखबार भी पड़ा था। थोड़ी दूर पर ही चबूतरे के कोने पर भागीरथी और कैंट साहब अभी शतरंज से मनोरंजन कर रहे थे। पास ही एक बड़ा टेबुल-लैंप जल रहा था।

"यह भी कोई बात है! अपने आग्नेयास्त्र के बराबर ये ऐटम या हाइड्रो-जन बम ठहरेंगे? कहाँ अज, कहाँ गज! कहाँ कीरी, कहाँ कुंजर! उस अकेले अस्त्र से तीनों लोक भस्मीभूत हो इस सुँघनी की डिबिया में समाने लायक न बन जायँ? कहते हैं—हाइड्रोजन बम! हुँ! अब बचे वायव्यास्त्र, पर्वतास्त्र, ब्रह्मास्त्र, सम्मोहनास्त्र! आज वालों के पास इनके लिए जवाब ही क्या है? सिर्फ मुँह बंद रखने के सिवाय? ये बेचारे कर क्या सकेंगे; सर! अपने पूर्वजों के पौरुष के सामने अपना वश क्या चलेगा? उन्हें अविदित ही क्या रहा?"—पुराणिक जी कहे जा रहे थे।

भागीरथी के साथ ही कैंट साहब खिलखिलाकर हँस पड़े।

"तुम्हारा हाथी कभी का मर गया।" कैंट साहब कह रहे थे।

"आओ भाई, दोनों बैठ जाओ।" अण्णाजी ने प्रेम से कहा। चबूतरे के किनारे गंगाधर और गुण्ड दोनों बैठ गए।

"खाली हवाई जहाज़ की बात ही लीजिए न। वह कोई नया है, सर? अपनी रामायण में पुष्पक का उल्लेख नहीं है? कितनों को बिठाए कितनी जल्दी लंका से उड़कर अयोध्या आ उतरा। उसके सामने, इनके ये जेट, स्वेस—क्या कहा जाय! यही क्यों, अन्तरिक्ष से देवता जो पुष्पवृष्टि करते थे, वह भी तो विमानों पर से ही न? अस्त्र सिग्लाचारजी द्वारा अनूदित श्रीमत् वाल्मीकि रामायण में बनाए चित्र ही काफ़ी नहीं? अपने पुराणों में निहित अनेक अद्भुत विषयों की जानकारी यूरोपियनों को आज तक भी हुई है? कितना साइंस भरा पड़ा है उसमें! कोई भी विषय क्यों न हो—वह भी रहने दे, सारे सुदूर अतीत को भूल ही जाइए। क्या अपने विजयनगर का वैभव ही काफ़ी नहीं? वाह, वाह! क्या कहने हैं, इतिहास जो पढ़ाता हूँ! क्या बताऊँ, ! क्या बताऊँ! मोती, मणि आदि सोने के सेर में ही नापते रहे जो। ऐसा भी कहीं सुनने में आता है? इतना ही काफी नहीं? मुझे तो लगता है कि उनके पूरे महल में सोने की-खरे सोने की-चादर मढ़ी रही होगी। रोड रोलर तक सोने के ही बने होंगे, इसमें कोई शक नहीं। कितना महान् वैभव था! कैसा रहा होगा, वह विशाल नगर! उसके सामने आज के न्यूयार्क, लंदन आदि की गिनती ही क्या, सर!" पुराणिकजी बढ़े जा रहे थे।

"अपने स्टेटस् के न्यूयार्क शहर में बीस-तीस मंजिलों से कम के भवन अशोभन ही माने जाते हैं। एंपाइर स्टेट बिल्डिग एक हजार, चार सौ बहत्तर फुट ऊँची है। वहाँ की सड़कें, ट्रेनें, कार, जनता, संपत्ति आदि को अपनी आँखों से देखना होगा, मास्टर साहब! उनका वर्णन संभव नहीं।" कैंट साहब फरमाने लगे।

"अपने विजयनगर में क्या रहा होगा, क्या नहीं, इनका पता लगाने लायक साधन ही कहाँ? सब कुछ था। आज के गोचर उपभोग के समस्त साधनों से बढ़कर था। दुर्भाग्य कहिए, एक हजार, पाँच सौ, पैंसठ वाली तालीकोटा लड़ाई में—इतिहास जो पढ़ाता हूँ—बहमनी राजाओं ने सब कुछ ढहा दिया। क्या-क्या रहे होंगे, उनकी क्या दशा हुई होगी, भगवान् ही जाने...भारत में देवशिल्पी मय द्वारा धर्मराज के लिए भवन-निर्माण का संकेत जो है, उसको मात करने लायक रहा ही क्या होगा! अब सब लुप्त है। कहा ही क्या जाए?"

"हूँ, सर संसार नश्वर है। इसके लिए यही प्रमाण पर्याप्त है। कितनी अपूर्व वस्तुओं की कैसी दशा हो गई! सारा ब्रह्माण्ड ही बोदा है। अपने वेदांत के अनुरूप ही मिथ्या है, माया है। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।' संपत्ति के लिए मारपीट, लूटपाट, नोच-खसोट आदि का झमेला ही क्यों रहे, सर। सब मिटेगा ही। जीवन शून्य मात्र है—हुँ—पुराणिकजी! सुँघनी की ओर एक बटिया इस ओर बढ़ा तो भला। देशी से तैयार बटिया ही बढ़िया है, बुकनी सुँघनी बेकार है। उसमें मजा ही नहीं आता।" कहते निर्वाणय्याजी ने हाथ बढ़ाया। पुराणिकजी ने उँगली बजाते डिबिया खोली और हथेली पर एक बटिया गिरा दी। पुराणिकजी द्वारा मिला प्रसाद निर्वाणय्याजी ने उठाया। तर्जनी अँगूठे के बीच उसे दबाया। बाएँ हाथ से एक नथुना बंद किए नाक चढ़ाते हुए दूसरा नथुना फुलाया। तीन-चार उच्छ्वास जोर से खींचते उसे ऊपर सरका दिया। अंत में उँगलियाँ झाड़ लीं।

"विजयनगर की चर्चा थी न! वहाँ के शिल्प के बारे में पढ़ा, सर! इतिहास जो पढ़ाता हूँ—ओफ् हो, कितना विस्मयकारी है! क्या बताऊँ। शिला भी संगीत सुनाया करती थी। तब आप कल्पना कर लीजिए कि मानवीय संगीत कला कितनी ऊँची रही होगी। इसके अतिरिक्त उनका साहित्य, उनकी चित्रकला...इस समय है क्या, सर! छूमंतर की फूँक है, धोखा-भर है। इधर हाल ही की बात लीजिए न, ढाके की मलमल सरीखा मरिक्तन कपड़ा हम तैयार कर सकेंगे? अठारह हाथ की साड़ी दियासलाई की डिबिया में बंद की जा सकती थी न!...तालीकोटा की लड़ाई का जिक्र आया था। हाँ, याद आया। अपने भारत का युद्ध ही युद्ध कहा जा सकेगा, सर। ग्यारह और आठ उन्नीस अक्षौहिणी सेना अठारह दिनों में समाप्त हो गई! वैसा महासमर एक हजार सात सौ उनतीस में हुई पानीपत की लड़ाई है। उसका वर्णन देखना होगा, सर! आँखों से अविरल अश्रुधार वह निकलती है। तीन मोती उसी में न विलीन हो गए! ऐसी भी कोई घटना इधर घटी है? खाली बड़बड़ाते जाते हैं। वह पुराना वैभव, वह प्राचीन सम्पत्ति, अतीत की वह कला, वह चिरकालीन संस्कृति, वह सनातन शक्ति इन सबके सामने आज की उपलब्धियाँ किस काम की? हमारी हस्ती ही क्या है? चाहे पूरब के हों, चाहे पश्चिम के, अपने लोगों के ललाट पर वह लिखा ही नहीं है। व्यर्थ बकवाद से फ़ायदा?" पुराणिक जी ने धोती की कोर से नाक साफ की और वैभव, सम्पत्ति, कला, संस्कृति आदि की व्याख्या पुरी हुई।

"सोलहों आने सच है मास्टर साहब··तुम्हारी चाल रुक गई जो।" कैंट हँसे।

"निरी बकवक है। संसार में वैभव-विलास के उतने बड़े साधन ही न बच रहे, तो अपनी टूटी-फूटी चीजें रहेंगी कैसे? यह संसार केवल नश्वर है...एक बटिया और बढ़ाइए तो सही।" निर्वाणय्य जी ने इसको भी उसी बाट पहुँचा दिया।

"मास्टर साहब! मान लिया कि अतीत की ऐश्वर्य-सिद्धि आपके वर्णन के अनुरूप अपूर्व रही। इस धारणा मात्र से अपने को उन अमर साधकों की तुलना में क्षुद्र अनुभव करते निराशा संचित करने की अपेक्षा कितना अच्छा होगा कि हममें यह शुभ प्रेरणा जागृत हो कि उन महानुभाव ने तो उतना किया, तो हम भी निजी साधना से अधिक उत्कर्ष को प्राप्त होते जाएँ। हमें अपेक्षाकृत अधिक सुविधाएँ मिली हैं। स्फूर्ति-प्राप्ति का यह विधान क्या अनुकरणीय न होगा?" गंगाधर ने जिज्ञासा की।

"क्या! अधिक उत्कर्ष! कोरा प्रलाप है! क्या समझ रखा है अपने को? वे कहाँ, हम कहाँ! उनकी सिद्धि हमारे लिए साध्य होगी? दर्प से ही क्या हो सकेगा गंगाधर! क्या उसका सहस्रांश भी हमसे बन पाएगा? निरी भ्रांति है।" पुराणिकजी ने फटकारा।

"हमें उससे यही प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए कि उनकी निर्मित वस्तु-विभूतियाँ पक्की और विस्मयकारिणी होने पर भी विलीन होकर ही रहीं। तो हम साधारण जन जो भी करें, उसका सर्वनाश और भी पहले ही निश्चित है। इस नश्वर संसार में उनका प्रयोजन ही क्या है? इतनी सी जानकारी से तृप्त हो जाना विवेक का लक्षण है। इनके विपरीत आजकल की सरकार के सूत्रधारों की भाँति लघु योजना, मध्य योजना, बृहत् योजना आदि की कल्पना मात्र से अर्थहानि-श्रमहानि ही होगी। उनकी भी मौत होगी। हम भी फिस हो जाएँगे। क्या बताएँ, सर! प्रतिदिन फलाना सेविंग सर्टिफिकेट, स्पैन सर्टिफिकेट, बुद्ध-जयंती पर एक स्टैंप, यक्ष्मानिवारण का एक टिकट, कोई-न-कोई लगा ही है। काम जो दसगुना बढ़ा दिया! पहले अंग्रेजों ने यहाँ एक-सी स्थिर शासन प्रणाली चलाई थी। क्या उस समय देश की दशा दयनीय थी? इसी क्षण तो इतनी फ़जीहत है? शून्य में ही सब समा जाने वाले हैं। अगर यह रहने भी दिया जाय, तो क्या वेतन-मान में कोई राहत मिली है? माँगते-माँगते हम भी थक गये हैं। अपने परिवार की झकझक से उनका भला क्या सरोकार! आठ प्राणियों

को लिये सारी माथापच्ची मुझे ही तो करनी है ? बीवी के लिए दो साल से रेशम की साड़ी नहीं खरीद पाया हूँ। मेरी जरीदार धोतियाँ न जानें कब की फट गईं। बालबच्चे जो कपड़े-गहने माँगें, उन्हें कहाँ से दिलाऊँ ? दस रुपए बढ़ती की माँग पेश हो, तो पाँच थमा देते हैं। यह अपने विभाग का दस्तूर है। हुँ—सृष्टि-संचालन का रहस्य ईश्वरीय माया ही तो है।" निर्वाणय्याजी नश्वरवाद का सूत्र ढील देते गए।

"आपका विभाग कई अर्थों में उत्तम है, सर ! इसे पुण्यशाली विभाग ही कह सकते हैं। अपने विभाग से मिलान करनें पर इस कथन की सत्यता पर संदेह नहीं हो सकता। हमें क्या मिलता है, राख ! सुबह से शाम तक गला फाड़िये तो भी एक कौर अन्न, एक प्याली काफ़ी के लिए ही टोटा पड़ जाए। इस गाँव में पानी का भी तो अभाव है। अपना डिपार्टमेंट बड़ा रद्दी है। पहले गुरुकुल की परम्परा थी। सोचिए, कितनी सुंदर थी। गुरु कहलानेवाले ज़रा भी अपनी जगह से हिले-डुले बिना एक ही स्थान पर जमे रहते। शिष्यों को उनके यहाँ जाना होता, उनके गृहकार्य करने पड़ते। जलावन लाना, पानी ढोना, गुरु तथा उनके परिवार वालों के कपड़े कछारना आदि समस्त शुश्रूषा-कार्य निभाने होते। गुरु अपनी रही-सही जानकारी अब तक करा देते। बिदा होते समय गुरुदक्षिणा दे जाते। उन दिनों कितने बड़े-बड़े विद्याव्रती तैयार हुए ! आज क्या है ? 'गुरु' नामधारी का जीवन पहाड़ है। 'हाय राय' कहते उसे खुद स्कूल जाना होता है। छह घंटे पूरे-पूरे कंठशोषण करना पड़ता है। सौ लड़के रहें तो भी किसी को सुँघनी लाने भर को भी नहीं भेजा जा सकता। इतना ही नहीं। शाम के वक्त लड़कों के घर जाना होगा, दो-तीन घंटे भर गला सुखा लेना होगा, अन्यथा गाड़ी चले कैसे, सर ? तिस पर भी आजकल के लौंडे एक ईसवी सन् तक सही-सही नहीं सुना पाते। आगे इनसे सधेगा भी क्या ? अपने नालन्दा विश्वविद्यालय का हाल आप जानते होंगे। इतिहास जो पढ़ाता हूँ ! दस हजार तक के छात्र। हर कोई एक-एक अनोखा हीरा। इनकी सेवा का स्वाद चखनेवाले हजार से अधिक गुरुजन। वह जमाना फिर लौटेगा भी ? आजकल के लोग सिर के बल ख़ड़े हो जाएँ, जो भी कर गुजरें, मगर क्या उसकी समानता कर पाएँगे ? कदापि नहीं।"

"मास्टर साहब ! अतीत के वैभव पर हमें गर्व न हो, ऐसा नहीं। लेकिन, उसी की रट लगाते रहें, तो काम बनेगा ? नालन्दा की बात आपने उठाई। ठीक है। वह एक संस्था, लगभग उसी से मिलती-जुलती तक्षशिला, ये ही दो-

एक नाम सुनायी पड़ते हैं। चार-छह विद्वानों के नाम भी अमर हुए हैं। सब आदर्शप्राय थे। यह कहना अवश्य ही गर्व का विषय है। आज देखिए तो सही! अपने देश में ही तीस से अधिक विश्वविद्यालय हैं। हर एक संस्था में दस हज़ार तक के छात्र हैं। उन दिनों की शिक्षा की अपेक्षा विषयों की विविधता सौ गुनी हो गई है। काल के अनुरूप, परिस्थितिजन्य विवशता के कारण अध्ययन अध्यापन-प्रणाली परिवर्तित है। यही अन्य क्षेत्रों के बारे में भी कहा जा सकता है···।" गुण्ड ने कहा। वह चुप थोड़े ही रहनेवाला था।

"गुण्डप्प! बस करो, सुन लिया तुम्हारा प्रवचन! मुझे टिकिया बेचनेवाला समझ कर यह सब बखानते जा रहे हो? मैं भी इतिहास पढ़ाता हूँ। ये सब जानता हूँ। गाँव में आनेवाला प्रत्येक अखबार पढ़ लेता हूँ। वह कहीं भी क्यों न पड़ा रहे, खोजखाज के देख लेता हूँ। इतना ही नहीं, स्कूल में आनेवाली पत्र-पत्रिकाएँ भी घर ले आता हूँ। मेरे देखने के बाद ही वे स्कूल के वाचनालय में पहुँच पाती हैं, समझे? मैंने तुम जैसे कइयों को पढ़ाया है, इसे भूलना नहीं। मुझसे मुंह लगने का लाभ?" इन शब्दों में पुराणिकजी का ब्रह्मास्त्र छूट ही गया। गुण्ड कुछ ओठ हिलाने ही लगा था। लेकिन, गंगाधर ने उसकी कमीज़ खींची और उसे चुप किया।

"छि:! बुरा न मानें मास्टर साहब! क्षमा कीजिएगा। उसने कोई बेतुकी तो न कही। अपनी थोड़ी सी जानकारी की बात ही बता दी है। हम सब वही करते हैं न, जाने दीजिए। आप ही की खोज में निकलने की बात सोची थी। ख़ैर, यहीं आपसे भेंट हो गई, यह बड़ा सुयोग सिद्ध हुआ।" गंगाधर को प्रदर्शनी की बात याद हो आई थी।"

"सो कैसा काम है, भाई!"

"पंचवर्षीय योजना से सम्बद्ध एक प्रदर्शनी के आयोजन का निर्णय हुआ है।"

"हूँ, उसके लिए?"

"आपका स्कूल-हॉल····।"

"यह कैसे होगा, भाई! सरकारी भवन का मामला है। यह प्रसंग ही न छेड़ो, भाई! मैं इन मामलों में साफ़ कह देना अच्छा समझता हूँ। ऐसा कदापि नहीं हो सकता।"

"यह भी तो सरकारी प्रयासों की ही प्रदर्शनी है न?"

"इसके लिए ऊपर से मंजूरी मँगवानी होगी। मैं लिखूँ, वहाँ से जवाब

आवे, महीनों लग जाएँगे। वहाँ से मनाही भी हो जा सकती है। किसी भी हालत में यह प्राइवेट प्रदर्शनी है। अपने विभाग से सम्बन्ध भी नहीं रखता। अपनी जिम्मेदारी पर तो हरगिज़ नहीं दे सकता, यह कायदा भी नहीं।"

"अमलदार-तहसीलदार की जमाबंदी के लिए देना कायदे के अनुकूल है, मास्टर साहब?" गुण्ड ने पूछा।

"यह प्रश्न ही नहीं उठता। वे सरकारी अधिकारी हैं। जो चाहे कर सकते हैं।"

"उसको छोड़िए, शामभट्टजी के घर में हुई शादी के अवसर पर जनवासे के लिए स्कूल जो खाली करा दिया था, वह भी विभाग का कार्य था।"

"गुण्ड! शान्त हो जाओ।"

"हटाओ जी। इनके न देने से क्या आसमान फट पड़ेगा? दूसरी जगह करेंगे। साफ़ पूछ ही लें।"

"पूछ लेने दो भाई, गंगाधर! शादी-ब्याह, जनेऊ ये सनातन धार्मिक संस्कार हैं। इनके लिए सहायता न पहुँचाए, तो हिन्दू व्यक्ति कुंभीपाक या रौरव नरक का अधिकारी बन जाए। इसमें कोई दोष नहीं। मेरे चार कन्याएँ हैं—एक या दो नहीं। क्या यह पाप मुझे न लगेगा?" पुराणिकजी गंभीर भाव से बोले।

"उत्तर उचित ही है, मास्टर साहब! आजकल के लोग धर्म-अधर्म का भेद क्या जानें? सो भी प्लैन प्रदर्शनी के लिए! इसमें है क्या? मैं सरकारी कर्मचारी, यह भी न जानूँ? प्लैन ही कुछ नहीं, तिस पर उसकी प्रदर्शनी! शून्यता को आईना दिखाए! हूह हूह हा! इतने पर प्रदर्शनी के आयोजन से होता-हवाता क्या है? आज नहीं तो कल। सब चौपट! संसार ही जो असार है।" निर्वाणय्याजी के बढ़ाये हाथ पर पुराणिकजी ने डिबिया ही धर दी। भागीरथी और कैंट दोनों मौका मिलते ही हँस पड़े।

"मास्टर साहब ठीक कहते हैं, गुण्ड! उन्होंने किसे दिया, किसे नहीं, यह महत्व का नहीं। हमसे उसका कोई सम्बन्ध भी नहीं। उनकी निजी जिम्मेदारी है। सरकारी मंजूरी स्कूल खाली कर देने के लिए आवश्यक है, इससे भी कोई विरोध नहीं।" गंगाधर ने समझाया।

"मैं सब जानता हूँ जी।" गुण्ड झल्ला उठा।

"देखो, गंगाधर कायदे-कानून का महत्व जानता है। गुण्डप्प भी एक सरकारी नौकर है। उसे भी मालूम रहना चाहिए।" मास्टर साहब ने और

कुरेदा। गुण्ड के मुँह से न जाने क्या निकल पड़ता, पर गंगाधर ने उसे चुप करा दिया।

"आप जो भी करना चाहते हैं, करके दिखलाइए। सुनने में आया है कि बड़े-बड़े काम सोच रखे हैं। अपनी सुंदरू भी कहती थी। गाँव भर में शोर मच गया। इन प्रदर्शनियों से लाभ? हमारे पूर्वजों ने कितने बड़े-बड़े पुरुषार्थ किये! मगर आजकल की तरह डुग्गी पिटवाई हो, इतिहास में इसका कहीं उल्लेख नहीं। मैंने भी कम थोड़े ही पढ़ा है?" पुराणिकजी के स्वर में रुखाई थी।

"वे जानते थे। किया-कराया काल-कवलित होगा। व्यर्थ ही अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने का तुक! उसी की वह गत हुई, तो इस प्रदर्शनी का स्थान...।"

"हिरियण्णाजी, आज्ञा दीजिए।" कहते पुराणिक जी उठ पड़े। निर्वाणय्याजी का कथन अधूरा ही रह गया।

"आप से हुई बातचीत बड़ी मजेदार रही। शाम अच्छी कटी। थैंक्स।" पुराणिकजी चले।

"नमस्कार, सर! आपके साथ शाम मजे में बीती।" निर्वाणय्याजी पीछे पीछे हो लिए। उनके आँखों से ओझल होते भागीरथी और कैंट जोरों से हँस पड़े।

"अण्णा! सुना तुमसे मजेदार बातें हुईं?"

"फूफाजी का मौन ही मंतव्य स्पष्ट कर देता है। इतनी देर तक उनके ओठ खुले ही नहीं। उन्हें किसी कोने में एक स्वर के लिए भी अवकाश देने का अवसर कहाँ।" कैंट हँसते हुए बोले।

"बातचीत के माने हैं, चार आदमी जहाँ साथ रहें वहा कुछ बातें हों, कुछ-न-कुछ बोलते रहना। गंभीर होकर सुनना भी तो एक कला ही न होगी?" भागीरथी हँसी।

इससे भी उनका मौन भंग न हुआ। गंगाधर की ओर मुड़कर बोले, "सुना दोनों चिक्कमगलूर गये थे। कल शंकर से मालूम हुआ।"

मौका मिला नहीं कि गंगाधर और गुण्ड दोनों ने सारी बातें सुना दीं। भावी कार्यक्रम का भी संकेत किया।

"रथयात्रा पर रथ जहाँ से होकर जाता है, उसी पथ पर पनौटे के लिए छप्पर लगेगा ही। दो-चार बाँस, फूस ही की बात न? प्रदर्शनी के लिए भी

उपयोगी बन सके—इस हेतु उसी को और बड़ा कर दिया जाए।" अण्णाजी ने धीमे स्वर से कहा।

"बस, बस हो जाएगा। हम तब छप्पर छाने में हाथ बँटाएँगे।" गंगाधर ने संकेत से ही स्वीकृति का अनुमान लगाते प्रसन्न होकर कहा।

"पथ पर ही हो जाए, तो मेले में आई जनता अधिकाधिक संख्या में उसे देखने भी आएगी। मास्टर साहब की असहमति रोटी घी में डुबो देने का काम कर गई।" गुण्ड उछला। उसका रोष शांत हुआ।

"आप भी सर्वे करने आएँगे, सर।" गंगाधर कैंट की ओर मुड़ा।

"खाली लेबेल चौरस बनाने के लिए कितने आदमी चाहिए? आप हैं तो?" कैंट बोले।

"वह तो सब-ओवरसीयर का काम है। अपने जैसों की जरूरत क्या है? लकड़ी चीरने को स्वर्ण-कुठार! हम लोग मात्र विशेष अवसरों के लिए हैं। कोई असुविधा पैदा हो जाए तो अपनी सलाह से मदद पहुँचाएँ।" कहते हुए कैंट खिसके।

"गुड्डी! कहलाने पर भी तुम न आई? तुम्हारी सभी सहेलियाँ आई रहीं। शतरंज तो मज़े में जमी होगी।" गंगाधर हँसते हुए बोला।

"जमेगी क्यों नहीं? दोनों जो खेला करते थे, वह भूल गया होगा न? आजकल तो हवा में उड़ान हो रही है तुम्हारी।"

"यह बात नहीं, गुड्डी! तुम भी आई होती तो बड़ा आनन्द आता।"

"सभी सहेलियाँ जो रहीं, मेरी आवश्यकता?"

"दूसरों के आ जाने से तुम्हारी कमी कैसे पूरी होती?" गंगाधर हँसा।

"बातें नहीं बनाओ। मैं खूब जानती हूँ साफ़ कह दूँ, मेरी उनमें से किसी में दिलचस्पी नहीं।"

"चित्रकारी में? वह तुम्हारी हाबी जो है। हम तुम्हें वैसा ही काम सौंपते। प्रदर्शनी के पोस्टर...।"

"वह भी कोई कला है।" भागीरथी ठठाकर हँसी।

"तुम्हारे आदर्श के अनुरूप वह कोई श्रेष्ठ कला भले न हो, लेकिन तुम्हारी तरह की तैयारी, क्षमता, उसमें भी अपेक्षित है। सहयोग देगी?"

"देखा जाएगा। वह कैसा है, क्यों है? मगर फुर्सत की घड़ियों में ही। मेरा भी सहयोग आवश्यक होगा, जरा यह भी सोच लूँ।" भागीरथी के कथन से लगा कि वह कुछ न करेगी।

"मैं तो तुम्हारे पास एक पोस्टर भेजने ही वाला हूँ। उसकी दस नकलें तैयार कर देना।" गंगाधर अड़ गया।

"दस नकलें ? हाय मैं तो मर ही जाऊँगी।"

"हट, कैसी बात निकाल रही हो मुँह से! जितनी बन पड़े, उतनी ही सही।"

"दबाव न डालो। पीछे देखा जाएगा। जी चाहा तो मैं ही आ जाऊँगी या संदेसा भेज दूँगी।" कहती हुई भागीरथी अन्दर गई।

गंगाधर और गुण्ड ने हिरियण्णाजी से विदा ली।

"मामाजी भागीरथी से उतना भी कर लेने को न कह सकते थे ?" रास्ते में गुण्ड बोला।

"वे न किसी को समझानेवाले हैं और न किसी का विरोध ही करनेवाले। अब तक तुम उनका स्वभाव नहीं जान सके ? खुद को सही जँचे, तो बिना बोले ही कर देते हैं। उससे ही उनके मनोभाव का पता लगा लेना चाहिए।"

"ठीक कह रहे हो। उन मास्टर की कथनी और इन मामाजी की करनी में कितना अन्तर है ! मामाजी पुराने खूसटों में नहीं हैं। उन मास्टर को देखो भला ! अजीब आदमी हैं। शंकर ने खूब परखा है उन्हें। उन्हीं का विद्यार्थी जो है ! अतीत का राग अलापते रहना ही, अपने पतन का मूल कारण है। शंकर ने जो कहा था—गतवैभव की गायत्री ! सोलहों आने सही है। मास्टर पूरे-के-पूरे रूढ़िवादी पुराणपंथी हैं। लेकिन यह भागीरथी, इस युग की युवती होकर भी इस तरह दुबकी-दुबकी क्यों है ?"

"दुबकी-दुबकी कब तक रहेगी ? समझदार है। चारों ओर चलाये गये काम देखती जाएगी, तो खुद समझ भी लेगी। ठीक जँचने के बाद भी जो काम में न लगें वे ही निरे ढपोरशंख हैं। उसकी सोच में कोई-न-कोई पोच है।"

"मुझे तो नहीं लगता कि वह रास्ते पर आएगी। उसमें धनाढ्यता का थोड़ा सा दंभ है। ऐश्वर्य-वैभव से संपन्न होकर इन कामों में रुचि दिखाना उसे घृणोत्पादक लग रहा होगा। मैं तो उसकी ओर से निराश हूँ।"

"लेकिन मैं नहीं···अच्छा चलो करीगौड़, मरीगौड़ इन दोनों से भी मिलते चलें।"

दोनों मित्र आगे बढ़े।

मरीगौडर चौपाल में बैठे पान खाते जा रहे थे। हथेली पर तमाखू बनाते वे चन्द आदमियों से बातें कर रहे थे। सुगठित शरीर, झब्बेदार मूछें, गोल

चेहरा, बाँकी चितवन, रेशमी किनारेवाली लुंगी, नीली पाप्लिन की कमीज़।

"वह कैंचेगौड़ दरख्वास्त देगा या नहीं ? ढिलाई काहे हो रही है। मुझे शुब्हा है कि वह अपनी पार्टी में है या नहीं।" गौडर बिगड़ते बोले।

"उसे हार जाने का हड़कंप जो है। सही है। कहता है, करीगौड़ के असामियों ने अपनी ज़मीन में मेंड नहीं काटी।"

"मेंड न कटी तो क्या ? जमीन सटी जो है ? उतना ही काफ़ी है। घोंघा है, घोंघा। बंगलोर के नामी वकील रुद्रप्पाजी को सुपुर्द कर दे। चाँदी के चन्द टुकड़े फेंककर गवाह ठीक कर ले, तो हारेगा क्योंकर ? अपने को मुझसे ज्यादा होशियार लगता है ? कितनी अदालतों की चक्करें काटी हैं, वकीलों से जान-पहचान है, गवाहों से साठ-गाँठ है। वह क्या जानता है ? पागल आदमी ! कह देना हिम्मत न हारे, अब तक कितने ही फ़र्जी मुकदमें जीते हैं...।"

"उसके पास लगाने के लिए पैसे हैं भी....?"

"पैसों की फ़िक्र क्यों ? पार्टीवालों से आदमी पीछे दो-एक रुपया वसूल लिया जाय....करीगौड की आधी मरम्मत हो चुकी है। फिर भी रस्सी जल गई ऐंठन न गई, का हाल है। मुझे देखते ही आज भी मूँछों पर ताव देता रहता है। मैं भला उसे दम लेने दूँगा। उसकी उँगली भर वाली मूँछ है तो बंदे की हाथ भर की जो है। वह एक पैंतरा बदलेगा तो इधर चार बदले जाएँगे।"

"वही तो।"

"उसे गाड़ देना है, समझे ! वह इतना दहल जाए कि चूहे के बिल में जाकर पनाह ढूँढ़े। गाँव भर में अकेली हमारी ही पार्टी कायम रहे, तब कहीं साँस ली जा सके। चुनाव तो नज़दीक है। उस मौके पर करीगौड की पार्टी की खूब पिटाई की जाए।"

"कांग्रेस टिकट किसे दे, कौन जाने ? कांग्रेसियों को ही वोट पड़ना चाहिए न ?"

"सो क्यों ? कांग्रेस में भी तो फूट है। वह भी दो दलों बँट गई है। अपने कालप्पाजी एम० पी० हैं। दिल्ली में ही रहते हैं। वहीं हथकण्डा फेर दें और अपने पापण्ण को ही टिकट दिला दें। फिर कोई झमेला ही न होगा। कितना भी खर्च करना पड़ जाय, हम सबको एक होकर पापण्ण को ही जिताना होगा। तब करीगौड के मुँह में कालिख पुत जाएगी, वर्षों दुम दबाए रहेगा।

मान लो, यह न हुआ। वंगलोर में विरोधी पार्टी के सुब्बेगौडर अन्दर-ही-अन्दर-कोई चाल चलें और तिकड़म लगाकर सूची में अपने आदमी ओढेगौड का नाम घुसेड़वा दें, तो हम भी कोई कतर-ब्योंत लड़ाएँ और दूसरी पार्टियों को वोट पड़े, ऐसा जल रच दें। हमें पट्टी पढ़ाएँगें? ओत्रण्ण की धज्जियाँ उड़ जाएँ, तब देखना करीगोड की ताकत! बच्चू के चेहरे पर मुर्दनी न छाए, तो कहना।"

"और क्या? यह सब बड़ी सफाई से करना होगा। वरना....।"

"इश्! कोई आ रहे हैं....आप?" मरीगौड ने गुण्ड और गंगाधर दोनों को पहचाना।"

"कहिए कैसे आना हुआ?" गौडर ने ज़रा रुखाई से कहा।

"चन्नेगौड ने आपसे कुछ भी न कहा?" गंगाधर ने पूछा।

"हूँ, खाना खाते वक्त कुछ कहता जा रहा था।"

"हमें लगा कि आपसे भी मिल लें। आप गाँव के मुखियाओं में से हैं। अपने प्रयास में आपका समर्थन, आशीर्वाद...।"

"आप लोगों को कोई दूसरा काम-धाम नहीं है क्या? अपनी अलग पार्टी खड़ी कर गाँव भर में कोई हंगामा मचाना चाहते हैं?"

"यह बात नहीं, गौडर महाशय! अपनी कोई पाटी-वार्टी नहीं है। यह समूचे गाँव की पार्टी है। आपका छोटा भाई भी तो है उसमें। करीगौडर की कन्या है। इस प्रयास में और भी कई बालक-बालिकाएँ हैं। यह कोई हंगामा या जहमत नहीं, बड़ा श्रेयस्कर है, यही विचार....।"

"हम सब जानते हैं। मेरे सामने भाषण वगैरह न दीजिए। हमारा वही काम-धंधा है। शायद आप न जानते हों। अपने राम तो बस एक अक्षर सुन लें, बाकी सब अपने-आप खुलासा हो जाएगा। चेन्न ने सब बता दिया है। वह निपट गँवार है, जो आपका कहा मान लेता है। अपना काम छोड़ बैठेगा और चौपट भी हो जाएगा। मैं यह सब नहीं मानने का। यह क्या नालायकी करने लगे हैं कि सयानी लड़कियों को भी मीटिंग-वीटिंग में बुला ले रहे हैं। हाथ समेट लीजिए। लगता है, चार अक्षर क्या पढ़ लिये कि सारे लड़के गाँव उजाड़ देंगे।"

"राम कहिए! यह क्या कह रहे हैं? गौडर महाशय, जानकार होकर भी आप ऐसी बातें मुँह से न निकालें? बचपन से हम सब साथ खेले-कूदे हैं, पढ़े-

लिखे हैं—एक परिवार के सदस्यों की तरह। हम खुलकर ही मिलते हैं। एक योग्य कार्य जानकर उसके लिए—।"

"यह रहने भी दें ! उनकी खुद मोल ली मुसीबत है। गाँव भर में इसका प्रचार करने वाले आप होते कौन हैं ? हम जानते नहीं ? हर कोई बिन मज़दूरी लिए काम करे, यह कहाँ का न्याव हैं ? परजा-परभुत्व में हम ही मालिक हैं। सरकार किसलिए है ? हमारी ही सेवा करने के लिए न ? वह करे, यह सब काम; हमें कौन गरज पड़ी है ? वरना पता है, आनेवाले चुनाव में उसे उलट देंगे। ये काम हम पर छोड़ दीजिए। अपना काम देखिए। ज़रूरत पड़ी तो दिल्ली एक तार खटखटा देंगे और अपने काल्प्पाजी पार्लियामेंट में सिंह की तरह सरकार की सिट्टी भुला देंगे। सरकार सकपका जाएगी और तुरन्त बंगलोर हिदायत भेजेगी। फौरन यहाँ के मिनिष्टर, डिपटी कमिश्नर, इंजीनियर दबे पाँव आएँगे और हाथ जोड़े बांध उठा जाएँगे। सरकारी महकमे के मुलाज़िम ही काम करेंगे—क्या हम सब यह तरीका नहीं जानते ? राजनीति के दाँव-पेंच से वाकिफ़ नहीं—उसी में तो डूबे हैं जनाब ! इसका भी कोई नतीजा न निकले, तो सत्याग्रह है ही। तीन दिन का अनशन करें, तो फौरन मुख्य मंत्री ही शरबत का गिलास लिए हाज़िर हो जाएँगे और मिन्नतें करते हुए शरबत पिलाकर अनशन बंद करवाएँगे, अपना आग्रह पूरा करेंगे। ऊँ ! क्या समझा है आपने हमको ?"

मरीगौडर की उक्तियाँ प्रजाप्रभुत्व की चरमसीमा को स्पर्श करने लग गई थीं, फिर भी दोनों उनसे हताश न हुए। इन उक्तियों के लिए उनके पास उत्तर तैयार थे। धीरे-धीरे उन्हें समझा-बुझा काम निकालने के लिए तरह-तरह के तर्क पेश किए। चन्नेगौड भी साथ देने लगा। मरीगौडर टस-से-मस न हुए।

"आपकी बातें हमें भली-भाँति मालूम हैं, भाई ! यह योजना, जनता की भेंट, कुछ भी नई नहीं ! समझे। हम राजनीति में पड़े लोग सोच-समझ कर ही बातें करते हैं। हम एक बात कह दें तो उस पर आखिर तक अड़े रह जाने-वाले। फिजूल अपना-मेरा वक्त क्यों बरबाद कर रहे हैं ? हमें कई जरूरी काम हैं। यह देखिए, कितने आदमी यहाँ काम के लिए आए हैं ?" गौडर ने टरका देने की कोशिश की।

"गौडर महाशय ! आपकी कृपा के बिना यह काम कभी न होने का। हमें आप-जैसों के अलावा प्रोत्साहन-शरण दूसरा कौन दे सकेगा ? हमें ठुकरा न दीजिए। हमारी बातों पर दुबारा गौर कर लीजिए।" गंगाधर गिड़गिड़ाया।

"भैयाजी ! हम इतनी बिनती करते जाएँ और आपका रुख कड़ा ही बना

रहे ? 'जो बन पड़ेगा जरूर करूँगा' इतना तो कह दिया जा सकता है ?" चन्नेगौड ने उकसाया।

"हाय रे महादेव ! यह काहे की जबर्दस्ती ! अच्छा जाने दीजिए। मैं कुछ करूँ या नहीं, इसका कोई मतलब नहीं। आप खटें तो हमें क्यों खुजलाहट पैदा हो ? आप जो करना चाहते हैं, करते जाइए। खुद भोग लेंगे; जब लोहे के चने चबाने पड़ जाएँगे। मैं तो अड़ंगा न लगाऊँगा, लेकिन एक शर्त पर।"

दोनों शांत रहे। उन्हें इसमें कोई रहस्य मालूम होने लगा।

"उस करीगौडर की पार्टी से किसी को शामिल न करना होगा।" गौडर ने फैसला सुना दिया।

"गौडर जी ! गाँव का काम है। आप ही बताइए न; इस हालत में किसी को सहयोग का हाथ बढ़ाने से क्योंकर मना किया जाए ?" गुण्ड का सवाल हुआ।

"तब मैं अपनी मर्ज़ी के मुताबिक काम करता जाऊँगा। यही आखिरी फैसला है।"

"गौडर जी ! सब ईश्वर की मर्ज़ी पर ही हुआ करेगा। हमारी उससे यही प्रार्थना है कि आपको वह सुबुद्धि प्रदान करे।" गुण्ड ने विवशता व्यक्त की।

करीगौडर बाज़ार में ही दिखाई पड़ गए। ऊँची कद, दर्पदीप्त चेहरा, घनी मूछें जिनके फैलाव से मुँह ढका पड़ा था, तीखी दृष्टि। काछा मारे धोती, सर्ज का कोट, लाल रेशमी साफ़ा।

"किधर निकले हैं ?" गौडर ने ही बात चलाई।

"आप ही से मिलने।" गंगाधर बोला। फिर उसने मरीगौडर के सामने कही बातें दुहराईं।

"बिट्टन रेवती बोल रही थी—घर से निकलने के पहले बातें मालूम हुई हैं। जरा संग हो लीजिए, बातें करते जाएँ।"

रास्ते में बहस जारी थी। गौडर का भी आशय था कि अगर बंगलोर जाकर अपनी पार्टी के लीडर कुल्लय्य एम० एल० ए० के पास गाँव वालों का एक जत्था पहुँचे और दबाव डाले, तो काम आसानी से हो जा सकेगा। पर उन्होंने युवकों के शुभ प्रयास की अवहेलना नहीं की। बातें समझते गए। सहयोग का प्रश्न उठा, तो इतना ही कह सके, "मुझसे थोड़ा-बहुत सहयोग मिल जायगा। आपके प्रयत्नों का फल जो भी हो। लेकिन मेरा एक सुझाव हैं, सुन लीजिए। वह मरीगौड इतनी उछल-कूद करने लगा है कि उसे गाँव भर के लिए

पीड़क महामारी भी कहें, तो कोई बुरा न होगा। उसकी करतूतों से सारा गाँव बेचैन हो उठा है। ऐसा एक भी दिन नहीं गुजरता, जबकि वह मुझसे यों ही छेड़छाड़ न करे। वैसे तो उसकी मरम्मत काफी हो चुकी है, हाँ थोड़ी-सी कसर और भी रह गई है। रुपए बहाने के लिए मजबूर कर उसको सूत की दुकान दी है। थोड़ी जमीन और रह गई। सो भी खुश्की। यदि नाला बनकर तैयार हो, तो वह जमीन तरी में बदल जाएगी। उसकी हेठी और बढ़ेगी। रोज खटखट तेज हो जायगी। चुनाव लड़ने के लिए टेट में पैसे भी हो जाएँगे। खुराफात की कोई पूछ न होगी। समझे। मैं गाँव की भलाई की दृष्टि से कह रहा हूँ और कोई इरादा नहीं इतना ही···बस।···आपका जवाब क्या है?"

गौडर की भलमनसी वहीं रुक गई।

श्रोताओं से कोई उत्तर न निकलते देख वे अपना आशय अधिक स्पष्ट ही कहते गए, "शायद मेरी बातें साफ न हुई होंगी। उसकी टाँग तोड़कर उसे एक कोने पर पड़े रहने देना बड़ा जरूरी है। नाला जो निकाला जाएगा, तो उसे उसकी जमीन से नीचे क्यों न कर दिया जाय जिससे कोई फायदा ही न पहुँचे।" गौडर ने इस बार स्पष्ट किया।

"गौडर प्रभु! वह इंजीनियरी सुविधाओं पर निर्भर है। ज्यादा जमीन सिंचाई से उपजाऊ हो जाए, यही तो उचित ठहरता है?" गंगाधर ने जिज्ञासा प्रकट की।

"औचित्य-अनौचित्य, न्याय-अन्याय आदि मैं भी समझता हूँ, प्यारे! यह भी मालूम है कि इंजीनियर लोग चतुराई से बड़ी काट-छाँट, जोड़-तोड़ भी कर ले सकते हैं। आप अभी-अभी कालेज के बाहर हुए हैं। मेरी बातों पर विचार कीजिए तो सही।"

"क्षमा करें, गौडर महाशय! जो भी काम होगा, वह गाँव के लिए होगा, गाँव भर का होगा। किसी अकेले की सुविधा-असुविधा का विचार कर काम नहीं हो रहा। ऐसा हो, तब अपने ध्येय की नींव ही हिल जाएगी।" गुण्ड दुबिधा में न रहा।

"उस हालत में मैं गाँव की भलाई में भूलकर भी सहयोग नहीं कर पाऊँगा।" मीठी बोली में गौडर किनाराकशी करते गए। बोले, "आप गाँव की घपलेबाज़ी से वाकिफ़ नहीं हैं। धीरे-धीरे भेद खुल जाएगा। मेरी शर्त मंजूर हो, कभी वह दिन आएगा ही-तो मेरे पास आइए।"

"गौडर जी! इन झूठमूठ के बखेड़ों से बचकर····।" गुण्ड चुप न रहा।

"क्या कहा ? झूठमूठ के बखेड़े ? जिंदगी और मौत का सवाल है भाई ! आप क्या जानें ? वश क्या चले। नमस्कार।" कहकर गौडर दूसरी ओर मुड़े।

"अब क्या किया जाए।" गंगाधर ने लंबी साँस छोड़ी।

"हटाओ जी ! परेशान क्यों होते हो ? इन पार्टियों की हालत कितनी डावाँडोल है, यह मैं जानता हूँ। सब ऊब गए हैं। पीठ पीछे लोग उनकी बड़ी भद उड़ाते रहते हैं। कानाफूसी जारी रहती है। अगर अपना काम शान से होने लगे, तो उसकी कीमत लोगों को मालूम हो जाएगी,उनकी अभिरुचि जगेगी और गुटबन्दी से छुटकारा पाने की एक गुटिका भी उनके हाथ लग जाएगी। इसमें कोई तज्जुब नहीं। तभी ये ही निपट निठल्लू की तरह एक दूसरे को सोचते रह जाएँगे। कोई इनके बहकावे में नहीं आएगा।" गुण्ड आशाहीन न हुआ। गंगाधर को धीरज बँधता गया।

गुण्ड घर पहुँचा, तो पिताजी चबूतरे पर टेढ़ी पलथी मारे, चश्मा चढ़ाए, लालटेन की रोशनी में जमावंदी-खाता खोले बैठे थे।

"कहाँ लाड़ले ! जमावंदी करीब है। हिसाब-किताब देखना तो दूर, यों ही दर-दर भटक रहे हो ?" रामण्णाजी गुण्ड को सीढ़ियों पर चढ़ते देख बोले।

"आप कर जो ले रहे हैं, पिताजी।"

"दूसरा उपाय ही क्या ? तुम भी हाथ समेट लो, तो मैं भी चुप रह जाऊँ ? काम करे कौन ?"

"आप तो चला ही ले रहे हैं न पिताजी ! मैं भी खाली नहीं बैठा हूँ, आप देख ही रहे हैं।"

"यह दौड़धूप मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा। चालीस साल तक खटने के बाद भगवान का नाम लेते आराम से दिन काटने की सोच रहा था। पर आशा पूरी होती नहीं दीखती। इस बूढ़े का कंधा जूए के बोझ से सूजता जा रहा है और चहलकदमी में लगे हो"

"पिताजी ! समय ही ऐसा आ पड़ा है कि बूढ़े तक बैठे-बैठे आराम का आनंद नहीं ले पाते। देश में उनके लिए बहुत सारा काम पड़ा है। वे भी भरसक श्रम-सेवा अर्पित करने वाले रहें। उसी से तृप्ति भी संचय करते जाएँ। पिताजी ! जितना बन पड़े आप कर लीजिए, मैं भी मौका निकाल कर बाकी पूरा करने में हाथ बँटाऊँगा। आपसे प्रार्थना है कि थोड़े दिन के लिए आप मुझसे अधिक की आशा न रखें।" गुण्ड बोला, वह बड़ा मुँहफट था। घरवालों को मालूम था कि वह

कार्य में जितना तत्पर रहता, उतना ही कार्य से विरत भी रह जाने वाला था।

"वही सही।" रामण्णाजी को कोई संतोष न हुआ। पर उन्होंने कोई रोष अथवा अरुचि न दिखाई।

"काम करने की बात कहो तो वह पातू भी यही रट लगाती है। अभी तक घर न आई। न जाने कागजों का पुलिन्दा उठा कर कहाँ ले गई है। मैं ही खटती जाऊँ! जो चाहे करा लो भाई सेवा, भेंट आदि। जब तक चले सह लेंगे। पीछे कमर टूट गई तो धराशायी होंगे। यह आपका कामधाम हमारी समझ से परे है।" वेंकम्माजी ने भी कोड़ा लगाया।

"अम्मा! यह कैसी उकताहट? आपसे पहले हम ही टुटही कमर वाले हो जाएँगे। अपनी आकांक्षा उतना काम पूरा कर देने की है। थोड़े दिन सब्र कर लो। देखती जाओ, बाँध उठा ही चाहता है। हर तरह की सुविधा हो जाएगी। तब आपको मालूम पड़ेगा कि आपकी इस सेवा-सहायता से हम कितना बड़ा काम पूरा करने में लगे हैं।" गुण्ड ने समझाया।

'कैसा बाँध, कैसी झील···।" अम्माजी आवाज़ खींचते कहे जा रही थीं।

"भूखा घर आया है। खाना खिलाना छोड़ व्यर्थ की बकबक क्यों कर रही हो?

"उस बेचारी को भी दोषी बताती जाती हो?" पिताजी बिगड़ पड़े।

'इसमें दोष मेरा कैसा? आपने ही तो बात उठा दी। लड़के को भी दोषी बनाया था कि नहीं? मैं समझ की दो बातें कह गई, बस! अन्यथा चुपचाप जुए में जुती न जा रही? कुछ बढ़ जाए तो आगे भी सँभाल लूँगी। फिर कभी बात चलाई तो देख लेना।"

"काम से कौन पीछे हटता है? मैं क्या फालतू बैठा हूँ? काम आने पर उसे करना ही होगा।" रामण्णाजी ने बात आगे न बढ़ने दी।

माता-पिता में हुई झड़प से उनके मनोभाव का अनुमान लगाते गुण्ड मुस्कुरा उठा और हाथ-मुँह धोने अन्दर की ओर बढ़ा।

● ● ●

:१४:

घर जितना समीप होता गया, गंगाधर को बांध का भूत उतना ही कम और माँ की चिन्ता अधिक सताने लगी। हुं, चंद सालों के लिए ही क्यों न हो, उन्हें कड़ी सज़ा भुगतने देने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। लेकिन इसे किस

ढंग से प्रकट किया जाय, यही रोड़ा अटकाने वाला लग रहा था। यह बड़ी ही जटिल समस्या थी। उसे यह तसल्ली हो आई थी कि इसके लिए वह उत्तरदायी नहीं। कई तर्क-वितर्कों से वह अपना निर्णय पुष्ट भी करता आया था। इतने पर भी इस समय न जाने क्यों वह अभी अतृप्ति ही अनुभव करता जा रहा था। मन में लघुता-भीति का ही बोलबाला था। चौतरे पर अँधेरे में बातों में लगे माता-पिता उसे देखते ही मौन हो गए। यह मौन उसके लिए गहरी चुभन का काम कर गया।

"आ गए बेटा!" कहते अम्मा उठीं। पिताजी नहीं बोले। अन्दर आँगन में भाई-बहनों में गरम बहस ही छिड़ी रही। गंगाधर को वह सुनाई पड़ी। बाँध की चर्चा! तब तो वह अब रहस्य नहीं रह गई। माता-पिता जान गए होंगे इसे! गंगाधर को सामने रही समस्या और मन की बात कहने की चिन्ता-दूर-सी हुई लगी। 'बला टली।' उसे राहत मिली। लेकिन; यह जान लेने पर अम्मा की आकृति कैसी हुई होगी? बग़ल में ही मौजूद अम्मा पर उसकी दृष्टि गई। वह सीधे कुछ देखने में लगी थीं। वहाँ एक आश्चर्य था। पालना वहीं झूल रहा था! अम्माजी संतानोत्पत्ति की पीड़ा से मुक्त हुई थीं। यह देख वह बड़ा प्रसन्न हुआ। यही पहली मानसिक प्रतिक्रिया थी। तब तो उसकी बात असर कर गई थी। अम्माजी बाकी बातें भी रखेंगी? बाँध की बातें! कौन जाने?

उसकी अधीरता कुछ कम हुई। वह बार-बार पालने की ओर देखता गया। यह संभव हुआ क्योंकर? क्या पिताजी मान गए? झल्लाहट-झुझँलाहट भी मची होगी? उसने जो प्रसंग छेड़ा था, उसके औचित्य पर आशंका हुई। अपने कारण अम्मा को क्या-क्या न सहना पड़ा हो, इस कल्पना से ही गहरी ठेस पहुँची। सबसे बड़ा कौतुक यह कि पिताजी हा-हू करते मान जो गए थे। उनके प्रति भी उसमें सहानुभूति हो आई।

आँगन में बच्चों का शोर बन्द हुआ। बिन देखे ही उसे पता चल गया कि सभी उसी की ओर आँखें लगाए हैं।

भोजन करने बैठा। पास ही अम्मा बैठी थीं। कनखियों से उनका चेहरा देखा। तनिक धीरज बँध गया। सदा की भाँति उस पर शान्ति-स्नेह फूट रहे थे।

थोड़ी देर तक गंगाधर मौन ही कौर मुँह में डालता गया। लेकिनअपनी बात उठाने की उत्कंठा तीव्र हो रही थी।

"एक दृष्टि से अच्छे परिणाम निकलने के लक्षण अवश्य दिखाई देते हैं, अम्मा ! लेकिन दूसरी दृष्टि से बाकी तंगी-अभाव दूर होने से या कम हुए से नहीं हो पा रहे हैं, माँ। मैं ही उसके लिए उत्तरदायी जो हूँ," गंगाधर घुमा-फिराकर बातें कहने लगा।

"तुमने कोई बड़ा काम उठा लिया है, वही न ? उसी के बारे में कह रहे हो क्या ?"

"हाँ, तुम सब जान गई हो माँ ? काम बन जाए तो कितना अद्भुत प्रयास हो जाए।"

"घर में भाई-बहनों में यही चर्चा सदा होती रहती है। सावित्री और शंकर दोनों साथ-साथ मेरे पास आए और क्या-क्या कहते गए। सब मिलकर बाँध उठा रहे हैं ?"

"बाँध उठाने का संकल्प है।"

"तुमको वेतन मिलेगा, यह उठवाने में ?"

"वेतन वगैरह कुछ नहीं।"

"उस दशा में हमें क्या लाभ पहुँचेगा इससे ?"

"इससे अपने गाँव और आस-पास के इलाकों की जमीन सींची जा सकेगी। रुपये का भाव और न गिरे, इसके लिए देश में अधिकाधिक अन्न उपजाना अनिवार्य है। उपज बढ़ाई जाए तो गाँव का भला होगा और अपनों की उन्नति के लिए निर्मित सरकारी योजनाएँ भी विफल न होंगी। गाँव को लाभ पहुँचेगा, तो उसमें का अपना हिस्सा अवश्य ही मिल जाएगा। हम गाँव से अलग थोड़े ही हैं ! हमसे उत्तम सेवा भी बन पड़ेगी न ?"

"ये सारी बातें मैं क्या जानूँ, बेटा। वेतनभोगी रहकर सेवा न बनेगी ?"

"बनेगी क्यों नहीं ? हर दशा में, हर कोई, अपना-अपना काम विशुद्धात्मा होकर पूरा करे तो वह भी सेवा ही कहलाएगी। लेकिन हम सेवा का जो विधान अपनाने को सोच रहे हैं, उसका रूप ही दूसरा होगा। यह विधान प्रयोग की कसौटी पर कसने लायक है। सड़कें, स्कूल जैसे कई छिटफुट काम इसी आदर्श पर थोड़े-बहुत हुए हैं। लेकिन सरकार से ही द्रव्य की अपेक्षा न करते हुए जनता कोई बड़ा पुरुषार्थ सिद्ध करेगी भी, यही देखना है। इस श्रमसेवा द्वारा सरकार को एक बहुत बड़ी निधि बराबर भेंट दी जा सकेगी। इसकी सफलता के लिए ऐसे प्रयास नितांत आवश्यक हैं। यह सार्थक हो जाए, तो देश में आज की अपेक्षा पुनर्निर्माण कार्य दसगुना ही क्यों, सौगुना बढ़ाया

जा सकता है। देश की प्रगति तीव्र होती जाएगी और यह अन्य प्रगतिशील देशों की बराबरी करने योग्य होता जाएगा। देश की संपत्ति बढ़ेगी तो अपना भी सुख सहज ही सुलभ होगा, बढ़ेगा भी। लगान, कर आदि की वसूली से सरकार कितना कर पाएगी? जनता की क्षमता अथाह है। इसकी थाह लगानी ही होगी। अम्मा! यही मेरी महती आकांक्षा है, सबसे बड़ा हौसला है। यह जीवन-ध्येय बन गया है।" गंगाधर आवेग से बहुत कुछ कहे जा रहा था।

"इन सबका हाल मैं क्या जानूँ, ! तुम समझदार हो। तुम्हें ये बातें जँची हों, तो उनके सही होने में संदेह कैसा? लेकिन अपनी परिस्थिति के अनुकूल पड़नेवाला सेवा-पथ क्या हो, कैसा हो, मेरा संकेत इसी ओर था।"

"मुझ पर अविश्वास न करो, अम्मा! वास्तव में यह अनेक अड़चनों को पार करते ध्येय की ओर बढ़ने का अकेला पथ है, माँ! तुम्हारी यह दयनीय दशा हृदय को बेधती जा रही है। दुविधा मन में रह गई है। अपने पैरों खड़े पढ़ाई पूरी करने की बात शंकर ने कह दी है। शादी कुछ समय के लिए टल भी जाए, इस पर सातू सहमत हुई है। परिवार कुछ काल तक यंत्रणा-मुक्त होता नहीं दिखता। इस प्रयास की दृष्टि से अगर कुछ समय और परिवार का यही जंजाल रह जाए तो कोई बुरा हाल न होगा। मैं इस ओर से मन को पक्का बनाता जा रहा हूँ। लेकिन तुम्हारी याद आते ही उन असहनीय आघातों की स्मृति कौंध जाते ही…!"

"जो दशा सबकी होगी, वही मेरी भी होगी, बेटा! इसके लिए इतनी चिंता? कोई परेशानी न होगी। मेरा मतलब इतना ही है कि तुम्हारी ध्येय-साधना में परिवार की जिम्मेदारियाँ बाधक न बनें। दूसरा उपाय ही क्या? अपनी ओर से कोई अड़चन न होने दूँगी।" अम्मा की बातें उत्साह-भरी न रहीं। किन्तु वे पीछे न पड़ीं। गंगाधर को इससे कोई परितोष न हुआ, पर वह आश्वासन-रहित भी न रहा। उसे उनसे इतर युवाओं-सरीखे उल्लासमय उत्साह की आशा भी न रही। इतने से ही वह प्रकृतिस्थ हुआ। यह बाधा भी दूर हो गई। पिताजी की कुढ़न उसके लिए कोई समस्या ही न थी।

"अम्मा! सुबह पाँच बजे से पहले ही जगा दोगी?" सर्वे का काम स्मरण कर गंगाधर ने पूछा।

"उतने तड़के क्यों?"

"जल्द से जल्द पूरा करना होगा। आगे भी ढेर सारे काम हैं।" गंगाधर ने बाकी विवरण समझाते कहा।

"कल ही से धूप-ताप में सूख कर काँटा हो जाना है! शाम ही को लौटने की वात भी सुना रहे हो। हाल ही में परीक्षा देने के लिए परिश्रम किया है और कृशकाय होकर लौटे हो। इतना ही नहीं, लौटने पर दिन भर का भी आराम कहाँ? इधर-उधर की दौड़धूप से काले पड़ गए हो। तिस पर यह बला भी मोल ले ली!" अम्मा दुखी हुईं।

"कोई भी इस युग में टाँग पसारे लेट न सकेगा, अम्मा! हम-जैसों के लिए तो यह और भी संभव नहीं होगा। अम्मा! अपने प्रिय प्रधानमंत्री जी से मिलान कर देखें तो? राष्ट्र का, सारे संसार का कितना भारी बोझ उनके मन पर होगा! यहाँ चले-चलाए इन सब कामों के अकेले कर्णधार की तरह। पार्लियामेंट के काम, प्रधान मंत्री की जवाबदेही, पंचवर्षीय योजना आयोग की अध्यक्षता, साहित्य अकादमी की अध्यक्षता, अन्यान्य समितियों का संचालन, भगवान् ही जाने और भी कितने ही काम होंगे! देश का नया विभाजन, उससे उत्पन्न कई एक समस्याओं का समाधान! कितने गिनाए जायँ? वे जो न करें, ऐसा कोई काम दिखाई नहीं देता। इनके अलावा आज यहाँ, कल वहाँ, परसों विदेश में उनका दौरा लगा ही रहता है। यह कोई खिलवाड़ है? सर्वत्र समय की सुविधा-असुविधा की परवाह किए बिना घूमना पड़ता है, सोच-समझ से वातें कहनी पड़ती हैं। ज़रा सी ऊँच-नीच की स्थिति हुई, तो विराट् उपद्रव ही मच जाए। उससे पहुँचनेवाली हानि-पीड़ा की कोई बात ही न रहेगी। इतना सब साधने वाले साठ से ऊपर के व्यक्ति। देखा कितना अद्भुत है? चार पाँच घंटे तक का सोना भी मिल जाता है या नहीं, कौन बताए? तब भी नींद लगे या नहीं, कह नहीं सकते। उन्हें प्रतिदिन ही पीड़ित करनेवाले प्रश्न, अधिकारी-जन, कर्मचारी-वर्ग अगणित हैं। यही कारण है कि देश का अस्तित्व कुछ बना है। ऐसे आदर्शों के आँखों के सामने रहते, आसपास की गतिविधियों से प्रभावित होने पर भी हम भी परिश्रम से जी चुराएँ तो काम क्या बने, अम्मा? जी चुराना चुरानेवाले को ही नुकसानदेह नहीं, बल्कि देश के साथ द्रोह भी होता है। मेरे इस परिश्रम में कौन-सी बड़ी बात होगी? और भी परिश्रम अपेक्षित है। जितना ही करें, कम हो पड़ जाएगा। दूर की कौड़ी क्यों हाँकें, अपना ही काम ले लेना कब से कब तक कोल्हू के बैल की तरह खटती जाती हो। सीखने के लिए यह संकेत भर काफी नहीं?"

"यह तो मेरी आदत पड़ गई है बेटा।"

"बिना परिश्रम ही साँसत की आदत कैसी हो जाए, सुलभ क्यों हो जा

सके ? तुम ही बोलो, अम्मा।"

"तुमसे कौन बोले, बेटा ! भगवान् तुम्हें सदा स्वस्थ रखें।"

"मेरा यह भी एक अनुमान है कि स्वास्थ्य का रहस्य भी सतत उद्योगशीलता है। देह की सुध बिना मिहनत होती जाए, तो देह भी मज़बूत बनी रह जाए। परिश्रमी स्वस्थ और आलसी सदा शिकायत करते, मुँह लटकाये दवा-परहेज़ में ही तल्लीन दिखाई देते हैं। यह साधारण अनुभव की बात भी तो है।"

"हाँ ! ठीक कह रहे हो। वह देखो। जयलक्ष्म्माजी अकेली ही कितना काम कर लेती हैं। उनका स्वास्थ्य देखो। सिरदर्द, नाक-पीड़ा आदि की शिकायत करते कभी उन्हें देखा ही नहीं। वही भागीरथी प्रतिदिन कोई-न-कोई शिकायत करती ही रहती है। कभी जुकाम, खाँसी, बुखार, अपच, कुछ न हो तो अशक्तता, एक-न-एक लगा ही रहता है। दवा बराबर लेती ही रहती है। दोनों की उम्र में कितना अन्तर है। यही अन्य परिवारों का भी हाल है। अपने ही बहिन-भाइयों को देखो न। इस अभाव दशा में भी कम बीमार पड़े हैं। जो भी खा लें या नहीं, काम में लगे, खेलते-कूदते उसे पचा लेते हैं और अपनी योग्यता के अनुसार नीरोग ही रहते हैं। खा लेना ही कोई भाग्य है ? खाया अन्न पचा लेना, आत्मसात् कर लेना, एक बड़ा सौभाग्य है।"

"तुम्हारा भी वही हाल है न, अम्मा ! तुम्हारी देह कितनी घुला दी गई है—?"

'शु !'—सही बात है। जचकी के सिवाय मैं कभी बीमार रही ही नहीं।"

अम्मा गंगाधर को तड़के जगाने की बात कहते बोलीं, "जगाने के लिए कहते भर हो। खुद ही जग जाओगे, सदा की भाँति। काम की चिंता रहे, तो समय से पहले नींद खुल ही जाएगी।"

खाना खाने के बाद गंगाधर बाहरी कमरे में टोपो नक्शा फैलाए बैठ गया। बाँध के लिए उपयुक्त स्थान, आँगन का फैलाव, नाले की दिशा आदि का संकेत बना लिया। आवश्यक नापजोख का अंदाज़ लगा जब वह सोने गया, तब बारह बज चुके थे।

● ● ●

: १५ :

सुबह अम्मा ने रागी का मोटा रोटा बनाया, गुड़ और एक चम्मच घी देकर खाने को दिया। शंकर ने भोजन भरे दो कंडाल कपड़े से बाँधे और उन्हें कंधे पर रख लिया। वहाँ जितने दिन रहना पड़ जाए, उतने दिन साथ रहने का निर्णय शंकर कर चुका था। भीमण्ण दो आदमी साथ लिए आया। उसका पाथेय बड़ा मोटा था। साँकल, लेवेल पेटी, लेवेल स्टाफ़, रेंजिग रॉड और इतर वस्तुएँ नौकरों ने उठा लीं। लेकिन भीमण्ण ने गर्व से एक रेंजिग रॉड अपने कंधे पर उठा लिया। गंगाधर ने पुस्तकें, नक्शे, फीते आदि झोले में उठा लिए। सबको बिदा करने के लिए ही मानो गंगाधर के घर के सभी लोग चौतरे पर आ खड़े हुए थे। अकेले पिता जी ठाकुर-पूजन के निमित्त घंटी हिला रहे थे।

यह टोली चार कदम आगे बढ़ी ही होगी कि मोड़ पर वीरप्प आता दिखाई दिया। उसके साथ तीन आदमी और थे।

"यह क्या, वीरप्प—नरगेरे—।" गंगाधर ने विस्मित हो पूछा।

"कोई चिंता न करो। पिताजी को ही वह काम सुपुर्द कर दिया। समझ में आया ?"

"वाह, वाह !"

"और क्या ! सब कुछ कह दिया। सुना, डाँटा, बहस की और अंत में शांत हो गए। और करेंगे क्या ? कल अपने काम पर नरगेरे जाना ही था। सो उन्हीं को यह काम सौंप दिया। पर्चे छपवा लाने के लिए भी सहेज दिया। शुरू में तो उन्होंने आनाकानी की। पीछे मान गए। मान लेने पर काम मुझसे भी बढ़िया करा ही लाएँगे। मुझसे तजुर्बा ज्यादा है ही।"

"वाह रे बहादुर !" भीमण्ण ने वीरप्प की पीठ ठोंकी।

"मर गया ! रहम करो, रहने दो अपना उत्साह !" वीरप्प हँसा। छोटे भाई को दुकान पर बिठा दिया और मौका हाथ से निकल न जाए—सोचते स्वयं ही इस ओर निकल आया। ह्‍ह्, ह्‍ह !"

"तुम आए, अच्छा हुआ। असामी हमारे साथ तुमको भी देखेंगे। तुम भूदानी जो हो !" गंगाधर हँसा।

"इसमें क्या सन्देह ! चलो, सबसे कह दूँगा। अपने पिताजी से अभी चर्चा नहीं छेड़ी। सोचा, कहीं एकबारगी सारी बातें खुल न जायँ। धीरे-धीरे एक-एक

खूराक दी जानी चाहिए। बुजुर्ग हैं। निपट गरीबी में रहे हैं। धीरे-धीरे पैसे जुटा कुछ जायदाद बना ली है। बित्ते भर ज़मीन ही देनी पड़ जाय, तो उन्हें बड़ा खलेगा। यह बात भी बता दी जाए और मैं भी खिसक जाऊँ, तो बेचारे सह न पाएँगें।"

ऐसी टोली सड़क पर जाती रहे और लोगों का ध्यान उस ओर आकर्षित हो तो आश्चर्य कैसा ? घर-घर में छोटे-बड़े दरवाजे पर खड़े आपस में बातें करते दिखाई दिए। चन्द लोग हँसे भी। भीमण्ण हँसते हुए फुसफुसाने लगा—"अपना प्रचार-कार्य शुरू हुआ जानो। आज गाँव भर की सड़कों पर घूमते रहने को दिल करता है।" उसकी फुसफुसाहट सब सुन सकते थे।

"प्रचार होने दो। हम तो आखिरी दम तक हटने वाले नहीं। वे सभी टोली में आ मिल जाएँ। सबके लिए सुस्वागत !" वीरप्प जोर से ही बोला। बगल-बगल खड़े रहने वालों को भी यह सुनाई दे सकता था।

"ठीक कह रहे हो। पीछे पैर हटे, तो बड़ी हेठी होगी।" गंगाधर अपने को सुनाने के ढंग से बोलता गया।

"पैर हटा लेने की बात कौन सोच रहा है ? देख लेना, आदमी ही मिलेंगे। इसी तरह कब तक खड़े-खड़े टुकुर-टुकुर ताकते रह जाएँगे ? हम काम में लगे तो रहें ? आखिरकार वे भी तो दिल से मिहनती हैं ? पर कोई नया काम हो जाए तो ज़रा दबे-दबाए सामने आते हैं। मन के संदेह दूर हो लें।" भीमण्ण ने कहा।

थोड़ी दूर गए होंगे। सड़क के किनारे एक युवक गाड़ी में बैल जोत रहा था। दालान पर बच्चा गोदी में उठाए खड़ी अपनी बीवी की ओर रुख किए बोला—"बाँध का काम शुरू हो गया भाई।" वह हँसा—उसमें व्यंग्य था।

"हाँ, वे। निगंप्प। जवानी का जोश है तो तू भी आ जा, शरीक हो जा।" भीमण्ण बोला वह भला बात क्यों पी ले ?

टोली आगे निकली। निंगप्प की बीवी की उसे सुनाई फटकार इनके कानों में पड़ रही थी—"वही तो। वही करो। वरना मुँह बन्द रखो। हँसी क्यों करते हो ? देखा नहीं, कैसे कैसे भलेमानुस लोग शामिल हैं ? गौडर की बिट्टी रेवती की बातें कल ही सुनीं और आज भूल गए ? वह भी पढ़ी-लिखी है। इसमें बहुत कुछ सार है।"

"क्या बक रही हो ? खाद-मिट्टी आदि ज़मीन पर ले जा गिराना छोड़ दूँ ?" पति ने आपत्ति उठाई। लेकिन आवाज़ से स्पष्ट था कि वह झेंप गया

था। भीमण्ण की चुनौती और बीवी की फटकार असर कर गई थी।

"उत्ती दूर जा ही रहे हो। ज़रा और आगे जाकर उन्हें बिदा तो कर आओ।" बीवी का आग्रह हुआ।

"वही सही, मेरी जगेसुरी! क्योंजी, चलोगे धारा तक पहुँचा दूँ?" युवक ने आवाज़ दी।

टोली रुकी।

"चढ़ो भी! बैठा जाए।" भीमण्ण बोला। धीमी आवाज़ से कहता गया। "देखा, अपने गाँव की औरतें कितनी उदार होती हैं? उनके जी में बात आ जाए, तो क्या मर्दों को काम पर लगा देना मुश्किल होगा?"

"कोई एहसान न चाहिए। उसने जो व्यंग्य किया वह भूल गए।" गंगाधर अप्रसन्न हो बोला।

"भूल करते हो, गंगाधर! इन मौकों का फायदा उठाना होगा। वह अपना आदमी बन जाएगा। उसका मन कसी का छोटा पड़ गया है। इस वक्त इनकार कर दो तों वह अपमानित अनुभव करने लगेगा। क्रोधित हो जाएगा। अनजाने वह कुछ छींटा उड़ा गया, हमें उसे तरह देनी चाहिए। गाँव के लोग ऐसे ही होते हैं।" वीरप्प ने समझाया।

गाड़ी निकट आई और पास ही रुकी।

"निंगप्प! तूने हमारा कितना बड़ा उपकार किया! वक्त, मेहनत इन सबकी बचत हो गई।" कहते भीमण्ण ऊपर चढ़ा। बाकी ने भी उसका अनुसरण किया।

"काहे का उपकार, भैया! कहो तो रोज़ पहुँचा जाऊँ।" निंगप्प प्रसन्न था। उसकी झेंप मिट गई थी। वह इनका साथी हो गया था। मौके पर बात की करामात।

खुली गाड़ी पर का यह जुलूस और भी कइयों को आकर्षित करता गया। अवज्ञा से लेकर सराहना तक की भंगिमाएँ गोचर हुईं। कुछ आवाज़-कशी, कुछ गम्भीर बातें भी सुनाई पड़ गईं। कुछ मिलाकर गाँव भर में बात फैलाने में इनसे भी मदद पहुँची।

गुण्ड गाड़ी पर चढ़ा तो "यह कैसा नया इंतजाम दिख रहा है, भाई!" कहते हँस पड़ा। खाना भरा कण्डाल भैया के हाथ में देते पार्वती जोरों से हँसी। सब साथ देने लगे।

"यह क्या, हम काम पर निकले हैं या वनभोज के लिए ?" गुण्ड की इन बातों से हँसी और तेज़ हुई।

हिरियण्णाजी के मकान के सामने जयलक्ष्म्माजी कमर झुकाए रंगोली सजा रही थीं। गड़गड़ाहट की आवाज़ सुन कमर सीधी कर ली।

"यह क्या, इतने लोग कहाँ जा रहे हैं ?" पूछा। गंगाधर ने हाल सुनाया, तो आशीर्वाद देने लगीं, "बड़ा अच्छा है, वीरप्प, भीमण्णा और भी कई लोग हैं। उल्लास-हँसी के साथ निकल पड़े हो। शुभ लक्षण हैं। ईश्वर की कृपा ऐसी ही बनी रहे।"

"आपके आशीर्वाद से सब ठीक होगा, माई !" भीमण्ण बोला। वह आगे कहने लगा, "हमें इन जैसी परिश्रमियों-कर्मकुशलाओं की असीसें चाहिए।"

"खाली पूजा-पाठ में लगी आरामतलब व्यक्तियों का आशीर्वाद सत्वहीन, पोषणहीन रह जाता है।" वीरप्प ने कड़ी जोड़ी।

"जय हिंद ! चलिए, चला जाए !" गुण्ड अपूर्व उत्साह से भर उठा था।

गंगाधर इस अवसर पर मन-ही-मन सवाल करता जा रहा था—"हम सोच-समझ कर काम में लगे हैं ? इसी तरह आगे भी कार्यसिद्धि तक उत्साह बना रहेगा ? या दो-एक दिन चलकर खिलौने की मोटर की तरह ठप तो न हो जाएगा ?' उसका जवाब भी वह अपने से देता जाता—'यह अन्यथा न होगा। अवश्य चलता चलेगा। फूल हाथ से उठा लेने की भाँति जो शुरू हुआ है। व्यक्ति कितने उत्साह से आगे बढ़ आए हैं और हाथ बँटा रहे हैं। निश्चय ही यह बीच में टें नहीं बोल जायगा। ऐसा नहीं होने देना है। कदापि नहीं…।" वह अनजाने ही प्रार्थना करने लग गया—'प्रभु, हमारा लघु प्रयास स्वीकार हो। उसके द्वारा तुम्हारी सेवा का सुअवसर भी प्राप्त हो।"

गाड़ी बढ़ी जा रही थी। गुण्ड चारों ओर की प्रकृति से मुग्ध हो गाने लग गया।

धारा पर पहुँचे। गंगाधर ने टोपों का नक्शा खोला और उस पर अपनी बनाई रेखाओं का अभिप्रेत सबको बताया। साथियों ने सट कर एक दूसरे पर सिर झुकाए नक्शा घूरना शुरू किया। वे गंगाधर की हर बात पर चकित होते गए। कभी एक दूसरे को अर्थपूर्ण दृष्टि से देखते, जैसे थोड़ा-बहुत समझ लिया। बाद को उसकी सलाह के अनुसार सामान गोरी टीले वाले मंडप में रख दिया गया। दो आदमी रखवाली के लिए लगा दिए गए। टोली के बाकी लोग नपाई की जगह का अन्दाज़ लगाने के लिए निकल पड़े। बीच-बीच में रुक कर गंगाधर

नक्शा खोलता जाता, जगहें पहचनवाता रहता, उनकी विशेषताएँ बताता जाता और योजना से उनका गहरा संबंध भी सूचित करता जाता।

टोली बाँध के उभार पर बढ़ी। निकासी का स्थान देखा। टीले पर चढ़ाई शुरू हुई। बाँध की ऊँचाई का अन्दाज़ लगाया। झील के आँगन के कई हिस्सों पर घूमा। जलाशय के फैलाव का अनुमान किया। यह सब काम पूरा कर गौरी टीले पर लौटते ग्यारह बज चुके थे। तेज़ चलने-फिरने से गहरी थकान थी ही। हर एक पसीने से लथपथ हो गया था। नाश्ता गोल हो गया था। पेट में चूहे दौड़ने लग गए थे। नाले वाली ज़मीन पर घूमना बाकी रह गया था।

"नानी मर गई, इस गंगाधर के संपर्क से! बाप रे कितना दौड़ा दिया। शुरू में ही यह हाल है तो आगे कैसा रहेगा, भगवान् ही जाने। ऐसी दुर्दशा भुगतनी पड़ेगी, इसकी कल्पना ही न रही! ऐसे बाँध के काम को दूर ही से सलाम कर देते। हाय राम! कितने काँटे, कितने कंकड़! पहले मैं कभी जंगलों में घूमा ही न था।" कहते हुए भीमण्ण धारा किनारे धड़ाम से बैठ गया। पानी में पैर हिलाता जाता। हँसते-हँसते धोती में फँसे जाल उतार फेंकने लगा और आगे बोला, "वाह, वाह! धारा का ठंडा पानी कितना मज़ा दे रहा है…जलते हुए पाँव, सूजे हुए घुटने आदि को बड़ा आराम पहुँचने लगा है।"

"हटाओ जी, मेरी दुर्गत के मुकाबले तुम्हारी मुसीबत कौन बड़ी है।" गुण्ड के पैरों में घुटनों तक कँटीली झाड़ियों के लगने से खुरचन आ गई थी, ललाई छा गई थी।

"जल्दी खाना लाओ, तुम लोगों के घर आबाद रहें। कंकड़-काँटे का किस्सा बाद में।' वीरप्प गरज उठ, "मेरा ख्याल था कि इंजीनियर का काम शाही फरमान निकालना ही है, ठाठ का है। इंजीनियर माने, 'ए, यह करो, वह करो' का ताव दिखाने वाला। वेतन और रिश्वत का मज़ा लूटने वाला। मेज़ पर कागजात पर दस्तखत मार देने वाला। क्लब में रैकट घुमाने वाला, ताश पर भिड़ जाने वाला। वहाँ से खिलखिलाते बंगले लौटकर रेडियो बजाती बीवी से नजरें लड़ाने वाला, बस….।'

"बस करो, वीरप्प! बस करो! ऐसी धूप में खेलने के लिए और कोई खेल नहीं ईजाद हुआ?" गंगाधर बीच में बोल उठा।

"ऐसे कबाडिये इंजीनियर भी कई देखे हैं यार! इंटर को नमस्कार करने के बाद मैं भी हठ के मारे नरगेरे में ठेकेदार रहा हूँ। शौक था। ठेकेदार हो जाऊँगा, बोरियों मुहरें भर लूँगा, गाँव में हवेली खड़ी हो जाएगी, शान से

जिंदगी कटेगी—यही सोचा था। एक स्कूल बनाने का ठेका लिया। उसकी बनवाई पूरी होते-होते तीन इंजीनियर आए गए। उनके हर काले कारनामें को जानता हूँ। चाहूँ, एक पुस्तक ही लिख मारूँ उन पर। मिस्त्री, सब-ओवरसीयर, अकाउण्टेंट, साहब बहादुर इनकी बिरादरी के लोग, साथी-संगी, नातीपोते आदि किसी को एक ठीकरा तक न सुँघाया। नतीजा यह कि हाथ खाली हो गया और चुप-चाप मंडी में आ बैठा।" वीरप्प सफाई देने लगा।

इतनी अवधि में गौरी टीले पर से खाना आ गया। टोली के सदस्यों ने हाथ-मुँह धो लिए और भोजन करने बैठे।

"ऐसा बढ़िया खाना पहले कभी देखने को न मिला था।" गुण्ड अचार चाटते हुए बोला।

"इसका श्रेय तुम्हारी अम्मा को नहीं, यहाँ दौड़नेवाले, पेट खाली हो सके ऐसी मेहनत करानेवाले अपने इस प्राण प्यारे साथी को मिलना चाहिए। मिहनत के बाद का खाना पक्वान्न है।" वीरप्प कहने लगा और "ज़रा देखें तो सही, इधर बढ़ाओ", कहते हाथ बढ़ाया।

"कहो भाई गंगाधर! उस नीम के पेड़-तले थोड़ा लेटा जाए?" भीमण्ण हाथ धोते मिन्नत करने लगा।

"आध घंटे से अधिक नहीं। याद रहे, अभी काफ़ी दूर चलना बाकी है।" गंगाधर हँसते-हँसते मान गया।

सभी नीम की घनी शीतल छाया में सुस्ताने लगे। भीमण्ण खर्राटे भरने लगा। जगमगाते समय अँगड़ाई लेते हुए बोला, "इतनी जल्दी साँझ ढल गई? अभी क्यों जगाया भाई! अच्छी बात है। इस गंगाधर का दबाव न होता, तो शाम तक यहीं लेटे रह जाता। बड़ी मीठी नींद आ गई।"

"वह भी मिहनत की कमाई है, भाई! समझे! उठो-उठो।" वीरप्प ने उसे सहारा दे उठाया।

टोली चल पड़ी। वे सभी नाले के रास्ते से होकर गुजर रहे थे।

गंगाधर ने टोपो खोला, "नाला यहाँ से-वहाँ से निकल आता होगा', कहता गया। गुण्ड पट्टा-खाता खोलते बताता गया कि यह अमुक की ज़मीन है, यह अमुक की।

'नाला किसी उपाय से अपनी ज़मीन पर से निकलने वाला बन जाए, कम से कम हिस्से पर ही क्यों न हो। पिताजी से भूमि जो दान में लेनी है।" गुण्ड बोला।

"ठीक है, अपने चार-छह लोग ऐसा करे, तो बात मालूम हो जाते ही पचास-साठ लोगों को ज़मीन देने के लिए मनाया जा सकेगा।" वीरप्प की सलाह हुई।

चलते-चलते रास्ते पर दुधियागाँव के देवरेगौडर मिल गए। गौडर महाशय की उम्र ढली थीं, देह नहीं गली थी। उनकी उजली मूँछे, चौड़ा चेहरा, लंबी नाक, घनी भौहें, ऊँची कद, गठा बदन, सफेद तिरछा साफ़ा, धोती, चमरौधे जूते, छड़ी आदि को देखने से किसी पुराने किलेदार की याद सहज हो आती।

"कहाँ निकले हो भाई तुम, गुट बाँध कर? यह क्या शानभोगजी, मंडी के साहूकारजी, छोटे पटेलजी सब हैं। तुम दीक्षितजी के बेटे हो न?" गौडर ने पूछा। गंगाधर ने जवाब में 'हाँ, गौडर प्रभु! यह मेरा भाई है।" कहते शंकर की ओर इशारा किया।

"कैसे चल पड़े हो, तफरीह के लिए?"

"नहीं बाबा! जबर्दस्त काम पर निकले हैं। यहाँ नाला बनाएँये। सुवरन धारा पर बाँध उठेगा।" भीमण्ण ने बात शुरू की।

"यह बात! सो कब होगा? यही चर्चा सुनने में आ रही है। सालों बीत गए। हम भी दरख्वास्त देते ही जा रहे हैं। इधर सरकार से मंजूरी मिल गई है?"

"मिल ही जाएगी।"

"रुपए-पैसे की कमी तो बताई जा रही है?"

"कोई ज़रूरत नहीं। हम गाँव वाले ही मिल कर काम पूरा कर लें, यही तय हुआ है।"

"वह हो भी सकेगा? आखिर हम क्यों परेशानी उठाएँ! लगान वसूलती है सरकार और काम पूरा हम कर लें?"

"आसपास के गाँवों से चार छह हज़ार तक लगान उगाही जाती है। बाँध नाला आदि के बनने में छह-सात लाख लग जाएँगे। सरकार कहाँ से इतना लावेगी?"

"पीछे लगान बढ़ा ले। आगे ज़मीन तरी में बदल जाए, तो ज्यादा रकम भी तो लेने लगेगी।"

"सो बाद का किस्सा है। पहले तो काम होना चाहिए। वह ज्यादा रकम-कांट्रिब्यूशन के रूप में ही सही, लेकिन क्यों जाए? हम ही काम पूरा कर लें तो वह भी बच जाए। बाद को तरी की लगान की बढ़ती भर दे दी जाए।

सरकार बहुत कुछ कर भी रही है—छह-सात करोड़ रुपए लगाकर....।"

"छह-सात करोड़ ! बाप रे ! हद हो गई, हद हो गई।"

"इतने पर भी बहुत कुछ बाकी ही रह जाता है। अपना देश विशाल है। उतना भी न अटेगा। सरकार भी करती जाए, हम भी करते जाएँ।"

"इस वक्त उसी पर भरोसा रखें, तो कुछ होने-हवानेवाला नहीं। अपनी ज़मीन की सिंचाई जरूरी उपज ज्यादा बढ़ाई जाय। इसके लिए अपनी मिहनत का ही भरोसा। सो हम सब शुरू कर दे रहे हैं।"

"सही बात है। मगर उतनी रकम पल्ले में कहाँ ?"

"हम मेहनत करें, तो हो सकेगा। ज्यादा रकम की जरूरत न पड़ेगी। जितनी जरूरी है, जुगाड कर ली जा सकेगी।"

"उस हालत में गाँव वालों को खटना पड़ेगा। यही न मतलब ?"

"हाँ, वही बात आ पड़ती है। आपके गाँव वाले भी साथ देंगे ?"

"मैं कैसे कहूँ। बाकी गाँव वाले शामिल हो जाँए तो ये क्यों चूकें ? इनकी भी ज़मीन तो सींची जाएगी ?"

"वही बाबा ! असली पेंच है। आप बुजुर्ग और तजुर्बा रखनेवाले हैं। आपका इशारा मिल जाए तो दस-आगे बढ़ ही आएँगे।"

"अपना वश क्या चले भाई ! मौका आ गया तो कहने में क्या जाता है ? ज़मीन पर भी निकल आएगा नाला ?"

"क्यों नहीं, बीस एकड़ भर की सिंचाई में कोई टोटा नहीं।" गुण्ड जानता था।

"ज़मीन पर से होकर निकलेगा ?"

"हाँ, थोड़ा-बहुत।"

"उसके पैसे कौन भरेंगे ?"

"उतनी ज़मीन की सिंचाई हो गई, कांट्रिब्यूशन बच गया तो एकाध एकड़ की ज़मीन यों ही न दी जा सकेगी बाबा।" भीमण्ण ने पूछा।

"आजकल चले भूदान का आंदोलन मालूम नहीं ? कई जगहों पर भूमिहीन के लिए भूमि जो दान में दी जा रही है ?" गुण्ड ने सवाल किया।

"लड़का कुछ ऐसा ही कह रहा था। कागज़ में भी कुछ इसी की चर्चा चली है।"

"हिरियण्णाजी झील के आँगन में पड़नेवाली दस-बारह एकड़ ज़मीन दान में दे रहे हैं।" गुण्ड के मुँह से फूट पड़ा। उसने भावी की कल्पना के बल पर

ही ऐसा कह दिया।

"यह बात।" गौडर सिर हिलाने लगे।

"पिताजी भी देने वाले हैं। अपनी ज़मीन पर से भी नाला निकल आएगा।" वीरप्प ने धाक भमाई।

"फिर क्यों ?"

"पिताजी अपनी ज़मीन भी दे देंगे।" गुण्ड सगर्व बोला।

"अच्छी बात है ! सभी बड़े-बड़े लोग दिलचस्पी ले रहे हैं।"

"आप कौन छोटे हैं बाबा ! नाला बने, उससे संपत्ति भोगी जा सके; उसके लिए छोटे-बड़े सबको ज़मीन देनी होगी। पीछे आपके यहाँ झोली पसारते आएँगे।"

"उतनी बड़ी बात न कहिए, शानभोगजी। जायदाद लड़के के नाम हो गई है। करना-धरना उसकी मर्जी जैसी हो, वही होगा।"

"बाबा, आपकी बात वे टाल सकेंगे ?" भीमण्ण ने चढ़ाया।

"सो तो नहीं करेगा। मेरी बात टालेगा क्योंकर ? अपनी औक़ात भर कुछ दे ही देगा। बाकी भी दें तो।"

"उतने ही की उम्मीद आपसे है। आपके लड़के भी हमारी ही तरह बात ठीक समझ ही जाएँगे। उनसे मदद मिलेगी ही।" वीरप्प ने थपथपाया।

"हाँ, आपलोग आजकल के जो ठहरे। समझदार हैं। कुछ-न-कुछ करते जाते हैं।"

"आप-जैसों की कृपा बनी रहे, तो अपना काम सरल हो जाएगा। आदमी, पैसे और ज़मीन आदि की कमी न होगी। बाँध अपनी आँखों के सामने उठ ही जाएगा। नाला बन जाएगा, फसलें लहलहा उठेंगी।"

"हमारी कृपा से क्या होगा, साहूकारजी ! सब उस परमात्मा की मर्ज़ी से चलता है, कहिए। आगे बहुत दूर जाना है, क्यों ?"

"जी हाँ। जगतपुर तक जाना होगा। वहीं नाला धारा से मिल जाएगा।" गंगाधर बोला।

"तुम इंजीनियर हो भाई ?" गौडर बोला उन्होंने इसका अन्दाज़ उसके हैट-बूट से लगाया होगा।

"जी हाँ। यह बाँध उठवाने की ऊँची परीक्षा पास करके ही आए हैं। देखरेख, जाँच-पड़ताल के लिए सरकारी अफसर भी आनेवाले हैं।" भीमण्ण ने कहा।

"अच्छा, तो यह बात है! सुब्बादीक्षितजी का बेटा इतना होनहार निकला, बड़ी खुशी हुई। परमात्मा तुम्हारा कल्याण करे।" कहते हुए गौडर आगे बढ़े।

'देखा, दूसरी सीढ़ी के लिए अभी से नींव तैयार की जाने लगी।" गुण्ड प्रसन्नता से बोला।

"अपने प्रयास में आस्था उत्पन्न हो जाय, तो सब इनकी ही तरह सोचने-समझने लगेंगे।" वीरप्प आश्वस्त हो उठा था।

"हम दाँत कसे जी-तोड़ मिहनत करें और कुछ कर दिखाएँ, तो आस्था उत्पन्न होगी ही। यही अपने लिए सर्टिफिकेट भी है।" भीमण्णा ने बात पूरी की।

टोली आगे निकलती गई। दूसरे दो-चार के गाँव के लोगों भी भेंट होती गई। उनकी उम्र, जानकारी के लिहाज़ से कभी भीमण्णा, कभी वीरप्प, कभी गुण्ड, कोई-न-कोई बात सरल शैली में समझाते रहते। इनके कहने के ढंग में सिद्धांत की बातें कम, गाँव वालों की भलाई का ब्यौरा अधिक होता था। बीच-बीच में गंगाधर कुछ कह देता था। इससे उन लोगों के सामने पूरी तस्वीर आ जाती और अपने कर्त्तव्यों का बोध भी स्पष्ट हो जाता।

मिलनेवाले सभी देवरगौडर की भाँति भले ही उत्साही न रहे हों किन्तु किसी ने अरुचि न दिखाई। यथासंभव आश्वासन ही उनसे मिला। पलंगपुर के ज़मींदार शिवप्प इस पुनीत प्रयास से सर्वाधिक अभिरुचि दिखाते प्रतीत हुए। बातों से लगा कि वे इनके कथनानुसार ही सहायता देने को तैयार हैं। लेकिन शिकारपुर का मंचय्या जड़ प्रतिमा ही बना रहा। कई तरीकों से समझाने पर एक तो मानने को तैयार ही नहीं; ऊपर से यह धमकी भी दी, "जो चाहे जितना भी दे या न दे, उनसे मेरा कोई वास्ता नहीं। मैं अंगुली भर ज़मीन भी नहीं देने का। नाला अपनी ज़मीन पर से बह निकले, तो मुकद्दमा लड़े बिना दम न लूँगा। चाहे सरकार हो, चाहे सहकार चाहने वाला। कोई भी ठीक दाम चुकाए बिना मेरी ज़मीन पर कदम न रख सकेगा। मैंने ये सारे नाटक बहुत देखे हैं! आप सिंचाई का इंतज़ाम करने वाले बने हैं?" और तीर की तरह निकल गया।

"यह भी कोई आदमी है! बाकी लोगों को समझने में जो देर लगी, उससे दुगुनी इस खूसट पर बरबाद हुई।" गंगाधर खिन्न हो उठा।

"जमात में ऐसे भी जीव होते हैं भाई ! इनके लिए दूसरा सोंटा घुमाना होगा।" गुण्ड बोला।

"यह ऐसा ही अडंगा डालने वाला मान बैठे हैं क्या ? उसकी खोपड़ी जो हमने चाटी है, वह फालतू जायगा ? दिमाग में ये कीड़े दौड़ते रहेंगे। धीरे-धीरे ठिकाने पर लग जाएगा। या गाँववालों की फटकार से वह रास्ते पर आ जाए। सब विफल हुआ मान लो। देखें, क्या गुल खिलाएगा ! अरे भाई; अदालत ही न जाएगा ? निपट लिया जाएगा। मारपीट थुक्का-फज़ीहत की नौबत आए, तो यहाँ कौन केले छीलता रहेगा ?" भीमण्ण जोश में आ गया था।

"यह ग़लत है। हमें उसका तरीका अपनाना शोभा नहीं देता। समय आने दो। सत्याग्रह का अस्त्र है ही-द्वार पर अनशन करने में मैं में स्वयं धरना दूँगा।" वीरप्प ने अपना फैसला सुनाया।

'पहले काम यहाँ तक आ जाए पीछे देखा जाएगा।" गंगाधर आगे चला।

वे नाले के सिरे तक जाकर पगडंडी से गौरी टीले पर लौटे, तो अस्तोन्मुख सूरज दिखाई दिया।

"ये जो सर्वे के सामान हम ले आए उनसे तो आज कोई काम ही न लिया गया।" शंकर का उद्गार हुआ।

'यह कैसे ? अभी आध पौन घंटा बाकी है। यह पहला दिन है। श्री-गणेश हो जाय। आपकी क्या राय है ?,, गंगाधर ने सबसे पूछा।

"हाँ, हाँ ! जितना बन पड़े, उतना ही सही।" भीमण्णा बोला।

"वही ठीक होगा भी।" वीरप्प मान गया।

"वंदा भी हाजिर। आखिर तक।" गुण्ड ने शह दी।

गौरीमंडप से सामान लाने के लिए आदमी भेजे गए। सामान आ गया।

गंगाधर ने ठीक देखकर लेवेल स्टैंड पर लगाया। भावी कार्य का ब्योरा सुनाया। हर कोई बड़ी उत्सुकता से लेवेल की दूरबीन घुमाते-फिराते झाँकने लगा। टीला, पेड़, पौधा, झाड़ी, उड़ते-फुदकते पक्षी-फिरते आदमी आदि दिखाई पड़े। दूरबीन की पेंच घुमाते हुए अनेक दृश्यों, गोचर रूपों को कभी धुँधला, कभी साफ़ देखा। सभी बड़े चकित और हर्षित हुए

गंगाधर ने किताब उठाई। काम चालू होना था। साँकल खींचना, रेंजिग रॉड़ धरना, गंगाधर के इशारे पर डंडी खड़ी करना आदि काम के लिए साथियों में होड़ सी मच गई। प्रत्येक ने एक-न-एक समान उठा ही लिया। भीमण शंकर को साथ लिए सांकल खींचने को तैयार हुआ। नौकरों के लिए

कोई काम बचा ही न रहा। सूरज ओझल हुआ। गंगाधर को डंडी पर अंकित संकेत दूरबीन से साफ न दिखे। तभी उस दिन का काम पूरा हुआ। पाँच फुट की लम्बाई नापी जा सकी थी।

"इतना ही आज काम!" कह कर भीमण्ण लंबी साँस लेने लगा। साँकल गोलाकार लपेटी जाने लगी।

"काम के ऐसे ही दिन न जाने आगे कितने पड़े होंगे! साल, दो साल!" डंडी के हिस्सों को एक में करते वीरप्प हिसाब लगाता गया।

"उस वक्त तक जिंदा रहें तब न।" भीमण्ण हँस पड़ा।

'जिंदा तो रहेंगे ही, जीत भी मिलेगी। संदेह कैसा!" रॉड ऊपर उठाते गुण्ड जोश भरता गया।

"वही होगा भी।" लेवेल पेटी में रखते गंगाधर दृढ़ता से बोला।

"प्रभुकृपा से पौरुष हमें प्राप्त हो!" कहते वीरप्प हाथ-पैर धोने धारा किनारे पहुँचा।

थोड़ी देर तक सभी लोग किनारे बैठ गए। चारों ओर की प्राकृतिक रम्यता का आनंद लूटा। थकान कम होती गई। धीरे-धीरे कर सब गाँव की ओर बढ़े।

टोली हिरियण्णाजी के मकान पर पहुँची, तो वहाँ अप्रेंटिस सब-ओवरसीर नरसप्प खड़े दिखाई पड़े। गंगाधर को देखते ही उसका अभिवादन कर सामने आए।

"कहिए, कब आए? यहाँ खड़े कैसे हैं?" गंगाधर ने पूछा।

शाम को ही आया, सर! और एक लेवेल, साँकल......सब लिवा लाया हूँ। रास्ते में ये मकान-मालिक मिल गए। सब पूछा-पाछा। आपके काम पर जाने की बात भी बताई। उन्हीं के यहाँ ठहरा जा सकेगा, आप भी कोई एतराज न करेंगे, यह भी प्रस्ताव किया। यहीं सामान उतरवाया है। अब आप जैसा कहें......।"

"उनका कहना उचित ही है। वे अपने बुजुर्गों में से हैं। ठीक ही है उनका प्रस्ताव।" कहते गंगाधर अपने साथियों की ओर मुड़कर बोला, "जरा अंदर हो आ रहा हूँ। आप आगे बढ़ें। कल भी काम का यही प्रोग्राम रहेगा।" और मकान के अंदर घुसा।

अण्णाजी घर पर न थे। जयलक्ष्माजी आँगन में बाती बना रही थी।

'मामीजी! अण्णाजी की कितनी बड़ी कृपा हो रही है! कृतज्ञता-ज्ञापन

कैसे किया जाए, यह अज्ञात है………।" गंगाधर ने शुरू किया।

"कैसी बात कह रहे हो, गंगाधर ! अभी जो आए हैं उनके बारे में कह रहे हो ? हटाओ, इसमें कृपा कैसी ! घर पर आने जाने वाले कम थोड़े ही हैं ? चार दिन ठहरेंगे, तो क्या हुआ ? यहाँ जगह की कमी है या उनके लिए अलग रसोई तैयार करनी है ?" जयलक्ष्म्माजी सहज स्नेह से बोलीं।

"आप पर तो कोई बोझ नहीं ! हमारी एक भारी चिंता दूर हो गई।"

"इसमें क्या धरा है, गंगाधर ! हर कोई अपनी योग्यता के अनुसार करे, यही तो। तुम्हारे लिए और कोई आवश्यकता पड़ जाए तो निःसंकोच कह दो। उनसे माँगो। उनका स्वभाव जानते ही हो। आगे न बढ़ेंगे। कोई आगे बढ़े, तो मना भी न करेंगे। मैं क्या जानूँ तुम्हारी आवश्यकताएँ ? आज क्या-क्या हुआ ?"

गंगाधर थोड़े में ही सब सुना गया।

'तुम बेचारे लड़के। कितनी यातना भोग रहे हो ? सुफल मिले। मिलेगा ही।"

"बाकी लोग कहाँ गये हैं, मामी ?"

"उन शाय्यंगारजी की लड़की वेदा है न ? सुना है, आकाशवाणी में गाती रहती है। उसका संगीत है। खुद आए थे। लिवा गए हैं जलपान करते जाओ। कितना थके हो ? चेहरा ही बता रहा है।"

"इसकी कोई ज़रूरत नहीं, मामी ! आपके जलपान में जलमात्र थोड़ा ही है ?"

जयलक्ष्म्माजी ने गिलास भर लस्सी पिलाई। वहाँ से निकल कर गंगाधर नरसप्प के कंधे पर हाथ लगाए कहता गया, "आज से आप अपने हो गए हैं। गाँव में सभी दृष्टियों से शिष्ट-संस्कृत सज्जन के यहाँ ठहरे हैं। खाना खाने के बाद इस जन की झोपड़ी में आ जाइए। रथ-पथ पर सुब्बादीक्षितजी का मकान पूछिए, तो कोई भी बता देगा। काम के सिलसिले में, कल के प्रोग्राम के बारे बारे में कुछ बातें हो जाएँ। इस प्रयास में इंजीनियरी के सामान की जनता को आवश्यक जानकारी कराते जाना भी बड़ा महत्वपूर्ण है। इसके लिए सारी बातें मालूम रहनी चाहिए। तरह-तरह के लोग तरह-तरह के सवाल उठाते और बहस करने लगते हैं। उन्हें मना लेना और उनका सहयोग प्राप्त कर लेना काम का तीन-चौथाई हिस्सा हो जाता है।" इतना कह वह विदा हुआ।

दूसरे दिन नरसप्प के साथ शंकर और कुछ आदमी लगाकर उन्हें झील के आँगन की नपाई का काम सौंप दिया गया। गंगाधर बाकी लोगों को लेकर बाँध

का उपयुक्त स्थान नाले की दिशा पर की जगहें आदि नापने निकल पड़ा। ये काम में लगे धीरे-धीरे प्रगति करते जाते तो रास्ते पर, खेतों में कई नए आदमी मिलते ही जाते। इससे आसपास के हल्कों में खबर फैल गई। उन गाँवों में इस प्रयास के बारे में कुतूहल जगाने को प्रेरक वातावरण बनता गया।

उस दिन रात को खाना खाकर गंगाधर अण्णाजी के यहाँ खुद आ गया। नरसप्प के साथ उसने दिन की नपाई का हिसाब लगाया। नरसप्प को उस वक्त गंगाधर की अद्‌भुत कार्यक्षमता का पता लगा, तो वह चकित रह गया। एक दिन में कितना काम! अपने काम के परिणाम का बोध होते ही सदा की भाँति तृप्ति की जगह उसे लज्जा का बोध हो आया। दूसरे दिन से न पिछड़ जाने का हौसला उसमें जग गया।

हिसाब लगा लेने के बाद नरसप्प द्वारा लाए दो बोर्डों पर सिर नीचा किए लैंपों की रोशनी में दोनों ने ड्राइंग का काम किया। सोने के लिए कमरे की ओर अण्णाजी थोड़ी देर वहीं रुके और इनका काम देखा। जयलक्ष्माजी अब-तब आ जातीं। बड़ी आसक्ति दिखा थोड़ी जिज्ञासा भी प्रकट कर देतीं, 'ये बिंदियाँ क्या हैं? ये टेढ़ी मेढ़ी रेखाएँ? आदि। गंगाधर मुस्कुराते हुए समझाता जाता, "बिंदियाँ अपने लिए आवश्यक सतह का संकेत करती हैं। टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ एक ही सतहवाली जगहें इंगित करती हैं।"

"बांध कहाँ रहेगा? झील का विस्तार कितना होगा? नाला किधर से होकर बहता जाएगा?"

"नपाई पूरी हो जाए तभी इन सबका संकेत नक्शे में संभव हो पाता है। यह जो दिख रहा है एक दिन का काम है। बाँध, झील आदि यहाँ देखिए, मामी जी! कहते हुए गंगाधर ने टोपो नक्शा खोला। उनपर अपनी लगाई रेखाएँ दिखाता गया। उस वक्त—अण्णाजी भी खड़े देखते रहे। उसकी सारी बातें सुनते गए।

भोजन के बाद कैरम से छुट्टी पा भागीरथी और कैंट दोनों इनके निकट आए।

"गुड्डी, देख यह अपनी चित्रकला! कैसी लगती है?" गंगाधर का सिर ऊपर नहीं उठा। योंही आँखें दौड़ा उसका चेहरा देखते वह हँसते हुए बोला।

"हर एक का चित्र अपने ढंग का होता है।" भागीरथी भी हँसी।

"ये बिंदियां-प्वाइंट और नज़दीक होनी चाहिए थीं। आगे परेशानी बढ़ जायगी, देख लीजिए। अंदाज उतना सही न निकलेगा।" कैंट ने आलोचना की।

गंगाधर ने सिर उठाकर उन्हें देखा। पल भर चुप रहा। फिर बोला, "आपका कहना सही है। जितनी नजदीक रहें, उतनी ही भली। पर, पचास फुट का अंतर काफी नहीं होगा ? समय का भी ध्यान रखना होगा ?"

'स्टेट्स में ये सारी झंझटें नहीं हैं। सब का हवाई सर्वे-एयर सर्वे झट कर डालते हैं।

कैंट साहब को गंगाधर के प्रश्नों से कोई मतलब न था। नया राग ही अलाप दिया। गंगाधर ने दुबारा उनका चेहरा देखा। पर चुप लगा गया।

"उसके माने ?" भागीरथी आतुर हो उठी।

"हवाई जहाज़ से ही सबका चित्र ले लिया जाता है। कंकड़-काँटे भरी ज़मीन पर चलने की नौबत ही नहीं आती।" कैंट साहब ने समझाया।

"यह बात।..."

"और क्या ? वहाँ इस तरह की माथापच्ची करते जाएँ तो उनका हल हमारे सरीखा ही हो जाए। हह।" कैंट हँसते हुए फैसला सुनाते गए। गंगाधर काम में जुटा हुआ था।

"वह 'रेन बो' कैसी है ? खत्म हुई ?" भागीरथी उपन्यास की चर्चा करने लगी।

"डी० एच० लारेंस की जो है ? कहना ही क्या ? बड़ी दिलचस्प रही। रात में लेटे-लेटे देर तक पढ़ता ही रहा। पता नहीं कब झँपकी लग गई। सुबह तक रोशनी जलती ही रही। मैंने जो 'हैमिंग वे' दिया है, सो कैसा है ?"

"फर्स्ट क्लास-अव्वल ! कैसा साहब ! कितना रोमांस ! जीवन के माने उस तरह फड़कता जो रहे। शिकार, मारपीट, साँड़ों की भिड़ंत, पन्ना-पन्ना फुदकता जाय। उसकी समूची किताबें पढ़ लेनी चाहिए।" भागीरथी अपनी प्रशंसासूचक धारणा प्रकट करती गई।

"ज़रा इस काम में जुट जाओ तो पता लगेगा कि हर घड़ी कितनी आवेशमयी होती है ! आसक्ति रहे, अभिरुचि जगे, तो प्रत्येक सहनशील कार्य का यही प्रभाव होता है। सैकड़ों उलझनें सुलझाने में खोपड़ी जो खुरचनी पड़ती है। तन-मन दोनों को ऊँचाई पर लगा-खपा एक-आध घंटे भर उन्हें सुस्ता लेने में कितना मीठा स्वाद सहज ही चलने को मिल जाए ! माँ अपनी संतान फलती-फूलती देख जैसे फूली न समाती है, वही अमित आनंद अपनी रचना से रचनाकार को हो जाता है। विलासपूर्ण रंजन मात्र कौतुक है, जीवन

को निरा सारहीन बना देता है। लक्ष्यहीन और अर्थरहित पुस्तकें नाटक-सिनेमा के सदृश हैं। यथार्थ जीवन पर्याप्त सरसता से संपन्न है—यही उसकी कसौटी है। इसके विपरीत सरसता की खोज अन्यत्र की जाए, तो उस जीवन में कहीं कोई कमी, कहीं कोई खोखलापन रहेगा ही…।" गंगाधर कान में पड़ी बातों पर अपना मत देता गया।

"तुम्हारे इन अनमोल विचारों के लिए अनेकशः धन्यवाद! मिट्टी, पत्थर, गारा, गिट्टी आदि से स्फूर्ति-संचय की कला मैं नहीं जानती।"

'मिट्टी-गिट्टी में तो चेतना थिरकती मिल जाय, हाँ, बशर्ते आँखें खुली रहें! अंधों के लिए हीरा निरा पत्थर ही तो है! तुम भी इन स्थूल वस्तुओं में अनुरक्त होने, स्फूर्ति संचय करने की कला सीखोगी ही, अन्यथा जीवन अधूरा रह जाएगा। मैं तो इन्हीं के माध्यम से जीवन में प्रवेश करूँगा।"

"मैं कब मना कर रही? स्पर्धा भी नहीं कर रही, गुड नाइट!" दोनों हँसते हुए अपने-अपने कक्ष में गए।

नंजत्ते कभी की सो गई थीं। इधर जाने का सवाल ही न उठा।

गंगाधर दिन का काम पूरा कर चुका। बाहर निकलते समय नरसप्प को छोड़ बाकी सब सो गए थे।

तीन दिन बाद शाम को एक लारी बाजार में आ खड़ी हुई, तो लोगों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। उनमें रहे लम्बे पाइप, मशीन, हैट-बूटधारी मेकानिक आकर्षण-केन्द्र बन गए थे।

"ये सारे सामान क्या हैं, भाई?" कोई लारी में सामने सीट पर बैठे आदमी से पूछने लगा।

"जमीन में सूराख लगाकर जाँचने वाले सामान।"

"सूराख लगानेवाले हैं। सूराख़ लगानेवाले हैं।" कई आवाज़ें एक साथ हुईं। लोग और जमा होते गए।

"कहाँ सूराख लगाएँगे? काहे?" कमर पर पानी का गगरा टिका एक स्त्री पूछ बैठी।

"धारा के काम के लिए आए हैं।"

"धारा में सूराख लगेगा! बाँध उठाने के सिलसिले में आए हैं।" इस तरह कानों-कान बात फैल गई। सड़क पर भी सुनाई दी।

"कब सूराख लगेगा, भैया।" गुल्ली-डंडा लिये जांघियाधारी छोकरा उत्सुक हुआ।

"कल सुबह ।"

"कल ही सूराख लगाएँगे ! सुबह ही सूराख पड़ेगा ! कल ही ! कल ही !" सड़कों पर चलते आदमी कहते जाते । घरों में और चबूतरों पर चर्चा होती, दरवाजों पर, खिड़कियों से भी यही आवाज़ सुनाई दी ।

"मिट्टी-पत्थर में भी सूराख लगेगा ?" कंधे पर फावड़ा लिए खड़ा एक नौजवान अपने लिए रास्ता बनाते हुए लारी के नज़दीक आ पहुँचा ।

"अपने पास उसके लिए यंत्र हैं ।"

"यंत्र से सूराख ! यंत्र द्वारा ! यंत्र से कैसे भाई । यंत्र ! यंत्र !"

"मन्त्र से ? मन्त्र ! मन्त्र से सूराख···ना ना, यन्त्र से····यन्त्र ! बहरे हो क्या ? यन्त्र ! यन्त्र ।"

"यन्त्र से कैसे होगा भाई ।"

"वहीं आ देखिए तो ।"

"वहीं आने को कहते हैं, वहीं ! सूराख लगाने का करतब दिखाएँगे । सबको करतब दिखलाया जाएगा ।"

"किसी के लिए कोई मनाही नहीं ।"

"सभी देखने जा सकते हैं !"

"सभी ! सब के सब ?"

"कल ! धारा पर ! सुबह !····" "जरूर देखना चाहिए !....आम जनता ।"

'खेल देखने खेल !"

"कल स्कूल बन्दी है ! कल बन्दी है !"

इतने में सिगरेट लाने गया उनका आदमी लौटा । लारी चली और रथ-पथ की ओर बढ़ी ।

दूसरे दिन तड़के ही गौरी टीला एक मेले का छोटा सा अड्डा बन गया । भीड़ को हटाते सूराख का काम शुरू करने में देर लग ही गई । फटफटाते यन्त्र की गति से सूराख लगानेवाली पाइप तेज़ी से चक्कर लगाती ज़मीन में आवाज़ के साथ धँसने लगी, तो दर्शक टकटकी लगाए रह गए । भीतर से धसकने की ध्वनि सुनाई दे रही थी । इधर भीड़ से हुई आवाज़ भी कम न थी । 'अरडरे ! वह देख ! ज्यों मक्खन में उँगली घुसी जा रही है ।"

"वाह बेटा ! लोग जो न कर दें, वही कम है !"

"यही हाल रहा तो बाँध उठा ही देंगे ।"

"और क्या, अपने ही गाँववाले तो शामिल हैं कम गिनते हो इन्हें ?

सरकारी आदमी भी आ गए हैं । उठाएँगे क्यों नहीं ?"

"मैं सब खिलवाड़ समझ रहा था भाई ! यह देख, काया ही पलट दी ।"

"वरना क्या पढ़े-लिखे लड़कियाँ-लड़के, इन्हें डींग हाँकनेवाले समझ लिया ?"

"हटाओ जी, सूराख लग गया, कौन बड़ी करामात है ? बांध उठाना ही भारी-भरकम पड़ेगा । गोलगप्पा खाने बराबर समझ रखा है ?"

"उन थोड़े लोगों से कैसे बनेगा ? साथ दें, तो हो-हवा जाय !"

"चुप रह, तुम्हारे-हमारे साथ देने से हो जाएगा ?"

"सुना नहीं, बूँद-बूँद से सागर बने ?"

"ज़रा सबका रुख देख लें । पीछे जो सबका, सो अपना । दस जुट जाएँ, तो हम भी साथ हो लें । इसमें हिचक कैसी ?"

इस भीड़ में तरह-तरह की अटकलें जारी रहीं ।

"आम लोग राह पर आ रहे हैं । उनकी बातें सुनाई दीं ?" गंगाधर के कानों में भीमण्ण फुसफुसाने लगा । गंगाधर आगे के कामों में लीन हो गया था ।

"भैया ! आज ही तो बांध उठाए जाने का-सा समाँ बँध गया है । इतने आदमी ! अगर पास-पड़ोस के गाँवों से भी लोग जुट जाएँ, तो कैसा लगे ! बहते पानी की अन्तर्धारा की भाँति चलते काम में भी बड़ा खिचाव रहता है ।" पार्वती अपने अपूर्व आनन्द को दबा न सकी । वह भी अंजली, रेवती, सावित्री आदि सहेलियों को बटोर लाई थीं ।

"वह देख ! भीतर से मिट्टी किस तरह फिंकी जा रही है ?" गुण्ड ने काम की ओर उसका ध्यान खींचा ।

"यह ! दासप्प को देख भला ! खुद काम में लग ही गया । खुदाई, छोटी-मोटी चीज़ों की उठाई-फेंकाई आदि में जी-जान से जुट गया है । कारीगर काम होता देख कन्नी काटने वाला नहीं । मेरी बात गाँठ बांध के रख लेना । उम्मीद से ज्यादा ही मदद मिल जाएगी ।" वीरप्प भीमण्णा से कह रहा था ।

"अकेला दासप्प ही नहीं ! गिरियप्प, चिक्कमादेगौड, शामण्ण, गुरुबसय्य और भी कई हैं । गंगाधर ने शुरू किया तो हम लोग शरीक न हुए ? हम करने लगें, तो बाकी भी साथ लग जाएँ ।"

गंगाधर भीतर से निकल आई मिट्टी के प्रकार, उसकी गहराई आदि को अपनी समझ के मुताबिक नोटबुक में टाँकता चला जा रहा था । उसके द्वारा निश्चित स्थानों पर गड्ढा तैयार करा सूराख लगाने लायक व्यवस्था में नरसप्प लगा हुआ था ।

"सूरज सीधे सिर पर आया, तो भीड़ छँट गई थी। लेकिन उन लोगों के मुँह से सुनी बातों का असर कहिए कि शाम और भी अधिक संख्या में नए-नए लोग देखने चले आए। वह दिन और यह काम जारी रहे बाकी दो दिन, बाद भी कई दिनों तक गाँव में इसी की विशेष चर्चा रही।

एक दिन शाम को हिरियण्णाजी और रामण्णाजी दोनों देखने आए थे। गंगाधर ने उन्हें यन्त्र-चालन का विधान समझाया और शिष्टतावश कहा—"आपने अवकाश निकाल कर आने की कृपा की, हम सभी आपके कृतज्ञ हैं।"

"गाँव का काम हो रहा है, तो सबमें सहज ही उत्कंठा रहनी चाहिए तो।" अण्णाजी बोले।

"इससे हमें बड़ा बल मिला है।" गंगाधर ने कृतज्ञता व्यक्त की। अण्णाजी की आकृति उल्लसित हो उठी।

"लड़के कुछ-न-कुछ काम करने लगे हैं, बड़ा सराहनीय है।" दोनों लौटने लगे तो रामण्णाजी कहते जा रहे थे। वे सहज ही गर्व का अनुभव करते थे।

"जी हाँ!" अण्णाजी ने स्वीकार किया।

वीरप्प अपने पिता शिवप्पाजी को ज़बर्दस्ती पकड़ लाया और सब कुछ दिखाता गया।

"मैं इन सबके बारे में क्या जानूँगा, भाई! हाँ, देखने लायक जरूर हैं।" वे बोले।

भीमण्ण के पिता पटेल मुद्दण्णाजी ने बड़ी दिलचस्पी ली, उत्साह दिखाया। "देख आओ, क्या-क्या हो रहा है! कितना अद्भुत! लड़के का दावा है कि दो साल में ही बाँध उठ जाएगा। यह देख लेने पर उसे पूरा होने में सन्देह नहीं रह जाता।" यही बात कई जगह कहते आए।

भागीरथी भी कुछ-कुछ उत्सुक हो उठी। कैंट साहब से प्रस्ताव किया। वे बोले—"उसमें कौन सी बड़ी बात है? एक पाइप ज़मीन में धँसाते हैं। दो मील से टहलते उसे देखने जाएँ। अरे भाई, हम कोई गँवार थोड़े ही हैं?"

भागीरथी ने फिर कभी बात न छेड़ी। नंजत्ते की नुक्ताचीनी सहज रही—"गाँव भर में कितना शोर मचा रखा है। इन उजड्डों के दिमाग में कोई सनक सवार हो गई। बस। गाँव भर के फूहड़ आलसी गुट बाँधकर हो हल्ला कर उठते हैं।"

जय लक्षम्माजी कुछ गम्भीर होकर ही बोलीं, "गाय न ब्याई होती और श्राद्ध

की तिथि निकट न होती, तो मैं भी जरूर हो आती।" गंगाधर रात में जब गड्ढों का विवरण चित्ररूप में अंकित करता गया था तो उससे सारी बातें समझना भूलीं नहीं।

"यह क्या, बेटा! गाँव भर के लोग देखने जा रहे हैं। सबके मुँह पर यही बात! सावित्री, पड़ोसी, बाकी लड़के सब वर्णन करते अघाते न थे। बड़ा अद्भूत बताते हैं। सब तुम करवा रहे हो!" यह कहते समय अच्चम्माजी की आँखें फैल गई थीं।

"सभी काम में लगे हैं, अम्मा! इन कामों में किसी विशेष व्यक्ति का नाम ही नहीं उठता''''तुम भी देखने चलोगी, अम्मा!" गंगाधर ने पूछा।

"गोद में बच्चा अलग! कैसे आऊँ, बेटा! घर का काम-काज ऊपर से। तुम ही कह चुके हो, यही मेरी ओर से सेवा है। इतने पर मैं क्या समझ पाऊँगी! सुन लेती हूँ। प्रसन्न हो जाती हूँ। यही पर्याप्त है।" अम्मा बोलीं।

पतिदेव से उन्होंने कहा—"आप ही जाकर क्यों नहीं देख आते? गाँव-का-गाँव जा रहा है।"

जवाब में सुब्बादीक्षितजी झल्ला उठे—"तेरा लाड़ला 'घर का वैरी और दुनियाँ का हितू।' जवान बेटा। घर सँभाल लेगा, यही सोचा था। हाथ से खिसक गया। बेकार का झंझट लिए उछल रहा है। खब्ती है। इससे अपनों को रत्ती भर फायदा नहीं। इसीलिए इतना पढ़ा-लिखा। सेंत में साँसत ऊपर से! इतना ही नहीं, माँ-बाप के बीच मन-मुटाव पैदा कर दे। उसकी करतूतें मैं देखने जाऊँ? हट। जो चाहे कर ले, भाड़ में जाए''''इतने पर उसे दोष देने का लाभ''''यह सब ग्रहों का फेर है। साढ़ेसाती सिर चढ़ आवे, तो किसी का क्या वश चले?" और अपना माथा ठोंक लिया।

पुराणिकजी डाकघर गये। तोंद खिड़की से लगाए मास्टर साहब से कहने लगे, "देखा जनाब! गाँव-भर में कितना तहलका मच गया है। खूब आँखों में धूल झोंकी जा रही है। सब कोरा दिखावा है।"

"इस मिटनेवाली भौतिक-व्यवस्था में इतनी आस्था रखने के बदले, आधिभौतिक सुख-शांति में इनकी अभिरुचि, चेष्टा होती तो कितना भला होता। मेरा मन उनके लिए रह-रहकर तरस खाने लगता है।" निर्वाणय्याजी कलम चलाते, चश्मा उतार कर बाहर देखने लगे। उन्होंने पुराणिकजी के सामने बायाँ हाथ बढ़ाते हुए कहा—"एक बटका बढ़ाइये तो सही।"

मिट्टी-परीक्षण का काम पूरा होते ही गंगाधर ने बाहर निकली गोल मिट्टी

के चन्द नमूने अलग किए। अपना तैयार नक्शा व लम्बी रिपोर्ट, साथ लिंगेगौडर के नाम एक चिट्ठी ये सब नरसप्पाजी को सौंपते हुए बोला—"सुनिए नरसप्पाजी ! हमें भी इस बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी है। धारा के बीच डेढ़ सौ फुट लम्बी एक सपाट चट्टान है। अच्छी है। प्रति वर्गफुट आठ-दस टन का बोझ उठा ले। आसपास टीलों तक बालू, चिकनी मिट्टी की मिलावट-सी लगती है। उतना ठोस नहीं। लेकिन, यह बीच का हिस्सा बढ़िया है। मौका हाथ से नहीं जाने दिया जाए। योजना का प्रारूप इसके अनुरूप ही बने। जो भी बात रह जाय। आप गौडर से मिलिए। उनके आदेश पर ही बंगलोर कालेज भी जाइए। जाँच पक्की हो जाए। वहाँ से रिपोर्ट ले आइए। आज ही रवाना होइए। जल्दी लौटिएगा यह लीजिए, वीरप्प ने खर्चा दिया है। और जल्दी लौटने के लिए आपको क्यों कहना पड़े, सर ? अब तक आपकी आतुरता, कार्य-प्रणाली, आसक्ति-भरी उमंग आदि मैं समझ गया हूँ।"

"घंटे भर की भी देर न लगेगी।" नरसप्प ने आश्वासन दिया।

गंगाधर ने नाले का बाकी पड़ा सर्वे-कार्य अपने जिम्मे ले लिया। रात में ड्राइंग तथा नाला-संबंधी लेखा-जोखा दोनों काम साथ-साथ होते गए।

● ● ●

: १६ :

इसी बीच पार्वती और सहेलियों के जिम्मे पड़ा प्रचार-कार्य बड़ी सरगर्मी से चल रहा था। घरों में लड़कियाँ अल्पना, चौकापूरी, कसीदा काढ़ना आदि काम किनारे रख पोस्टरों की नकल उतारने में लग गई थीं। रंग, रेखा आदि से आकर्षण तीव्र बनाने हेतु जगह-जगह पर इच्छानुसार उन्हें बदल भी देती थीं।

सिद्देगौडर की पोती रेवती शाम को चटाई पर औंधी लेटी हुई रंग-भराई कर रही थी। पड़ोस के चंद बाल-बच्चे टेढ़ी पाथली मारे बैठे देख रहे थे। तभी बाहर से आए गौडर बगल में आ खड़े हुए और तनिक झुककर देखने लगे।

"यह क्या बिटिया ! कल से इसी भंगिमा में काम किए जा रही हो। कमर दुखेगी नहीं ? साँझ को सदा बाहर टहलने जाती थी। किसी न किसी के यहाँ खेलकूद में पहुँच जाती। सब छूट गया है—मैं भी गौर कर रहा हूँ।" गौडर घनी-उजली भौंहें सामने लाकर अधमुंदी आँखों से देखते बोले।

"टहलने जाने की बात रहने भी दो। बेचारी को भोजन करने के लिए भी फुरसत नहीं। इसे न जाने किसने चंग चढ़ा दिया है। परीक्षा के दिनों में भी इतना लीन न रहती थी। यही करती तो फर्स्टक्लास मिल जाता।" पास ही बैठी उजले केश और पोपले मुँह वाली दादी वोलीं। वे पोते को गोद में लिए खेला रही थीं।

"मैं कहे जा रही हूँ। यही रवैया रहा, तो बिस्तर पकड़ लोगी। तव भी कान पर जूँ तक नहीं रेंगती।" फाटक के पीछे से ही रेवती की माँ ने शिकायत की।

"लाड़-प्यार से पलीं मुन्नी जो है! अब कहा मानेगी? भ्रम है! उसे अपनी इच्छा पर छोड़ दे। उठते पाँव जकड़ जाएँ। तिस पर इधर-उधर से सहेलियाँ भी बटोर लाई है।" दादी कह गईं।

"कहो मुनिया, कैसी शिकायत है?" गौडर मुस्कराते हुए उसका सिर सहलाने लगे।

"रहन दे, दादा! मैं खाली नहीं। अपने हिस्से का काम आज पूरा करके दे ही देना है।" रेवती बनावटी रोष से कह गई। मुस्कान भरी दृष्टि दादा पर फेरी। फिर अपने काम में जुट गई।

"यह सब क्या हो रहा है, हमें भी मालूम होने दे बिटिया।" छेड़ने की नीयत से गौडर बोले। मगर पोती पर इसका असर न हुआ।

"चित्र हैं, अंक हैं। इनसे सरकार ने पिछले पाँच सालों में कितना काम निभाया है और आने वाले पांच सालों में कितना करना चाहती है—इन्हीं सब का जिकर उसमें बताया गया होगा। पहले-पहल जो चीजें लाई थीं तभी हमसे, अपनी माँ से गाल बजाती कह रही थी। मुझे सब भूल गया है।" दादी विवरण देती गईं।

"वही नहीं। धारा पर बांध उठाये जाने से कितनी ज़मीन सिचाई से उपजाऊ होगी, कितने अनाज की पैदावार हो सकेगी, गाँव कितना संमृद्ध-सम्पन्न हो पाएगा, इन समृद्धियों से कितने कल्याण-कार्य सुगम हो उठेंगे—ये सारी बातें भी जोड़ी गई हैं।" सिर उठाए बिना ही रेवती ने कड़ी जोड़ी।

"खूब, 'बिन कुँअर कुलह्री तैयार' वाली बात। ऐसा झाड़ रही है, मानो बाँध उठ ही गया हो।"

"बाँध उठेगा ही, देख लेना।" रेवती ने टेक पकड़ी।

"कैसे? उस बंगलोर स्कूल की देहली जब से लाँघ आई है तब से

गृहकार्य की बात उठाते ही नाक-भौं सिकोड़ने लगी है। तुझसे क्या सधेगा ? धारा पर अपनी लचीली बाँहें घुमा रंगीन चूड़ियाँ झनझना देने से ? सज़धज से साड़ी पर दुपट्टा ओढ़े पतली ब्लाउज़ पहने चमकता चेहरा दिखा खिलखिला पड़ने से हो जाएगा ? इन हाथों से खँचिया उठानी होगी। फूल से रचे केशों पर मिट्टी ढोनी होगी। तुझसे यह पूरा होगा ?" दादी परिहास करने लगीं।

"क्यों नहीं ? करूँगी। हम सब करेंगे।" धैर्य का उत्तर मिला। गौड़र आँखें फाड़े और तनिक झुककर पोती की आकृति देखने लगे।

"वाह वाह ! किसने यह जादू तुझ पर फेर दिया भाई ? पूरी बदल गई है। लोटे में पानी लाने को कहो तो अम्मा को आवाज़ देनेवाली। उसी को लाना भी पड़ता। कोई टोना-टोटका जरूर असर कर गया है।" दादा झूम उठे।

"हाँ-हाँ, कर लेगी ! डींगें मारती है। छिला केला थोड़े है निगलने के लिए। मिट्टी-खाद ढोने का अपना ज़माना कहाँ ? सब मनचले साथ मिलकर मस्ती दिखा रहे हैं। हम भी आँखों के सामने होता देख ओठ दावे रहे हैं। अपनी बात का कोई असर इन पर हो भला !" दादी ने बात पूरी की। कथन से निराशा टपकती थी।

लेकिन, गौडर का ख्याल ही दूसरा था। सामने बन रहे चित्रों में उनकी वृत्ति रमती गई।

'ये रुपए, बोरियाँ, आदमी सब क्या हैं मुनिया ?" रेवती की बगल में बैठे दादा पूछते गए। रेवती हँसी उड़ानेवाले नहीं, रस लेनेवाले प्रेक्षक चाहती थी। जिज्ञासुओं को जानकारी कराते जाना भी अपने कार्य का अंग है, इसे वह जानती थी।

रुपए एक व्यक्ति की आय। पीला रुपया पाँच वर्ष पहले की आय। सरकारी निर्देश पर जनता के परिश्रम से बढ़ी आय, हरा रुपया इधर पाँच वर्षों की प्रगति का प्रतीक है। लगभग पंद्रह फी सदी ! जनता योजना के अनुरूप कार्य-तत्पर हो जाए तो आगे के पाँच वर्षों की संभावित समृद्धि का सूचक यह लाल रुपया। करीब पच्चीस फ़ी सदी। कुल मिलाकर ढाई सौ रुपए हो जाएँगे।"

"यह बात, कोई कम नहीं''''यानी दस सालों में औसतन सत्तर-अस्सी रुपए की बढ़ती हुई कहो''''और, ये बोरियाँ ?"

"चावल, गेहूँ जैसे खाद्य पदार्थ की।"

"वाह, अभी बीस फ़ी सदी बढ़े हैं, आगे आज के भाव से चालीस फीसदी चढ़ जाएँगे! मतलब एक का पौने दो हो जाएगा न ?" कहते गौडर बोरियाँ गिनने लगे।

"यही तो बात है, दादा! तुम झट जान गए। सवा पाँच करोड़ से नौ करोड़ टन।"

"चाँटा ही लगा दिया छोकरी ने! तेरे से चौगुनी-पँचगुनी उम्र मेरी है, समझी।" गौडर अपनी सूक्ष्म ग्रहणशक्ति पर प्रसन्न हो गए। बोले, "ये जमीनें? सिंचाई से तरी में जो बदल गई?"

"हाँ, हाँ। उन्हीं दस सालों में···।"

"ठहरो। मैं ही बता दूँ·····यह भी उन बोरियों का सा ही है।"

"ठीक कहते हो दादा! पाँच करोड़ से नौ करोड़ तक की बढ़ती होगी। सरकार बड़े-बड़े बाँध उठवा रही है। नाले बनवा रही है। बिजली पैदा की जा रही है। देश के भीतर हर ओर यह क्रम बना हुआ है। हर एक के पीछे सौ-डेढ़ सौ करोड़ की लागत लगी है।"

"हर एक के पीछे डेढ़ सौ करोड़! बाप रे! रुपए ढलवा दें, तो यह दुमंजिला मकान ही उनसे भर जाएगा।"

"क्या कहा?" दादी भी आँखें फाड़ कर कहती गई।

'उसी मेल के चार हैं। पचास-साठ करोड़ वाले कामों की तो गिनती ही नहीं।"

"हूँ, यह हाल है? अच्छा। अच्छा····यह जो घना है, लोहा ही तो? पीला, लाल, हरा के मेल से छः-सात दिखाई दे रहा है। इतना बढ़ जाएगा?"

"जरूर। इस समय दस लाख टन है। साठ लाख तक बढ़ जाएगा। हल से लेकर हवेली, कारखाने, रेलें, मोटरें, मशीनें इन सबके बनाने में यही तो आवश्यक है, मूल साधन है! और भी बढ़ाया जाना चाहिए। और, यही आगे होगा भी।"

"ये ईख की टुकड़ियाँ। ईख, गुड़, शक्कर सब आ गया। दुगना हो जाएगा। ठीक है! धारा पर बाँध उठा दिया गया, तो हम भी मंड्या के जिले वालों की तरह खाद आदि देकर खूब फसल उगा सकेंगे, गाँव में रकम जमा कर पावेंगे।"

"बाँध का उठना-मिटना हमीं लोगों पर यानी सब पर निर्भर है। सरकार से कई योजनाओं की परिकल्पनाएँ बन रही हैं। ऐसे कार्यों में गत वर्ष तीन

हज़ार करोड़ लग गए। आगामी पाँच वर्षों में साढ़े सात हज़ार करोड़ का अनुमान लगाया गया है।"

"साढ़े सात हज़ार करोड़ रुपये, सच ?"

"एक हज़ार कहो तो अंदाज लगाया जा सकता है। दस हजार, एक लाख तक गनीमत है। साढ़े सात हज़ार करोड़ खोपड़ी में आता ही नहीं।" दादी अवाक् हो गईं।

"गौरी टीला और गंगा टीला दोनों मिला दिए जाएँ, तो भी इतने के बराबर होगा भी, मैं नहीं जानता।" दादा कल्पना करने में भी हार मान गए।

"इतना लगाए जाने पर भी वह झील में एक लोटे पानी के बराबर होगा। हमें अपना सही अस्तित्व बनाने के लिए अरबों-खरबों रुपए लगाने होंगे, ज़मीन-आसमान एक कर देना होगा। इन सब कामों के लिए पैसे आए कहाँ से ? यही कारण है कि हम अपनी निजी मेहनत से थोड़ा-बहुत करते जाएँ। बाँध उठाने के प्रयास के पीछे यही भाव-ध्येय ढूँढना चाहिए।"

"ठीक, समझ गया।" दादा ने सिर हिलाया। बोले, "इसमें बड़ी-बड़ी करामातें हैं। गट्ठर रूई तो-दुगुना, खँचिया खाद ही तो-बीसगुनी !…"

"यह एक लाख से बीस लाख टन।"

"खुद देख लूँगा बिट्टी ! तू लिखती जा। आज ही देना जो है। समझ में न आए, तो पूछ लूँगा।"

दादा देखकर ही तृप्त न हुए। जितना समझ पाए उतना अपनी पत्नी और पुत्र-वधू दोनों को सुनाए बिना उनका जी न भरा।

"दादा, सुवरनधारा की बात तो छूट ही गई !"

"ऐं, वह क्या…?"

"एक हजार दो सौ अड़तालिस एकड़ की नई भूमि सींची जा सकेगी।"

"मतलब !" गौडर अनुमान लगाते रेवती से बोले, "धान की फसल हो तो खर्च निकाल कर दो लाख रुपए बन जाएँगे। आठ गाँवों में बँट जाए, तो परिवार पीछे ढाई सौ रुपए हो गए। ईख की फसल से चार सौ तक मिल जाएँ। कम नहीं। अपने-बाप से भी कुछ कहो, मुन्नी ! वह पार्टीबाजी में पस्त हो रहा है। पुरखों की जमा-पूँजी गलाता जा रहा है। कितने ही लोगों का परिश्रम व्यर्थ जा रहा है। मना करने पर मानता नहीं। उसको छोड़ इन कामों में जुट जाए, तो कितना भला हो।"

"पिताजी का भी दिमाग खुरच रही हूँ, दादा ! अभी अनमने ही हैं। सुन-

कर या तो हँस देते या खीझ उठते हैं। सुनी-अनसुनी कर जाते हैं।" रेवती ने शिकायत की।

"धीरे, धीरे, मौका देख कहती जाना। पानी की टप्-टप् से पाहन भी पिघल जाता है।"

"पानी ! बानी का कि नैनों का !" रेवती हँस पड़ी।

"बैना-नैना दोनों का बिटिया !" दादा उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले।

रेवती जैसी ही मनोवृत्ति पार्वती, जयंती, अंजली आदि कई क्वाँरियों की रही। वे काम में लगी रहतीं, तो उनके घरवालों की उत्सुकता बढ़ती जाती। नए काम से नई सीख मिलती जाती। बुद्धि स्वस्थ विचारों में प्रवृत्त होती। आँगन से सड़क, सड़क से समूचा गाँव यह सिलसिला भी सहज था।

लड़कियाँ इन कामों में लगी रहतीं, तो उनके भाई सामने ही बैठे टुकुर-टुकुर यह देखते न रहते। रंग को अपना अगुआ बनाकर गाँव भर पर्चे बाँटने में लग गए थे। रंग किराने की दुकान के वेंकटशेट्टीजी को पर्चा देने गया, तो वे खुदरा गिनने में लीन थे।

"ओह हो, तुझ सरीखे छोकरे को यह कैसी चाकरी लग गई, भाई ?" खुदरा सँभालते वे बोले।

"सभी चाकर हैं, मालिक ! आजकल मुफ्तखोरी चोरी बताई गई है।"

"खूब ! पते की बात !" शेट्टीजी हँसे।

"ज़रा पढ़ लीजिए ! उसमें और भी कितनी पते की बातें भरी होंगी।

"बड़ा होशियार है। ले।" शेट्टीजी ने एक पैसा देने को हाथ बढ़ाया।

"शेट्टी साहब, यह श्रमदान है। पैसे नहीं लिए जाएँगे। इन्हीं पैसों का जुगाड़कर डाकघर में 'सेविंग स्टाम्प-बचत टिकट'-खरीदिए। सरकार और साहूकार दोनों का भला होगा।"

"शाबाश ! शाबाश !" शेट्टीजी पल भर सोचते रहे, पर्चा भी पढ़ते जाते। बोले, "यह देख, यह रुपया आज का अलग रख देता हूँ। रोज़ निकाल कर रखता जाऊँगा और सरकार को उधार देता जाऊँगा। बोलो खुश हो गए ?"

रंग भाग गया। बाद में भी शेट्टीजी देर तक विचार करते रह गए। पुजारी नरसिंह भट्ट शक्कर के लिए आया।"

"पुजारी महराज ! गाँव में एक नई लहर-सी दौड़ गई लगती है।" शेट्टी ने कहा।

"मतलब।" पुजारी ने पूछा, तो शेट्टी ने रंग का जिक्र किया और पर्चा उनकी ओर बढ़ाया।

"ऐसी बात ! फिर तो मैं भी कोई उपाय निकालूँगा। दक्षिणा में मिली रकम में से प्रतिदिन दो आने अलग रखता जाऊँगा।" पुजारी ने प्रतिज्ञा की।

तीसरे ही दिन शेट्टी की आठ साल की बिटिया वरलक्ष्मी, रंग के घर आई। साथ लाई एक छोटी सी पुस्तिका उसे दी। उस पर रंग का नाम दर्ज था और उस पर एक रुपए का टिकट चिपकाया गया था।

"यह क्या ?" रंग आश्चर्य से बोल उठा। उसे बड़ी प्रसन्नता हो रही थी।

अप्पाजी ने तुम्हें दे आने को कहलाया। मैं क्या जानूँ ?" वह हँस पड़ी और इतना आगे कह उलटे पाँव लौट गई, "उनकी ओर से सौगात। मेरे लिए भी एक ला दी है।"

"अप्पाजी, अम्माजी, पार्वती, गुण्ड सबको उसे दिखाते रंग उछल पड़ा।

"बाकी जो खाने छूट पड़े हैं, वे कैसे करेंगे ?" शानभोगजी ने पूछा।

"वही चिंता हो गई है, कैसे भरे जाएँगे !" रंग की आस खिल पड़ी थी।

"अपनी ओर से यह लो एक रुपया...अपनी अम्मा से भी कुछ माँग लो।" रामण्णाजी ने टेंट से एक टका निकाल कर दिया। रंग अम्मा के पास पहुँचा।

"उनके कहने भर से मेरे पास पैसे कहाँ से आवें। जमा करने के लिए पैसे कम पड़ जाएँ, तो यह भिखमंगी कैसी ? एक वक्त का काफी पीना बन्द कर दे। पर्चों में लिखा भी तो है—काफी-पान-बीड़ी-सिगरेट में से ही कम करके बचे पैसे जमा करते जाइए। महीने में एक ही नहीं, दो रुपये बच जाएँ।" अम्मा ने परिहास किया।

"यही होगा, अम्मा ! यही करूँगा। महीना बीतते ही दो रुपये मिल तो जाएँगे ?" रंग अनायास कहता गया। माता-पिता अचम्भे में पड़ गए।

"काई बात नहीं, रंग ! मैं दो रुपये और दे दूँगा।"

"जो भी हो, मैं काफी का खर्च कम कर उसे भी जमा करता जाऊँगा।" रंग प्रण कर चुका।

"मैं भी वही करूँगी, अम्मा ! हमने ही लिखा है, पर्चा छपवाया है। तो इतना भी न करें ?" पार्वती बोली।

"कितनी पी ले रही हो भाई!" अम्मा को पार्वती का यह निर्णय रुचा नहीं।

"कितनी भी क्यों हो ? उसके बिना नुकसान क्या है ?"

"मैं भी पार्वती और रंग का निर्णय अपनाऊँगा, उन्हीं का बड़ा भाई जो ठहरा।" इन शब्दों में गुण्ड ने भी निश्चय कर लिया।

"मेरी बात से ही इतना उत्पात ! यह भी कोई तरीका है।" अम्मा खिन्न हुईं। लेकिन तीनों ने उसी पल तय कर लिया था।

"तब तो किसी के लिए काफी बनानी न होगी, यही न?" अम्मा रामण्णाजी की ओर मुड़ कर पूछने लगीं।

"मेरा मन उतना मजबूत नहीं। आदत से लाचार जो हूँ। खुद पी लेने के दण्डस्वरूप अपनी-तुम्हारी ओर से दो-दो रुपए दूँगा। कुल मिलाकर सरकार के लिए महीने में दस रुपए ऋण में मिल जाएँगे।

पर्चे के परिणाम का यह विधान यहाँ, तो न जाने बाकी जगहों पर उसने क्या क्या ढंग पकड़ लिया होगा।

दूसरे दिन शाम को मुद्दे गौडर के मकान के चौतरे पर महिलाओं की एक बैठक में बहस जारी थी।

"उसके नखरे तो देख, भला ! पति ने बंगलोर से रेशमी साड़ी क्या ला दी है कि हमारे सामने खुली सड़क पर वारांगना-सरीखी चटक-मटक दिखाती इठलाती फिरती है !" अधेड़ कैंचम्मा स्वभाव के अनुसार कहे जा रही थी।

"हमें बुद्धू समझ रखा है ? झोपड़ी में रहना और ख्वाब महलों के ! घर पर बच्चे बासी खाना पाते हैं। उन्ही के मुँह से सुना है। वह बोलती पति के सामने बंद रहती है, वरना खूब पिटाई हो जाए ! पति का पीटना, उसका रोना-धोना, यह सारा पचड़ा पड़ोस में रहकर देखते-सुनते नाक में दम आ गया है।" मंचव्वा रहस्यभेदन करती गई।

"यह किस्सा बंद हुआ न जानो। उसका आदमी वह कोने वाले मकान का राचप्प है न, उसकी मादव्वा से···।" वृद्धा मुद्दम्मा ने प्रवेश किया।

"यह बात !" कैंचम्मा की आतुरता बढ़ गई।

"तुम्हें नहीं पता ? गाँव भर में चर्चा है !" सण्णव्वा भी रस लेने लगी।

"मादव्वा की बात रहने दो। हाल ही में ब्याह लाई उन ईरेगौडर की पतोहू है न- उसे कैसा उत्पात सूझा है ? आदमी ज़रा अहमक है, तो देवर निंगप्पा से ही···।" मल्लव्वा की वाग्धारा छूटी।

"हटाओ इन बातों को। वह पर्चा पूरा पढ़ लिया जाय···ला बेटी, वह रंग बिरंगा पर्चा। यहाँ आके बैठ जा और पढ़ के सुना।" अन्य ही अभिरुचि-

वाली चेन्नव्वा बोल उठी और दूर कन्नड़ 'बालबोध' खोले बैठी अपनी बेटी को बुलाया।

"हाँ, उससे ज़रा जी बहल जाएगा।" केंचम्म मान गई।

"सरकार कित्ता काम कर रही है, कर चुकी है। मैया री! साड़ी, कपड़े, जस्ते के बर्तन-भाड़े, मकान, स्कूल न जाने इन सबको अलग अलग दुगुना, तिगुना दसगुना, बीसगुना बढ़ाया जा रहा है। कित्ते रुपये! करोड़ तक की गिनती नहीं उसे। इत्ता खर्च रहो है।" मादव्वा पहले सुनी बातें याद करती गई।

"पर्चे का रंग ही कित्ता लुभावना-हरा, सफेद, नारंगी!"

"सुना है वह अपने देश के झंडा-सरीखा है—बीच वाला चक्र-वक्र सब मिला।"

"इतना ही तो!···या सुनने को भी कुछ मसाला है उसमें!"

बालिका पर्चा लिए आगे बढ़ आई थी।

"सुनाती जा बेटी! सरकार जो करना चाह रही है, सो तो सुना गई। अब हम लोग क्या कर सकते हैं, यह भी सुना!" चेन्नव्वा ने याद दिलाई।

"इसमें से भी एक बात निकल पड़ी। सरकार को हजार करोड़ की कमी पड़ती है। सब जने पान-तमाखू-सूरती-जर्दा वगैरह का खर्च कम करते जाएँ तो सरकार को इन लोगों से उधार मिलता जाए। डाकखाने में ये रुपए जमा करने पर सरकार सूद भी देगी। चालीस करोड़ जने, आदमी पीछे बीस तीस न सही-रहने दे, दस भी दे दे, तो कितना काम निकल आए उतने से।"

"ठीक, ठीक। आगे की बात। वह सब अपनी ही आमदनी बढ़ाने के लिए न! झील, बाँध, कारखाने बनाने में लगाने की बात भी जो है।"

"इनका बनना भी तो जरूरी है बहिन! रहे बाल-बच्चों के लिए भी तो इंतजाम हो जाए! पैदा होने वाले बच्चों का हाल भी तो बताया गया है। उससे कितना नुकसान है, कितनी जहमत है! नंबर ही बता देते हैं! यही, तो जनम से लेकर दम तोड़ने तक होने वाले काम, उनमें लगाए पैसे छेदही जेब में नया पैसा डालने के बराबर हो जाएँ! नरगेरे दवाखाने में बच्चे कम कैसे जरूरी हैं, इस निस्बत जानकारी कराने के लिए जाने को पहले से कहते आए हैं? हाँ, इसमें जोर-जबरदस्ती नहीं।"

"हाँ, हाँ। वह भी होना चाहिए।"

'आगे क्या लिखा है।"

बालिका को आगे पढ़ने में असुविधा—सी प्रतीत हुई।

"मैं पढ़ दूँ; इधर ला! घर पर कल मिला पर्चा ध्यान से पढ़ गई हूँ। मैं भी कुछ दिन स्कूल की धूल चाट आई हूँ।" मादेगौडर की पतोहू चिक्कव्वा उत्साह से सामने आई। वह अभी कम उम्र की थी।

"बड़ा अच्छा हुआ।" चेन्नव्वा चाव से मान गई।

"अपने लोगों को आराम की घड़ियों में भी ज्यादा मिहनत से ज्यादा कमा लेना चाहिए। सूत निकालना, चटाई बुनना, बोरे सिलना, खिलौने बनाना, या जो भी हाथ से बन सके करते जाना होगा। इससे देश में चीज़ें बढ़ेंगी, ज्यादा होंगी, पैसे भी देश में बचेंगे।" पर्चा लिए देखती चिक्कव्वा कहने लगी।

"अनाप-शनाप बकवाद से हुए फसाद से छुटकारा भी मिल जाए।" चेन्नव्वा ज़ोर देकर बोली।

"सड़कें, झीलें, कुएँ, स्कूल-इनके बनाने में सहयोग रूप में थोड़ा-बहुत परिश्रम करना होगा। इनके बनते जाने से गाँव-का-गाँव कम समय में उन्नति कर जाएगा। हर हालत में अपना ही भला है। सरकार का मुँह ताकते रहें, तो लंबे अरसे तक इसी हालत में रह जाना होगा। इस बीच पहुँचने वाले नुकसान का अनुमान लगाना होगा। आगे भी हमें ही सबके लिए पैसे देने पड़ेंगे।" चिक्कव्वा ब्योरेवार सुनाती गई।

"सही बात है। सरकार को पैसे हम न दें, तो दूसरा कौन पड़ा है देने-वाला? उसके बजाय हम ही खुद करें, तो एक ही पड़ेगा। जल्दी काम भी बनेगा। गाँव में कितने छोटे बच्चे होंगे। उनकी पढ़ाई-लिखाई भी तो होनी है। आजकल में धम से बैठ जाने वाला यह इस्कूल ही सबके लिए काफ़ी होगा?"

"अगर दो कुएँ और खुद जाएँ, तो कितना अच्छा हो! हमारी दुर्दशा वह गंगाधरेसुर ही जानें। जो कुएँ हैं, उन पर जो झगड़ा, गाली-गलीज, उठा-पटक आदि होते हैं, उन्हें देख वहाँ जाने की हिम्मत ही नहीं होती। मगर दूसरा कोई चारा भी तो हो।"

"अपना छोटा वाला बैल खुले बाज़ार वाली सड़क पर गड्ढे में टाँग फँस जाने से चोट खा गया और लँगड़ाने लग गया है। इस पर कौन, किससे, क्या कहे? वह सड़क ही वैसी है। बाकी का हाल क्या कहें।"

"बाँध की बात कर रहे हैं न। वह उठ जाए तो गाँव में कल से पानी लाया जा सकेगा। घर-घर में नल लग जाएगा। उस वक्त का आराम सोच लो तो सही। अपने लिए, बाल-बच्चे, पोती-नाती सबके लिए सुभीता हो जाए। ज़मीन की सिंचाई तो होगी ही। काम शुरू हो जाए। चार जनी आगे बढ़ें, तो मैं भी

मिट्टी ढोने के लिए तैयार हो जाऊँगी।"

"मैं भी साथ लगूँगी।"

"खाली समय कोई भी काम पर जा सकेंगे। सड़क, स्कूल इनको निर्माण के लिए कोई बहादुर आगे बढ़े, तो उनमें शक्ति लगाने में तैयार होना चाहिए। अपना ही तो काम है? खेतों पर नहीं जातीं? इसमें कौन वेइज्जती-नुकसान है?" चिक्कव्वा बोली।

"सभी जा सकेंगी। इसमें बुरा ही क्या सब अच्छे के लिए तो"""चिक्कव्वा! आगे का लिखा है?" मंचव्वा ने चेताया।

"अपना-अपना काम है। जो भी भुगतना पड़ जाय, जी-जान से भरसक खटना पड़ेगा। यह अपना थोड़े ही है, इसके लिए भला क्यों न उपेक्षा-भाव हो। यह देश का काम माना जाए। इससे ताकत बढ़ेगी, दौलगी वढ़ेगी, चैन भी बढ़ेगा।"

"खेत में खटो, तो अनाज उगे, रकम हाथ लगे। यह सही वात है। लेकिन, लस्सा-पकाने, झाड़ू बुहारने आदि से कौन हाथी मिल जायगा?" एक बुढ़िया ने जिज्ञासा की।

"क्यों नहीं? पहले मैं भी तुम्हारी ही तरह सोचती थी, माई! ज़रा दिमाग खुरचती गई तो बड़ा ताज्जुब ही हुआ। झाड़ू बुहारने से गंदगी साफ़ होगी और तंदुरुस्ती बढ़ेगी अलग; लस्सा लगन से पकाया तो अपने आदमी, बच्चे मजे से खाएँगे, चंगे रहेंगे, मिहनत से किसानी करेंगे, पढ़ाई-लिखाई हासिल होगी। वाकी भी इसी तरह जानो। हर काम से मुनाफा बढ़ता ही जाएगा।"

"सच कह रही री! मैं तो यह समझती ही न थी। घर का काम कोई बेजा नहीं। तुम लोगों ने भी सुना? हीरे की बात कही। दाल पकाते, बच्चों की परवारिश करते, गाय का बदन रगड़ते होश में काम करती जाएँ तो उन सबसे बड़ा फायदा हो जाएगा। दूध से दही, मक्खन, घी की तरह ही।" बुढ़िया ने नब्ज ही पकड़ ली।

"यही वाकी आदमियों के कामों का, बच्चों के खेलकूद का हाल है। और क्या? यह सब अपने दायरे का है, इससे अपना सरेगा? वरखा की नन्हीं बुँदिया ही सागर वन लहराये तो कैसा?"

"मानने लायक बात है! कितना तत्त है इसमें"""आगे?"

अब तक गौडर आ गए पूछा। "बत्ती नहीं जलाई अभी?"

"अच्छा, अब चला जाए। सांझ के बीतने की भी खबर न रही।"

मंचम्मा उठी।

"बाकी कल सुना जाए।" चेन्नव्वा भी दूसरी औरतों के संग हटी।

भीमण्णा सर्वे का काम पूरा कर लौट रहा था। रास्ते में दो लड़के आपस में भिड़ गए थे। यह देख भीमण्ण उसके पास गया और दोनों को अलग किया। छोटे को कमीज़ कंधे के पास तभी की फटी दिखाई दी। वह रो रहा था। बड़े के चेहरे पर नाखून की खुरचन दिखाई पड़ती थी। वह तिनक उठा था।

"यह क्या टंटा मचा रखा है जी? सुन बे बसव! शरम नहीं आती, अपने से छोटों पर हाथ उठाते? हट।" कहते हुए एक चपत लगाई और पूछा,—"अब बताओ, क्या बात हुई?"

"देख भीमण्णा! बड़के भैया यह कागज़ चिपका गए थे। यह नालायक उसे उखाड़ना चाहता है। मना किया। कहा कि सब देख सकेंगे, उखाड़ो नहीं। तो यह मेरी कमीज़ पकड़ कर खींचने लगा। देखो, यहाँ फट गई है। कमीज़ क्यों फाड़ ली, इसके लिए अप्पाजी मारेंगे!" छोटका सिसकियाँ भरने लगा।

जिस ओर लड़के ने संकेत किया उस ओर भीमण्ण मुड़ा। रंग-बिरंगी पोस्टरें दीवार से उखड़ कर बिलखती-सी लगीं।

"यह गोलमाल है? यह उखाड़ेगा रे सूअर! तूने बड़ी बहादुरी दिखाई, चेन्नप्प।" भीमण्णा ने छटंकी की पीठ ठोंकी। गुस्से में बसव की ओर मुड़ा और उसकी मरम्मत करने को हाथ उठाया।

"मारो नहीं भीमण्ण! हाथ जोड़ता हूँ। मेरा इरादा उसे उखाड़ने का न था।" बसव भी रो पड़ा।

"फिर क्या मंशा रही तेरी? उस पर अपनी ओर से कुछ जोड़ना चाहता था क्या?"

"धीरे से निकालकर अप्पाजी—अम्माजी को भी दिखाने घर ले जाने को सोचा था।"

"इतना ही? बस! क्यों दिखाना चाहता था रे?" भीमण्णा ने कुतूहल से पूछा। अब वह ठंडा पड़ गया था।

"उस पर का लिखा दोनों को पढ़ सुनाता……।"

"अच्छा, कोई हर्ज नहीं। तुझे चपत लगाई, भूल की। खैर, एक दूसरी पोस्टर दिखाऊँगा। साथ चलना। अपने घर पर बाहर से चिपका ले। अप्पाजी, अम्माजी ही नहीं, बाकी आने-जाने-वाले भी देख लेंगे।"

बसव ने आखें पोंछ लीं।

"चेन्नप्प ! घबराओ नहीं। पिताजी तुम पर बिगड़ेंगे नहीं, मैं कह देता हूँ। चलो।"

दोनों लड़के भीमण्णा के पीछे चले। चेन्नप्पाजी के मकान पर पहुँचते ही ऊँची आवाज़ से कहता गया, "हुच्चप्पाजी ! आपका लड़का बड़ा तेज़ है हमारी पोस्टर की रक्षा में उसकी कमीज़ तनिक फट गई है। ठीक कर दी जाएगी। इनाम के तौर पर एक नई कमीज़ भी सिलवा दीजिए, धमकाइए नहीं। सोना-सरीखा बालक है।"

हुच्चप्पाजी हँस पड़े। सहमे आए को अंदर बुलाते हुए बोले, "कोई बात नहीं, बेटा ! ! मैं बड़ा खुश हूँ, जो तुम भीमण्णा से तारीफ पा गए।"

फिर भीमण्ण बसव को पार्वती के यहाँ लिवा गया। एक नई पोस्टर दिलवा कर बोला, "कहीं खराब न हो जाए, फटे नहीं, समझे ?"

"कोई मुझसे उड़ा ले जाए तो देखूँ। छठी का दूध याद हो जाए !" उद्‌गार निकलते बसव ने उसे लपेटा और बेतहाशा घर की ओर भागा।

गंगाधरेश्वर का मेला निकट होता गया। गाँव भर में ज़ोरों की तैयारियाँ चल रही थीं। सब में उल्लास-उत्साह था। रथ-पथ के मकानों की और अन्यत्र भी सफेदी-रँगाई चल पड़ी थी। सब अपनी वेशभूषा आदि की धुलाई का प्रवन्ध करने लगे थे। मंदिर क्या था, रंगीन मंडप-सा निखर रहा था। स्वर्ण प्रतिमाओं की आकृतियाँ फिर से दमकने लगी थीं। आदमक़द चाकवाले और हवेली के समान उन्नत रथ बाँसों से गोलाकार घिरा था। उसकी ऊँचाई नारियल के पेड़ों से होड़ ले रही थी। बाहर से आनेवालों की पहुनाई के लिए छप्पर छाए जा रहे थे, पनौटियाँ झाँकने लगी थीं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि रथ-पथ वाले मैदान में हिरियण्णाजी के आदेश पर बन रहा छप्पर भी उनमें से एक था।

● ● ●

: १७ :

एक दिन गंगाधर रात में सदा की भाँति अण्णाजी के यहाँ ड्राइंग बना रहा था। अब तक नरसप्पाजी भी मिट्टी-जाँच की रिपोर्ट बंगलोर से ला चुके थे। सर्वे का काम पूरा हो चुका था। गंगाधर और नरसप्प दोनों ड्राइंग बनाने में लीन थे। अण्णाजी उस दिन भी उधर से गुज़रते वहीं रुके और दोनों का काम देखने लगे। जयलक्ष्म्माजी भी पहुँच गईं। उस रोज़ की ड्राइंग पर भी

दो-एक बातें पूछीं और उत्तर से हर्षपूर्वक बोलीं; "कितना नयनाभिराम नक्शा ! कितना चित्ताकर्षक चित्र ! नीलिमा की यह पुताई, सिर से झूली जटा-जूड़ी सदृश झील से निःसृत यह नाला, गले में गुलूबंद की भाँति बैंगनी रंग का यह बाँध, पीले किनारों की, हरे चौखानोंवाली साड़ी की तरह रहनेवाले ये धान के खेत, अंकित आरती की समानता करते हुए आँखों को हरने वाले छिटपुट देहात कहाँ तक सराहूँ ? बलिहारी है तुम लोगों की चित्रकारी की ! पूजन के लिए निकली सुहागिन की शोभा से शोभित ! इंजीनियरी के अर्थ में कुछ और ही समझ बैठी थी । इसमें चित्रकला की समस्त बारीकियाँ सहज ही व्यक्त हुई हैं ।" फिर वे नंजत्ते की ओर मुड़कर कह उठीं, "ननद ! तुमने इसे कभी देखा ही न होगा ! आकर देख तो लो । अब पूरा हुआ ही चाहता है ।"

"हाय, मैं उठ नहीं पा रही हूँ भाभी ! तिस पर यह कोई भगवान् की तस्वीर थोड़ी है जो देखी जा सके !" नंजत्ते खम्भे के सहारे जो बैठीं, तो बैठी ही रह गई । पैर जकड़े ही रह गए ।

"यह भी कोई बात है कि भगवान् की तस्वीर ही देखी जाए ! क्या भगवान् की सत्ता को सूचित करनेवाली चित्रकला नहीं ! यह जो संसार में काम हो रहा है, वास्तव में भगवान् की ओर से ही चल रहा काम तो है ?"

"तुम ही नयन भर लो, भाभी ।" नंजत्ते का मुँह इसके बाद खुला ही नहीं ।

"इससे आपका आगे का काम कहाँ तक सरल होगा ?" गंगाधर को देखते जयलक्ष्म्मा जी बोलीं । शुरू से इन सब में उनकी दिलचस्पी थी ही । अब और बढ़ती गई ।

"कल परसों ही इसे चिकमगलूर ले जाना होगा, भाभी ! आवश्यकता पड़ने पर उसमें उनके विचार के अनुकूल परिवर्तन करना होगा । पीछे वे ही ऊपर भेजेंगे, मंजूर करवाएँगे और यहाँ का करना-धरना छोड़, बाकी देखरेख कर लेंगे ।"

"क्या यह तुम लोगों को प्रदर्शनी में न रखा जाएगा ?"

"वही मैं भी सोच रहा हूँ । पहले चिकमगलूर का काम हो । हो सका, तो वहीं से नकल लाकर यहाँ रँग दिया जाएगा । मशीन से नकल आसानी से निकाली जा सकती है । अपवे कॉलेज में प्रतिवर्ष कॉलेज-दिवस मनाते हैं । उस मौके पर कॉलेज के लड़के इंजीनियरी से सम्बन्ध रखनेवाली कला के नमूने तैयार करते हैं । अपने साथी इस वर्ष मिट्टी, ईंट, गारा, लकड़ी आदि से

भाखरा बाँध का नमूना तैयार करने में सफल हुए थे। बाकी लड़कों ने आदर्श ग्राम और जल-वितरण योजना आदि के नमूने तैयार किए थे। और भी कई तरह के नमूने थे, वस्तुएँ थीं। हमें इनाम भी मिला था। उसी ढंग पर यहाँ यह बाँध, नाला, खेत इनका एक नमूना, नूतन प्रकाशवड़ी के नाम से गाँव के आज की रूप-रेखा पर आधारित और परिवर्तित रूप का नमूना, दो-एक गाँव और के लिए नए प्लैन—इन सबके प्रदर्शन की इच्छा हो रही है। इधर नई पीढ़ीवालों का जो अपार हर्षभरा उत्साह दिखाई दे रहा है, वही बना रहा तो यह इच्छा पूरी हो सकेगी।"

"बड़ा अच्छा विचार किया है। और भी कुछ उसमें रखने का··?"

"कई विशाल सिंचाई और जल-विद्युत् योजनाएँ, बड़े-बड़े कारखाने, नए-पुराने वास्तुशिल्प, इन्हीं सबकी फोटो और चित्र रखने की वात मन में आ रही है। अपनी जनता उल्लसित हो उठे, उत्साहित हो जाय; आश्वासन ग्रहण कर सके, इस हेतु असाधारण पौरुष और वैभव दिखाना उत्तम लगता है। ग्रामोद्योग के नमूने जैसे सूती-रेशमी-करघे, बाँस-छड़ी की कारीगरी, हाथीदाँत, चंदन की लकड़ी, खिलौने आदि। ये ऐसे हैं कि आसानी से काम भी हो जाए और थोड़ा-बहुत दाम भी मिल जाए। प्रदर्शनी में इनकी व्यवस्था करने का विचार है। इसी सिलसिले में वीरप्प बंगलौर जा भी रहा है। सरकार के पास भी आवेदन गया है! पंचवर्षीय योजनाओं की पोस्टरें आप देख ही चुकी हैं।"

"तब तो वड़ा विराट् आयोजन होगा।"

"जगह कितनी लगेगी, सोचा है?" अण्णाजी ने पूछा।

"हाँ! एक अन्दाज़ का नक्शा भी तैयार है।" गंगाधर ने अपने कागज़ों में से उसे निकाल कर दिखाया।

"ठीक है।" अण्णाजी ने छप्पर छवाने की वात मन में रखकर पूछा-पाछा था।

"अण्णाजी!" गंगाधर के स्वर में संकोच स्पष्ट था। झील के आँगन पर उँगली रखते हुए वह कह उठा, "गुण्ड से पता लगा कि सात एकड़ वाली यह ज़मीन आपकी है। वह पानी में डूब जायगी तो। हम तो, आप जानते ही हैं, फटेहाल हैं। रुपए कहाँ से देंगे?" वही नाले के नीचे डेढ़ एकड़ लगभग......।"

"उन सब पर विचार कर लिया है, भाई! अपनी ज़मीन और फ़िकर न हो?" जयलक्ष्म्माजी जवाब में बोलीं।

"मेरी पूरी कमाई इन्हीं लोगों से हुई है। बाँध उठा, तो थोड़ा-सा उनका ही उन्हें लौट जाएगा।" अण्णाजी की वाणी में कोई कंप न था। गंगाधर इससे

विशेष चकित हुआ ।

"सरवर का नीर सरसी को हो' के समान ।" मामीजी बोल में ताल मिलाती गई ।

गंगाधर के लिए यह उक्ति बनारस की स्मृति को उद्दीप्त करने वाली हुई ।

"मैं भी यही सोचा करता हूँ । अण्णाजी के इस सहज त्याग से हममें अदम्य उत्साह भर जाएगा । हम संशय रहित हो दूसरों से भी ज़मीन दान माँग सकेंगे ।"

" यह सब पूरा हो जाय, चिकमगलूर हो आया जाय; तो तुम्हारा काम एक स्तर पर पहुँचेगा , यही न ! अच्छा है, आगे के काम भी फूल हाथ पर उठा लेने की भाँति पूरे हो जाएँगे । तुम निर्मल मनवाले जन हो । कोई कलुष नहीं । यही सफलता का संकेत है ।"

"कौन जाने क्या हो, मामी ! कल्पना मात्र से भय भी हो रहा है, स्फूर्ति भी मिल रही है ।"

"व्यर्थ ही का भय तुम्हें सता रहा है । याद रहे, ऐसा कोई काम नहीं जो धैर्य से न सधे । कोई जय नहीं, जो भय से मिल जाए ।"

कैंट साहब से गप्पें हाँकती भागीरथी यह कहते उठकर आई, "हम भी देखें तो । अम्मा तारीफ़ का पुल जो बाँध रही थीं !"

कैंट साहब भी कदम से कदम मिलाते आए । भागीरथी ध्यान से ड्राइंग देखने लगी ।

"गुड्डी ! अब तो समझ में आ गया ?" गंगाधर ने उत्सुकता से पूछा ।

"हूँ, अच्छा तो है ?" वह कुछ शंकित-सी हो समर्थन की आशा से कैंट की ओर देखने लगी ।

"इसमें कोई खास इंजीनियरी का हुनर तो नहीं दिखता । खाली मिट्टी का उठंगना और थोड़ी सी पत्थर-जोड़ाई है । मेरा तो कहना है कि यह सब पुराने ढंग का 'ड्राफ्समन' काम है । मैं कांक्रीट का बाँध उठा देनेवाला था । स्टेट्स में चारों ओर कांक्रीट से अलग कोई चीज़ पक्की नहीं मानी जाती । दूसरी बात ही नहीं सुनाई पड़ती । बड़े-बड़े यंत्र काम के लिए इस्तेमाल होते हैं-उन्हें देखते ही बनता है । नपाई, सनाई, उठाई फेंकाई—सब यंत्रों से ही । दनादन काम पूरा हो जाता है ।" कैंट साहब बहक उठे ।

"मैं भी थोड़ा-बहुत कांक्रीट की निस्बत जानता हूँ । अपने यहाँ के बाँध ज्यादातर कांक्रीट के ही हैं । मैंने सब अपनी आँखों देखा है, वहाँ काम भी कर

चुका हूँ। स्थान, परिणाम, लागत, समय आदि का विचार करते हुए तय करना होगा कि कांक्रीट से अच्छा होगा, पत्थर टिकाऊ होगा या मिट्टी से काम चलाऊ हो जाएगा। इस छोटे से बांध उठाने को पैसे नहीं, करोड़ों की लागत के यंत्र कहाँ से आवें ? बाकी जगहों में भी यही सोच-विचार, कार्य-निर्वाह का विधान प्रयोग कर देखा जाने लगा है कि इन विदेशी यंत्रों पर पास की रही-सही पूँजी लगाना विवेक का लक्षण नहीं। निरुद्योगियों की संख्या बेहद बढ़ गई है। पंचवर्षीय योजना में उनके लिए उद्योगों की व्यवस्था भी एक बड़ी ज़िम्मेदारी है ही।"

"उस हालत में हाथ से कांक्रीट सानी जाय।"

"उसे मान भी लें, तो सबके लिए तुरन्त इस्तेमाल करने भर की उतनी सिलमिट ही कहाँ ?" सिलमिट सोना हो गई है। एक बोरी मिल भी गई, तो उसे चौगुनी कीमत पर लोग बेच लेते जो हैं। आगे के पाँच वर्षों में तिगुना—एक सौ तीस लाख टन तक उसका उत्पादन बढ़ाया जाने वाला है। वह भी काफी कैसे हो ? जहाँ तक हो सके, दिक्कत से मिली वस्तुओं का प्रयोग न होने देना प्रत्येक का कर्त्तव्य भी है करोड़ों रुपयों की लागत के अन्यान्य सामान काम में लाने वाले इंजीनियर के लिए यह बड़ा जरूरी हो जाता है।" गंगाधर ने पक्ष-समर्थन किया।

"अपने इन्जीनियर साहब का भी यही कहना है, सर ! अनिवार्य न हो जाने पर सिलमिट लगाई गई, तो बिगड़ बैठते हैं। इतना ही नहीं, किफायत से काम हो सके, इसके लिए स्थानीय वस्तुओं के उपयोग पर ही बल देते हैं।" नरसप्प ने जानी-सुनी बात कह दी।

"यह खरा है।" गंगाधर ने सम्मति सूचित की।

"क़िफायत से काम हो तो काम का सफाया तय मानिए। हूह। सिलमिट जैसी मज़बूती और किसी चीज में न आएगी।"

"टिकने लायक मज़बूती भर काफी नहीं ! माल के मुताबिक ही तो मोल।" कहते हुए गंगाधर काम में जुट पड़ा।

"मुझे तो यह भी भला लगता है।" भागीरथी ने बीच-बिचाव किया।

"धन्यवाद !" गंगाधर ने सिर न उठाया।

चारों दर्शक अपने-अपने कक्ष में चले गए।

ज़ब ये नक्शे, गंगाधर ने शानभोगजी के यहाँ, अपने साथियों के सामने फैलाए तब उनके उन्मत्त कोलाहल से ही उनका सन्तोष व्यक्त हो उठा था।

"कितना बेजोड़ है ! आधा काम हो ही गया समझो ।" भीमण्ण ने गंगाधर की पीठ ठोंकी ।

"अप्पाजी और अम्माजी दोनों को दिखा लाऊँ ? इनकी भी तो नकलें होंगी ?" पार्वती ने हाथ में उन्हें उठा ही लिया ।

"चलो । मैं भी चलूँगा । थोड़ा काम है ।" कहकर गुण्ड उसके साथ हो लिया ।

"मैं भी ले जाऊँगा, भाई !" वीरप्प बोला ।

"हम भी ।" रेवती और अंजली एक साथ विनती कर उठीं ।

शानभोगजी चश्मा चढ़ाए, सुँघनी की वटिका अंगूठा-तर्जनी के बीच ही दबाए, देखते रह गए । अम्मा हाथ में कलछी लिए खड़ी ही रहीं ।

"अप्पाजी ! नाले के लिए यह पौन एकड़ ज़मीन देनी होगी ।" गुण्ड ने उँगली उठाकर दिखाया ।

रामण्णाजी थोड़ी देर चुप रहे और "उसका पट्टा तुम्हारे नाम ही लिख दूँगा ।" कहते हुए हँस पड़े ।

"यह क्यों ? आपसे ही देते नहीं बनता ? भगवान् की कृपा से आपको किस बात की कमी है ?" अम्मा पूछ उठीं ।

"तुम चुप रहो जी ! अंगुल भर ज़मीन कमाई होती, तो उसका हाल मालूम पड़ता ।" अप्पा बिगड़े ।

"अम्मा का कहना ही ठीक लगता है । वही उत्तम तरीका है ।" पार्वती बोली ।

"ठीक कह रही है, अप्पाजी । वही करना चाहिए ।" गुण्ड ने निर्णय दिया ।

"तुम सब किस फेर में पड़े हो ? गहरी साठ-गाँठ कर रखी है ।" अप्पा गुरगुराने लगे । पर इसमें कोई रोष न था ।

"दान मिल गया ! दान मिल गया !" चिल्लाती हुई पार्वती बाहर साथियों के बीच आ गई और बोली "पहला दान मिल गया ।"

"अण्णाजी ने दानियों में पहला स्थान झटक लिया है ।" गंगाधर हँसते हुए कह गया ।

"ऐं, दे दिया ! बड़ा अच्छा हुआ । हमें दूसरा ही पुरस्कार सही ।" पार्वती प्रसन्न हुई ।

"मैं यह पहले ही जान गया था । इसीलिए पहले दिन ही कह दिया था ।

उनका स्वभाव मैं जानता हूँ। मिला तो लिया, गाँव को ज़रूरत पड़ गई तो लौटा दिया। वे राजर्षि माने जा सकते हैं।" गुंड ने अपने प्रशंसासूचक उद्गार निकाले।

"मैं कोई पीछे पड़ने वाला नहीं। नक्शे दीजिए तो यहाँ।" वीरप्प नक्शे लपेटकर ले गया।

वीरप्प के पिताजी ने थोड़ी सी आनाकानी करने के बाद कहा—"जायदाद तुम दोनों की है। जो चाहे कर लो। इतने पर यह कांट्रिब्यूशन के एवज़ में तो?"

अंजली के पिताजी अविश्वास के साथ बोले—"अभी इसकी जल्दी क्या पड़ी? तब तक नाला तो खुद जाय।"

रेवती के दादा सिद्देगौडर ने नक्शे ध्यान से देखे। कई पूछताछ की। ज़मीन देने की बात आई, तो मुस्कुराते बोले—"चार जने जो करें, वही हम भी करें! अपने अप्पाजी से कहो ना।"

गंगाधर के घर पर सब घेरे में बैठकर एक दूसरे को ठेलते, खोंसते देखने लग गए। शंकर विचार करते हुए बोला, "चार एकड़ अपनी ज़मीन नाले से बड़ी दूरी पर है। उनकी तरह हम कुछ न दे पाते। चौथाई एकड़ भी दान में देने लायक होती, तो कितना अच्छा था।"

"उन लोगों के मुकाबले अपने पास कितनी ज़मीन होगी? या अप्पा जी मानते या नहीं? इनमें तनिक अभिरुचि वे नहीं रखते।" सावित्री कहती गई।

"हमने भैयाजी को ही अर्पित जो कर दिया है?" शारदा हँसी।

"सच कह रही है, अवश्य!" सावित्री और शंकर बोले।

गंगाधर ने अम्मा को नक्शा दिखाया। वे मुस्कुराकर बोलीं, "इन सबको मैं क्या समझूँगी, भाई!" फिर उसका चेहरा देख, दुखी हो कहने लगीं, "धूप में झुलस जाने से तेरा चेहरा कांतिहीन हो उठा है, बेटा!"

"चिंता किस बात की अम्मा! लकड़ी न जले और रसोई बन जाय?" गंगाधर हँस पड़ा।

"राम कहो! यह सब मुँह से न निकालो! शान्तं पापम्! धूपबत्ती जलाए जाने के पहले भला खूशबू फैलेगी? उचित न जँचा? घिसे जाकर ही तो चन्दन चन्द्रचूड़ के मस्तक पर शोभित है।" अम्मा ने उपमान बदल दिया।

"अपने को जो फायदा न पहुँचे, उसके लिए हम क्यों तरसें? जैसा भी रह जाय! मैंने गुनकर देख लिया है। गोचर में तुम्हारे लिए पंचम में है।

तुम्हें तरह-तरह के संकट देता जा रहा है। यह काम सपरता नहीं दीखता ! मुझ पर तो साढ़े साती सवार है।" पिताजी ने भविष्यवाणी की।

× × ×

दूसरे दिन सुबह गंगाधर ने नरगेरे में लिंगेगौडर से मुलाकात की। दोनों ने बाँध-संबंधी योजना पर विचार-विनिमय किया।

"बीच में पत्थरों की यह जोड़ाई, फटका, ऊपर पुल इनकी जगह अपनी बाकी झीलों की तरह मिट्टी का उठँगना आ जाए और बगल में ढलुई निकासी रहे तो ?" गौडर ने संदेह व्यक्त किया।

"बगल में ढलुई निकासी के लिए नींव उतनी मज़बूत नहीं है। बंगलोर से आई रिपोर्ट आप देख ही चुके हैं। बीच में सपाट चट्टान है। आगे-पीछे दूर तक फैली है, पत्थर-जोड़ाई के लिए अनुकूल भी है। इन फाटकों से बहाई मिट्टी निकल जाएगी और झील की उपयोगिता बनी रह सकेगी। उसकी फेंकाई की परेशानी भी बहुत कुछ कम हो जाएगी। यही विचार मन में रहा। आपकी क्या राय है ? जहाँ तक पुल की बात का प्रश्न है, गाँव के लिए सड़कें चाहिए ही। धारा पर अलग पुल बनाने की जगह, यहीं से थोड़ी दूर पर पुल बन जाए और उठँगने पर सड़क बिछ जाय, यही सोचा गया है। सड़क उस ओर ले जाई जाए तो कितना खर्च बैठेगा, इसका भी अन्दाज़ लगाया है ? देखिए न। काम की सुविधा और किफ़ायत दोनों सुलभ हो जाएँ। उतना ही नहीं, यह सड़क बिछ जाए, तो दृश्य की मनोहरता भी बढ़ जाय।"

"सही है, आपकी बात उचित ठहरहती है। लेकिन इससे उठँगने की चौड़ाई थोड़ी ऊपर बढ़ जाएगी और खर्चा ज्यादा बैठेगा।"

"उसका भी ख्याल रखते हुए दोनों का मिलान कर देखा है।"

"बड़े-बड़े प्राजेक्टों में यही विधान अपनाया जाता है। सो ठीक है। छोटे प्राजेक्ट में इसकी उपयोगिता पर तनिक संदेह हो आया था। एक नई चीज़ होगी। रहने में हर्ज ही क्या ? छोटा हो या बड़ा, नया हो या पुराना। सबकी अपनी-अपनी उपयोगिता है ही। हमें ठीक जँच जाए, तो वही उत्तम माना जाय। नए प्रयोग भी परखे जायँ।"

"जानकारी के लिहाज़ से, सहूलियत को देखते हुए थोड़ा रद्दोबदल कर लें तो अनुचित क्या है ?"

"ठीक कहते हैं ! सभी कामों में यही रुख होना चाहिए। इंजीनियर साहब को भी मना लेना बाकी रह जाता है। वे भी यही एतराज कर सकते हैं।"

"आप मेरी बातें ठीक समझते हैं, तो उन्हें मना लेने में मैं ज्यादा परेशानी नहीं । देखता।"

"मैं भी काम के सिलसिले में उन्हीं के यहाँ जाने की सोच रहा था। आज ही चला जाए। साथ विचार-विनिमय भी हो जाएगा।"

"अति उत्तम।"

जल्दी खाना खाकर दोनों साथी लिंगेगौडर की 'जीप' पर चिक्मगलूर रवाना हुए। गंगाधर को योजना-संबंधी कागज़ मेज पर रखते देख सुब्बारावजी बड़े आश्चर्य में पड़कर बोले, "यह क्या, इतनी जल्दी सब काम पूरा कर दिया ?"

"जी हाँ। उसी में लग गया। कॉलेज में भी हमें हफ्ते-दस दिन का कैम्प लगाकर बाहर काम कर लौटने के बाद ही चालीस-पचास घण्टों में एक छोटा प्रॉजेक्ट पूरा कर लेना होता था। यहाँ समय की बचत के लिए रोज़ का काम रोज़ उसी रात को पूरा कर लिया।" गंगाधर ने निजी अनुभव की बात सुनाई।

"देखा लिंगेगौडरजी ! लीजिए आपका एक प्रतिस्पर्धी तैयार है।" कहते हुए रावजी हँसे।

"प्रसन्नता की बात ही तो है, सर ! महतो अपने ग्रेजुएट सर्वेयरों के लिए अद्भुत कार्य क्षमता का आदर्श ही हो जाएगा। आदमी के लिए प्रतिस्पर्धा हाथी के लिए अंकुश के बराबर है। संकल्पहीन कार्य सुफल क्या दे। हम दोनों में कॉलेज में भी स्पर्धा रही है, सर ! केवल वादविवाद प्रतियोगिता के समय।"

"आपको अपने डिवीज़न में खींच लेना चाहिए, भाई।" योजना के सूक्ष्म निराक्षण के बाद हँसते हुए रावजी ने इशारा किया।

"आपका विचार सुंदर है, सर। ये आ जाएँ तो बड़ा अच्छा होगा। आज-कल इंजीनियर इने-गिने ही मिलते हैं। काम पर लगा लेना कोई बड़ी बात होगी।"

"सचमुच यही हाल है। लेकिन यह काम जो सिर पर उठा लिया है। इसे छोड़ थोड़े ही देंगे ? इतना ही नहीं, इस प्रयोग ने हम में भी अभिरुचि जगा दी है।"

सुब्बरावजी ने अपने दफ्तर के इंजीनियर स्वामी को बुलवा भेजा। लिंगेगौडर की धारणा के अनुरूप ही आपत्ति उठाई गई। साथियों ने रावजी से थोड़ी शालीनता से ही बहस की।

"ठीक है, कर लीजिए। विवरण जान लेने पर आपकी बातें उचित ही जँचती हैं। इस इंजीनियरी विधान में कोई कमी है। वही महत्वपूर्ण है। दृष्टिकोण में भिन्नता है, सो हानिप्रद नहीं। लेकिन सबका मिलान कर देख लिया है न? अपनी ओर से इतना ही कहना है कि इस उठँगने को ढाल की थोड़ा चिपटा बना लीजिए।"

"स्वाइल मेकॉनिक्स पर हमें बहुत कुछ बतलाया गया है, पर! उस हिसाब से यहाँ की मिट्टी के अनुरूप···।" गंगाधर जवाब देने लगा।

'सो सही है, भाई! मान गया। आजकल के शिक्षित युवक हम जैसों से कई मानों में अधिक जानकारी रखते हैं। नई-नई थियरियाँ हैं। कहीं-कहीं इन्हीं का अनुसरण हो भी रहा होगा। मैं भी आपको लीक पीटने के लिए नहीं कह रहा। नई जानकारी से फ़ायदा उठाना और योजनाओं में किफायत, खर्च की कमी पर भी ध्यान रहे, इसका भी विरोध नहीं कर रहा। कहिए लिगेगौडर जी?"

"मानता हूँ सर! आपने नए प्रयोगों के लिए मुझे काफी छूट दे रखी है।"

"देखा गंगाधरजी! मैं कोई खूसट नहीं!" रावजी हँसे।

"कैसी बात कह रहे हैं, सर? हाथ कंगन को आरसी क्या? आपने योजना के लिए सम्मति जो दिखाई···।" गंगाधर ने अपनी आस्था व्यक्त की।

"तो इस ढाल के बारे में ज़रा तूल न खींचे! ठीक है। आगे बढ़ा जाए।"

"आपका 'स्पिल वे' का हिसाब भी लगाया है। ढलुई निकासी की चौड़ाई जितनी चाहिए, उतनी ही रखी है। लेकिन मेरी बात मानिए, अनुभव से कह रहा हूँ। धारा के काम में कुँजड़िनों-सा मोलभाव नहीं होना चाहिए। वह अचानक उपद्रव मचाने वाली हो जाती है। मैं इन कामों में गहरे धक्के खा चुका हूँ। ये बाल धूप में सफेद नहीं हुए। विशेषज्ञ बनने का यही तरीका है न! हूँ! दस फुट और बढ़ा दीजिए।"

"बढ़ा दिया जाएगा, सर!"

"लिगेगौडरजी! हम दोनों इनके साथ उन स्थानों पर एक बार हो आएँ। बहुत पहले वहाँ गया अवश्य था। लेकिन इस योजना की दृष्टि से एक बार और निरीक्षण कर लेना ठीक होगा। आवश्यक होने पर थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर लिया जाएगा। अन्यथा निश्चिंत होकर इतने ही की ज़िम्मेदारी अपने पर ली जा सकेगी। गंगाधरजी! इसका आशय यह न लगाया जाए कि हमें आपकी योग्यता पर कोई भरोसा ही नहीं! समझे?"

"स्वप्न में भी यह बात दिमाग के नहीं आती, सर ! मेरा यही विश्वास है कि आपकी बातें सर्वमान्य हैं, उसकी आवश्यकता भी है, औचित्य भी है। मैं स्वयं आपसे यही निवेदन करने ही वाला था। आपका आना संतोषप्रद ही है। कल चलेंगे, सर ?" गंगाधर ने अपनी बात बताई। कई कारणों से, वह भी यही चाहता था। जनता को जब मालूम हो जाएगा कि ऊँचे अधिकारी ही आकर देख गए हैं, योजना का औचित्य मान लिया है, तो उनका अविश्वास इन कामों में कम हो जायगा, यही उसका भाव रहा।

"देखा आपने ! कल ही चलने की बात कह रहे हैं ! ये एक दिन का भी अवकाश देने वाले नहीं। ठीक है, भाई ! लिंगेगौडर जी, आपकी क्या राय है ?"

'वही, सर ! लगे हाथों ठिगनापुर के पुल तक भी। पहले ही लिख भेजा है वहाँ का एक खंभा बड़ा झमेला खड़ा कर रहा है।"

"मालूम है। तब ऐसा किया जाए कि सुबह ही मैं नरगेरे आ जाऊँ। जीप से पुल पर पहुँचा जाए। जाँच-पड़ताल पूरी कर लौट के खाना खा कर दोपहर को लगभग एक-डेढ़ बजे तक सुबरनधारा के लिए निकलें। चार-छह घंटे तक घूमा जाए। एक निश्चय कर ही सकेंगे। दोपहर तक क्या करेंगे, गंगाधर !" रावजी हँस पड़े।

"तो वही ठीक।" तय हो गया। दोनों मित्र भी खुशी-खुशी नरगेरे लौट पड़े।

● ● ●

:१८:

गंगाधर जब सुबह घर पहुँचा, तो देखा आँगन में बड़ा कोलाहल मचा हुआ है।"

"भैया ! दूसरा रैंक, ऑनर्स।" चिल्लाते हुए शंकर ने तार गंगाधर के हाथ में दिया और बोला, "अभी-अभी आया।"

"भैया इतने अव्वल दर्जे में पास होंगे, मैं यह पहले से ही जानती थी।" बच्चा गोद में लिये सावित्री प्रसन्न हो कह उठी।

"इससे क्या हुआ ? पहला रैंक जो न मिला ! बड़ा परिश्रम करना पड़ा था।" गंगाधर ने तार देखते हुए धीमी आवाज़ से कहा।

"इसके लिए उदास क्यों होते हो, बेटा ! प्रयत्न अपने हाथ का है तो फल भी अपने वश का मानते हो ? भगवान् की कृपा हम पर हुई है। तुम पार लग

गए, इतने से ही संतोष कर लेना चाहिए।" रसोई के दरवाज़े पर खड़ी हुई अम्मा सांत्वना देने लगीं। उनका चेहरा सूरजमुखी की याद दिलाता था।

"लड़के खाली पास हो जाने भर के लिए उतावली में पड़े और खबर सुनते ही तृप्त हो जाते हैं। लेकिन अपना भैया इतने से भी मलिन हो उठा है!" पद्मा मुस्काती बोली।

"मानवी इच्छाओं की थाह कहाँ? न पूरी हो सकने वाली, पकड़ में न आ सकने वाली एक-न-एक चाह सताती ही रहती है। परिश्रम ही तृप्तिविधायक है, फलप्राप्ति से भला कभी तृप्ति हुई है? निरा पागलपन है।" अम्मा की बातों में अथाह अनुभव का आलोक था।

"भैया! पहले और दूसरे में फर्क ही क्या है। परीक्षाओं का हाल तुमसे छिपा नहीं। तुम भी ऑनर्स पा गए हो। क्या काम करते हुए क्षमता-योग्यता प्रकट न की जा सकेगी?" शंकर ने सहलाया।

"यह बात नहीं, शंकर! अथक प्रयास के बाद भी लक्ष्य दूर ही रह गया, बस यही खेद का विषय है। हटाओ। अपने को सबसे बड़ा मानना भी असंभव ही तो है। कोई तथ्य नहीं है। श्रेष्ठता का दंभ भरने वाले भी कनिष्ठ ही होते हैं। पहला रेंक जिसे मिला है, वह मेरा ही साथी मुखर्जी है। बड़ा बुद्धिमान है, तेज़ है। इस फल की संभावना पहले से ही रही। अतः इसमें कोई विस्मय नहीं होना चाहिए। आस तो लगी ही रहेगी, लेकिन इससे विषाद नहीं होना चाहिए। अपनी प्रतिष्ठा बढ़े की अपेक्षा योग्यता की प्रतिष्ठा बनी रहे, यही उचित प्रतीत होता है।"

गंगाधर अपने को सँभालने लगा। बोला, "अम्मा, इसका सारा श्रेय तुमको है।"

"मैंने कौन पहाड़ उठाया, बेटा! केवल यही मनौती मानी थी कि भगवान् तुम्हें घी के दीप दिखाऊँ। इतना ही! उसने पार लगवा दिया है।"

"पिता जी कहाँ हैं?"

"अन्दर जप में बैठे हैं।" कहती हुई अम्बा भात देखने गईं।

"भैया! शनिश्चर तुम्हारे लिए क्रूर हैं। उसके लिए शांति का जप!" सावित्री ने फुसफुसाया।

'शनि भगवान् तो बड़े अनुकूल ही लग रहे हैं!" गंगाधर ने मुस्कराते हुए धीमे स्वर में कहा।

"जनन की घड़ी में अनुकूल हैं तो शुभकारक बताए जाते हैं। लेकिन

गोचर में क्रूर होने से फलप्राप्ति का भोग छीन लेते हैं।" शंकर ने सुलझाया।

पिताजी का जप पूरा हो गया था। बाहर आकर संकेत करते हुए बोले—"ईश्वर की बड़ी कृपा है, बेटा ! प्रसन्नता है। अब स्वयं अपना भला सोच लेना बाकी रह जाता है।" गंगाधर मौन रहा। पिताजी आगे बढ़े, "अपना दायित्व समझ लो, भाई ! कल्पित सुख के लिए परिवार की बलि न चढ़ाई जाए।"

अब गंगाधर के लिए मुँह खोलना अनिवार्य हो गया। बोला, "पिताजी ! मैं मानता हूँ, आपकी दृष्टि में मैं घोर अपराधी हूँ। पर मेरा ध्येय, प्रयास हमसे बड़े हैं। उनके हेतु हम यंत्रणा भोगने को विवश किए जाएँ, तो भी उन्हें भुगत लेने की तैयारी में मन को लगा देना श्रेयस्कर है। यह युग ही ऐसा है कि प्रत्येक परिवार, हर एक व्यक्ति अपना-अपना हिस्सा देता जाए, और अधिक लेता न जाय।"

थोड़ी देर सन्नाटा छाया रहा।

"अच्छी बात है ! तुम्हें दोष देने से लाभ ? कुंडली ही स्पष्ट बता दे रही है। व्यर्थ क्यों समय नष्ट करें। तुम्हारा भी वश कहाँ। ज्योतिष कभी झूठ नहीं होगा, इसको यही निदर्शन पर्याप्त है। अन्यथा तुम जैसे तेज़ लड़के की बुद्धि विकृत हो जाए, यह समझ में नहीं आता ! ललाट-लेखा है।" पिताजी बोले। वे असन्तुष्ट थे।

ताँबे का पंचपात्र हाथ में लिए मेदुकोटे का उत्तरीय चढ़ाए श्राद्धभोज के लिए चले गए।

थोड़ी देर के लिए गंगाधर के सामने अँधेरा छा गया।

"उनकी बातों पर ध्यान न दो, बेटा ! तुम्हें जो जँचे वही कर लो।" अम्मा आँगन में आईं, तसल्ली दी।

"किस सोच में मैं पड़ गए, भैया ! भव्य कल्पना का साक्षात्कार होने के बाद भी उसे साकार न बना सकने वाला जीवन किस काम का ? कर्तव्य-पालन की सीख देनेवाले अपनी करनी से भी…।"

"श् ! शंकर !" गंगाधर ने टोका।

"घर के प्रति दायित्व निभाने वालों का अभाव है इस संसार में ? मात्र वे ही आदर्श माने जाएँ ?" सावित्री जोश में आ गई।

"धीरज धर लो बेटा। सभी साधक-बाधक अंशों पर विचार करने के बाद ही तो निर्णय किया है तुमने ? वह भी पूरा हो जाए। उसमें विघ्न-बाधा ही कैसी, यातना-पीड़ा ही कहाँ ! ऐसे अवसरों पर उदास नहीं होना चाहिए,

प्यारे !...अरे, भगवान् के लिए घी के दीप !...भूल ही गई।...हां...हि ! उस पीतल की कलछी में सातम्माजी के यहाँ से थोड़ा घी उधार ले आ बिटिया !... ...." अम्मा बोलीं। फिर गंगाधर की ओर मुड़कर उससे पूछा, "उठो, बेटा ! हिरियण्णाजी, रामण्णाजी तथा अपने अन्य हितू परिवार वालों को भी तो यह शुभ संवाद सुनाना है !"

"मैं भी बच्चे को लिटा अपनी सहेलियों से मिल आऊँगी।" सावित्री पालने में बच्चा लिटाने गई।

"मैं भी जाऊँगी सबको सुनाने ! मैं भी ! मैं भी !" बच्चे शोर मचाते सड़क की ओर भागे।

गंगाधर हिरियण्णाजी के यहाँ जाने को निकला तो शंकर बोला, "मैं अपने-तुम्हारे सभी संगियों को यह समाचार सुनाने जाऊँगा।"

गंगाधर घर से बाहर आया भी न होगा कि गुण्ड दौड़ता मिला ! स्नेहावेश से गंगाधर को कस लिया और कह उठा, "तुम्हारी सिखाई बनारसी चाल है ! हार्दिक शुभकामनाएँ।" पीठ भी थपथपाई।

"इत्ती जल्दी कैसे पता लगा लिया रे !"

"टेलीपैथी का असर !......तुम्हारी बातें ही निराली होती हैं !...... डाकिया रामय्या घर-घर खबर बाँटता जा रहा है।"

इसके साथ ही हाँफती आई पार्वती सामने खड़ी थी। उसका वक्ष उभरा और चेहरा विद्युच्छटा से चर्चित हो उठा था। उसे मुस्कुराते देख गंगाधर ने अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित की, "धन्यवाद क्या दूँ। आप लोगों को देखने से ही श्रम सार्थक प्रतीत होता है।"

"अब तो उन लोगों के मुँह पर ताला ही पड़ गया जानो, जो कहा करते थे कि बाँध उठवाने वाला इंजीनियर कोई बनने वाला, अपने को ज्यादा लगाने वाला वहमी है। जनता अधिकाधिक आश्वस्त होती जाएगी।" पार्वती का रुँधा गठा एकबारगी फूट पड़ा।

"यह कोई ऐरा-गौरा इंजीनियर नहीं, हुनरमंद है। इसका हाल किससे छिपा था ? इंजीनियर सुब्बरावजी ने भी तो इसका लोहा मान लिया। यह बाँध की ही नहीं, गाँव की भी किस्मत ही मानो।" गुण्ड की अपनी चाल थी।

"कोरा इंजीनियर हो गया, तो क्या हुआ ! सीना चौड़ा-ऊँचा रखनेवाला शेर भी तो हो-ऐसे कामों के लिए........।" पार्वती के मुँह से अनजाने ही बात निकल पड़ी।

"पारी ! शर्मिन्दा न करो। अभी क्या पहाड़ खुद गया है।" गंगाधर फूला न समा रहा था।

"कूड़े पर सिकुड़ी पड़ी झोपड़ियों से भरे गाँव में सरदर्द न ला दिया ? कम-से-कम इस वक्त लोगों को कंधों पर रहे अपने सिर का भान हो जाए और उसके सही इस्तेमाल का पता भी लग जाए। देख लेना इसका नतीजा जो निकलेगा, बड़ा लुत्फ़ आएगा।" कहते हुए गुण्ड का उत्साह उमड़ उठा, वह गर्व से झूमने लगा।

"वही सही ! चलो अण्णाजी के यहाँ से होते हुए तुम्हारे घर चला जाए।" गंगाधर ने कहा और उन्हें ले आगे बढ़ा।

"ठहरो ! अच्चत्ते का अभिनंदन कर आएँ।" पार्वती और गुण्ड अंदर गए।

हरियण्णाजी के यहाँ भी डाकिया रामय्या फूँक आया था। आँगन में वे मढ़ी हुई तस्वीरों पर बिछी धूल का परतें झाड़ रहे थे। इन्हें देखा तो, "आ जाओ गंगाधर ! पता लगा है। बड़ी प्रसन्नता है।" कहते हुए स्वागत किया। गंगाधर ने उनके चरणस्पर्श किए।

"रहने दो, भाई।" कहते हुए उन्होंने पैर पीछे हटा और भुजाएँ थाम कर उसे ऊपर उठा लिया।

"अण्णाजी ! आपकी सहायता......" गंगाधर की घिग्घी बँधती गई।

"तुममें क्षमता थी। मैं बड़ा प्रसन्न हूँ कि तुम भी एक आदमी बने।" हिरियण्णाजी के स्वर में शील का सागर दिखा।

"जो भी सहायता, चाहे कहीं से भी मिल जाती, तुम्हारी लगन और परिश्रम न होते, तो उसकी सार्थकता ही क्या होती ? यही नहीं, तुमने स्कॉलरशिप, पुरस्कार इनके रूप में आर्थिक व्यवस्था निजी पौरुष से पूरी कर ही ली। आरंभ में ही तो थोड़ा-बहुत तुम्हें मिला, बाद को कहाँ ?" जयलक्ष्म्माजी लस्सी घोलने की डंडी हाथ में लिए ही आँगन में आ गई थीं।

गंगाधर उनकी ओर बढ़ा और उनके समक्ष मत्था टेक दिया।

"सहायता पहुँचानेवाले शीलवान् हों तो बड़ी-से-बड़ी रकम भी उनके लिए साधारण हो जाती है। यदि शीलहीन हुए तो साधारण-सी भी बड़ी ऊँची हो जाती है।"

"वही सही। पुरुषार्थ से उसका सदुपयोग जो कर लिया। यही चाहिए था भी।"

"पुरुषार्थ कैसा, मामी ! पहला रैंक……।"

"इसके बारे में तुम कच्चे हो। डिठौने की तरह थोड़ी-बहुत कसर रह भी जाए, तो कोई हानि नहीं। चौकोर की छटा बनी रह जाएगी। अपनी उत्तमता के संवर्धन की चुभन होती रहेगी। यही नहीं, आदमी का चेहरा देखे बिना, उससे बातें हुए बिना, उसकी लिखी पुस्तक मात्र देखने परखने का ढंग अपनाया जाए तो कोई कभी कोई कमी न रह ही जाएगी। इसमें आश्चर्य कैसा ?"

"मामी ! आपने कभी उदास होने दिया मुझको ?" गंगाधर मुस्कुरा उठा।

'मामी ने ही जब कह दिया है ! बंद करो अपनी हिचकियाँ, जिनकी भलाई जितनी होती जाए उनकी हिचकियाँ भी उतनी ही बँधती जाएँ, खूब !" गुण्ड ने डाँटा।

'यह सारा श्रेय आपकी मंगल कामना का परिणाम है, मामी।"

'चिकमगलूर में अधिकारी तुम्हारी योजनाएँ मान गए ?" मामी ने पूछा।

'जी हाँ ! मान गए, मामी !' गंगाधर ने सारा ने सारा वृत्तांत कह सुनाया और उसी दिन तीसरे पहर उनके आने की बात भी कही।

"उन्हें काफी पर यहाँ बुला लें तो ?" अण्णाजी ने अपनी सहधर्मिणी की ओर देखते हुए पूछा।

'क्यों नहीं, बुला लीजिए। कौन बड़ा भोज आयोजित करना है।" जयलक्ष्म्माजी इसमें कोई बड़प्पन न देखती थीं।

"दो-एक और और भी बुला लिए जाएँ।" अण्णाजी का यह सुझाव गंगाधर को संतोष बढ़ाने वाला ही लगा।

"अपने साथियों को भी बुला लो, गंगाधर।" जयलक्ष्म्माजी बोलीं, उनके लिए तो इशारा ही काफी था।

"बढ़िया होगा मामी। आनन्द आ जाएगा। सुंदर जलपान गोष्ठी ही जम जाएगी। लोगों को पता भी तो लगे कि बड़े इंजीनियर साहब भी इसमें हाथ बँटाने वाले हैं।" गुण्ड बोला। वह फूलकर कुप्पा हो गया था।

"रसोई से किसी चीज़ के जल जाने की बास आ रही है, जयलक्ष्मी ?" वहीं पास जप में लीन नंजत्ते इतनी आवाज़ देकर तुरंत जप में डूब गई।

गंगाधर की टोली के जाने के समय से नंजत्ते की पलकें असाधारण कसावट के साथ आँखें बंद रखने की उतावली सूचित करती थीं। रुद्राक्ष की माला तेज़ी से सरकने लगी थी। ओंठों की चाल पल-पल द्रुततर होने लगी थी। माथे पर

पसीना छूटने से भस्मांकित तीनों रेखाएँ मिटने लग गई थीं।

"सुना नहीं, भाभी ?" नंजत्ते पूछकर दुबारा जप में लीन हो गई।

'योंही दाल थोड़ी सी छलक पड़ी होगी, उफान के कारण।" जयलक्ष्म्माजी अविचलित रहीं।

"वह देख, बिल्ली बर्तन सरका रही है। आवाज़ हो रही है।" नंजत्ते की अधखुली आँखें तुरन्त मुँद गईं।

"दाल पर का ढक्कन गिरा होगा।"

"बातों में रम गईं, तो सब सुध-बुध बिसार बैठती हो, भाभी !" नंजत्ते का शिकायत हुई।

"नंजत्ते ! मैं पास हो गया।" गंगाधर बोला।

"मैं सब सुनती रही हूँ। किसी योग्य नौकरी में अब लग जाओ, अपनी अवस्था को देख। छोटी-मोटी नौकरी के मिलने में कोई बाधा न होगी। पीछे तुम्हारी अम्मा की सेवा करने लायक तंदुरुस्त और आडंबरहीन कन्या अपनी बिरादरी में ढूँढ़ लो। ब्याह कर लो और आराम से रहो।"

"वही होगा, नंजत्ते।"

"दूर से ही प्रणाम करना। कहीं छू न देना मुझे।" नंजत्ते भद्रासन लगाए दोनों पैर तनिक आगे कर उठी। अधखुली आँखों से ही रुद्राक्षलोक में जपने लग गई।

गंगाधर ने अभिवादन का विचार ही न किया था। लेकिन बढ़ाए पैर देखे, तो माथा टेक दिया। दोनों हाथ उठाए नंजत्ते असीसने लगी। पार्वती और गुण्ड दोनों ने अपने चेहरे दूसरी ओर फेर लिए।

"गुड्डी के लिए दिन निकला होगा या नहीं ?" गंगाधर ने जयलक्ष्म्माजी की ओर देख पूछा।

"तुम ही देख लो। अभी तक काफी पीने भी नहीं आई।" गुड्डी की माँ मुस्कुराती हुई बोली और रसोई में लौट चली।

साथी भागीरथी के कमरे की ओर बढ़ते गए। देखा कैंट साहब का कमरा खुला पड़ा था। टाँग पसारे खाट पर लेटे सिगरेट का धुआँ उड़ाते "फिल्म फेयर" पत्रिका उलटते कैंट साहब ज़रा उठ बैठे और "हलो ! हार्टी कंग्रांट्स !" कहा। वहीं पत्रिका उल्टे ही रखी। एक कुर्सी पर धरा काफी का प्याला नीचे रखा। दूसरी पर पड़े पैंट, टाई, तौलिया, पाजामा इनका ढेर सरका दिया। सिगरेट बाएँ हाथ में ले दायाँ हाथ आगे बढ़ाया।

'तकलीफ न उठाइये सर ! बैठूँगा नहीं। धन्यवाद।" गंगाधर अन्दर गया और हाथ मिलाया।

"यह 'फिल्म फेयर' बड़ी पुरानी है न, सर !" गंगाधर के साथ अन्दर गया गुण्ड झुककर पूछ बैठा।

"इस मरियल गाँव में पुरानी न हो तो क्या नई आ जाएगी ? जो कुछ यहाँ मिल सकता है, ला कर सब देख लिया। इतने पर भी वक्त नहीं कटता। मगर दूसरा उपाय ही कहाँ ! पुरानी की ही शरण जाना होगा।" कहते हुए कैंट साहब हँसे। अपना अलाप शुरू किया, "स्टेट्स में सांड विट्, इमारतें इनकी तरह हर पत्रिका में सैकड़ों पन्ने होते हैं। एक पत्रिका खरीद ली, तो आवश्यक विवरण देखने के लिए दिन भर वही काम दे जाती है। तस्वीरें, व्यंग्य-विनोद, तथ्य-संग्रह इन सबके गिनाने का प्रयोजन ? यहाँ देश भर में प्रकाशित होनेवाली पत्रिकाएँ, वहाँ एक ही शहर से निकलती हैं........।"

"भागीरथी से भी तो मिलना है गंगाधर।" गुण्ड ने कैंट साहब की बातों पर ब्रेक लगाई।

वे वहाँ से हटने ही को थे कि कैंट साहब की कुलबुलाहट शुरू हुई—"अब तो नौकरी में लग जाने की बात ही रही न ? हाल में ही 'हिन्दू' पेपर में एडवरटाइज़मेंट निकली है। मध्य प्रदेश में जूनियर इंजीनियरों की माँग है। तनख्वाह भी कम नहीं। दो सौ रुपए। दरख्वास्त भेज दीजिए। वरना क्या मैसूर में ही सर्वेयर रहना पसन्द है ?"

"देखा जाएगा, सर !" गंगाधर असावधानी से कह गया।

भागीरथी के कमरे का दरवाज़ा ज़रा ही खुला रहा। गंगाधर ने हल्के से खटखटाया।

"कौन ?" अन्दर से भागीरथी की आवाज़ हुई।

"हम हैं भाई !" गंगाधर बोला।

"अभी इज़ाज़त नहीं, तैयारी पूरी हुई नहीं है।"

"यह बात !"

जवाब नहीं मिला।

"पारी, ज़रा पता लगाओ तो सही।" गंगाधर ने कानाफूसी की।

पार्वती ने यों ही झाँका और घूमते हाथ की उंगलियाँ दिखाने लगी।

"नाखून पालिश तक नखरा बढ़ गया।"

गंगाधर ने दरवाज़ा खोला। सब अन्दर घुसे।

"बड़े बदतमीज़ हैं !" भागीरथी हँसी। वह उनकी ओर देखे बिना ही अपना काम करती गई। हाँ, मेज़ में लगे आईने पर उसने आगंतुकों को देख लिया। कमरे में हॉस्टल सरीखी अस्त-व्यस्तता थी। सामने मेज़ पर पाउडर पफ़, यूडिकोलोन, लवैंडर आदि प्रसाधन-सामग्रियाँ बिखरी पड़ी थीं।

"मेम साहब ! आपका गुलाम—।"

"रो-धोकर बधाई कमाने ही तो आया होगा ?"

"इसमें भी कंजूसी ?"

"मेरी बधाई बड़ी महँगी होगी। क्यों ?"

"न सही, खुद भीख माँगने तुम्हारे पास—।"

"मैं कोई गावदी नहीं कि फँस जाऊँ। किसकी बात की कितनी कीमत आँकी जाती है, मैं जानती हूँ।" भागीरथी तनकर बोली।

"यह वाहियात बात है।"

"दोनों पीछे से चाहे तो निपट लो। इस वक्त शिष्टाचार के अनुरूप दोस्ती निभा लो।" गुण्ड बीच में बोला।

"भागीरथी ! पता है, चिकमगलूर में नौकरी पर लेने को तैयार हो गए हैं।"

"तब यहाँ से कब निकल पड़ोगे ? भला इसका पिंड तो छूटे ! चैन से रहा जाएगा। गाँव भर में उलट-फेर कर दिया है।"

"इस बारे में, अफसोस है, तुम्हें निराश ही होना पड़ेगा। बंदा यहाँ से हटने वाला नहीं :"

"यह बात।"

"नौकरी पर क्यों जाऊँ तुम्हारी सूरत ही देखता रह जाऊँ—।" गंगाधर ज़रा तेज़ आवाज़ में ही बोला। इस पर तीनों हँसे।

"मेरी सूरत !—खराब कैसी ?" नाखून पर पालिश लगाना बन्द हुआ। भागीरथी मारे गुस्से के झट घूम कर बच्चों की भाँति अपना चेहरा दिखाने लगी। झट घूमने के दौरान उसकी नागिन सरीखी वेणी वक्ष पर से उछल कर गले में लिपट गई और बाँहों के पीछे गिरी। लोलक गाल पर लग कर झूल उठा।

"यही हाल—इस साज-सिंगार के आवरण के भीतर भी—।"

"कोई लेक्चर जरूरी नहीं।" भागीरथी तीनों के खुले नयनों में अपनी प्यारी छटा की परछाइं देख खिल उठी, फूल उठी। बोली, 'यह कोई रंगमंच

नहीं । मुझे बंदरिया और अपने को मदारी न समझो कि तुम्हारे इशारे पर नाचती रहूँगी । तुम्हें मिली-मिलनेवाली नौकरी से मुँह मोड़ने को विवश करने-वाली आकृति न मेरी है, न और किसी भागमती की !" इतना कह पार्वती की ओर मुड़ कर उसने जैसे अन्तिम वाक्य कहा, "उस बाँध की साध ने तुम्हें जकड़ रखा है ।"

"अब तुमसे व्यर्थ का वाद-विवाद कौन करे ? तुम्हारी धारणा को ही सही मान लेता हूँ। बाँध ही मेरे लिए 'चौदहवीं का चाँद' है ।"

"पत्थर-मिट्टी के पुतले पुरुषों के भाग्य में और बदा ही क्या है !—रहने दो इन बातों को । पार्टी कब होगी ?"

"हाँ. वही ! वही ! अब ठिकाने पर आ गई बात ।" पार्वती बोल उठी ।

"भागीरथी जब दे !" गंगाधर ने ज़ोर दिया ।

"ठीक है ! ठीक है ।" गुण्ड ने हामी भरी ।

"भई वाह, खूब कही । 'बैल को बुखार लगे तो भैंस को ही दाग़ दो' वाली बात !"

"मेरा मतलब वह नहीं । तुम भी अव्वल पास हुई हो, पार्टी होगी ही । मेरी गुड़-पट्टी भी उसी के साथ तश्तरी में लगा दी जाएगी, 'फूल के साथ डोर भी महक उठे' की कहावत जो है ।"

"अवसरवादी है ! शर्म नहीं आती ?"

"गरीब के लिए शर्म कैसी, भागीरथी ! तुम्हारे साथ कलेवा खाकर बनी यह काया जो है ।"

"अब दया करो मुझ पर ! अब तुम्हारी बातों में वह सज्जन न रह गई । छुट्टी दो मुझे । सर-दर्द हो आया है ।"

"बात करने से ही सर-दर्द ! कितनी कोमल !"

"करने से नहीं, सुनने से !"

"ओह हो ! तब तो और भी मुलायम !"

"रात भर नींद न आई । तबका शुरू यह दर्द अब और बढ़ गया ।"

"फिर क्या, सरदर्द की दो-चार गोलियाँ निगल जाओ ।"

"तुमसे सलाह लेनी पड़ेगी ?"

"पर मैं तो चुप रहनेवाला कहाँ ! अपने साथ काम पर आ जाओ । बदन का टूटना, सिर फटना सब नदारद । परीक्षा कर लो । पारो—हम दोनों को

देख। क्या हुआ है? कैसे हैं?" गंगाधर की शाबाशी से पार्वती का चेहरा चमक उठा।

"बड़े भले हैं आप! मैं कुछ नहीं चाहती। यह स्वास्थ्य-सौभाग्य तुम्हीं लोगों को शोभे। आज प्रदर्शनी का काम, कल नाटकाभिनय, परसों मिट्टी की खचिया ढोओ। यही तो तुम लोगों के काम हैं! ऐसी सनक के लिए अपनी ओर से मुट्ठी भर भी न पड़ेगी! यह भरम-वरम तुम्हीं को मुबारक हो।"

"मेम साहिबा, मिट्टी से मुँह मोड़ लें तो धरती का कल्याण ही खतरे में पड़ जाएगा।"

"बकबक बंद करो। तुम्हारे साथ हँसी-मज़ाक करने के लिए मुझे फुर्सत नहीं। बहुत से काम पड़े हैं।"

"और भी तीन नाखून बाकी जो हैं।" गंगाधर ने कटाक्ष किया। फिर तीनों हँसते-हँसते लौट पड़े।

"हार्दिक बधा-ई—यां—। बधाई न देने की बदनामी क्यों सिर लगे। ऋण चुका दिया है, याद रखना।" भागीरथी ने कमरे से ही पुकारा।

'चाहे दाएँ से चाहे बाएँ हाथ से, देवीजी के हाथ से जो मिले, वही प्रसाद है। धन्य—वा—द!" गंगाधर ने ज़ोर से कहा।

वे अण्णा के यहाँ से निकलने को हुए तो जयलक्ष्म्माजी ने एक बड़ा भरा ठोंगा ही दिया।

"इसमें क्या है, मामी?"

"थोड़ी सी मिस्री है। घर जा रहे हो, तो सबमें बाँट देना।"

"मिस्री मुझे लानी है। उसे आप ही—।"

"अन्तर क्या है दोनों में? तुम अपने ही हो, पराए तो नहीं।"

"सही है, मामी!—तब यही मिस्री आपको भी थोड़ी सी बाँट दूँ, 'सरवर का नीर सरसी में ही' की भाँति।" हँसते हुए गंगाधर ने ठोंगा खोला। मामी ने भी मुस्कुराते हुए हाथ बढ़ाया।

"भागीरथी बड़ी पहेली बन गई है।" रास्ते में गंगाधर बोला।

"पहेली ही नहीं, झमेलियाई भी।" गुण्ड बोला।

"सो बात नहीं। कभी-कभी ठिकाने की भी बोलती और करती है। आज न सही, कल तक राह पर आ ही जाएगी।"

"कोई भरोसा नहीं। बड़ी जिद्दी है। बचपन का साथ जो है, इसे भूल क्यों जाते हैं?" गुण्ड ने याद दिलाई।

"बड़प्पन की सवारी, बाघिन की सवारी दोनों समान है। उतरना खतरे से खाली नहीं रहता। वही उसकी परेशानी है। ज़रा और टटोल लिया जाए।" गंगाधर ने बात पूरी की।

शानभोगजी के मकान की सीढ़ी पर पाँव धरते ही रंग गंगाधर के गले में लटक गया और 'मिठाई! मिठाई!' चिल्लाने लगा।

"ज़रा सब्र कर लो! बांध के लिए जो ढोए मिट्टी, पाए वहीं ढोंके की मिस्री।"

"मैं ढोऊँ! मैं!! मैं!!!" रंग, गुंड, पार्वती तीनों ने हाथ बढ़ाए।

"अपना गुण्ड ही इस तरह पास हुआ होता, तो हमें इससे कुछ कम प्रसन्नता न होती भाई! शाबाश!" रामण्णाजी बाहर निकले और बोले।

"यह लो ठाकुरजी को पहनाया गया हार—बड़े मुहूरत में आए।" कहते हुए वेंकम्माजी ने गंगाधर के हाथ में माला रखी। नौकरी की बात छिड़ी। गंगाधर ने अपना संकल्प दुहराया और फिर कुछ देर उस पर चर्चा भी हुई।

"पानी पड़े या नहीं, पैदावार बढ़े या नहीं। हाथ भर वेतनवाली नौकरी से मुँह मोड़ रहे हो! अपने गुण्ड और बाकी लड़कों की बात अलग है। कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। तुम्हारा परिवार तो पहाड़ बन बैठा है। मेरी समझ में कुछ आता-अवाता नहीं। भगवान् ही बेड़ा पार लगावें।" वेंकम्मा कह चली।

"हम दोनों की पीढ़ियों में सोचने के ढंग में ही ज़मीन-आसमान का अंतर है। हमें ठीक न जँचे तो हम किसी के वेग को क्यों रोकें? यही कारण है कि मैं कोई उपदेश नहीं देता। अनुभव ही गुरु है, वही सच्ची सीख भी जगाता है। मतलब इतना ही है कि जो भी भला काम किया जाए, वही प्रसन्नता का कारण भी बन जाए।" रामण्णाजी ने वक्तव्य पूरा किया।

शाला समाप्त कर लौटते नारणप्पा जी के संग बातें करते गंगाधर घर की ओर बढ़ रहा था। उस समय मास्टर साहब ने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा, "मैं तो पहले ही से जानता था। अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। यही तो विद्या का चरम लक्ष्य भी है? अपने मास्टरों की कीर्ति चमका दी।" इतनी सराहना के बाद भावी कार्यक्रम जानकर बोले, "प्रति विषय के दो पहलू रहते ही हैं। तुमने जो मार्ग अपनाया है उसमें पूरी तृप्ति मिली है न? कल पीछे की ओर मुड़कर मन मसोस कर रह जाने की आशंका नहीं है न? वही विशेष ध्यान देने की बात है। लाभप्रद कार्य उत्तम ही रहे, ऐसा तो कहीं देखा न गया।

कुल मिलाकर देखा जाए तो एक व्यक्ति का जीवन कितना साधारण क्रीड़ा-विनोद है ! जमकर खेल लेना चाहिए। बस, हारे या जीते, इसमें क्या रखा है। अन्यथा उसे विकराल रूप देकर, व्यर्थ का मूल्यांकन कर छटपटाते रह जाना कोई बुद्धिमानी नहीं है। बढ़े जाओ, जुते जाओ ।" इतना कहते उन्होंने गंगाधर की पीठ ठोंकी और अपने रास्ते चले गए।

"आपकी बातों से बिखरी वृत्तियाँ फिर से सिमट जाती हैं, सर ! सूक्ष्म दृष्टिवाले कितने विरल हैं।" गंगाधर ने अपनी कृतज्ञता व्यक्त की।

घर के सामने ही पुराणिकजी से भेंट हो गई। स्कूल का चपरासी उनके पीछे ही दूकान से सामान लिए आ रहा था।

"बाजार भर में तुम्हारी ही चर्चा है, भाई ! जो भी लड़का मिलता जाता है सबसे कहते आ रहा हूँ—'गंगाधर अपने ही स्कूल का पुराना छात्र है। उसके सम्मान में एक बड़ी टी-पार्टी का आयोजन होना चाहिए।'....कोई सरकारी नौकरी कर लेना। दनादन हज़ार तक का वेतन बढ़ जाए। गाँव का गौरव बढ़ेगा, उसका यश दूर-दूर फैलेगा, समझे।"

पुराणिकजी ने अपनी प्रोत्साहन-भरी वाणी का गंगाधर पर कोई असर न देख आगे हाँकना शुरू किया, "तीन-तेरह के फेर में न पड़ो। सरकारी नौकरी शाही नौकरी है। कितनी भी छोटी क्यों न हो, बड़ी मोटी गिनी जाती है। लखपति सेठ को भी दस का एक नोट पानेवाले सरकारी नौकर के सामने घुटने टेकना पड़ता है। देश चाहे जहाँ जाए, वेतन तो बँधा ही रहेगा। गरज हो तो बाँध झील सरकार ही बनवा ले। हाथ समेट लो। इतना काफी है। यह ठीक है। गरमी की छुट्टियाँ रहीं। थोड़ा मनचलापन हो ही गया। कोई उसे ठोस-पक्का मानता ही नहीं, तुम लोगों से नाराज़ भी नहीं। समझो पिताजी ने भी तुमसे वही न कहा होगा ? हम उम्र में बड़े हैं, अनुभवी हैं। तुम्हारे हितैषी मात्र यही चाहते हैं।"

"आपका कहना गाँठ बाँध ले रहा हूँ, मास्टर साहब ! मेरे सम्मान में टी-पार्टी उचित नहीं। लड़कों को खाली डाँड़ भरना पड़ेगा। कृपया उन्हें मना कर दीजिए, सर ! आप को देर तक रोक जो लिया क्षमा चाहता हूँ, सर ! नमस्कार, सर।" गंगाधर ने हाथ जोड़े।

पुराणिकजी सिर हिलाते आगे बढ़े।

गंगाधर ने आँगन में कदम रखा, तो देखा, अम्मा बच्चों को गरी-शक्कर बाँट रही हैं। फर्श पर यहाँ-वहाँ शक्कर बिखरी हुई है।

"यह क्या, शक्कर ही भोज! ज्यादा पैसे न लग गए होंगे? अम्मा ?" गंगाधर कट गया था।

"एक छदाम भी न लगा, बेटा! तुम्हारे जाते ही वीरप्प बधाई देने आया। साथ लायी दो पसेरी शक्कर, छह खड़ी गरी, थोड़ी-सी इलायची, पिस्ता। यह सब रखने लगा। मैंने मना किया, 'यह कैसा अन्याय कर रहे हो, भाई?' लेकिन वह माने तब न! 'गंगाधर को यह सब अपव्यय रुचेगा नहीं, यही सोच, मैं ये चीजें लाया हूँ। अपने बाँध के लिए, ठप्पा लगा, एक ठोस इंजीनियर मिल गया, उसका पाया और भी पोख्ता हो गया, इसी खुशी में। अम्माजी! इसकी सारी जिम्मेदारी मुझ पर! आप निश्चिन्त रहें। शाम को मैं भी अपना हिस्सा लेने आऊँगा।' कहते हुए वह तीर की तरह निकल गया। अब इसके निपटारे की सोच लग गई। पास-पड़ोस से कई छोटे-बड़े घर आए वे अपना अपार आनन्द को सूचित करने लगे। तुम्हारे जन्म पर भी इतने न आए होंगे। इतना हुलास मुझे उस क्षण भी न हुआ था। सबको-विशेषकर बच्चों को खाली हाथ लौटने देना मुझे भद्दा लगा। वीरप्प चीजें ले ही आया था। दृढ़ मनवाली होकर मैंने उन्हें बाँट ही दिया। वह फिर लौटा ले जाने नहीं आएगा।" अम्मा ने सही हाल कह दिया।

"तो हम निर्धन नहीं, अम्मा।" गंगाधर गम्भीर होकर बोला।

"सही है, बेटा! धन का अभाव ही दारिद्रय नहीं। ऐसा होता तो जीवन-निर्वाह कहाँ संभव होता! धन-दारिद्रय से बढ़कर कई घोर दारिद्रय हैं। उनसे हम पीड़ित नहीं, यही न तुम्हारा कहना है?"

स्वीकृति में गंगाधर ने केवल सिर हिलाया।

"...लो, तुम भी थोड़ी गरी-शक्कर!" पुत्र की स्वीकृति से संतुष्ट अम्मा ने उँगलियों की पकड़ की शक्कर गंगाधर को दी।

"प्रेम से दी गई, तुम्हारे हाथ की बनी, यह कितनी मीठी है, अम्मा।" उसे मुँह से डालकर वह पुलकित हो उठा।

अम्मा बल्लियों उछल पड़ीं। द्रव्याभाव भी न होता, तो अम्मा का आनन्द कितना होता! गंगाधर मन-ही-मन गुनता गया।

● : ●

: १९ :

इंजीनियर अपने वक्त पर पहुँच गए। गंगाधर की टोली सर्वे करते समय गाड़ी खूँठियों की सीध पर से ही उन्हें घुमाती गई। गंगाधर कभी-कभी नक्शा आगे बढ़ाता जाता और ब्योरे समझाता रहता। विचार-विनिमय भी होता जा रहा था। राव जी ने नाले की दिशा में दो-एक परिवर्तन कर लेने की सलाह दी।

गाँवों के निकट वहाँ के निवासियों से भेंट भी हो जाती।

"कहो भाई! बांध, नाला आदि का काम अपने परिश्रम से पूरा कर खेत की सिंचाई की व्यवस्था कर लोगे, तुम लोग?" सुब्बराव जी ने मल्ले गाँव के निवासियों से विनोद किया।

"ऊ काहे, हुजूर! हम कोई मजूरे हैं?" एक बूढ़े गौड़ ने पूछा।

"मजदूर नहीं, भाई। कारीगर बनिए। दूसरे के लिए खटे और पैसा ले, तो मज़दूर हो गया। अपना काम आप कर लें, तो आप कारीगर भी हुए और मालिक भी बने। है कि नहीं?"

"सरकार में ताकत न हो तो हम ही कर लें।" मुस्कराता हुआ एक नवयुवक बोला।

"यही तो बहादुरी की बानगी है! वास्तव में सरकार इतनी ताक़त नहीं रखती। अन्यथा वही यह काम अब तक पूरा कर चुकी होती। उसका दिल बड़ा जरूर है। पर इधर-उधर रकम लग गई है। सो उसका खजाना खाली है। अरे भाई। हाथ का पकाया खाना ही तो रुचता है। आपकी हर रोज की शिकायत से भी हमें मोहलत मिल जाती है। दिल को मजबूत बनाइए, अपना करतब दिखाते जाइए। देश भर में आपका नाम फैल जाए। मल्लेगाँव वाले बड़े माहिर हैं, मिहनतकश हैं, इसका नमूना भी पेश हो जाएगा। अपनी ही ताकत से अपने बंधन ढीले हो पाते हैं! घबराइए नहीं। काम में लग जाइए। धेला लगाए बिना काम निभ जाय। कांट्रिब्यूशन—बढ़ी हुई लगान—आदि का झंझट ही नहीं। आज की सरकार भी आँख मूँदे न रहेगी। अपने वश में जो भी है, आपको मदद पहुँचाने के लिए वह करेगी ही। हम जो यहाँ आए हैं, उसका मतलब भी यही न होगा! कहिए, आप तैयार हैं?"

'जिनकी ज़मीन है, वे आगे बढ़ें। बाकी क्यों खटें ? रकम तो उनकी ही बची ? अपने पल्ले ज़मीन-वमीन कुछ नहीं।"

"सुनो भले आदमी ! गाँव की तरक्की हो, तो भला किसका नुकसान होगा ? क्या तुम खेत में काम पर नहीं जाओगे ? कमाई से टेंट नहीं भरेगी ? मज़दूरी मिल गई तो बाँध के काम में ही लग गए। वरना सब की तरह अपना पेट भर निकाल कर खाली रहते समय मेहनत ही दान में दे दी। यह मत भूलो कि यदि सरकारी कोशिशें कामयाब हुईं, तो ज्यादा ज़मीन लोगों में बँटती जाएगी और तुम भी ज़मीन के मालिक बन सकोगे। बाँध अपना, नाला अपना का गर्व अनुभव करने के लिए भी तो मुट्ठी भर मिट्टी उसमें लगानी होगी। गाँव में बस जाने से, गाँव अपना नहीं हो जाएगा, उसके लिए खून-पसीना बहाने पर ही, वह अपना हो सकेगा। यह गाँठ बाँध लो। सन्तान पैदा कर देना ही काफी नहीं है, उसका लालन-पालन करना भी तो जरूरी है।"

"देखा जाएगा, हुजूर ! बखत तो आ जाए।"

"यही सही तरीका है !"

मिलनेवालों से इसी ढंग की बातचीत में राव जी कहते थे और आगे बढ़ते भी जाते। बोले, "देहाती लोग कोई काम हाथ में आसानी से नहीं लेते। पर एक बार कोई काम अपना लिया तो कभी उससे भागते भी नहीं। ये शहरातियों की तरह नहीं जो झट कोई काम करने आगे बढ़े और पट उससे हाथ खींच पीछे हटे।"

ये लोग प्रकाशवाड़ी पहुँचे, तो शाम के साढ़े पाँच बज चुके थे। पुराणिकजी, निर्वाणय्याजी, रामण्णाजी आदि ने हिरियण्णाजी के साथ आगे बढ़कर अतिथियों का स्वागत किया। परस्पर कुशल-वार्ता हुई। अण्णाजी एक एक का परिचय कराते।

"आप मेरे भांजे, विषकंठ शास्त्री हैं।"

इतने संक्षिप्त परिचय से कैट साहब का चेहरा सिकुड़-सा गया। उन्होंने अपनी सतरंगी 'टाई' और भी कस ली। पर पुराणिकजी ने पूरा हुलिया बताया, "आप इंजीनियर भी हैं, सर ! 'फारिन' हो आए हैं।"

कैंट साहब पर इसका असर अच्छा ही हुआ।

"स्टेट्स में था.........।" कहते कैंट साहब ने पूरा बयान किया और यह भी जोड़ना न भूले कि "कांक्रीट मेरा विशेष विषय रहा है।"

राव जी मुस्करा कर प्रसन्नता प्रकट करते हुए बोले, "बड़ी खुशी है, सर !

अपने देश में इतनी बड़ी संख्या में उच्च शिक्षा, प्राप्त विशेषज्ञ लौट रहे हैं।"

"बड़ी देर लग गई, आपको ! फिर अभी···।" हिरियण्णाजी उन्हें मकान में ले जाते हुए बोले।

"दूसरी चिन्ता न करें। देर-सबेर तो लगी ही रहती है। जंगली जो ठहरे। काम ही अपनी घड़ी है। उसके रहते सदा ही दिन रहे, पूरा होते ही शाम, रात !" रावजी हँसते हुए बोले।

"इतनी देर के बाद भी आपने यहाँ पधारने की जो कृपा की, इसके लिए हम सभी कृतज्ञ हैं।"

"यह कैसी बात कह रहे हैं ; जहाँ जाते हैं, वहाँ इतनी आव-भगत कहाँ ? इन श्रीमान्‌जी ने हमें खूब चक्कर लगवाया ! दोपहर का खाना हजम हो गया, भाप बन उड़ गया और पेट खौखलाने लगा था। गंगाधर ने जब आपके आमंत्रण की सूचना दी, तो इस ओर दौड़े आए।"

"चक्कर हमने लगवाया कि आपने, सर ? गंगाधर को ही हम इस तरह चक्कर काटने में सूरमा मान बैठे थे। अब मालूम हो गया कि इंजीनियरों का गुट ही ऐसा है। आपके साथ कदम न मिलाए होते, तो इसकी संभावना पर विश्वास ही न होता।" वीरप्प ने विस्मित हो विनोद किया।

आँगन में मेज़-कुर्सियाँ लगी थीं। सफेद मेज़पोश पर भागीरथी ने फूलदानी-धूपदानी रखी थी। सभी यथास्थान जा बैठे। गंगाधर ने धूपबत्ती जलाई। भागीरथी और पार्वती द्वारा लाई गई चाँदी की तश्तरियाँ, चम्मच, लोटा, गिलास आदि लेकर मेज़ पर उन्हें सजाया। जयलक्ष्म्माजी ने हलुआ, सीरा, भजी, बघार दिया खट्टा चूड़ा, चूर्ण, आदि बनाए थे। नाश्ता होने लगा। साथ-साथ बातें भी शुरू हुईं।

"आप बड़े भाग्यशाली हैं, महाराज ! ऐसी दो सुशील रूपवती कन्याओं के पिता ! यदि ब्याहने लायक मेरा कोई लाड़ला होता तो बिना किसी संकोच के इनमें से किसी एक का हाथ उसके लिए माँग लेता।" राव जी ने आँचल खोंसे परसने में लगी हुई कुमारियों को देखकर कहा। आगे यह भी जोड़ दिया, "उम्र मेरी भी ढल गई है। मैं ऐसी बातें मुँह से निकालूँ, तो वह अशिष्टता तो नहीं होगी न ?" ये बातें सुन दोनों सहेलियाँ होंठों के भीतर ही हँस पड़ीं।

"दोनों कन्याओं के पिता के रूप में सम्मानित होने का प्रलोभन तो मुझे है ही। पर रामण्णाजी इस पार्वती की यह अभिलाषा सहज ही पूरी होने

देंगे ?" अण्णाजी ने पार्वती की ओर संकेत किया।

"अच्छा ?"

"ऐसी कोई बात नहीं, सर ! वह भी इस परिवार की ही संतान है। यह घर नन्दबाबा का गोकुल ही है। चाहे जहाँ भी जन्म लें, पर इन सर्वसेवी दम्पति के वात्सल्य का वैभव न जाने कितनों को सुलभ हुआ है। यह गंगाधर भी...." रामण्णाजी ने कहा।

"अभी रास्ते में आते गंगाधर ने सब हाल बता दिया है। आपके बारे में बातें होने लगीं, तो उन्होंने सब कह सुनाया है। उनके पीछे रहनेवाली प्रेरक शक्ति का आभास हो ही गया। सुनिए, आपने अवश्य ही पात्रापात्र का विचार रख कर सहायता पहुँचाई है। गंगाधरजी और उनके ये साथी बड़े जीवट-वाले हैं। पैसे हैं, सहायता भी, सरकार की ओर से मिले अधिकार हैं ही। इतने पर भी हम जिस काम को हाथ में लेने से हिचकते हैं, उसे इन्होंने असाधारण पौरुष से अपने सिर पर ले ही लिया है ! यही काफी है। सिद्धि या विफलता भविष्य के गर्भ में है। हम सबको आवेश की फाँस में फाँस रखा है। मैं तो यही कहता हूँ। हम बड़े विभ्रम में पड़ गए हैं। अन्यथा दूसरा कोई मुझ जैसे घुटे हुए को घात पर नहीं चढ़ा सकता था। इन्हें देखा, इनकी बातें सुनीं। मुझे तो लगता है कि यह सपना साकार हो उठेगा, बाँध बन जाएगा और इसमें लगे सभी अमर यश के भागी होंगे।"

"बाँध, झील, ये सब उपयोगी अवश्य हैं। मैं अस्वीकार नहीं करता। पर अमर यश की प्राप्ति हेतु कर्नाटक सिंहासनाधीश्वर श्रीकृष्णदेवराय द्वारा निर्मित कराया विजयनगर का विट्ठल मन्दिर, अथवा होयसल सम्राट् श्रीविष्णुवर्धन की प्रेरणा से जकणाचारी-ढकणाचारी द्वारा बना बेलूर चेन्नकेशव मन्दिर जैसा कोई वास्तुशिल्प भी तो चाहिए ? अहहहा ! कैसा वैभव, कितनी अनोखी कला ! विश्वविख्यात हैं। आप बड़े-बड़े इंजीनियर हैं, सर। उस मेल का कोई एक मंदिर बनाना होगा, सर !" पुराणिकजी निर्वाणय्याजी की ओर देखते हुए इंजीनियरों की ओर मुड़े। बात करने के उत्साह में मुँह डाली उनकी एक भजी लक्ष्य चूक जाने से नीचे गिर गई।

"मैं भी इससे सहमत हूँ सर ! नश्वर संसार में, कम से कम वह चीज़ अपेक्षाकृत अधिक टिकाऊ होगी। बाँध, झील आदि तो बनते ही सूख जाएँगे।" निर्वाणय्यजी ने हलुये की एक मोटी टुकड़ी उतनी ही चतुराई से मुँह में ठूँसी जितनी चतुराई से कोई पानी में रही मछली हाथ से पकड़ने में दिखलाए।

"यह नश्वरता वाली थियरी रटते रह जाएँ, तो हममें सस्वरता रहेगी ही नहीं, स्वामीजी अपने लिए जो काम हैं—प्रतिदिन बाँध, नाला, सड़क, पावर-स्टेशन, स्कूल, कालेज, अस्पताल, सभाभवन आदि ही मंदिर बनवाने सदृश पवित्र कार्य हैं, उत्तम हैं। वही पत्थर, मिट्टी, इंट, गारा आदि अपने भगवान् हैं, स्वामीजी! सुबह, शाम, दिन भर वही उपासना है, भगवन्! यही अन्यत्र भी लागू समझिए। हर कोई अपने-अपने कर्तव्य-कर्म से पूजा-प्रार्थना कर सकेगा। जनसेवा ही जनार्दनसेवा है। यही अपना तारक-जप है।"

"तब तो आपका आशय यही हुआ न कि उन वास्तुओं की कोई आवश्यकता नहीं? या आपका कहना है कि उस मेल की वस्तुओं का निर्माण संभव नहीं?"

"संभव न भी हो, तो मुझे कोई संताप नहीं। संभव हुआ भी, तो निर्माण अपेक्षित नहीं। उस ढंग की एक शिल्प-कला में लगने वाली रक़म से बीस अस्पताल बनने चाहिए। पत्थर में सूराख लगने या अनगढ़ को सुगढ़ बनाने में इंजीनियरी नहीं के बराबर है। किसी भी कला में सरलता, उपयोगिता, मितव्ययिता, सुन्दरता आदि लक्षणों का निर्वाह अनिवार्य है। इसी में इंजीनियरी कला की परख हो सकती है। ऐसी इमारतें ही होनी चाहिए। प्रतिदिन सैकड़ों निर्माण-कार्य जारी हैं। एक बार सारा देश घूम आइए तो भला! अरे स्वामीजी! जीने की कला प्रस्तर-खंड से निर्मित शिल्प की अपेक्षा बड़ी ऊँची है। सुनिए, एक क़िस्सा बताऊँ। तीन कलाविद थे। उनमें प्रतियोगिता हुई। एक ने छेनी से शिला-खंड काट कर उससे नाटे कंगूरेदार एक भवन बनाया। दूसरे ने अपने शाही सौध के विशाल कक्षों की भित्तियों पर, फर्श पर अपूर्व चित्रकारी की। तीसरे ने अपना छोटा सा मकान शुभ-स्वच्छ बना लिया। पुरस्कार इस अन्तिम कलाकृति को ही मिला।"

"तो आपका कहना यही हुआ कि प्राचीन कला-सौष्ठव के लिए वर्तमान अनुकूल नहीं पड़ता। यही न?"

"पहले पेट-पूजा,। पीछे फूलों से केश-विरचना। देश में शांति-समृद्धि स्थापित हो जाएँ, तो मानसिक उपभोग के बहुविध साधन हो उठते हैं—कलात्मक विभूतियों का इतिहास भी इसी का समर्थन—।"

"मैं इतिहास पढ़ाता हूँ, सर!" पुराणिकजी ने बड़े ताव से कहा।

"तब तो और भी आसान हो गया। आपने जिन असाधारण कला-कौशलों का उल्लेख किया है, वे किस युग में संभव हो सके हैं, याद कर लीजिए। वैसी

समृद्धि हम भी सिद्ध कर लें। तब तक साँस रोके रखें। देश की यथार्थ महिमा वहाँ की सुख-सुविधाओं के माध्यम से समुन्नत संस्कृति, कला आदि में निहित है, आज की सी दुर्दशा में खड़े होने वाले चमत्कारों में नहीं। इनके दर्शन मात्र से गद्गद् होकर उनके गुणगान में जीवन सार्थक मानने वालों की उपेक्षा के पात्र हम हो भी जाएँ, तो कोई हानि नहीं। महाराज, मैं भी कला का अनन्य आराधक हूँ, प्रेमी हूँ। किन्तु समुद्र शिलान्यास पर सुभग सौंदर्य का सौध और उस पर कालविजयिनी कीर्ति का शिखर! यही कारण है कि सरकार पाया मज़बूत बनाने में प्रवृत्त हुई है, एडी-चोटी का पसीना बहा रही है।"

"अशन-वशन का जीवन भी कैसा जीवन, सर! इससे भविष्य में सब सधेगा भी, इस पर मेरा भरोसा नहीं। कला-वैभव बढ़ाना चाहिए, सर! वही रसमय जीवन का प्राण है। जीवन में कला का अपना निराला स्थान होना चाहिए। उसे अन्यों के साथ घपले में नहीं डाला जा सकता। आपका कहना मान भी लें, तो एक प्रश्न यह भी उठता है कि बाकी क्षेत्रों में सरकार ने कौन बड़ा पहाड़ खोद लिया है? आप जो गिनाते गए, उनमें कहाँ वह आगे बढ़ी है, सर! भगवान् ही जाने।" पुराणिकजी ने पैंतरा ही बदल दिया। हलुवे की ओर एक टुकड़ी मुँह में डालना न भूले।

"यह क्या कह रहे हैं? जिनकी आँखें खुली हों, उनसे ये सब छिपे हैं क्या? यदि जो पढ़ा-सुना उससे जी न भरा, तो एक चक्कर काट आइए न! सुविधाएँ सुलभ बनाई गई हैं। हम तो इससे अच्छी तरह परिचित हैं ही। लिंगेगौडर जी, आपका क्या विचार है? इतना काम है कि देह खुजलाने तक की फ़ुर्सत नहीं। अपनी सर्विस में मैंने यह सरगर्मी पहले कभी न देखी थी।'!

"स्फूर्ति का फल हमेशा शुभ होता है।" लिंगेगौडर बोले।

"यह असाधारण स्फूर्ति मुझे दिखाई पड़ी है। इन कई एक कार्यों के बारे में सुनने को मिला है। इन अद्भुत प्रयासों की निष्ठा सराहनीय ही नहीं, अनुकरणीय भी है, यह आकांक्षा मन में जगी। इसी से बल-संचय कर इस यथार्थ सेवा-कार्य में प्रवृत्ति हुई है।" गंगाधर ने निजी अनुभव की बात कही।

"हम से ये सारी बातें परे हैं, सर! हमारी समझ ही जवाब दे जाती है। आपका क्या विचार है, निर्वाणय्याजी!" पुराणिकजी अपना पलड़ा सम्हालना चाहते थे।

"यही मेरा भी मंतव्य है, सर! कोई शाश्वत कार्य नहीं हो रहा। मुझे तो यह सब बाजीगर के खेल जैसा लग रहा है। व्यर्थ ही अपना काम दसगुना बढ़ा दिया

है, यह सर्टिफिकेट, वह टिकट। सैकड़ों फर्में ! उन्हें भरने का तरीका समझाए जाओ, ब्यौरेवार बहियों में टाँके जाओ, आठ जगह दस्तखत बनाए जाओ, बारह जगहों पर ठप्पा लगाए चलो, बीस रसीदें काटे रखो—इतना सब एक फार्म के लिए। खाली ठप्पा लगाने के लिए ही एक 'होल टाइम' आदमी चाहिए, सर ! क्या समझ लिया है आपने ! अपने दफ्तर का काम तो राजाराम के ही सँभाले सँभले। सब निरा रेड टेपिज़्म—लालफीताशाही ! सरकार के लिए सस्ती, अपनों के लिए पस्ती ! इतना सब करने का प्रयोजन क्या ? नौकरी है। लाचारी है। आज भर रह कर कल उठ जाने के सौभाग्य के लिए यह सब करता फिरूँ, यही चिंता चित्त को चाटे जा रही है।" निर्वाणय्याजी ने 'सोर्र' करते एक चुस्की काफी पी।

"आप जो चाहें कह लें, सर ! कहीं कोई चुस्ती नहीं, फुर्ती नहीं। निर्वाणय्य जी का कहना सही है, चारों ओर 'रेड टेप' ! कोई काम ही आगे नहीं बढ़ पाता। हर जगह पानी की तरह पैसा बहाया जा रहा है। अपने लोगों को तो वादा करते-करते टाल रहे हैं। और भी बहुत सी बातें हैं। लेकिन उन्हें दुहराने से वक्त खराब होने के सिवाय कुछ नहीं निकलने का। 'ब्लिट्ज़' साप्ताहिक देखना होगा सर ! सरकारी गोलमाल को जानने के लिए…।" पुराणिक जी ने अपनी ओर से कोई कसर न रहने दी।

"उसी प्रकार सरकारी रिपोर्टों और उसकी ओर से दी गई सफाई की सूचनाओं को भी तो देख लेना होगा ! सरकार जो कुछ किए जा रही है वह सोलहों आने सही है, यह कौन कहता है ? कितनी बड़ी सत्ता है ? कितना विशाल है यह देश ? चारों ओर हजारों-करोड़ों तक लगाकर काम हो रहे हैं। इस हालत में खामियाँ भी संभव हैं। पर ठिकाने के काम भी तो कम नहीं। हमें पूर्णता की नहीं, पूर्णता की ओर यत्नशील अपूर्ण प्रयासों की ओर ध्यान देना चाहिए। 'ब्लिट्ज़' की बात आपने उठाई। गाँधीजी ने मिस मेयो की किताब को म्युनिसिपैल्टी के दारोगा की फिहरिस्त के बराबर ठहरा दिया—उसमें गंदगी बटोर कर भर जो दी गई थी। उसी तरह कूड़ा करकट जमा कर उसी में लोटते रहने से क्या पुरुषार्थ सिद्ध हो सकेगा ? गुण को ग्रहण करें और अपनी ओर से सहयोग देते जाएँ, तभी कुछ हो पाएगा। यह भी छोड़ दें आप। यह सरकार किसकी है ? हम और आप दोनों की ही तो ! हम, सरकारी नौकर सामान्य जनता जैसे रहेंगे, जो कुछ करेंगे, सरकार भी तो वैसी होगी, वही करेगी ! जनसाधारण का स्तर उठता जाए तो सरकार का स्तर भी ऊँचा होता

जाए। अपने-अपने काम की ओर ही देख लें—चाहे दफ्तरों में, चाहे घरों में। मैं जीतोड़ परिश्रम करता हूँ, इसका मुझे पूरा भरोसा है। पर जितना उत्तम होना चाहिए, उतना न बन पाया, यह खटका बरावर लगा रहता है। कभी-कभी अपने को दंडित कर लेले को आक्रोश भी हो उठता है।"

"यहाँ भी वही हाल है। कभी-कभी इच्छा के अनुरूप काम नहीं हो रहा है, यह भाव मन में उकताहट पैदा कर देता है।" कहते हुए गौडर खिन्न हुए।

"आप लोगों की तरह मैं सरकार की तरफदारी नहीं कर पाता। जो सामने हो रहा है; उससे आँखें मूँद लेने से फायदा? आप बड़े ईमानदार होंगे। लेकिन सब बड़ी ऊँचाई पर रहनेवाले भी वैसे नहीं हैं, यह मैं स्पष्ट शब्दों में कहे दे रहा हूँ। यही तो कारण है, देश का बेड़ा पार न लगने का। इससे कुछ भी न सरेगा। सरकार की बागडोर सँभालते रहें, ये लोग क्या जानते हैं, सर! कोई अनुभवी भी? यह होना चाहिए, वह होना चाहिए, के सर्क्यूलर-सूचनाएँ प्रतिदिन बदल कर भेजे जाते हैं। अपने विभाग में भी यही लस्टम-पस्टम है। पर हम जानते हैं कि जूता पहनने वाला ही उससे पहुँची पीड़ा पहचानता है। ऐसे सर्क्यूलरों की गत क्या बनानी होगी, यह हमें किसी से सीखना नहीं है। अपने जिम्मे काम छोड़ देने के लिए कहें तो यह सरकार तैयार नहीं है। पच्चीस साल सर्विस करने वाले हम न जानें, ये कल आँखें खोलने वाले सर्वज्ञ बन बैठें? व्यर्थ के प्रयोगों में पौरुष दिखाते हैं, पीछे सिर नीचे किए बैठ जाते हैं—।"

"वही मेरा भी निश्चित मत है, सर! टिकट, सर्टिफिकेट—."

"उस ज़माने की पढ़ाई की व्यवस्था कहाँ—परीक्षा, प्रवचन, पाठ्यक्रम, अनुशासन—चाहें जो ले लें। एक सन् किसी को याद नहीं! तालीकोटा लड़ाई कब हुई, पानीपत की तीसरी लड़ाई किसने और कब लेड़ी, औरंगजेब का निधन-संवत् क्या है, इन सबकी आवश्यकता नहीं बताते हैं। वाइसरायों की नामावली रटाई जाने पर भी कोई फायदा नहीं। खाली दिमाग खराब करना होता है। इस दशा में इतिहास क्या खाक पढ़ाएँ? उनकी जगह मिट्टी की खुदाई, खेतों की जुताई-जैसे कुली-कबाड़ियों के धंधे सिखाओ! पढ़ाई की वह शान नहीं रह गई। यह रामकहानी पूरी होने की भी!—।" पुराणिकजी ने काफी गले के नीचे उतारकर मुँह की कोर हाथ से पोंछ ली।

"ठीक कहते हैं आप। क्या फायदा है। चार दिन के संसार में दो दिन का दरबार! व्यर्थ है। संक्षेप में कहना हो, तो सब पर मटियामेट हुआ मानिए···काफी "ए ओन" बढ़िया है, सर! एक प्याला और ले ही लिया

जाय।" निर्वाण्णय्याजी ने लोटे से गिलास भर लिया।

"अपनी यूनिवर्सिटियाँ भी दिन-पर-दिन गिरती जा रही हैं।" कैंट साहब कलमा पढ़ने लगे। बोले, "फर्स्ट क्लास की कोई कीमत न रह गई। ऐरे गैरों तक को रैंक-वैंक मिल जाते हैं। नवीन विषय, मसलन कांक्रीट, का नाम लीजिए, गोटी ही न जमे। जो चाहें, कर गुज़रें। इसीलिए तो अपने प्रॉजेक्ट पुराने युग की तरह······।"

"पुराने युग का नाम न लें, सर! चित्तदुर्ग के क़िलेदार मदकरिनायक की बनवाई झील आज भी दुरुस्त है।"

"जी, ऐसे काम कम-से-कम चिरस्थायी तो होते हैं।" निर्वाण्णय्याजी प्याले में बचा कसैला अंश भी गटक गए और मुँह बिचकाने लगे।

"करनी-वरनी का लेखा-जोखा यह! ऊपर से प्रतिदिन एक न एक "स्कैंडल" रहता ही है। यहाँ काम पिछड़ गया है, वहाँ भ्रष्टाचार जोरों पर है, यह अलग। जानकार के लिए कोई अवसर ही नहीं। एक मामूली पाँच सौ रुपए की नौकरी का आदेश आठ-नौ महीने के बाद मेरे हाथ लगता है। अभी दो दिन पहले—चंबल प्राजेक्ट के लिए। कम से कम नौ सौ की उम्मीद लगाए मैं बैठा रहा।"

"आर्डर मिल गया? पता ही न लगने दिया। बधाइयाँ!" गंगाधर ने हाथ बढ़ाया, पर कैंट साहब इसकी उपेक्षा कर गए। अन्यों ने भी बधाइयाँ दीं।

"बड़ी प्रसन्नता की बात है, सर! एक जगह लग गए, तो सब काम पूरा होता जाएगा।" सुब्बरावजी बोले।

"सरकार की जागरूकता को दर्शाने के लिए यही एक उदाहरण पर्याप्त है, सर! नौकरी का आर्डर निकालने में पूरे नौ महीने! वह कोई संतान की बराबरी करें!" पुराणिक जी ने कटाक्ष किया।

"यह भी; दिल्ली में असिस्टेंट सेक्रेटरी बने, अपने चाचाजी की कइयों से चिरौरियाँ करने के बाद! उन्होंने खुद लिखा है।" कैंट साहब विवरण देते गए।

लिंगेगौडर इस पर कुछ कहना ही चाहते थे। पर रावजी ने मुस्कुराकर कनखियों से उन्हें मना किया।

"यहाँ, विदेश में, सब जगह परीक्षाओं में फर्स्ट क्लास में पास, रैंक पाने के बाद यह हालत!"

"आपका रैंक मुझे मालूम नहीं······।" निर्वाणय्याजी भौंचक्के हो गए।

"फर्स्ट क्लास, रैंक मुझे भी मिलने थे, सर ! पर वहाँ के प्रोफेसरों ने अपनी चल चाल ही दी। ये निष्पक्ष कभी नहीं होते। स्टेट्स में 'ए-ग्रूप' अव्वल दर्जा-जरूर मिलेगा, इसकी उम्मीद भी थी। लेकिन, अपने प्रोफ़ेसर से कुछ अदावत हो गई, तो उन्होंने मुझे दबा दिया।"

"छिः, छिः ! वहाँ के प्रोफेसर भी ऐसे ही हैं, सर ?" पुराणिकजी के आश्चर्य की सीमा न रही।

"जी हाँ, दो-एक ऐसे निकल ही आते हैं। तक़दीर ही खोटी है।"

"हटाइए, सर, क्यों परेशान होते हैं। कल नौकरी पर हो रहे हैं, तो अपना हाथ दिखा दीजिए न।" निर्वाणय्याजी ने सांत्वना दी।

इसी बीच मादण्णा एक लिफाफा लिए वहीं आया। कैंट साहब के सामने उसे बढ़ाते बोला—"भागव्वाजी ने कहलाया है, अभी डिब्बे में यह छोड़ आएँ ! सुना कि आपकी दी हुई किताब में यह रह गया था।"

"बाप रे ! ठीक कहते हो। दो दिन पहले ही छोड़ देना था। भूल ही गया।" कैंट साहब सिर खुजलाते हुए सबकी ओर देख आगे बढ़े, "वही, आर्डर के बारे में। काम पर लगने के लिए एक महीने का समय माँगा है।"

"चंबल के लिए ढाई-तीन दिन का ही तो सफ़र है ?" लिंगेगौडर ने पूछा।

"है तो। पर पहले बंगलोर जाना होगा। कपड़े-वपड़े तैयार कर लेने होंगे। मेली-मुलाकातियों से मिल लेना पड़ेगा। सैकड़ों काम लगे ही जो हैं।"

"जी हाँ ! बड़ी दूर जाना है। अकेले जा रहे हैं। तैयारी के काम कितने ही रहेंगे !' पुराणिकजी ने अनुमोदन किया।

"अच्छा बात है, लिफाफा लेटर वक्स में छोड़ दे, मादण्णा....लेकिन आज की निकासी का वक्त बीत गया। होगा क्या ? "लेट फी" -वगैरह का यहाँ भी तो कायदा होगा।"

"कोई हर्ज नहीं। यहाँ दे दीजिए, सर ! मैं ठीक कर लूँगा। मादण्णा ! दफ्तर में जाकर कह देना कि लिफाफा मैंने दिया है।" निर्वाणय्याजी तुरंत आड़े बन कर बोले, "वह शरणप्प अगर किटकिटाये तो कह देना कि मेरे आने तक आज की डाक खुली रखे समझे ?"

मादण्णा चला गया।

"यह शरणप्प जो है, मेरा असिस्टेंट है, सर ! पर बड़ा दिमाग़ लड़ाने वाला है। उससे कह आया कि बड़ा अर्जेण्ट काम है, जाना है, डाक बँध जाय। वह

तात्र से कह भी दे सकता है कि डाक बँध गई, अब न जा सकेगा यह लिफ़ाफ़ा। हाल में ही तो नौकरी पर आया है। पर उसकी धौंस का क्या बताऊँ? मुझी को सिखाने लगता है। घरबारी ठहरा। उलटफेर हो ही जाता है। दफ्तर जाने में तनिक भी देर हुई, तो सीधे घर पर धमक पड़ता है। कहता है, 'चाबी दीजिए, लोग इंतजार कर रहे हैं।' आदमी को देर-अबेर हो ही जाती है! मेरी तरह बीस साल जूए में जुतें, तो बच्चू को छठी का दूध याद आ जाए। वह दम भरता है कि वक्त की पाबंदी मुझसे नहीं निभती। अपने को बड़ा तेज़ लगाता है। प्रत्येक अवसर की ताक में रहता है। उसके जिम्मे मनीआर्डर, रजिस्ट्री, लिफाफे, कार्ड, टिकट आदि की बिक्री—इतने ही काम हैं। मैंने अपने लिए सेव्हिंग्स बैंक, सर्टिफिकेट, लबड़घोघों के बीसियों काम रखे हैं। उसकी खिड़की पर कोई रहता ही नहीं। मेरी खिड़की पर तो भीड़ लगी रहती है, इतना काम है! वह खाली बैठा रहता है। मदद पहुँचाने मेरे पास आता है यह कहता हुआ कि 'वह दीजिए न! मैं कर दूँ।' ऊपर से यह उपदेश कि अपना विभाग लेन-देन का महकमा है, सो गाहकों को बेकार रुकना न पड़े। आने-वालों को सर्टिफिकेट आदि की हकीकत भी मालूम कराई जाए। यह भी कोई अपना है, बताइए? सरकारी विभाग है तो थोड़ी-बहुत इज्जत भी न हो? आजकल चारों ओर यही रवैया मानिए। पहले पुलिस का नाम लेते ही लोग थरथर काँप उठते थे। उस ज़माने में तहसीलदार साहब जमाबन्दी के लिए दौरे पर जाते, तो राजा साहब के दरबार का ही ठाठ लग जाता! माल-असबाब का अंबार लग जाता। किसानों का मेला ही जुट पड़ता। गाँव भर में चहल-पहल मच जाती, रौनक छा जाती। शान से काम धाम होता रहा। मगर आजकल ये सब कहाँ। सब फीका पड़ गया है। और क्या कहूँ? डाकघर पंसारी की दुकान हो गया। इधर तो वही शाम को घर घर पहुँचकर "कैनवास"—गाहक बनने के लिए उकसाना—करने लग गया है। देख लिया आपने? जनता क्या कहेगी! अपने मुनाफे के लिए इतनी दौड़धूप! यही न! उसकी इन करतूतों से मैं सिर उठाए नहीं रह पाता। रिपोर्ट कर देने की सोची है। इसके आने के बाद ही चैन से भगवान भरोसे चल रहा। यह दफ्तर गड़बड़झाले का अड्डा हो उठा है। गंगाधर! आपने पर्चे वगैरह जो बँटवाए हैं, उसका भी असर इसमें कुछ दिखाई देने लगा है, भाई! वह भी इसमें शरीक होगा ही। अपना काम देखना छोड़ व्यर्थ का सिरदर्द उसे भी आपके कारनामों से भोगना पड़ जा सकता है।" निर्वाणय्याजी गंगाधर, वीरप्प और मंडली को देखते बोले।

"मेरा असिस्टेंट, शिवस्वामी। उसे आपने क्या कम समझ रखा है? उसके कारण अपना स्कूल उजाड़ हो उठा है। तय मानिए कि वह अपने को हेडमास्टर मान बैठा है। स्कूल में बाकी मास्टरों और लड़कों को बहकाकर घोर षड्यन्त्र रचने लग गया है। बड़ा द्रोही है! यह सब क्यों, इसमें मेरा दोष....।" पुराणिकजी कहते ही रहे, इसी बीच स्कूल का चपरासी रामय्या उनके बच्चे को गोद में उठाए आ धमका।

"यहाँ क्यों आया रामय्या?....वाह रे मुन्ना! तू भी साथ है। आओ, आओ, सोना मेरे।" पुराणिकजी ने मैला वस्त्रधारी और विकृत केश वाले बच्चे को रामय्या के हाथ से उठा लिया। बच्चे की बह रही नाक अपनी धोती से पोंछ दी, दोनों गाल चूमे, गोदी पर बिठा लिया और उसे तश्तरी पर पड़ा हलुआ-फाक खिलाया। बोले "कहाँ से आए लल्ला! नाम बता दे, लाड़ले! अम्मा क्या कर रही थी? बोल तो राजा!"

मास्टर साहब के लाड़-प्यार, दुलार-पुचकार आदि का कोई असर न दिखाई दिया। बच्चे से एक बोल भी न निकला। हलुआ मुँह में भरे मुन्ना मौन ही रहा।

"घर पर कैसी बातें छूट पड़ती हैं, इस मुँह से? क्या बताऊँ? सुबह से लेकर रात में सो जाने तक इसका सदा मुँह चलता ही रहता है, रुकने का नाम ही नहीं लेता। नटखट इतना है कि कुछ पूछिए मत। बड़ा शैतान है।" कहते हुए पुराणिकजी ने बच्चे की बातें, आदतें, खेलकूद आदि का ब्यौरा रख दिया। बीच-बीच में बच्चे का गाल भी सहलाते जाते।

"वह नीम का लक्कड़ तोड़ दिया, राम?" पुराणिकजी ने पूछा।

"जी हुजूर।"

"कुएँ से पानी काढ़ कर स्नानघर के हंडे में भर दिया?"

"भर दिया।"

हलुआ गले के नीचे उतर गया, तो बच्चा रोने लगा। पुराणिकजी की तीखी दाढ़ी वाली आकृति की प्रीति उसे शांत न कर सकी। उसका रोना तेज़ हुआ।

"यह लो, इसे टहलाते घर ले जाना।" कहते हुए पुराणिकजी बच्चा रामय्या के हाथ में सौंप दिया और पूछा, "यहाँ किस काम से आए थे?"

"शिवस्वामीजी ने कहला भेजा है।" थोड़ी देर अगल-बगल देख रामय्या बोला। पुराणिकजी ने बच्चे को समझा-बुझा कर थोड़ा शांत कर दिया, तो

रामय्या का जवाब सुनाई पड़ा ।

"क्या बात है ?" पुराणिक जी ने परुष वाणी में पूछा ।

"कहते थे कि कल स्कूल खुलने वाला है। आज तक सफाई नही हुई है। कल द्वादशी का पारण होगा । हेडमास्टर कब आएँगे, कह नहीं सकते । उनके यहाँ से तुम भी खाली हो पाओगे या नहीं, कहना मुश्किल है । खाली हो गए तो आ जाना । वरना हम ही लोग झाड़ू-बुहारू कर लेंगे । स्कूल की कुंजी अभी ले आना आपसे पूछकर देने आया हूँ यहाँ ।"

"देख ली न सर, उसकी उजड्डता ! ऐसे ही लोग असिस्टेंट बन कर आते हैं ! स्कूल का काम भला शांतिपूर्वक कैसे चले ? यह कोई नई बात नहीं । रामय्या वक्त पर स्कूल नहीं खोलता, झाड़ू नहीं लगाता , घंटी बजाने को नहीं रहता आदि एक-न-एक शिकायत उसकी होती ही रहती है। यह सब किसलिए ? हमारे यहाँ; हम हेडमास्टर हैं इस नाते, रामय्या छिटफुट काम जो कर देता है यह शिवस्वामी को पसन्द नहीं । सीधे कहने के लिए हिम्मत नहीं । तो यही तरीका अपना लेता है । अपने घर पर रामय्या काम करने नहीं जा रहा, इससे डाह भी होगी ही । यह मुझसे छिपी थोड़े है ? सबके यहाँ काम करने चला जाए तो चपरासी स्कूल का काम कैसे करे ? कहिए न ?' कहते हुए पुराणिकजी तिनक गए ।

"हटाइए सर! कुंजी भेज दीजिए न ! जो चाहें, कर लें ।" भीमण्ण कुछ कह उठा ।

"कैसी बात निकाल रहे हो मुँह से, भाई ! हेडमास्टर मैं और स्कूल की कुंजी उसके हवाले कर दूँ ? उसी के लिए तो यह सारी उछलकूद है ! इसमें इतनी जल्दी ? पहला दिन है । हाजिरी ली जाएगी । लड़कों को जाने के लिए कह दिया जाएगा । यही तो परंपरा है । पढ़ाई थोड़े ही होगी कल । कल दिन पूरा पड़ा है, जो चाहे कर ले सकते हैं। पच्चीस साल की सर्विस मेरी नहीं हुई ? आज का यह लौंडा पहले दिन से ही पढ़ाई करने की बात उठाए तो क्या वह चल जाएगा ? सच तो यह है कि वह मुझसे जलता है ।"

"ऐसी बात नहीं, मास्टर साहब ! वे पढ़ा लेना चाहें तो पढ़ाने दीजिए । आप द्वादशी वाला पारण पूरा कर स्कूल आएँ, यह उनका विचार होगा ।" वीरप्प ने बताने की कोशिश की ।

"पारण-वारण कोई कारण नहीं, भाई ! मेरे बारे में वह कितना प्रेम जताता है और मेरे प्रति विश्वासी है, यह मुझसे छिपा नहीं । यहाँ यह सूचना

भिजवाई की मेरा देर से स्कूल जाना सब जान जाएँ। मैं अपने राम का दिल न जानूँ ? ठीक है। पारण वाले दिन मैं देर से ही पहुँचूँगा। हम परम्परागत आचार कैसे छोड़ दें ! इस सरकार का तो मत और धर्म से कोई सरोकार ही नहीं। हिन्दू धर्म के प्रति उसमें आस्था नहीं। अपने पर्व वाले दिनों की छुट्टियाँ भी रद कर दी गई हैं। हम भी वही बेसुरा राग अलापें ? काम के दिनों की संख्या बढ़ाकर कौन तारे तोड़ लाएगी, देख लें भला ! इतने दिनों तक काम चला ही नहीं, देश बढ़ा ही नहीं ! इसलिए मर्जी से जाऊँगा। जवाब-तलब करने वाला क़ौन ? इतने पर मैं हेडमास्टर। दूसरों की तरह छह घंटे गला सुखा लूँ ? मेरा पीरियड न रहे तो उस दिन कभी-कभी समय पर पहुँच जाता हूँ। यह कौन होता है ऐसी हरकत करने वाला ? जिससे मन भरे, तन वही करे। मैं कई कारणों से क्लास पहुँचने में दस मिनट भी देरी लगा दूँ तो चुपके से कंबाइन-कक्षाएँ साथ चलाना—कर लेता है। हेडमास्टर का क्लास भी खुद ले रहा है, इसका प्रदर्शन भी हो जाएगा। मैं भी बला टली, मान-कर चुप रह जाता हूँ। हेडमास्टर के जिम्मे ऊपरी देखरेख का कितना काम पड़ा रहता है ! एक रिपोर्ट तैयार कर भेजने में पूरा एक महीना लग जाता है। एक कागज़ का जवाब देने में ही दिन बीत जाता है। वह क्या जाने ? इतने पर भी ऊपर से फटकार पड़ती ही रहेगी। देर हो गई चिल्लाते चार-छह रिमाइंडर।'

"आपका भी क्लास वे साथ लेना चाहें, तो लेने दीजिए, मास्टर साहब। आपका काम भी आसान हो जाए। धीरे से देख-रेख......।" वीरण्ण ने नम्रता से सुझाया।

"तब तो उसके लिए पौ-बारह ! ऊँघते रहने वाले के लिए बिस्तर लगा देने की भाँति। मुझे कोने तक खदेड़ता चला आएगा। इस समय कई लड़के नहीं जानते कि हेडमास्टर मैं हूँ। खुद वही रंग-ढंग अपनाए बोलता-चालता है। प्रगट रूप में वह चुनौती दे तो खाल न उधेड़ लूँ उसकी ? इतनी हिम्मत आए भी कैसे ? अच्छा, मान लिया कि क्लास उसी पर छोड़ दिया जाय। मगर, क्या वह इतिहास पढ़ा सकेगा, खाक ?"

"अपना लड़का कहता था कि बड़े ढंग से पढ़ाते हैं।"

"खाली किस्सा सुनाता जाता है, वीरप्प ! उससे इतिहास क्या लगे ? संवत्-सन् के बिना इतिहास कैसा ?"

"मेरा छोटा भाई भी यही कहता है—अपने टीचर शिवस्वामी इतिहास पढ़ाते हैं......।" भीमण्णा का बम छूटा।

"शिवस्वामी ! इतिहास के टीचर ? देख लिया आपने ? कैसी चाल चली है ?"

"मैंने पूछा भी-' क्यों रे ! इतिहास पढ़ानेवाले हेडमास्टर तो ?' जवाब मिला—'वे कभी-कभी आते हैं। शिवस्वामीजी को कोई दूसरा करना पड़ जाए तो उनके बदले हेडमास्टर साहब लेते हैं।"

"हद हो गई ! देखा, स्वामीद्रोह की सीमा कितनी फैलती गई है ? वैसी धारणा बनाने के अनुकूल आचरण का परिणाम ! यही रवैया रहे, तो स्कूल क्या चलाया जाएगा ? अंदरूनी झगड़ों से बड़े-बड़े साम्राज्य ढह गये हैं। सन् एक हज़ार आठ सौ में नानाफड़नवीस के निधन के बाद अंग्रेज मराठा साम्राज्य डकार गए। सन् एक हजार आठ सौ तीन में सिंध्या-होलकर के बीच के झगड़े का फायदा उठा कर ही तो। सन् एक हज़ार बानबे में थानेश्वर में पृथ्वीराज की मुहम्मद गोरी के हाथों हार हुई, कन्नौज नरेश राजा जयचंद और पृथ्वी·····।"

सुब्बरावजी उठे, बाकी लोग भी खड़े हुए।

"बड़ी देर हो गई। चिक्कमगलूर पहुँचते-पहुंचते रात के बारह ही बज जाएँ।"

"मैं चुप रहने वाला कहाँ ! उस पर रिपोर्ट न करूँ और उसकी कमर न तुड़वा दूँ तो अपना नाम पुराणिक न रखूँगा। ये ऊँचे अधिकारी पुरानी रिपोर्टों पर आज तक कोई विचार नहीं कर रहे हैं। और ऊपर वालों के पास ही लिख भेजूँगा।" पुराणिकजी अपने से बड़बड़ाते ही रहे।

"आपके आदर-सत्कार के लिए अनेक धन्यवाद, महाराज !" रावजी ने अभिवादन किया। लिंगेगौडरजी ने भी कृतज्ञता व्यक्त की।

"आपके साथ यह शाम बड़े मज़े में कट गई, सर !" पुराणिक जी ने सुब्बरावजी को देख कहा, "रुचिर व्यंजनों का स्वाद, मधुर उक्तियों का संवाद········। आपसे एक निवेदन करने की इच्छा देर से मन में रही है। अपने स्कूल का जालीदार घेरा टूट गया। कई आवेदन भेज चुका हूँ। आज तक कोई कृपा नहीं हुई।"

'होगी भी नहीं। गौडर साहब का जवाब मिल तो गया होगा।"

"यदि आपकी विशेष कृपादृष्टि हो, तो·······।"

"सरकार चाहती है कि शिक्षकों और छात्रों के सम्मिलित श्रमदान से ही ये छोटे-मोटे काम पूरे कर लिए जाएं।"

"सो कैसे हो पाएगा, सर ! पढ़ाई कुछ न हो ? विद्या की अपनी गरिमा"—

"गरिमा-महिमा का होना न होना, किसी काम पर नहीं, उसे निभाने की रीति आस्था पर निर्भर है । कोई काम हल्का नहीं ।"

"यह मैं मानने को तैयार नहीं, सर ।"

"अपने से न बन पड़े तो उन असिस्टेंट महाशय को सौंप दीजिए । लगता है, काम करने-कराने में उन्हें अभिरुचि होगी । तब काम का आदमी……।"

"सर ! सर ! आप भी……।"

"मास्टर साहब ! आराम कुर्सी पर लेटे लेटे सरकार की या औरों की नुक्ताचीनी करने से पहले अपने भीतर झाँक लेना होगा, अपने विकारों को दूर करना पड़ेगा ! यह जहाँ सधे, सरकार-देश आदि के भी अभाव दूर होंगे । एक सधे तो सब सधै । आलोचना करने के लिए आधार भी मिलेंगे । आत्मवंचना से भी भला कोई पुरुषार्थ सिद्ध हुआ है ? वही तो सबसे महापाप माना जाता है नमस्कार !"

"नमस्कार ! सर !" पुराणिकजी बोलती बंद हो गई । वे निर्वाणय्याजी के संग पीछे खड़े रह गए ।

जीप के पास मुस्कराते हुए रावजी कहते लगे—"महाराजजी ! मैं भूल तो न कर गया । लेकिन सहन-सीमा जो टूट गई ! कितनी भड़ैती ! मैं वड़ा क्रोधी हूँ । गौडरजी, गंगाधरजी ये दोनों जानते हैं । अनुचित लगा हो, तो क्षमाप्रार्थी हूँ ।"

यह सुन सबके चेहरों पर मुसकान दौड़ गई ।

"वे बुरा माननेवाले जीव नहीं ।" अण्णाजी ने आश्वासन दिया ।

"ठीक कहते हैं । अपने अधिकारियों से न जाने कितनी खा गए होंगे और झाड़ लिया होगा ।"

"मैं शालीनता से ही कुछ समझा लेने की सोच रहा था ।" गौडर ने धीमे स्वर में कहा ।

"कब्र पर छाई पटिया पर हुई वर्षा किस काम की ! सर्वज्ञ की यह सूक्ति याद नहीं ?' रावजी ठठाकर हँस पड़े । फिर उन्होंने कैंट साहब से हाथ मिलाते हुए कहा, "चंबल में आपका काम बढ़िया चले, सर ! योग्यता प्राप्त कर लौटे हैं । उसका सदुपयोग हो । आप भी सुनाम पा जाएँ । काम में लग जाइए, तो कोई पीड़ा-पुकार, उलूल-जुलूल बातें आदि के लिए कहीं जगह नहीं । समय नहीं । मतलब यह कि शारीरिक और मानसिक स्वस्थता के लिए उत्साह और स्वस्थ विचार रामबाण है । इसी क्रम में उन्होंने गंगाधर को सम्बोधित करते हुए

कहा, "गंगाधरजी, अपने यहाँ कागज़ात दे दीजिए। थोड़ा-बहुत संशोधन दफ्तर में ही करा लूँगा। उसी के लिए आपको क्यों कष्ट उठाना पड़े। आगे ऊपर भिजवा दूँगा और यथाशीघ्र स्वीकृति प्राप्त हो जाय, यत्न करूँगा, अथवा और भी कामों के सिलसिले में स्वयं बंगलोर जाऊँगा, तो इन्हें भी साथ ले लूँगा किसी भी दशा में स्वीकृति प्राप्त करना ही है। इसमें कोई बाधा न होगी। वीरप्प, गुंडप्प, भीमण्ण इनसे भी मेरा अनुरोध है कि काम निश्चित कार्यक्रम के अनुरूप चले और उसमें आप सफल भी हो जाएँ। यही मेरी मंगलकामना है।" उन्होंने अलग-अलग सबकी पीठ थपथपाई।

"महारावजी तो बातूनी नहीं। कामकाजी आदमी ज़बान ढील नहीं छोड़ते। गपशप में उन्हें कोई तुक नहीं दिखाई देता। नाक की सीध पर आपके लिए एक भव्य आदर्श है ही। अच्छा, आज्ञा दीजिए महाराज! नमस्कार," रावजी कहते हुए जीप पर सवार हुए। गौडरजी ने भी सबसे विदा ली और रावजी की बगल में बैठ गए। इस समय तक गाँव के बहुतेरे छोटे-बड़े आकर जीप को घेरे खड़े थे।

"देखा, कितने बड़े-बड़े आदमी आए हैं?"

"बाँध उठाने के सिलसिले में ही, उस ओर खूब घूम आए हैं, गंगाधर भैया से कागज़ जो लिया, दिखाई न दिया?"

"वे ही काम कराने वाले हैं—इन्हें भी साथ करके!"

"हो सकता है, अण्णय्या महाराजजी भी साथ देंगे।"

"उन लोगों के कहने की तरह यह कोई खिलवाड़ नहीं, समझे, उनके कहने में कोई सार नहीं।"

"चार बड़े आदमी आगे बढ़ें तो गाँव-गाँव का उनके संग हो ले।

"उस हालत में हम टुकुर-टुकुर ताकते रह जाएँ तो फटकार न पड़े अपने ऊपर!"

"उसकी भी नौबत आवे, भला!"

"नहीं, नहीं। यह बाँध, नाला, झील गाँव ही के है तो हैं। अपना ही पुरुषार्थ! मेहनत लगे तो फ़िज़ूल मक्खियाँ मारने की जगह हम भी मिट्टी-खोदाई, खचिया-ढोवाई कर लें तो हर्ज क्या?"

"अपने भाई-भावज खेत पर जाने को तैयार हो जाएँ तो बीवी के साथ बंदा बाँध के काम पर जाने को हाज़िर।"

"देख लेना, वही होगा भी—घर पीछे दो-एक जने।"

"यह सब ठीक है, भाई; करीगौड़ मरीगौड़ दोनों मानें तब न ! हमारे चाहने-मानने से क्या होता है।"

"हटाओ भी ! यह कोई पार्टीबन्दी है ? गाँव का काम है। हम पसंद करें, तो उन्हें…।"

"ज़बान रोक ले, भाई ! ये मुखिया बने 'जनता यह चाहती है, यह नहीं' का अपना निर्णय सही-गलत सुना ही जाते हैं, अपना वश क्या चले ? भेड़-बकरी जो बने हैं।"

"यह ग़लत है। अपनी भी समझ है। ईश्वर की दी हुई ! अपनी ही बात भी है, गूँगे थोड़े हैं, वक्त आएगा तो मैं आड़े हाथों ले लूँ।"

"तेरी अलग पार्टी मानी जाएगी, तीसरी बाँधवाली पार्टी, समझे ?"

"बला से उसमें भी थोड़े-बहुत शामिल हो ही जाएँगे। ठिकाने से काम होता जाए तो धीरे-धीरे सब एक पार्टी के हो जाए गाँव की पार्टी, काम की पार्टी, ऊधमी पार्टी नहीं।"

"प्यारे मेरे, उतना हो जाए परमेसुर की दया से। पाँव की गंदगी धुल जाए। गाँव की भलाई होने लगे। बेफ़िक्र रह सकेंगे—ताकत भर खटेंगे, पेट भर खाने को मिल जाएगा, जी भर सोने को मिल जाएगा। बेकार की यह नोच-खसोट, छीना-झपटी, हौवा-हडकंप इन सबसे छुटकारा पा जाएँ और चैन की बंसी बजाने लग जाएँ।"

इस प्रकार आपस में भीड़ के लोग अलग-अलग अपने-अपने मनोभाव प्रदर्शित कर ही रहे थे कि 'जीप' वहाँ से सरक गई और लोग यही दिमाग में लिए बातें करते वहाँ से खिसक गए।

निर्वाणय्याजी और पुराणिकजी दोनों साथ लौट रहे थे। पुराणिकजी का पौरुष फट पड़ा, "बड़े अफ़सर क्या हो गए, अनाप-शनाप बके जाते हैं। क्या हुआ सर। अंततोगत्वा इंजीनियर ही न ठहरे। विद्या की गरिमा, अपनी संस्कृति, कला आदि की गंध कहाँ ! मिट्टी की ढुलाई ही न उनका हुनर है ? इसीलिए तो, मीठी-मीठी बातों में ही गहरी चोट लगाई ! आप जैसे अनुभवी इंजीनियर विजयनगर का विठ्ठल मंदिर सदृश शिल्प खड़ा करें तो जानूँ ? पीछे यह चुटकी ले ही ली कि वह इस समय संभव होगा या नहीं, पर मोटी खाल, बात क्या लगे ! ह्‌हा ! ह्‌हा ! ठीक किया न ?"

"ठीक है, आपने खूब रगेदा उन्हें। हम दोनों ने सरकार की धज्जियाँ ही उड़ा दीं ? उसके लिए उनके पास जवाब ही कहाँ रहा, मुँह पर ताला पड़

गया। बेकार की झंझट जो लाद दी सिर पर, वह सर्टिफिकेट, टिकट वगैरह ! संसार में मंदिर-निर्माण के बराबर बाँध, झील आदि की बनवाई की कोई सत्ता ही नहीं, अगर यह भी मान गये वे ?" निर्वाणय्या जी पुट मिलाते गए और बाँया हाथ बढ़ाकर बोले—"एक बटिका की कृपा हो जाए। इतनी देर से मन कुछ खोया-खोया-सा है। जो भी खा लो, जितना भी झोली में भर लो, देशी सुँघनी की एक वटिका के सामने फीका है, सर !"

● ● ●

:२०:

हिरियण्णाजी से विदा लेकर टोली बाहर निकली। सड़क पर आते ही भीमण्णा बोल उठा, "इधर क्या काम रह जाता है ! सरकार से मंजूरी मिलने तक प्रदर्शनी का आयोजन ही तो ?"

"मंजूरी मिलेगी ही। पर इस समय प्रदर्शनी ही मुख्य है। मेले के लिए छह ही दिन रह गए हैं। करने को वहुत पड़ा है !" गंगाधर गंभीर हो उठा।

"बंगलोर से प्रदर्शनी के लिए कहलाए सामान कल तक न आए, तो मैं खुद ही जाऊँगा।" वीरप्प तय कर चुका था।

"बाँध का नमूना तैयार करना है। कोई बढ़ई चाहिए। यह नमूना ठीक बन गया, तो प्रदर्शनी के बाद यह गौरी पर एक झोपड़ी में रखा जा सकेगा। देखने वालों का कूतूहल भी बढ़ेगा। उस पर नपाई की संख्या आदि रहने के कारण हमारा भी काम सरल हो जाएगा।" गंगाधर बोला।

"उधर ही से होते हुए मैं तुम्हारे यहाँ पुट्टाचारी को भिजवा दूँगा। उससे बातें कर लो।" भीमण्ण ने कहा, फिर वह बढई के घर गया।

इतने में मादप्पा आया। उसने अण्णाजी का संदेसा दिया, "गंगाधर भैया, मालकिनजी ने याद किया है।"

"अच्छी बात है, गंगाधर ! अब चला जाए। मैं घर-घर घूमते हुए मेज़ का भी जुगाड़ कर लूँ।" कह कर वीरप्प विदा हुआ।

"उन लौंड़ों ने छप्पर की फ़र्श का काम कहाँ तक किया होगा, यह भी देखते जाऊँगा। दोपहर में काम लगाया था।" कहते हुए गुंड रथ-पथ की ओर बढा।

गंगाधर आँगन में गया, तो वहाँ लड़कियाँ न दिखीं। अतिथियों को तांबूल दिया जाने लगा, तो फाटक पर खड़ी रही कुमारियाँ भागीरथी के कक्ष की ओर

बढ़ी थीं। वहीं से एक पुस्तक में पड़ा हुआ वह लिफाफा भागीरथी ने कैंट साहब के पास भिजवाया था। कैंट साहब के कक्ष से सिगरेट की खुशबू निकल रही थी। थोड़ा ही खुले पड़े दरवाज़े से उनके पट्टीदार पाजामेवाला पैरा पलंग पर दिखाई देता था।

आँगन में खंभे के सहारे बैठी नंजत्ते पास ही खड़े अण्णाजी से बातें कर रही थीं। थोड़ी दूर सामने ही जयलक्ष्म्माजी बैठी थीं। गंगाधर वहीं खड़ा रहा।

"अब तो भैया! कंठी की सरकारी नौकरी भी लग गई। उसकी योग्यता के अनुरूप वेतन-पद भले ही न माना जाय, पर कोई तीन कौड़ीवाली नहीं। कल-परसों ही हज़ार तक की बढ़ती हो ही जाएगी। पेट जैसे नहीं छिपाया जा सकता- उसी प्रकार योग्यता भी छिपी नहीं रहती। सही है न? मतलब, एक बात निश्चित हो गई। अब दूसरी रह जाती है। ब्याह, वह भी हो ही जाए तो। नौकरी पर उसके जाने के पहले ही ब्याह हो, यह मेरी आकांक्षा है। उसकी भी उम्र कम नहीं है। पढ़ा-लिखा है, तेज़ है, गुणसंपन्न है, सुलक्षण भी है। इस दशा में उसके लिए आतुरता से अपनी कन्याओं के साथ कई पिता हाथ जोड़े दरवाजे पर गिड़गिड़ाएँ तो आश्चर्य कैसा? उन्हें पैर की धूल बराबर ही समझ लो। बंगलोर में तो प्रतिदिन कुंडली लिए कोई-न-कोई आकर धरना दे ही जाता है। दहेज, ऊपर से चढ़ावे, कंठी को मोटे वेतन की नौकरी दिलाने का आश्वासन, धरती पर सुलभ समस्त प्रलोभनों को सुगम बनाने के संकेत—कितना कहती जाऊँ? कन्याएँ भी रंभा-उर्वशी सदृश रूपसियाँ, सती-सावित्री-सीता की भाँति गुण-संपदा से शोभित देखने में आई हैं। समधी बनने के लिए उत्सुक रहने वालों में सुकुल के, संपन्न, संभ्रांत आदि कई हैं। हाल ही में, यहाँ आने के दिन पहले डिप्टी कमिश्नर शामण्णा अपनी श्रीमती तथा सुकन्या के संग आए थे। कन्या क्या है, अनर्घ्य रत्न है! सुनो, मैं जो भी कहूँ, तुम मानोगे ही। चाहे वह सत्य हो या उसके विपरीत! बड़ी मिन्नतें कीं। पाँव पकड़ना ही शेष रह गया। मेरा भाव तनिक भी अनुकूल उन्हें भासित होता, तो उल्टे लौट जाते। कोई संदेह नहीं। यहाँ तक बाते आगे बढ़ गई हैं। हम तो मांडव्य गोत्र के हैं। इस गोत्र में उत्पन्न सपूत इंजीनियरी पास है, विलायत से विशेष योग्यता प्राप्त की है और दूसरी मोटी रकम की नौकरी पर लग चुका है। ऐसा वर कोई साधारण मान का नहीं। तुम्हीं सोच लो। यों तो ब्याह कहीं हो ही जाएगा। वर के फेर में बावरे बने भटकते कन्या वाले माँ-बाप के रहते, यह कोई बड़ी बात न होगी। इतने दबाव के रहते मैं टस-से-मस

न हुई। किसी से आज तक पक्की नहीं की। पूछ सकते हो क्यों। मैं यह प्रण कर चुकी हूँ कि बिरादरी के अपने जाने-सुने कुल से ही कुलवधू आ जाए। जो भी बाहरी आकर्षण रह जाए, अपने रिश्तेदारों से कट जाना ठीक नहीं जँचता। तुम्हारी राय क्या है ?"

"हूँ।" अण्णाजी का उत्तर निकला।

नंजत्ते को इसमें कोई उद्रेक लक्षित न हुआ। पर वे मैदान से नहीं हटीं। हटने वाली भी न रहीं। इन सबका लेखा-जोखा लगाए ही वे बंगलोर से प्रकाश-बाड़ी आई थीं। बात सहज ही छिड़ेगी, यही उनका अनुमान था। बड़ी प्रतीक्षा में धैर्य दिखाया था। योंही समय-समय पर इंगित भी करती भी गईं। अण्णाजी या जयलक्ष्म्माजी प्रसंग चला लें, इसके लिए वातावरण भी तैयार किया। लेकिन इन दोनों ने अवसर हाथ से निकल जाने दिया था। यह सच है कि उन्होंने कोई असहमति व्यक्त न की थी, पर साफ़ शब्दों में सहमति भी न सूचित की थी। इधर, बबुआ के बाहर जाने का वक्त आ ही पड़ा तो अपने को ठेस पहुँचने देना उन्हें अपमानजनक प्रतीत हुआ। बेचैनी बढ़ती गई। शिष्टाचार आदि ताक पर धर दिए।

"सुनो भैया, तुम कोई पराए नहीं। तुमसे दुराव-छिपाव काहे का ? पिता बन कर तुम गोद में खेलाओ या फूफी बन मैं सीने से लगा लूँ—कन्या के बारे में यही रीति चली आई है। अपनी भागू सयानी हो गयी है। कुछ हद तक पढ़ी-लिखी भी है। तुम्हारी यह इकलौती लाड़ली है। अपने निकट के परखे-पहचाने परिवार में पहुँचने पर सुखी रहने का भरोसा भी रहता है। जोड़ी देख आँखें जुड़ा लो, यह हाल है। दोनों वाकिंग पर निकलें या पासा खेलते रहें, तो नयन निहारते ही रह जाते हैं, भरते ही नहीं। कामदेव-रति के प्रतियोगी सदृश हैं। दोनों की जीवन में समान अभिरुचि, बड़ी ऊँची भी। व्यर्थ का जंजाल गले पहने गँवारों की तरह उछल-कूद मचानेवाली कोई ओछी प्रवृत्ति नहीं। दोनों शुक-शुकी की भाँति शोभा बढ़ाने वाले हैं। हम लोगों को इनके साथ रह जाने से पूरा परितोष भी हो सकता है। दोनों घर फिर से एक हो जाते हैं। भागू की फूफी की हैसियत से बातें अपनी ओर से ही चलाई हैं, समझे ? अभी वैसाख बीत चुका है। जेठ में भी लगनें पड़ती हैं। दोनों ओर से तुम्हीं यह शुभ कार्य संपन्न कर दो। उसे भी साथ ले जाएगा। दोनों सदा संतोषी-सुखी रहें। भागू के जन्म से ही हम सबकी यही महती कामना रही है न !" नंजत्ते ने कोई बात अस्पष्ट या अव्यक्त न रहने दी। पर उनकी आकृति से अनुकूल उत्तर सुनने की

आतुरता टपकती थी।

ये बातें सुनते-सुनते गंगाधर के दिल की धड़कन तेज़ हो उठी। उसका चेहरा फक् पड़ गया, आँखें फर्श पर बिछ गई थीं। क्षोभ ने उसके अंतस्तल को निर्मल न रहने दिया। इस आकस्मिक परिवर्तन का कारण वह न जान पाया। ब्याह भागरथी का हो, तो आह उसके अंदर से क्यों निकले? वह उसका हाथ थामना चाहता रहा हो, ऐसा भी न था। बात थी कि उसने अपने मन को इस ओर से मज़बूत नहीं बनाया था। वह अपने और उसके बीच के स्तर-भेद से परिचित न रहा हो, ऐसी भी बात न थी। उस प्रकार उसमें कोई भाव जगा हो, तो वह सहज ही उसकी उपेक्षा कर गया था, उसे फिर से पनपने का अवकाश न दिया था। विचार-व्यवहार दोनों दृष्टियों से उसमें उसके प्रति भ्रातृत्व भाव ही रहा। इतने पर भी उसमें ऊष्णता क्यों आई? मन में भी असाधारण तुमुल चल रहा था। अपनी बहिन-सरीखी कुमारी जो दूर हुई जा रही है, इस चिंता से? कुछ कहा नहीं जा सकता था। वह कैंट साहब की जीवनसहचरी जो होने जा रही है। इसमें दोष कैसा? वह भी कोई उतना बुरा नहीं। उसका स्वभाव अच्छा है, उसका रंग-ढंग भले ही पसंद न आया हो। पर, उसकी जमात वाले ही तो ज्यादा थे। हाँ, कॉलेज के अधिकांश सहपाठी इसी साधारण जीवन-आदर्श के आकांक्षी थे। यह कारण नहीं माना जा सकेगा। कैंट साहब उसके लिए अपात्र होंगे, यह धारणा उसके मन में न थी। तब इस उथल-पुथल का मूल कारण? अंतस् में यह कैसा आवेग? वह अपने भीतर की दो परस्पर विरोधी शक्तियों से संघर्ष का अनुभव करता जाता और कहीं कोने में घोर अभाव का आभास भी पा जाता। अस्पष्ट, अवर्णनीय आकांक्षा-पीड़ाएँ मिलजुल कर उसकी अनुभूति को आवृत किए हुए थीं, उसे जकड़ती जा रही थीं। मीठी नींद का सुख लूटने-वाला अचानक आँखें खोलने को विवश हो अजगर की कसावट से जो यंत्रणा भोगने लगता, यही हाल उसका भी हो उठा था।

"हूँ, अच्छा, देखा जाएगा।" अण्णाजी ने नंजत्ते से कहा। वे समर्थन-विरोध के फेर में ही न पड़े।

"भैया! कोई भी बात उठाई जाए, केवल 'देखा जाएगा' कहते न जाओ। कंठी के जाने में अब कम ही दिन रह गए हैं। इसी अवधि में ब्याह हो जाय तो···।" नंजत्ते ने आग्रह किया।

अण्णाजी की दृष्टि अनायास अपनी जीवन-संगिनी की ओर मुड़ी।

"तुम्हारा कहना सही है, भाभी! लेकिन आजकल हम अभिभावकों के

निर्णय से क्या होगा ? लड़का-लड़की एक दूसरे को पसंद करें, तभी न ! यही प्रमुख ठहरता है।" जयलक्ष्म्माजी ऊपर उठीं।

"कंठी को मना लेना अपने ऊपर रहने दो। और भागू उसे क्यों नहीं पसंद करेगी ? क्या वह कोई लूला, लँगड़ा या अंधा है ? उसकी बराबरी का दूसरा वर कहाँ ! पसंद करेगी, मानेगी क्यों नहीं। चाहे तो अभी बुला कर पूछ लिया जाए।"

"अच्छा, समय आने पर पूछा जाएगा। फिर कभी उसका मन जान लिया जाएगा।" जयलक्ष्म्माजी बिना रुके रसोई की ओर कदम बढ़ाते बोलीं, "चलो, गंगाधर ! घर ले जाने को कुछ मिठाई दे दूँ, इसी विचार से तुम्हें कहलाया था। पार्वती, तुम भी चली आओ।"

गंगाधर बिना बोले उनका पीछा करता गया, मानो सपने में चल रहा हो। नंजत्ते की ये बातें, "तुम मन दृढ़ कर लो तो कुछ हो सके। व्यर्थ ही साँड़ की तरह हुँ-हुँ न हो तो काम बने," उसे सुनाई दी। अण्णाजी 'हुं' कहते वहाँ से हटे, इसकी भी आहट उसके कानों में पड़ी।

"जलपान के लिए बनी चीज़ें कैसी रहीं ? सबने क्या कहा ?" जयलक्ष्म्माजी डिब्बे में नाश्ते के लिए बनी चीज़ें ठूँसते अपने स्वभाव के अनुसार पूछती गईं।

"क्या ?—अच्छी रहीं, मामी !" गंगाधर स्वयं को सँभाल कर कह गया।

"बस यही ?"

"सबने पेट भर खाया, मुँह खोल कर प्रशंसा की। निर्वाणय्याजी तो–।"

"यहाँ के लोगों की बात रहने दो।"

"सुब्बरावजी को विशेष रुचा। कहने लगे, फिर हलुआ अपना रसोइया तैयार करे, तो उसे बिगाड़ देता है। इतना नरम नहीं रहता। स्वाद भी नहीं रह पाता। यह मक्खन की तरह मुलायम है। घरवालों का ही बनाया हुआ है न ? आदमी इस परिवार के जितने मीठे हैं, उनके यहाँ की चीज़ों में भी वही मिठास है। एक से एक रुचिकर है !" गंगाधर ने कह सुनाया।

"परिश्रम व्यर्थ न गया, यही चाहिए था भी।" मामी में तृप्त दिखाई दीं, फूली न समाईं।

"पार्वती भी आ गई। जयलक्ष्म्माजी दोनों के हाथों में डिब्बे देती हुई बोलीं, "अच्छा तुम लोग जाओ। कितना परिश्रम पड़ गया तुम सबको ! अब घर जाकर निश्चिंतता से आराम कर लो। व्यर्थ की चिंता का कभी शिकार

न होना चाहिए।" और दोनों को विदा किया।

रास्ते में पार्वती प्रदर्शनी की चर्चा करती गई। गंगाधर 'हाँ-हाँ,' मात्र करता जा रहा था। उसके कदम आगे बढ़ रहे थे और मन पीछे भागता जा रहा था। आँगन में इस समय क्या होता रहा होगा ? भागीरथी कहलाई गई होगी, मामीजी ने बाद को देखने की बात जो कह दी थी ? भागीरथी ने पसंद किया होगा ? क्यों नहीं ? सभी बराबर ही तो रहा ? यानी ब्याह अविलंब हो जाएगा। कैंट साहब के साथ वह चल पड़ेगी। हाँ, साथ लिवा जाएँगे ही। जाने दो, अपने को क्या ? अथवा इस होनी को क्या वह रोक पाता ? ब्याह के बाद उसे साथ लिए—ना, वह किसी कारणवश न माने—किस कारण से ? कौन होगा वह कारण ? यदि—उसका मन आँगन में पहुँच कर झाँकने के लिए छटपटाता रहा। भागीरथी का रुख क्या रहा होगा, यही जिज्ञासा उसे बेधती जा रही थी।

"मेरी बातें सुनाई पड़ीं ?" पार्वती ने चेताया।

"हाँ, हाँ ! पोस्टर बीच में लटका दें। अगल-बगल प्रॉजेक्ट की फ़ोटो। बाद में शिल्पियों के चित्र और बाकी चिकारी। यही तो क्रम रहे।" गंगाधर बोला। वह अनमना जरूर था, किन्तु कान में पड़ी बातें याद रखता था। पार्वती के हाथ में लपेटा हुआ एक कागज़ देख उसने पूछा, "यह कैसा कागज़ है ?"

"भागीरथी से ले आई। कह रही थी कि नकल करने के लिए फुर्सत नहीं मिलती।"

"ओ—वह न जाने क्यों किनारा खींचे रह गई है ?"

"उसकी दृष्टि में वैयक्तिता व्यष्टि ही बड़ी है। अतः, समष्टि छोटी प्रतीत होती है।"

"तुम ठीक कह रही हो—पारी !" भागीरथी का ब्याह होगा कैंट साहब के साथ। बात चल रही है।" उसके मन की बात बाहर हो गई।

"इसमें आश्चर्य कैसा ? मुझे लगा कि बंगलोर से इसी उद्देश्य से दोनों आए हैं।"

"हो सकता है। मगर मुझे वह भान ही न हुआ। उसके लिए लायक ही हैं दोनों।"

"कैसे कहा जा सके ? यही रंग रहा तो दोनों एक राह के पथिक रहेंगे। सुखापेक्षिता सुगम व्यक्ति-जीवन की। भागीरथी को इसी से तृप्ति और सुख दोनों मिल भी जाएँ ?"

"तुम्हारा यह अनुमान है, पर मुझे तो ऐसा नहीं लग रहा है। वह इस समय न सही, आगे अवश्य बदल जाएगी। यदि वह इतनी दूरी तय कर चुकी हो कि लौट पड़ना सरल न हो सके, तो सुखी न रह पाएगी। यह मेरी अटल धारणा है।"

"यह कैसे कहा जा सकता है ? इसका निर्णय वह स्वयं कर ले। दूसरे का कोई वश नहीं। भली-भाँति समझ-बूझकर कदम बढ़ाती जाए।"

"उसके साथियों के नाते हमें भी उस सम्बन्ध में कुछ सोचना होगा कि नहीं ?"

'हम तो अपने स्व-विषयों को भी किनारे रखकर इस बड़े कार्य में प्रवृत्त हुए हैं।" कहती हुई पार्वती अपने घर के सामने ही ढेले से टकरा कर अस्थिर हुई। गंगाधर ने तुरंत अपना हाथ आड़ा कर उसे गिरने से रोकना चाहा। इस क्षण उसका वक्षस्थल गंगाधर के हाथ में लग गया, पार्वती को जैसे बिजली-सी लग गई। "उससे उस भाँति कह रही थी न ? व्यक्ति अपना विषय सहज ही भूल बैठेगा ?" पार्वती का मन उसके हृदय से सवाल करता गया। वह तेज़ी से घर की ओर मुड़ी।

"सच कह रही थी। इस क्षण स्व-विषय, स्वार्थी विषय इन दोनों के लिए कोई अवसर नहीं रह गया।" गंगाधर ने उक्ति याद दिलाई और पार्वती से विदा माँगी। मन का भारीपन कुछ कम हुआ। 'स्व-कार्य भुला देने के लिए सत्कार्य ही एक मात्र साधन कहते हुए वह भागीरथी का प्रकरण भी भुलाने का यत्न करने लगा। पर, वह जितनी कोशिश भुलाने की कर रहा था, उतनी ही क्षिप्रता से वह प्रकरण पीड़ा पहुँचाता ही रहा, यातना बढ़ती ही गई। घर के चौतरे पर बैठा पुट्टाचारी दृष्टिपथ में आया, तो उसकी दशा तनिक स्वस्थ हुई।

डिब्बा बच्चे के हाथ में देकर वह बाहरी कमरे में उकड़ूँ बैठ, लालटेन की रोशनी में, बड़े कागज़ पर रेखाएँ-संख्याएँ अंकित करता गया। उसने पुट्टाचारी को बाँध का नमूना-नक्शा देर तक समझाया। पुट्टाचारी ने अपनी जेब से नाटी पेंसिल निकाली। गंगाधर से कुछ पूछताछ लिया। अपनी समझ से थोड़ा हिसाब भी लगाया। फिर कागज़ पर कुछ निशान लगा लेने पर उसे मोड़ कर पास रख लिया।

"तुम भी साथ रहोगे न भैया ! कल सुबह से ही छप्पर में काम शुरू कर दूँगा।" कहते हुए पुट्टाचारी चलने को हुआ।

"हाँ, साथ काम में लग जाएँ। मैं भी थोड़ी-सी बढ़ईगीरी जानता हूँ। अपने कालेज में सीखी है।" हँसते हुए गंगाधर बोला।

"हाँ, हाँ! तुम्हारी बातों से ही समझ सका। मैं जहाँ अटक जाऊँ, वहाँ थोड़ा इशारा भर काफी होगा। मैं करता चला जाऊँगा। अरे भाई, यह काम नया जो पड़ता है।"

"सो सब ठीक है। तुम्हें लकड़ी, मज़दूरी ये सब……।"

"वह सब भीमण्ण के जिम्मे है। तुम परेशान न होओ। तुम लोग मिल-मिलाकर जो यह बड़ा काम करने निकले हो। तुम बड़ी परीक्षा पास करने के बाद भी नौकरी पर लात मार कर इस काम में जी-जान से लग गए हो। सारा क़िस्सा मालूम है। करो भाई, गाँव का हित हो। मिहनतकशों से मेरा अपार स्नेह और प्रेम है। मैं भी भरसक लगूँगा, अपने को धोखा न दूँगा। पेट पालने के लिए आधी मजूरी ही काफी हो जाएगी। भीमण्ण से भी यही कह रखा है।" बूढ़े की बातों में नम्रता थी, और आँखें गर्व से दीप्त हो उठी थीं।

"इस हालत में आप भी अपने ही होंगे, आचारीजी। मुसीबत के साथी! बड़ी खुशी है।" गंगाधर ने पुट्टाचारी का हाथ अपने हाथ में लिया। पुट्टाचारी के लिए यह हाथ मिलाना एकदम नया था। अब वह मज़दूर न रह कर मुसीबत का साथी हो गया था।

"कोई सत्कार्य संपन्न हो सके तो थोड़े से लोगों को व्यक्तिगत स्वार्थ का त्याग करना ही होगा।" गंगाधर ने दृढ़ता से निर्णय कर लिया।

"ठीक कहते हो भैया! त्याग के बिना कोई काम शुरू नहीं हो पाएगा?"

"अपनी कार्यपद्धति का संकेत भी यही लगता है।" गंगाधर ने पुट्टाचारी को सड़क तक पहुँचाया और घर लौटा। आँगन में शंकर पोस्टर मढ़ रहा था। पता नहीं चौखट की लकड़ी, कीलियाँ कहाँ से आ गई थीं। 'इसने भी अपना सहज सुख त्याग दिया है।' गंगाधर मन में कहता गया। सावित्री बच्चों के लिए बिस्तर लगा रही थी। इसे भी कष्ट भोगना पड़ा है। रसोई-घर से बच्चे बाहर आए। ये भी अनजाने वेदी पर चढ़ाए गए थे। उसी ने यह होने दिया है। अन्दर फटी साड़ी में अम्मा दिखाई दीं। लालटेन के पास वृहज्जातक खोले बैठे पिताजी भी एक प्रकार से बलि पर चढ़ाए गए थे। इन्हीं ईंटों से, जो कल ही पाये की मिट्टी से, लीपी-पुती सफेदी-रँगाई से ढकी जाकर विस्मृत हो जाने वाली होंगी, देश के सौंदर्य-शोभित सौध का निर्माण होना था। हाँ, उसी प्रकार गंगाधर को बाकी ईंटों का भी याद आ गई। हाय!

भागीरथी ही अकेली बाहर रह गई थी ! इधर कैंट साहब से ब्याह कर··· ना···ना···यह विचार ही अपचार है। गंगाधर भूलने की लाख कोशिशें करता जा रहा था। पर हर कोशिश के साथ बाँबी से बाहर फन काढ़ने वाले सर्प की भाँति वह अन्दर-ही-अन्दर से झाँकता रहा था। सो गया, पर बिस्तर पर भी इस बाधा से मुक्ति न मिली। दूसरे दिन वाले काम की पटिया उस पर उस बाँबी से खींचकर थोड़ा स्वस्थ हो पाया।

● ● ●

: २१ :

गंगाधर और साथियों ने प्रदर्शनी के आयोजन में दिन-रात एक कर दिए। लड़कियाँ-बालक सुबह से शाम तक छप्पर ही में रह जाते, तो नवयुवक रात देर तक वहीं बिता देते थे; सब बारी-बारी से खाने-पीने के लिए आया-जाया करते। छप्पर में सदा चहल-पहल मची रहती। फुर्तीली चाल, आवाज, हँसी धमकी, शाबाशी-इनके प्रभाव से इतनी जान भरी होती कि नाटकशाला, विवाहमंडप का वैभव भी इसके सामने साधारण प्रतीत होने लगता।

छप्पर के मध्य में सुवरन बाँध का नमूना रूप धारण करने लगा था। हरे रंगवाला मिट्टी का उठँगना, भूरे रंग की पत्थर-जोड़ाई, काले रंग के लौह-फाटके, बैंगनी रंग वाली ऊँची सड़क, दीपमाला, एक तरफ नीलम की लहराती झील, दूसरी तरफ़ रंग-बिरंगे उद्यान इन सबसे सुशोभित बाँध का दृश्य, धारा, नाले, अंकुरित खेत, आदर्श ग्राम आदि का महत्व गुंड को दर्शाते गंगाधर उनकी रचना में सबको दत्तचित्त बनाता जा रहा था। जगह-जगह आलपीन खोंसे गए थे। उन पर छोटी-छोटी झंडियाँ लगी रहीं। इन्हीं से प्रत्येक वस्तु का बोध हो जाता। बाँध की योजना के आँकड़े, इसके उठाने में आवश्यक कार्य-प्रणाली, कार्य-सिद्धि से संभावित उपयोगिताएँ आदि इनकी जानकारी कराने वाले बोर्ड भी बनते जा रहे थे।

बाँध के नमूने की एक फेरी लगाकर एक ओर से आए दर्शक दूसरी ओर से बाहर जा सकें, इसके लिए जगह बनाई गई थी। दूसरी तरफ़ प्रदर्शन-योग्य इतर वस्तुएँ अहाते भर में सजाए जाने लगी थीं। एक तरफ पंचवर्षीय योजना लागू होने के पहले रही देश-दशा की तुलना अन्य देशों की परिस्थिति से मिलान कर देख लेने का नक्शा था। इस दुरवस्था को दूर करने और जीवन-स्तर को तृप्तिदायक विधान से ऊँचा उठाने के लिए अनिवार्य साधनों पर

इस नक्शे में समर्थ संकेत अंकित मिलते थे। दूसरी तरफ पहली योजना के लागू होने के बाद की प्रगति और दूसरी योजना की संभावित समृद्धि सूचित होती थी। आगे बढ़ते दर्शक भावी सिंचाई, जलविद्युत्, रेलें, सड़कें, कारखाने, प्रयोगशालाएँ तथा अन्य अभिवृद्धि-कार्य में तत्पर उद्योग-संस्थान इन सबसे परिचित होते जाएँ, इस हेतु इनके कई चित्र टाँगे गए थे। बाद को दर्शकों को उद्‌बुद्ध करने योग्य एक बड़ा बोर्ड था, जिस पर "आपका कर्त्तव्य" अंकित था। इसके नीचे जनता से संभव सहयोग की रीतियाँ और इनसे उसे प्राप्त होनेवाली प्रत्यक्ष-परोक्ष सुविधाएँ भी चित्रित थीं। साथ ही जनता के द्वारा सहज ही तैयार हो सकने वाली वस्तुएँ, उनके दाम सहित प्रदर्शित की गई थीं। अन्त में शांति-संपन्नता की अवस्था में सिरजे शिल्प, चित्रकला, साहित्य, संगीत जैसी विद्या-कला के वैभव-सूचक फोटो, पोस्टर तथा पुस्तिकाएँ रखी गई थीं। प्रवेश-द्वार पर पर्चे बाँटने तथा दान-पेटी रखने का प्रबन्ध हुआ था।

लड़कियाँ फर्श पर अल्पना रच कर बीच में दीपाधार रख चुकी थीं। यह ज्ञान का प्रतीक बना रहा। भित्तियों पर खाली जगहों में बहुविध चित्र बनाए गए थे, जिनसे प्रदर्शनी का आकर्षण द्विगुणित हो उठा था। जनता के पथ-प्रदर्शन के लिए स्वयंसेवक एवं प्रदर्शित वस्तुओं की विशेषताएँ बताने वाले साथी प्रशिक्षण ग्रहण कर रहे थे। कितना उत्साह! कितना उन्माद!! तैयारी के काम में छप्पर वाली टोली की बाहर वाली से होड़ लग गई थी। बनारस कॉलेज के चार वार्षिकोत्सवों के अवसरों पर हुई इंजीनियरी नमूनों की प्रदर्शनी तथा कलाकुशल भूतपूर्व प्रिंसिपल किंग साहब की स्मृति में होती कला-प्रदर्शनी इन दोनों में भाग लेने वाले गंगाधर को इस क्षण बड़ी स्फूर्ति का अनुभव हो रहा था।

भागीरथी प्रदर्शनी आरम्भ होने के एक दिन पहले ही शाम को आई। गंगाधर उसे देखते ही मुस्कुरा कर चिल्ला उठा, "गुड्डी आ ही गई। पर दूसरे ही क्षण उसके ब्याह का स्मरण हो आते ही उसकी बुद्धि और उसके हाथ जवाब दे गए।

"मेरा अनुमान था कि तुम आओगी ही नहीं। कम-से-कम आज तो आ गई।" पार्वती विनोद-भरी तृप्ति व्यक्त करने लगी।

"हाँ, मैं भी यही सोचती थी।" पर जिज्ञासा ही ठहरी। तुम लोगों की करतूतें ज़रा देख आऊँ, यही जी करने लगा। बस चली आई हूँ।"

"अच्छा किया। देख लेना एक बार। सब ठीक लगेगा। हाँ, तुम्हारी भी कोई सलाह हो तो...?" कहती हुई पार्वती उसे साथ लिवा गई और दिखाने लगी।

भागीरथी देखती जाती।

"यह यहाँ रहे तो भला लगे न? इसे विशेष महत्व प्रदान हो जाए तो?" जैसी सलाहें देती जाती। धीरे-धीरे काम में भी लगती दिखाई पड़ी। सबसे मिलकर हास-परिहास करती गई। कई पोस्टर-चित्र उठाकर दूसरी जगह रखती गई। अल्पना में शोभावर्धक रेखाएँ बढ़ाने लगी। दीपाधार के समीप चित्रांकित कुंभ वर्त्तुलाकार में रखने की व्यवस्था स्वयं बनाई। रंग को दौड़ाई। दूकान से बंद प्लैस्टिक कारें-गाड़ियाँ मँगवाईं। उठँगने की ऊपरवाली सड़क पर ढंग से उन्हें रखती गई। गंगाधर काम करता भी जाता और योंही उसे देखता भी रहता। कभी प्रसन्नता होती, कभी पहेली बुझाने की सी गम्भीरता भी महसूस होती। वह निकलने को हुई, तो पार्वती के साथ वह भी उसे छोड़ने सड़क तक आया।

"बधाइयाँ।" गंगाधर बोल उठा। चेहरे पर मुसकान तो थी, पर सुनसान की फलक भी दिखाई पड़ जाती। उसे निजी अवस्था के इस असाधारण स्वरूप पर रीझ हो आई।

"किस बात की?" भागीरथी ने गम्भीर स्वर में पूछा।

"क्यों! तुम्हें न मालूम रहे?....कैंट साहब से तुम्हारा हथलेवा जो हो रहा।" पार्वती ने स्पष्ट कर दिया।

यह सुनते ही भागीरथी लाल हो गई। उसकी भवें तन गईं। वह बोली नहीं।

'सही है? पसंद किया तुमने?" पार्वती आग्रह से पूछने लगी।

"सही हो भी तो गलत क्या है? ठीक है। मैं नितांत शान्त परिवार, घर-बार, संतान, उपभोग-सामग्रियाँ आदि चाहती हूँ। कोलाहल-खटपट के लिए मेरा जन्म हुआ ही नहीं। इस दशा में यह उचित ही है। पसन्द आए तो मान भी लूँ।" भागीरथी गंगाधर से होते पार्वती पर दृष्टि फेरती उपेक्षा-भरी वाणी सुनाकर झट हट गई।

दोनों पल भर उसकी स्पष्टता से आहत हो खड़े रह गए और बिना कुछ बोले अहाते में लौट आए।

गंगाधर उन बातों पर ही मनन करता गया। उसे उसकी आवाज़ में

व्यंग्य का आभास हुआ-सा लगा। 'नितांत शांत परिवार·······' वह कल्पना करने लगा। बड़े ठाट का बंगला। बढ़िया बगीचा। शाम का समय। एक अफ़सर आराम-कुर्सी पर लेटा है। तभी दफ्तर से लौटा हुआ-सा। कार अभी गैरेज की सड़क पर है। बगल में उससे सट कर उसकी बीवी शौहर की गोदी पर ज़रा सरकी कुर्सी के हत्थे पर बैठी है। एक हाथ उसके कंधे पर लगाए दूसरा हाथ उसके सँवरे केश पर, उसके सीने पर के कमीज़ वाले 'बटन' पर फेर रही है। सामने ही छोटी सी मेजपर नौकर नाश्ते की तश्तरी और चाय रख गया है। आगे लॉन पर दो नन्हें बच्चे बड़ा भाई, छोटी बहन—खेल में मस्त हैं। आँखमिचौनी खेल रहे हैं। कभी-कभी खिलखिलाते हँसते इन दोनों पर आ गिरते हैं। ये भी हँसते हैं। खिड़की की तरफ से रेडियो के गीत सुनाई दे रहे हैं। ठंडी हवा चल रही है। पूर्णिमा का चन्द्रोदय होने लगा है।

"लालबाग की तरफ 'ड्राइव'—कार पर हवाखोरी—हो आया जाय? या यहीं आमोद-प्रमोद में बैठा जाय?" बीवी गाल से गाल लगाकर कानों में कह रही है।

"यह भी तो स्वर्गीय आनंद दे रहा है, प्रिये।" वह उसके दूसरे गाल पर धीरे से हाथ रखता है।

अफ़सर वही तो? वह बीवी·······भागीरथी होगी! उसकी बातों से यह इंगित मिला। अन्यथा यह निरा भ्रम है!

गंगाधर अहाते के फाटक पर आया था। सामने ही बाँध का नमूना उसकी राह देखने लगा था। यह भी कल्पना ही······एक से छुटकारा पाए बिना दूसरे की संभावानओं का कोई बोध नहीं हो पाता। किसे चिपकाए रखे, किसे हटा दे?

गंगाधर बाँध के काम में उतर पड़ा। धीरे-धीरे एक धुँधली छाया विलीन होती जा रही है। दूसरी ही बची रह गई है। पर, उस अंतिम रात के काम में क्षिप्रता बनी रही, काम भी पूरा हुआ। किन्तु कभी-कभी टकराहट हो ही जाती।

सदा की भाँति गंगाधरेश्वर के मेले में पास-पड़ोस के दस-पाँच गाँव से हज़ारों आदमी जमा हो गए थे। गतवर्ष करीगौडर तथा मरीगौडर की पार्टियों में रथ खींचने वाले प्रश्न पर बड़ी मारपीट हो गई। तो अदालत में फैसला हो गया था कि करीगौडर की पार्टी गंगाधरेश्वर का रथ खींचे और मरीगौडर की पार्टी वेंकटरमणस्वामीजी का। अतः करीगौडर के पार्टी वालों ने ही रथ

पहले खींचा। मरीगौडर के आदमी सूँघने को भी वहाँ न मिले। रथ वैष्णवों के पथ पर पहुँचा तो घरों के दरवाज़े सहज ही बंद मिले। बाहर से आए दर्शनार्थी कहीं चबूतरे पर बसेरा डाले, कहीं खाना खाये, रथ पर मंजरी खोंसते केले फेंकते, फूल-माला नारियल आदि का भोग चढाते। प्रसाद में बतासे, रेवड़ी, चुरमुरी फुटानी वग़ैरह पाते जाते। यों मेले की रस्म अदा की।

इस वर्ष की सबसे नई बात इस प्रदर्शनी की रही। मेले में बाहर से आए लोग तथा गाँव के निवासी छप्पर के 'लाउड स्पीकर' से निकलती ध्वनि से आकर्षित हो उठे थे। रंग-बिरंगी झंडियों की साज-सजावट उनका मन मोह लेती थी। लोग बड़ी दिलचस्पी लेने लगे थे। प्रदर्शनी देख आने की उनकी उत्कण्ठा तीव्र होती जाती। बड़े उत्साह से वे दल बाँधकर अहाते के अंदर आने लगे। मंदिर में भीड़भाड़ के कारण कइयों को प्रवेश ही न मिल पाया था। ऐसे लोग दूर से ही हाथ जोड़े अपना मन भर लेते थे। प्रदर्शनी में वे बड़े प्रसन्न हो आते-जाते, देखते जाते। सभी बातों की व्यवस्था से कोई असुविधा न हुई। पार्टीबंदी का भी कोई असर यहाँ न दिखा। हँसी-ठठ्ठा, हो-हल्ला करते लोग अंदर जाते। वहाँ की व्यवस्था, गोचर दृश्य, सुनी बातें, जगे उत्साह आदि से चेहरे पर छाई गंभीरता तथा मतलब की बातें निकालने की तत्परता से प्रेरित हो दर्शक बाहर निकलते रहते। फाटक पर ही रंग दानपेटी लिए खड़ा था। वह उसे झनझनाता रहा। लोग पेटी में कुछ-न-कुछ छोड़ते, कोई जेब से निकालता, कोई टेंट से, कोई कोई मनीबेग से, और कोई तमाखू की थैली से······।

"मैं क्या बतलाऊँ! अपने मुल्क में क्या हो-हवा रहा है, हम तो कुछ नहीं जान रहे थे। आपन मुल्क में का होत जात बा, एके हम जनतो न रही। सब कुछ क़ायसे रख गया है। नक़शे उठा-उठा कर बतलाए जा रहे हैं।"

"हमारा यह हाल! कैसी दुर्दशा! आएगा तुम्हारी समझ में? विलायत में कैसा खाया-पहना जाता, कैसे खेती होती, अनाज पैदा होता, चलना-फिरना, आराम से रहा जाता है—वैसे हम क्या जानें?"

"अपने देश में क़ाफी काम हो रहा है। सुना नहीं। हजारों-करोड़ों लगाए काम तेज़ी से चलाए जा रहे हैं। वह कित्ता बड़ा बाँध। वह क्या भाकरा-हिमालय के पास पंजाब में। पूरब में ईराकुड, दामोदर नदी पर बाँध। हरएक सौ-डेढ़ सौ करोड़ का न बताया?"

"नजदीक में तुंगभद्रा भी है, कन्नंबाड़ी से भी बड़ा"

"वे कारखाने, क्या बताएँ। इंजिन बनानेवाला,—हाँ,—चितरंजन! ताता

का भी कित्ता बड़ा-लोहा तैयार करनेवाला ! और भी बड़ा बनने वाला है, कह रहा था। बम्बई का मोटर, मद्रास में रेल के डिब्बे, बंगलोर में हवाई जहाज़, कान में सुनने की मशीन, इनके कारखाने। भाई, कहाँ तक गिनाएँ ! और भी क्या-क्या ईजाद करेंगे ! बड़े-बड़े स्कूल, देखते बनते हैं। हर एक महल सरीखा हैं। अंदर क्या है, भगवान जाने। उनकी बातों से लगता है सारा देश अँगड़ाई लेने लगा है।"

"आगे भी कितना और बढ़ानेवाले हैं ? तिगुना, चौगुना ! यहीं पास में कहीं नागार्जुन सागर। उसमें भी सौ करोड़ से ज्यादा लागत। इनसे न जाने कितने छोटे-छोटे काम होंगे, हिसाब ही नहीं ! ताता के परदादा सरीखे दो-चार और होनेवाले बताता था न ! इनके अलावा सिलमिट, शक्कर, तेल, खाद्य आदि के तो कारखाने देश भर में फैल गए हैं। घर-घर, गाँव-गाँव छोटे-मोटे काम करने के लिए मशीनें दे रहे हैं, उन्हें चलाना सिखा रहे हैं, क्या-क्या हो नहीं रहा है। बेकारी भी दूर, माल भी तैयार। लाश नोचनेवाली चीलों सरीखे हाल ही कहीं न रह जाएँ, यह हाल होने जा रहा है। यही चाल रही तो विलायत के मुल्कों से हम भी पीछे न रह जाएँगे। अपने बालबच्चे आराम से रहें।"

"इस वास्ते हमें भी कितना खटना पड़ेगा, भाई ! जितना भी किये जाओ, बाकी रह ही जाता है।"

'और क्या ? सुना नहीं ! हम आदमी भी कम हैं। इत्ता बड़ा देश ! कोई हँसी-खेल है ?"

"इस पर्चे में क्या छपा है, भाई ! घर पहुँचते पढ़वा कर सुन लेना चाहिए।"

"जो खटते बने खटे, पैसा भी जुटे। अपना फायदा ही तो है ! देखा नहीं, उस दरी का एक रुपया दाम। सूतवाली हो तो दो लग जाए। हम भी बुनें तो बाकी अपने पल्ले ही पड़े। करघे की कौन बड़ी बात—रक़म जो आने लग जाए तो !"

"वह भी रहने दो, चटाई नहीं बुन सकते ? खाली रहते घोड़ा, हाथी-जैसे खिलौने नहीं तैयार कर पाते ! छोटे बच्चे भी करके दिखा दें। हाथ कुछ रकम भी लगने लगे।"

"भाई ! मुझे तो बाँध का वह नमूना बड़ा पसंद आया। क्या ही खूब बनाया है ! वही बन जाए, तो गाँव की शोभा ही बढ़ जाए। ज़मीन की सिंचाई भी, गाँव के लिए पक्की सड़क भी। फसल भी बढ़ाओ, माल भी रवाना करो। फिर तो हमारी पूछ-ही-पूछ होने लग जाए। हम ही राजा बन बैठें। झील के

इस बगल में बगीचा भी उग आए तो बीवी-बच्चे को लेकर टहलने का मज़ा भी लूटो !"

"सब ठीक है। गाँव भी उसी ढंग का बनेगा, बंगलोर मैसूर सदृश शानदार।"

"क्यों नहीं ! हम मिलकर खून-पसीना एक कर दें, फिर देखो। यही तो जिच पैदा करनेवाली बात है। वहाँ लिखे ढंग से सब काम पर लग जाने को तैयार हैं ?"

"तैयार न हों, तो काम क्या बने ? मीठा फल चखना चाहो तो रोपाई सिंचाई भी तो हो भला ? वरना करेला चखो, काला मुँह बना लो।"

"कल बाँध का काम शुरू हो जाए तो मिट्टी ढोने पहुँचोगे ?"

"दस जने जाएँ, तो बंदा भी शरीक हो।"

दस जने कहते हो तो, कहाँ से आवेंगे वे ? आसमान से थोड़े ही टपक पड़ेंगे ? हम तुम ही तो उन दस जनों में रहेंगे ?"

"वही, वही सही।"

"यह सब इस बखत का राग है। घर पहुँचने पर सब भूल जाएँ। और अपनी राह पकड़ लें।"

"यह ठीक न होगा। भला-बुरा सब अपना ही तो ?"

"अपने देश के नए-पुराने नक्शे, इमारतें कितनी अच्छी हैं।"

"वही तो, हम सुधर जाएँ तो ये और कितने सुन्दर हो जाएँ ! वह शंकरप्प नहीं कह रहा था सब कुछ !"

प्रदर्शनी देख आए लोगों के मुँह से निकली ये उक्तियाँ कानों-कान फैलती गईं। आयोजकों को जनता की ऐसी अनुकूल प्रतिक्रियाएँ मालूम हुईं, तो वे भी बड़े तृप्त हो उठे, अपना परिश्रम सार्थक माना। उन्हें भविष्य बड़ा ही आशापूर्ण दिखाई देने लगा।

"देखा, इससे कितना बड़ा काम निकल आया। यदि सरकार ऐसी प्रदर्शनियों का आयोजन शहरों में ही जानकारों की जानकारी बढ़ाने हेतु न करे, अनपढ़ों की जानकारी के लिए देहातों में भी कर दिया करे तो कितना भला हो।" गुण्ड बोला।

"वह रेल की प्रदर्शनी आई थी न, बंगलोर गया था तो देखने को मिली थी। उसी ढंग पर बड़ी-बड़ी बसों में आयोजित प्रदर्शनी देहातों में दिखाई जाए तो कितना अच्छा रहेगा ! वीरप्प ने कहा।

मेला उठ चुका था, पर प्रदर्शनी में लोगों का ताँता लगा ही रहा। कुछ

लोग बार-बार देखने आते थे। सिद्दगौडर तीन दिन लगातार आए और बड़ी उत्सुकता से तरह-तरह की बातें पूछते ही जाते। हिरियण्णाजी भी दो दिन आए थे। जयलक्ष्म्माजी भी साथ थीं। इन दोनों को गंगाधर ही सब दिखाने ले गया। जयलक्ष्म्माजी का ध्यान गोचर दृश्य की अपेक्षा सूक्ष्म विचार-संकेतों की ओर अधिक था। बिना कोई बात ठीक समझे वे आगे बढ़ती ही न थीं। उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा, "बड़ा सुन्दर, गंगाधर! देखने-सुनने लायक है, भाई। यहाँ समूचा देश हस्तामलकवत् चित्रित हो उठा सा लगता है। अल्पना, दीपाधार, चित्रकला आदि के कारण भगवान् के मंदिर सी शोभा निखर उठी है। तुम लोगों का परिश्रम व्यर्थ न जाएगा।" जहाँ कहीं रुकतीं, स्वयं सेवकों को उत्साहित किए जातीं। उनके साथ ही कैंट साहब और नंजत्ते भी आई थीं। नंजत्ते ने अपना उपेक्षा-भरा उद्गार प्रकट किया, "दशहरे की प्रदर्शनी के सामने क्या है? जैसी-तैसी है।" कैंट साहब की कटु टीका शुरू हुई, "साधारण मात्र है। नयापन कहाँ! हाँ, यहाँ वालों की योग्यता के अनुरूप तो है ही। बस। स्टेट्स में नमूने इस ढंग से बनाए जाते हैं कि मशीनों की मदद से वे क्रियाशील रूप भी व्यक्त करते जाएँ। दर्शकों को वास्तविकता का-सा भ्रम होने लगता है। यहाँ तो झील में पानी भरना, धारा से पानी चढ़ाना, सब हाथ से ही करना होता है। झंझट का काम है। बखेड़ा मात्र। बाँध की योजना का तो मैं शुरू से विरोधी रहा हूँ। आजकल की इंजीनियरी कला इसे उपयोगी नहीं गिनती।"

उस दिन दान-पेटी में जमा रकम पार्वती देखने लगी, तो दंग रह गई। एक पूरा नंबरी नोट! उस के बारे में जिज्ञासा उठी तो रंग से उत्तर मिला "यह अण्णाजी ने छोड़ा है।" वह दस का नोट निकालते हुए बोला, "यह लक्ष्म-म्माजी का पड़ा है।" कहते वहाँ रहे अकेला सिक्का दिखाने लगा। गंगाधर ने मन में बड़ी सिकुडन-मरोड़ का अनुभव किया। पर धीरे-धीरे स्थिर हुआ। हर्ष-विषाद सम्मिलित सा भान हुआ। गर्व भी हो आया। प्रदर्शनी में अम्मा बच्चे को गोद में लिए ही आईं और आशीर्वाद देती हुई बोलीं; "कितना सुन्दर है बेटा! देखने के लिए भगवान् ने और भी आँखें दी होतीं! क्या यह सब देख-सुन लेने के बाद भी लोग अपना काम नहीं निभाएँगे? तुम्हारे सत्प्रयास की सफलता उस गंगाधरेश्वर की कृपा से निश्चित है।"

प्राइमरी स्कूल के हेडमास्टर नारायणप्पाजी अपने सहयोगी तथा शाल-बालकों के साथ आए और तत्परता से यह सब उन्हें दिखाया। बोले, "अपने लोगों को तथा इन बालकों को उत्तम शिक्षा की ऐसी व्यवस्था की सुख-सुविधाएँ

कहाँ मिलें ? भाई, देश की अधिकांश विशेषताएँ एक ही जगह उन्हें देखने को मिल गईं। जिसे सिखाने में साल भर लग जाता, वही अब दिन भर में सुलभ हो उठा। कई बालक तो अभी से बाँध ले चलने का आग्रह मुझसे करने लग गए हैं।" उनकी आकृति पर दिव्यता और स्वर में तृप्ति थी।

पुराणिकजी और निर्वाणय्याजी भी प्रदर्शनी में आए थे।

"विजयनगर के विट्ठल मंदिर की शिल्प-कला का अद्भुत कौशल आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो उठा है उसकी तुलना में ये जो बाकी चीजें रखी गईं, उनसे इनकी भला क्या समानता ? वह कहाँ, ये सब कहाँ ! बताइए तो सही ? अब समझ गए न ! इस प्रदर्शनी से उन्होंने इस अंतर का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत किया है न ? खैर, हथेली बढ़ाकर अपने खोटेपन का परिचय तो दे ही दिया। मेरी बातों पर आपको विश्वास ही नहीं हो रहा था।" निर्वाणय्याजी से प्रेम से कहते गए।

"सही है, आपकी बात सोलह आने सच निकली। जनता भी जान गई होगी। कितना कागज़, कितनी सिलमिट, बाकी अनेक चीजें भी तैयार की जा रही हैं। इसकी जानकारी भर करा देने से देहातियों को भला क्या लाभ पहुँचा ? इन सबकी आवश्यकता ही क्या थी ? कोई अनोखा समाचार तो है नहीं ! क्या इनसे अटल-अमर कीर्तिमान स्थापित होगा ? इनको देखने के बाद यही मेरी धारणा हो गई है, सर !" उत्तर में निर्वाणय्याजी निवेदन करते गए और सुँघनी की वटिका नाक में चढ़ा दी। सुँघनी लग गई तो ज़ोर की छींक आई, जिससे सारा छप्पर गूँज गया। शंकर पिताजी पर दबाव डालते उन्हें प्रदर्शनी दिखाने ले आया।

"इन खेलों से हम जैसों का कैसा संबंध।" कहते हुए वे साथ चले आए। सब कुछ देखा-दाखा।

"हाँ, कई बातें मालूम हो जाती हैं। इसमें कोई संदेह नहीं। पर क्या ये सारे काम नौकरी में रहते हुए नहीं किए जा सकते थे ? मंत्री महोदय, बड़े-बड़े अधिकारी आदि से प्रदर्शनियों का उद्घाटन तो होता ही रहता है। मुझे खीझ, क्रोध इसलिए हो आते हैं कि जेब भर मिलनेवाली रकम को छोड़ इन उलूल-जलूल कामों में क्यों फँसा रहा जाए ? बस !" घर पहुँचने पर उन्होंने पत्नी से कहा।

दान-पेटी में जमा रकम से प्रदर्शनी की वस्तुएँ यथास्थान पहुँचाने में खर्च करने के बाद भी थोड़ी सी बची ही।

"कॉलेज में प्रदर्शनी के संचालक महोदय प्रोफेसर लोग स्वयंसेवकों के लिए रकम से कोई पार्टी-वार्टी देते रहे ।" गंगाधर ने बात उठाई ।

"हम भी चार-छह रुपये लगाकर कोई साधारण···।" वीरप्प की सलाह हुई ।

"हरगिज नहीं । वह बड़ी पवित्र धनराशि है । उससे एक पाई भी न ली जाए । इसे बाँध सी निधि का मूल-स्रोत । पार्टी के लिए चार-छह रुपए मैं दे दूँगा ।" गुण्ड को उचित न लगा । पार्वती, भीमण्ण आदि कइयों ने उसका समर्थन किया ।

"यह न्यायोचित भी है पर यह धनराशि अपने लोगों के पास न रहे । ठीक हिसाब लगा कर किसी सज्जन के पास धरोहर के रूप में रख दी जाए । हाँ, उनकी नीयत पर किसी को भी कोई संदेह न रहे । आवश्यकता पर उनसे लेकर काम में लगाया जाए ' गंगाधर ने दिल की बात कही ।

"इस काम के लिए, हिरियण्णाजी उपयुक्त पात्र हैं ।" वीरप्प बोला ।

"पर वीरप्प की न जाने कितनी रकम लग गई होगी ।" जयन्ती बोली ।

"उसे वापस लेने का वक्त नहीं आया है, और न आएगा ही ।" हँसते हुए वीरप्प बोला ।

"हाँ और भी देते जाने का ही वक्त आने वाला है ।" गंगाधर भी हँसा ।

इसी क्षण से हिरियण्णाजी बाँध के खजांची माने जाने लगे । गुण्ड ने सबको एक पार्टी भी दी ।

प्रदर्शनी समाप्त हुई ही थी कि गंगाधर की सलाह से सदानंद का नाटक 'बूँद मिले लहराये' अभिनीत होने को था । गायनाचार्य और सदानंद दोनों ने कई लोकनाट्य कलाकारों को साथ करके दशावतार के अभिनय का प्रबंध किया । शाला-बालकों तथा गंगाधर की टोली के साथियों को भी मिला कर 'बूँद मिले लहराए' की तैयारी साथ ही चली ।

दशावतार देखने हेतु आपपास के गाँवों से स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, बच्चों को गोद लिए माताएँ आदि सहज ही किले वाले मैदान में इकट्ठा हो गए । गाँव के निवासी तो थे ही । साँझ से भोर तक ये लोग ज़मीन पर आँखें फाड़े, कान खोले पड़े रहे । अभिनय के अवसर पर भी तूफान मचाते रहते । दृश्य-परिवर्तन के समय तो हल्ला-गुल्ला, धक्कम-धुक्की ज़ारी ही हो जाती । शोरगुल कुछ कम न रहा ।

किले की दीवार से लग कर रंगमंच बना था । रंग-बिरंगे परदे, झंडियाँ,

फूलमालाएँ, गैस की बत्तियाँ, पार्श्व पर ही दिखाई-सुनाई नटों की तैयारी, इन सबसे रंगमंच सुशोभित हो उठा था। रंगभूमि प्रत्येक पात्र की नृत्य-भंगिमा से हिलडुल जा रही थी। शीतलामाई के मंदिर तक यहाँ के संवाद संगीत सुनाई पड़ जाते। परिहासपूर्ण प्रणय का प्रदर्शन, बिजली को भी लज्जित करने वाला रौद्र रव, धनुर्बाण का प्रकरण आदि से प्रेक्षक सहज ही विशेष प्रभावित हुए। दशावतार के बीच ही 'बूंद मिले लहराये' का प्रदर्शन भी हुआ। नाटक का वस्तु -वर्णन विन्यास इतना ही था—एक छोटा सा परिवार सरकार द्वारा चलाइ गई योजनाओं में कहाँ तक सहयोग प्रदान कर सकेगा। बड़े हृदयंगम रूप से इसका निरूपण हुआ था। उसमें परिवार को अपनी ही लझु योजना उमड़ आई थी। बड़ों से छोटों तक उत्साह, आस्था, कार्य-निष्ठा आदि का अभिनय हुआ था। साथ ही एक दूसरे परिवार का चित्रण भी व्यंग्यात्मक रूप से हुआ था। इस परिवार में आलस्य, निंदा-आक्षेप, झूठी वैभव-प्रतिष्ठा आदि ही उसके प्रधान लक्षण दिखाई पड़े। नाटक के दृश्य-परिवर्तन के बीच में रेकार्ड वगैरह नहीं बजाने पड़े। स्टेज पर माइक के सामने खड़ी होकर शामय्यंगारजी की रेडियो स्टार कन्या ने चार गीत सुनाए। गंगाधर के आग्रह और जयलक्ष्म्माजी के प्रोत्साहन पर भागीरथी ने दो बार वीणा बजाई। दर्शक-श्रोता इन्हीं क्षणों पर मौन रहे। रंगभूमि पर आई भागीरथी नाटक में तीव्र आसक्ति हो जाने से बच्चों के वेश-विन्यास, वर्ण-रंजन आदि की तैयारी में अन्त तक पार्वती को सहयोग देती वहीं रह गई।

मुँह अँधेरे लगभग चार बजे नाटक समाप्त हुआ। दर्शक धीरे-धीरे बातें करते छँट गए।

'मुद्दण्ण ने सीता की भूमिका खूब निभाई। तुम्हारा क्या विचार है? यौवनरश्मियों से प्रोद्भासित नवयुवती ही प्रतीत हो रहा था। मंच पर आते ही खूब थिरकता था, है न?"

"इसीलिए तो उसने केश नहीं कटवाए? उसे गाँव भर में मुद्दम्मा पुकारने का रहस्य भी तो यही है?"

"रावण के पात्र के लिए गंजी बसप्प के अलावा कोई दूसरा ठीक नहीं होगा, बापरे,! उसके पैरों की थाप से तो धरती ही कांप जाती है।"

"चिक्केगौंड रामजी की भूमिका ठीक से नहीं निभा सका। फीका कर दिया! वह नाचना भी तो नहीं जानता। सुना है, अपने पिताजी के ज़माने में लिंगेगौडर इसका निर्वाह खूब कर लेते थे।"

"अरे, यह तो पुराना, हर साल चलने वाला, नाटक है ही। वह दूसरा भी मज़ेदार था। नया नमूना।"

"वाह ! उस महीन मूँछवाले लड़के को देखो भला ! उसने तो कमाल ही कर दिया ! पढ़ाई के लिए वह गाँव से बाहर गया, उसका हाल कैसा ! पढ़-लिख कर लौटने पर उसका हाल क्या हो गया ! सब पर जादू की छड़ी ही घुमा दी।"

"उस अकेले की बहादुरी कहाँ ? सूत्रचालक कहो। बाकी भी साथ न देते, तो भला क्या हो सकता था ? मिलकर काम करने से वैसा बना, भैया ! यदि कुछ कार्य होना हो, तो यही एकमात्र तरीका है। उसी का इशारा किया गया था, समझे ?"

"हाँ, ठीक है ! कौन नहीं जानता इसे ? गंगाधरप्पा ने लड़के की भूमिका खूब अदा की।"

"गाँव में भी वही तो कर रहा है। बाँध उठाने को कमर कसे हैं, सहज ही स्वभाव हो गया है !"

"बाँध उठाना नाटक में अभिनय के समान आसान न होगा, भैया ! जरा सब्र कर ले। तमाशा दिखाई पड़ जाय। सब धम से बैठ जाएगा—वह भी एक ऊटक नाटक की तरह।"

"अबाध गति से चले क्यों नहीं ? अकेले हाथ तो एक लठिया की बोझ हो जाती है। सब साथ देने लगें, तो कोई भी काम पहाड़ क्यों लगे ? मैं तो भरोसा लगाए हूँ, भाई।"

"वही तो ! ठीक कह रहे हो। लोग साँस खींचते काम करने उठ खड़े हों, तभी न।"

"उसी मतलब से गाँव में यह सब चल रहा है। इस नाटक का उद्देश्य भी वही है।"

"हाँ, सही है ! गाँव भर में तो इसी का शोर सुनाई दे रहा है। इधर-उधर चली बातें सुनने से लगता है कि गाँव वाले एक-दूसरे की नुक्ताचीनी, शिकायत करना छोड़ दें, यही कहने लग गए हैं।"

"इस हालत में कुछ तो भला हो जायगा।"

"यह रहने दो। शानभोगजी का लड़का रंग—क्या खूब रंग दिखलाने लगा भाई ! काफी की रट लगाए रहने वाले बेचारे जीव, काफी को दूर से ही नमस्कार करने लग गए हैं ! रकम बचा कर सरकारी टिकट खरीदने लगे हैं।"

"बड़ा ताज्जुब है! ऐसा ही कोई करने लग जाए, तो एक का डेढ़ा हो जाए। बड़े-बड़े कामों में भी यही हाल बताया गया न। बूँद-बूँद सागर भरे.......।"

"वह स्त्री, गृहस्थी की भूमिका निभाने वाली! संतान की साँसत से रुखसत पाने के लिए बिस्तर ही बाहर उठा ले आई। बेचारा मालिक बुद्धू बना टुकुर-टुकुर ताकता ही रह गया।"

"इतनी ही संतान हो, ज्यादा का भला क्या ठिकाना है? हाय भगवान! यही तो आफ़त है, देखो। इधर घर भी बसाओ, उधर संतान भी रोक दी जाए! भला यह भी कोई तुक है?"

"गाँव भर की स्त्रियों में बड़ी कानाफूसी होने लग गई है, भाई!"

"तब तो अपनी मौत हुई जानो। सौ का साथ एक को देना ही पड़ेगा।"

गाँव वाले तो शुरू शुरू में काम पर न जाने का संकल्प कर चुके थे। चलते काम का विरोध भी किया और बड़े पिनकें रहे। पीछे से उन पर कौन-सा भूत सवार हो गया भाई...... !"

"और क्या! चार जने हँसे, तो खुद भी हँसने का मन करेगा ही। सौ आदमी पुकार मचाएँ तो अपना भी स्वर उसमें न मिलाएँगे? यही क्यों, चार आदमी 'लगाओ, लगाओ' चिल्ला उठें तो कारण वगैरह जाने बिना ही हम भी चार हाथ जमा लेने के बाद ही, मामले की तहकीकात में पड़ते हैं? दस के साथ ग्यारह, भीड़ के साथ बम-बम हर-हर महादेव! कन्नी काटे कब तक ताका करें। बाकी जान लड़ाते रहें, तो अनखाए कोने में पड़े रहना शर्म की बात न होगी? यही कारण है कि सब साथ देने लग गए।"

"पर भाई वह मालिक पंडितजी कुछ हिले-डुले भी? गुण्डप्प ने उसकी भूमिका कैसे ढंग से मसखरापन निभाते अदा की! हँसते-हँसते पेट में बल पड़ गए। अंत तक बेकार की सड़ी-गली चीजें ही बखानते रह गए। बाज़ार में वेदांत झाड़ते रहने वालों की तरह। ऐसे भी रहते हैं, भाई।"

"वह विधवा बुढ़िया अजीब ढंग की रही, भाई! खाने पीने की उन्हें कोई कमी थोड़ी ही—तिस पर भी बड़प्पन की शान जताने के लिए दूसरों के नाम गालियाँ निकालती रह जाए? भीमण्णा औरत का अभिनय मजे में कर लेता है जी! खूब जँच रहा था!"

"और ईरप्पा को नहीं देखा? सदा नाक पर ही उँगली धरे ललाट पर लिखा, ललाट पर लिखा मानते पत्री खोले फुसफुसाते रहने वालों की नकल लाजवाब की। कामधाम कुछ नहीं, पैर पसारे रह जाय भला! यह धरती पर

बड़ा भारी बोझ ही समझो !"

"वह कौन रहा भाई, जो ठेठ अंग्रेजनुमा टस-पस करता जा रहा ? ओठ पर से सिगार सरकाने का नाम ही नहीं लेता था। कहाँ-कहाँ के देश की बातें, अपना ही देश भुलाए। इसमें कौन हेठी, कौन ठाट ! सब खोखलापन ही तो है? दुनियाँ भर की बातें, रत्ती भर भी काम नहीं ! मूसे की तरह ससुराल घुसा पड़ा। बेचारे उसकी मर्जी रखते-रखते मरज के शिकार हो गए। दूसरों की कमाई खाओ और दुनियाँ पर हुक्म जताओ। ऐसे लोग गाँव के दुश्मन ही हैं, भाई !"

"कोई भला काम हाथ में लीजिए, तो पार्टीवंदी का नाम-निशान मिट जाए और चैन से रहा जाए। भाई बड़ी सफाई से दिखाया गया। अपने गाँव वाले इससे सबक सीख सकते हैं। करीगौडर और मरीगौडर को देखा, पहली कतार में किस तरह दोनों विपरीत दिशाओं में किनारे-ही-किनारे।"

"ठीक है। नाटक खेलें, तो बस इसी ढंग का। केवल भगवद्विषयक नाटकों की अपेक्षा हम नरप्राणी अपना जीवन सुधारने के लिए इनके द्वारा प्रयत्न करें तो जीवन की कितनी ही समस्याएँ सुलझाई जा सकें।"

ये सारी बातें दर्शकों के एक समुदाय की प्रतिक्रिया रहीं।

"भला लगा। नाटक यथार्थ जीवन का ही प्रतिबिम्ब था। आगे भी जो अभिनीत हुआ, उसकी सफलता भगवान् की कृपा से ही संभव हो उठे।" जयलक्ष्माजी ने कहा।

"यह प्रशंसा तुम्हें ही सोहे। सब लड़कपन का तमाशा है। मैं तो झपकी लेने लग गई थी।" नंजत्ते ने अपना हाले-दिल कहा।

"हाँ भाभी ! इतना शोरगुल होते हुए भी तुम तो खर्राटे भर रही थी।"

"चुप रहो जयलक्ष्मी। मैं खर्राटे-वर्राटे नहीं भर रही थी। बढ़ा-चढ़ा के न कहा करो। अगल-बगल न जाने कौन ऐसा कर रही हो। मैं तो समय-समय जगी ही रहती थी।"

"हो सकता है, और भी कई वहीं सो गए रहे हों।" मुस्कुराते जयलक्ष्माजी बोलीं।

"सोएँ क्यों नहीं ! बताओ भला प्रेत-पिशाच की तरह घूम-घूम कर नाचे और "हो हो" की आवाज़ उठाते रहें तो आँखें कब तक खुली रहने दें। बंगलोर में नाटकों का अभिनय देखने जाओ तो देर तक देखते रहने की इच्छा होती है। यहाँ कोई शालीनता-भद्रता भी है, भला !"

"दशावतार की बात रहने दें। नाटक ही वैसा है—बंगलोर में होने वाले अभिनयों की तरह....।"

"वही तो! यह भी कोई नाटक है अपने से बड़े, योग्यता-संपन्न व्यक्तियों का मखौल उड़ाएँ, उन पर छींटाकशी भी हो? यह कोई भली बात नहीं। लड़के ठहरे, इज्जत-लियाक़त कुछ न हो।" नंजत्ते ने खींच के दे मारा।

"बकने दें, बकने दें। उन्हें कौन सम्मान से देखे, भले आदमी कैसे मानें। गँवार ही तो ठहरे, नाटक भी उनकी योजना की भाँति दरिद्र ही रहा है। अम्मा, स्टेट्स में देखना नाटक-वाटक! सब कुछ टिपटाप। कितने भव्य प्रेक्षागृह! कैसे सोफे! अगल-बगल में कैसे चित्ताकर्षक चित्र, रोशनी! हर नाट्यशाला शीत-ताप-नियंत्रित कितने वैभवपूर्ण दृश्य, पोशाकें, परदे, संगीत भी! कैसा अभिनय! वाह! अभिनय तो अव्वल दर्जे का। मैंने वैसा अभिनय कहीं देखा ही नहीं, इंग्लैंड, यूरप में भी नहीं! इस देश का नाम ही न लो।" इन शब्दों में कैंट साहब की स्मृति चपल हो उठी।

"क्या करें, मुन्ना! बुढ़ापा अपने आप में एक रोग ही तो है, वरना क्या मैं वहाँ तुम्हारे साथ न हो आती?" कहते हुए, "अब बोलने से क्या होता है।" नंजत्ते ने लम्बी आह भरी, जो दूर तक सुनाई दे! फिर इन शब्दों में, "वह बात छोड़ो। भागू जो कल ऊँचे कुल में जाने वाली है, उसका उस तरह खुले में वीणा बजाने लगना। अन्दर ही उन लुच्चे-लफंगों के साथ रह जाना मुझे तो नहीं जँचा।" उन्होंने अनुपस्थित बहू की भर्त्सना की।

"ऐसी बात कुछ नहीं, भाभी! अन्दर के सबके सब अपने ही हैं। अविश्वास-योग्य कोई नहीं। वरना मैं स्वीकृति देने वाली थी? वीणा बजाना कोई कलंक तो नहीं? चार लोग सुन सकें, इसीलिए तो सीखा है? क्या रेडियो पर नहीं गातीं लड़कियाँ? जाने-माने लोग विराट संगीत आयोजनों में गाने लगी हैं।" माँ अपनी सन्तान की भर्त्सना न सह सकी।

"खूब! बड़े-बड़े शहरों के नागरिक कहाँ, जंगली गँवार ढोर कहाँ! दोनों एक माने जाएँ?"

"नागरिकता केवल ऊपरी चकाचौंध, तड़क-भड़क में नहीं रहने की। अन्तस्तल की गहराई में स्थित होती है। इस माने में गाँव वाले पिछड़े नहीं रह जाते।" जयलक्ष्माजी ने प्रतिवाद किया। नंजत्ते ने बातें और न बढ़ाईं।

इधर पुराणिकजी-निर्वाणय्याजी का अलग का विचार जारी था।

"दशावतार जैसे प्रकरणों में ही अपनी संस्कृति की गहरी छाप जनता पर

हुई मिलती है। साथ ही खेला गया दूसरा नाटक भी तो देखा आपने। नए-पुराने में फर्क यहीं साफ़ हो गया तो! उसमें रहा ही क्या? खाली मसखरापन, भड़ैतीं। बड़ा नीरस। सामाजिक नाटकों का यही हाल होता है जनाब! कोई तत्व नहीं, सार नहीं, दम नहीं। अच्छा, परिश्रम भी पड़ा, तो विजयनगर की स्थापना, पृथ्वीराज-संयोगिता, शिवाजी आदि से सम्बद्ध कोई ऐतिहासिक प्रसंग चुन लेते, तो देखना सार्थक होता। यह भी न सही, कोई दूसरा ही एक अवतार दिखा देते, कितना भला होता। इन सबको छोड़ यह कैसी बेहूदगी! उनका वर्ण, उनका वर्ण, उनकी वाणी, सब व्यर्थ अपना वक्त, अपना पैसा दोनों बेकार!" पुराणिकजी ने इन शब्दों में कड़ी आलोचना की।

"सुनिए सर! विष्णु भगवान को ही क़ितने अवतार लेने पड़े, इस छिद्र-युक्त गागररूपी संसार को दुरुस्त करने के लिए! तिस पर भी उसका छिद्र तो बंद न हुआ। यदि सौ अवतार और भी हो जाएँ तो इसका यही हाल रहेगा। इस दशा में, उसे ठीक करने की डींग, साधारण मानव, उनमें भी निरे बाल-बच्चे, हाँका करें! इससे अधिक उपहासास्पद और क्या हो सकेगा। मुझे तो हँसी ही आती है। संसार कोरी माया है, नश्वरता ही उसकी साँस है, बार-बार जन्मना और विलुप्त होना उसकी चाल है। दशावतार का-सा हाल है। इसके पीछे पागल हुए जाने में, रोना-धोना मचाने में निश्चय ही कोई सार नहीं निकलेगा। इसका नाश अवश्यंभावी है। इसके उद्धार की बात़ सोचना कुत्ते की दुम सीधी कर लाने का-सा प्रयास है। निरा अविवेक, कोरी भ्रांति है! गम्भीर होकर चुपचाप दुम दबाए बैठना ये भला कब उचित मानेंगे? इनकी अक्ल ठिकाने कब लगेगी, यही एक-मात्र चिंता सता रही है।" निर्वाणय्याजी उन पर तरस खाते हँस पड़े।

● ● ●

:२२:

दूसरे दिन सुबह गंगाधर बिस्तर से उठा, तो ग्यारह बज चुके थे। दातौन कर मुँह पोंछते आँगन से निकला, तो सुब्बादीक्षितजी की आवाज़ सुनकर ·क पड़ा।

"बेटा! गंगाधर! यह लो, कॉलेज से चिट्ठी!" पिताजी दरवाजे पर से पुकार, बेसुधबुध हो, अन्दर तेज़ कदम बढ़ाते आए। दाएँ हाथ के पंचमात्र से जल छलक उठा। काँपते बाएँ हाथ में एक खुला लिफाफा हिल रहा था।

"नौकरी के लिए शिफारिश करने वाले लगते हैं। ढाई सौ। लिखा है, भत्ता वगैरह मिलाकर कुल तीन सौ का वेतन हो जाएगा।" उमंग-भरी वाणी के प्रभाव से मुँह के कोरों से लार टपकने लगी थी। सदा ही राहुग्रस्त मुखाकृति पर उससे संभावित विमोचन की मोदयमता छा गई थी। लिफाफा और खत, दोनों गंगाधर के हाथ पर गिराए।

यह शुभ संवाद सुन घर के समस्त प्राणी आँगन में आ गए। अच्चम्भाजी रसोई के फाटक पर आ खड़ी हुईं। उनकी आँखें विशाल हो उठी थीं। अनजाने आनन पर गहरी लाली दौड़ गई। शंकर बाहर के कमरे से पिताजी के पीछे ही आया था। पालना झुलाती सावित्री बच्चे को गोदी में लिए ही आ पहुँची। आँगन में खेल रहे बच्चे भी जमा हो गए।

"शामण्णाजी के यहाँ श्राद्ध-भोज में जा रहा था...." दीक्षित जी ने शुरू किया, "डाकघर से निर्वाणय्याजी ने एक बटिया के लिए आवाज़ लगाई। वहाँ गया, डिबिया ही उनके हवाले कर दी। उसी क्षण डाकिया रामय्या ने यह लिफाफा दिया और कहा कि आपके चिरंजीव का है, बनारस से आया है। शुभ समाचार ही तो होना चाहिए, सोचा। निर्वाणय्याजी से उसे खोलने और पढ़ कर सुनाने को कहा। उन्होंने सारा विवरण बता दिया।" इतना सुना ज़रा साँस खीचते बोले, "पंजाब में जगहें हैं, माँग आई है। शीघ्रातिशीघ्र नाम सुझाने के लिए कॉलेज के नाम लिखा है।"

गंगाधर पत्र देखता ही रह गया। बाकी प्रतिमावत् हो उठे थे।

"निर्वाणय्याजी का सुझाव है कि यह सुनहला अवसर हाथ से न जाने पाए। तुरन्त स्वीकृति भेज दे। आपके लड़के को नहीं तो और किसको मिलने-वाली होगी?....पल भर के लिए भी पशोपेश में न पड़ते यहाँ के इस बाँध-बाँध के पागलपन से छुटकारा पा जाए। इसे तिलांजलि ही दे दे।...जो भी हो जान कर आदमी हैं, अनुभवी हैं....सबकी यही राय होगी। चिन्ता किस बात की?" दीक्षितजी ने वक्तव्य पूरा किया।

गंगाधर की आँखें पत्र पर ही लगी थीं। पिताजी की बातें सुनाई देतीं, पर दिल में घर नहीं कर पा रही थीं। इसकी सम्भावना उसे पहले से ही थी। कॉलेज की ओर से प्रतिवर्ष परीक्षा में सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित डिग्री-धारियों के लिए ऐसी व्यवस्था होती आई थी। जहाँ कहीं से भी माँगें आतीं उसने ढूँढ़ कॉलेज इन स्नातकों की सिफारिश करता रहता। इसका भी हल इसका भी हल निकाला था। तिस पर भी, इस घड़ी, वह अधीर हो उठा।

"बेटा ! जल्दी करो। आज ही आवेदन भेज दो, पंजाबवाली नौकरी के लिए। सरकारी नौकरी, पक्की जगह, जेब भर पैसे मिलें, तिस पर इज्जत-प्रतिष्ठा का काम, कोई झंझट नहीं। देर न लगे। हाथ से निकल न जाए। तुम्हारी राह तय हो गई, तो इस परिवार की दशा सुधरती जाए। यह सारा तुम्हारे ऊपर ही तो है....।" पिताजी का आग्रह हुआ। कोई मुँह न खुला।

इस क्षण गंगाधर इतना विचलित हो उठा था कि एक बोल भी मुँह से न फूटा। मौन रहा। बारी-बारी से सबको देखता गया।

अम्मा की आकृति का रंग-ढंग क्या है ? वहाँ गंगाधर को मिश्रित अनिश्चय का आभास हुआ। दीक्षित जी ने जो नया प्रस्ताव उठाया था, उस बावत आँखों में आई चमक गहरी उम्मीद जता रही थी। गंगाधर को लगा कि उनके बंद ओठ खुल पड़ते तो उनके द्वारा निःसृत वाणी का यही भाव होता कि "पिताजी की बातों में कोई खटकने वाली चीज़ कहाँ ! मान ली जाए, तो सब साथ ही निभ जाए।" साथ ही उसने स्वयं से प्रश्न किया—'अम्माजी इस घड़ी बाँध की साध भूल गई होंगी ?" सावित्री के माथे पर कोई बल-बल नहीं पड़ा था—'भैया जो भी अनुकूल निर्णय कर ले' का-सा भाव व्यंजित प्रतीत हुआ। शंकर के मुँह-कोर कसे हुए लगे। मानो सूचित कर रहे हों, 'पिताजी व्यर्थ का दवाव क्यों डालते जा रहे हैं ?' बेकार है। बाँध का काम गले पड़ गया है, तो उससे पीछे हटना क्योंकर संभव है ? यदि ऐसा हो जाए, तो गाँव में कैसे रहा जाएगा ? इतने पर भैया पलट थोड़े ही जाएगा ? यह उसका निजी विषय जो ठहरा। मैं रोड़े अटकाने वाला न रहूँगा।

परिस्थिति की गंभीरता इतनी तीव्र थी कि गंगाधर भीतर-ही-भीतर तिलमिला उठा। अंतस् का उद्वेलन तीव्र हो उठा, पर मुँह से बात न फूटी। ज्वालामुखी का लावा फूट पड़ने का मार्ग न देख अन्दर-ही-अन्दर घना होने लग गया था।

"भैया बड़े इंजीनियर बनेंगे।" अनुज वेंकटेश ने वातावरण का मौन भंग किया।

"वही, वही, बाँध उठाने के बाद—मैं भी वही बनूँगा।" उसका अग्रज सीताराम बोला।

"मैं भी।" सबसे छोटे ने कहा।

गंगाधर को जैसे बच्चों की इन बातों से ही गुत्थी सुलझाने का संकेत मिल गया। विना बोले ही वह बाहर निकल गया। बच्चे इधर-उधर हो गए। अम्मा

रसोई की ओर सरक गईं। आँगन में अकेले पिताजी ही रह गए। उन्हें लगा कि सबों ने मेरी उपेक्षा की है।

'हट, मेरे सुझाव की सुनी-अनसुनी ही कर दी। इस परिवार में कोई मुझे सहारा देने वाला नहीं है। ग्रहों के विपरीत होने का प्रमाण इससे बढ़कर क्या होगा।—जाने दो।' खीझ के मारे ये बातें मुँह से निकालते वे रसोई की ओर देखते हुए तेज़ आवाज़ से ही कहते गए, "तू कुछ ज़ोर लगा देती तो तेरा कौन मुँह उतर जाता? घर का कुलतिलक जो पैदा हुआ, उसकी सार्थकता ही क्या हुई! सपने जो देखा करती थी, अब भोग ले! अब क्या होगा—हवाएगा? हम ही बोदे ठहरे! अक्ल का ठेका तो उसी ने ले रखा है! कैसी चुप्पी साधे खड़ा रह गया?"

अम्मा भरी गगरी की तरह रह गईं। न तो ढुलकीं, न छलकीं। दीक्षित जी को लगा, मानो चूल्हे की आँच की प्रखरता ही जवाब देने वाली हो गई हो।

"अच्छी बात है! तुम लोगों को इससे कोई काम नहीं रह गया, तो मैं क्यों अपना सिर धुनता जाऊँ? उद्वेग की ज्वाला से विक्षिप्त-तप्त हो उठूँ? घरबार की झंझट से मैं क्यों परेशान होऊँ! जो चाहे कर लो, जैसे चाहो रह लो। मैं किसी पर बोझ न रहूँ। दम टूटने तक श्राद्ध बम्हनाई अन्न-वसन के लिए काफी हो जाएगी। समझे!" इस तरह पिताजी आपे से बाहर हो गए थे। आगे झल्लाहट से इतना और सुनाया, "इधर इस पंचपात्र में जल भर दे, आधे से ज्यादा छलक गया है।" और जल भरवा बाहर निकल गए।

चौतरे वाले कमरे में दोपहर को गंगाधर लेटा रहा। आँखें जल रही थीं। पर, झपकी न लगी। बनारस से जिस दिन घर लौटा था, उस समय भी असंतुलित मनोदशा से वह इसी प्रकार मुरझा गया था। आज यह दूसरी बार वह अधीर, अशांत और उद्विग्न हो उठा। अनेक प्रकार की चिंताएँ करवटें लेने लग गई थीं। बाँध उठाने के सिलसिले में कहीं से कोई ठोस आश्वासन न मिला था। जो इस सत्प्रयास का विरोधी न थे, इससे अपने को उदासीन भी न रखते थे, उनसे भी मौन के सिवा कोई दूसरा सहारा न मिला था। यह मौन भी बड़ा अर्थपूर्ण ही था। इस महान् कार्य का असाधारण दायित्व अकेले उसी को धर दबाता-दबोचता-सा लग रहा था। अन्यों के आश्वासन की याद भी भय बढ़ानेवाली हो उठी थी। 'कुछ-एक मुँहफटों की भाँति यह कोई खेलवाड़ है? अन्त में उपहास ही हाथ लगेगा?' जैसे सवाल भी सताते रहते थे। बाँध उठाने का निर्णय जितना दृढ़ बनता जाता, उतना ही वह कीचड़ में गाड़ी गई खूँटी के

समान अस्थिर ही रह जाता था। तीन सौ रुपये का वेतन एक अभावग्रस्त परिवार की स्थिति को सुधारने में कितना सहायक बने, इसकी कल्पना मात्र से वह स्वयं को घोर द्रोही मानने लगता। वह अपने विवेक पर ही सशंकित हो उठता था। यह एक सीधा-सादा रास्ता है। सभी इस पर चलना-चलाना पसंद करते हैं। भागीरथी भी यही चाहती है। इस पर बढ़ने से जीवन की कितनी ही जानी-अनजानी आकांक्षाए पूरी होने को पड़ी हैं। भले ही वह इस ओर से मन हटा चुका हो, फिर भी आकर्षण की गुरुता उसे बरबस खींच ही लेती थी। क्या ये आकर्षण मिट्टी में मिला दिएँ जाए ? केवल एक महान् कार्यसिद्धि के लिए ? या अपने आदर्श की संभावित पराजय-भावना से ? अथवा मृगमरीचिका के फेर में पड़ने से ? यदि सरकार से मंजूरी न मिली और प्रस्ताव ठुकरा दिया गया, तो काम स्वतः ठप हो जाएगा। इस दशा में जान बच जाएगी। शान में बट्टा लगाए बिना दस आदमियों की तरह स्वयं भी लीक पीटना शुरू कर देगा। इस प्रकार की कायरता भी न रही हो, यह भी नहीं। छिः, छिः, कितना कमीनापन ! भगवान्, भगवान्, यह खींचातानी बंद न हो सकेगी ? कब बंद होगी ? लाख साँसतें क्यों न पड़ जाएँ, काम शुरू हो भी या अपने से ठप हो जाए, बला से ! कोई फैसला न हो, तो कैसे सहा जाए ! अधर में लटकने की पीड़ा सही न जाएगी। गंगाधर पगले की तरह छत को घूरते हुए बड़बड़ाता गया। करवटें बदलीं। उसकी दशा उस योद्धा की तरह थी, जो लड़ाई की घोषणा हो जाने के बाद प्रतिपल मैदान में पिल पड़ने के लिए बेकाबू हो उठा हो, या उस कामातुर की-सी थी, जो जाल में चिड़िया फँसाने के बाद भी उसे पकड़ न पाया हो।

जैसे सागर-तट पर भाप उड़ जाती है, तो पानी बरसने के आसार मन में घर कर जाते हैं, वैसे ही तपस्वी की अनोखी कामना की सिद्धि में सहायता पहुँचाने वाली कोई अपूर्व शक्ति भी होगी। गंगाधर को तो इस समय जवाब मिल गया। खिड़की से गिराया गया लिफाफा ही वह जवाब था। गंगाधर ने उसे उलट-पुलट कर देखा। बंगलोर से एक्ज़िक्यूटिव इंजीनियर साहब सुब्बरावजी का भेजा था। फुर्ती से उसने लिफाफा फाड़ा, और पत्र निकाल कर पढ़ते-पढ़ते ज्वर उतरते समय की भाँति पसीना छूटने लगा। हाथ-पैर काँप रहे थे, पर जान में जान आ गई थी। समस्या का समाधान मिल गया था। गंगाधर ने दुबारा उसे ध्यान से पढ़ा। हल्की मुस्कान इधर-उधर रह-रह कर दौड़-सी गई।

"शंकर ! शंकर ! उठो भी । चार बज चुके हैं । लो, यह देखो तो सही !" शंकर को उसने जगाया । शंकर सकपका कर उठा, आँखें मलते हुए पत्र को पढ़ा । बड़ा भाई छोटे भाई की भंगिमा को ही परखता रहा । पर, उसका ध्यान अन्य दिशाओं में ही लीन था ।

"भैया, यही उम्मीद तो थी । पर इतना अनुकूल ।"

"वही तो ! बड़ा शुभ संकेत है ! पल भर पहले बुद्धू की भाँति मैं व्यर्थ की बातें सोचता पड़ा हुआ था ।" कहते हुए गंगाधर मुस्कुरा उठा । "चलो, अम्मा को सुनाया जाय, इधर खत लाओ तो ।" मगर गंगाधर ने पत्र ले लिया और कहा,—"ना, ना, मैं ही सुना दूँगा । तुम तुरंत गुण्ड, पार्वती, वीरप्प, भीमण्ण इन सबको संदेसा देते आओ···सुनो, शाम को गुण्ड के यहाँ मीटिंग होगी··· ६ बजे का वक्त भी बता देना···।

शंकर रवाना हो गया । खुला पत्र हाथ में लिए गंगाधर 'अम्मा ! अम्मा' पुकारता अंदर की ओर तेज़ी से बढ़ा । अम्मा पत्तल रच रही थीं । सहसा इसकी ओर आँखें उठाए देखने लगीं ।

"सुनो अम्मा, बाँध उठाने के लिए सरकार से मंजूरी मिल गई !······यहाँ जो इंजीनियर आए थे, वे खुद शिमोगा के सुपरिण्टेंडिंग इंजीनियर से मिले हैं। उनकी स्वीकृति लेने में कोई विशेष बाधा नहीं हुई है ।' कहते हुए गंगाधर माँ को पत्र का आशय बताता गया,—"बाद को और भी काम बटोर कर बंगलोर पहुँचे । चीफ़ इंजीनियर से मिले । सारा विवरण दिखाया-समझाया । यहाँ अंग्रेज़ी में लिखा है कि 'प्राजेक्ट तो मान गए, पर यह मानने को तैयार ही न हुए कि जनता ही कार्य सँभाल लेगी । आप पहले-पहल मेरे पास जब आए और तब जो अनुभव आपको हुआ था, वही हाल मेरा भी हो गया । आपकी युक्तियाँ, आश्वासन, दृष्टिकोण आदि को ही काम में लाना पड़ा ।····मैंने सारा किस्सा तुमसे कह रखा था न अम्मा ! इसके बाद का समाचार बड़ा मज़ेदार है । चीफ़ इंजीनियर साहब को क़तई विश्वास ही न हो पाया । उन्होंने तय कर लिया कि यह जिम्मेदारी अपने ऊपर न ली जाए । मंत्री महोदय से मिल लेना ही उत्तम होगा । साथ उन्होंने सुब्बरावजी को भी कर लिया और पी० डब्ल्यू० डी० के मंत्री बसप्प जी से मिलने गए । मंत्री जी ने सावधानी से सब सुन लेने के बाद कहा— 'यह बड़ा सराहनीय सत्प्रयास है । यह युग की जन-जागृति का प्रतीक है । जनता द्वारा होने वाले इन सत्प्रयासों को सरकार की ओर से प्रोत्साहन ही नहीं, आवश्यक सहायता भी मिलनी चाहिए । यही इस समय

लागू सामुदायिक योजनाओं का ध्येय भी है।' उन्होंने आगे चीफ़ इंजीनियर से यह भी बताया—'कार्य प्रणाली की जानकारी, यथासंभव विभागीय कर्मचारियों की सेवा की सुविधा आदि को सुलभ बनाया जा सकेगा। कार्य की प्रगति की देखदेख सरकारी इंजीनियर भी करते जाएँ। धनाभाव के कारण कार्य की गति मंद पड़ जाने की संभावना हो, तो सरकार थोड़े-बहुत द्रव्य की व्यवस्था भी करने का उपाय सोचेगी।'...हम कितने भाग्यशाली हैं, अम्मा! इतना ही नहीं, मैं क्या बताऊँ? अपने काम के लिए जरूरी ज़मीन पर कब्जा करने या और किसी भी तरह इस प्रयत्न में लगे कारीगरों अर्थात् हमें कोई अड़चन-रुकावट पैदा होने पर राजस्व तथा पुलिस विभाग के अधिकारी न्यायोचित रक्षा हमें प्रदान करें। इस आशय का आदेश डिप्टी कमिश्नर साहब के यहाँ निकलवाने-वाले हैं। दो-एक दिन में ही सरकारी आज्ञा की सूचनाएँ सबके पास पहुँच जाएँगी। अब समझीं, सरकार ही एक प्रकार से इस प्रयास का साथ देने लग गई है। हम अपना करते जाएँ तो सरकार हाथ समेटे नहीं रह जाएगी। इससे अधिक की आशा भी क्या रखी जा सके? मानती हो न अम्मा?'' ...उस दिन तुमने जो शक्कर बाँटी थी, वह इस समय सार्थक हुई जानो! अब अपना काम.... दूसरा अध्याय आरंभ होना है।'' गंगाधर अप्रतिहत उत्साहपूर्ण आवेग से कहता जा रहा था। सिर उठाए सुन रही अम्मा स्थिर प्रतिमा सी हो उठी थीं। सामने दीवार के सहारे खड़ी सावित्री हर्षित हो उसके प्रश्नसूचक कथन के अनुमोदन में सिर हिला रही थी।

गंगाधर ने बातें पूरी की थीं। अम्मा की ओर आशा-भरी दृष्टि फेरी। पर, उत्तर में अम्मा ने न कोई प्रशंसा व्यक्त की और न कोई सांत्वनाभरी वाणी ही सुनाई। इससे उसके उत्साहरूपी बुद्बुद् धक्का खा गए, पर फटे नहीं। अम्मा की दृष्टि उसकी ओर से हटकर शयनागार की ओर घूमी, तो वह भी उस ओर देखने लगा। पिता जी लेटे थे वहाँ। इससे अम्मा की मनोदशा का उसे भान हो आया। यही नहीं, परिस्थिति की गंभीरता ऐसी कि अम्मा के लिए चुपचाप सब कुछ सह लेने के सिवाय उत्साह प्रदर्शन कर सकना संभव न था। वह यह अनुभव कर चुका था। उनकी दृष्टि में कोई अतृप्ति नहीं रही, इतने से ही उसे संतोष कर लेना पड़ा।

"तो कॉलेज दरख्वास्त भेजने की बात सुबह कही थी न?" पिताजी के इस सवाल से गंगाधर की अनोखी चाल भूल गई, उसमें तेज़ फ़िसलन से लड़-खड़ाहट पैदा हो गई।

"पिताजी ! अब आपसे कोई बात छिपी नहीं रह गई है। बात वहुत आगे वढ़ गई है। अब पलटना कैसे संभव है ? कदापि नहीं । बाकी विषय, इसके पूर्ण होने तक पड़े ही रहें, यह उचित प्रतीत होता है।" गंगाधर ने तसल्ली दी।

"हाथ आई नौकरी वर्षों तक तेरी राह देखती रहेगी ? यहाँ वेतन क्या मिलेगा ? खाक़ ! यह सब जानने तूने ही अपने ऊपर यह सिल रख ली, इस परिवार पर भी चट्टान धर दी। मैंने तुझे कितना चेताया, कितना मना किया ! अब भी समय बाकी है। विवेकी न्यायसंगत आचरण से कभी भयभीत हो विमुख नहीं होता।"

"मेरी भी यही धारणा है, पिताजी ! काश ! अपना हृदय खोल कर आपको दिखा पाता !" गंगाधर ने कहा और मुँह फेरते हुए बाहर चला गया।

"इसे प्रारब्ध नहीं तो और क्या कहा जाय ?" पिताजी नाक पोंछते कक्ष से बाहर निकले और वेदनायुक्त स्वर में बोलने लगे, "किस तालाब में कूदें, किस कुएँ में गिरें, किस पेड़ से लटक जायँ जब लड़का ही पागल कुत्ते की तरह हो जाए ! यह अकेला देशोद्धारक ! घर-संहारक ! हाँ, ग्रहों की गड़बड़ी ही तो है, उसमें भी पंचम शनि कितना क्रूर हो सकता है, यह बिन भोगे कोई चारा नहीं। उसे दोष देने से क्या लाभ ? कल से ही नवग्रह जाप करना पड़ेगा। वही बचा हुआ रास्ता है। तिप्पाजोयिस ज्योतिषी से कह दूँगा।"

"यह क्या कह रहे हैं आप ? अकाल में खरवाँस की तरह, इस दुरवस्था में दान-दक्षिणा के लिए साधन कहाँ ?" अच्चम्माजी व्याकुल हो पूछने लगीं।

"साधन कहाँ ! कहीं से तो जुटाना ही होगा। लायक लड़का ही लंठ निकल जाय तो रही-सही ज़मीन का थोड़ा-सा हिस्सा भी बिक जाए, किसी तरह बला तो टले।"

"यह न कीजिए ! अपना वही एकमात्र आधार है—एक जून का पेट भरने के लिए माता गिड़गिड़ाने लगीं।

"यों ही ढील दी जाए तो यह पापी परिवार और रसातल में धँस जाए। वह पूरा-का-पूरा हाथ से निकल ही जाएगा, देख लेना। क्या इस दशा में हाथ समेटे ठाले में रहा जाय ? पुरुष-प्रयत्न भी न सोचे जायँ, ग्रहों को शांतिपाठ से अपने अनुकूल बना लेना जरूरी है। यदि वह अनुकूल हो जाए तो ज़मीन-जायदाद वना लेने में देर ही क्या लगती है।....तीन सौ का वेतन, प्रतिवर्ष बढ़ती भी होती जाएगी।"

"कोई ऊपरी खर्च न लगे, ऐसे सभी उपाय काम में लाए जाएँ। मैं मना करने वाली कहाँ! ज़मीन बेचबाच कर बच्चों को भूखों मार डालें, यह ठीक नहीं। घर-गिरस्ती के लिए आवश्यक वस्तुएँ भले ही पूरी न की जाएँ, पर जो भी उसे सँभालने के लिए पास है, उसे तो न छीन लें। मैं पैरों पड़ती हूँ।"

"हट, कहीं की। बेटे को फटकारना छोड़, मुझे ही डाँट बताने लग गई? खूब रही। तू मेरा हित देखने-वाली भी कभी रही, भला!"

"जीवन में मैंने कितनी कड़वी घूँट पी ली है, यह नर प्राणी नहीं साक्षात् भगवान् ही जानें। मैं उसे दुहरा कर किसी को दुखी नहीं बनाना चाहती। भूल से कोई बोल निकल पड़ा हो, तो क्षमा-याचना कर लूँगी। जीवन में यह पहली बार मुझे इतना बोलना पड़ गया। आप से नहीं तो और किससे अपनी राम-कहानी सुनाने जाऊँ?" अम्मा के आँसू पत्तल पर ही चू पड़े।

"मेरा सिर क्यों खाए जा रही है अब? अपने लाड़ले से दुखड़ा रो ले। चाहे वह दूध से नहलाए, चाहे पानी में डुबो दे।" गृहस्वामी ने अपना अंतिम निर्णय सुना ही दिया।

"अभी वह अबोध है। हमारी रीति-नीति से परिचित नहीं। कोई उमंग है। देश के कर्णधारों का जादू उस पर छा गया है। सही है या नहीं, यह मैं अनपढ़ क्या जानूँ। ओर-छोर का कोई पता नहीं। इतना अवश्य है कि यह कोई अनुचित नहीं। उसका चेहरा देख, उसकी बातें सुन मैं तो छाती पीटती रह जाती हूँ। कितना भार उठा रहा है। वेतन के लिए इतना कोई जतन न करेगा। यह सुध आते ही लगता है कि आज तक की भाँति यह साँसत थोड़े दिन और झेल ली जाय, तो कौन नुकसान होगा?"

"अबोध कहती है उसे? उसकी इस उम्र तक मैं दो संतानों का जनक हो गया था। उसका पक्ष समर्थन करती हो, तो भोग लो। मेरे सामने कोई रोना-धोना न मचाओ। समझ गई?" सुब्बादीक्षित मेलुकोट का उत्तरीय कसकर लपेटते हुए झल्लाहट के साथ बाहर निकल गए।

"रोओ न अम्मा! सब ठीक हो जाएगा। इससे अधिक हम सबको चाहिए ही क्या?" सावित्री अम्मा के पास आ बैठी और उनका बदन सहलाती बोली। इस वक्त तक बाकी बच्चों की बातें आँगन से सुनाई पड़ने लगीं तो अम्मा ने झट आँचल से आँसू पोंछ लिए। सावित्री की ठोड़ी धीरे से उठाई, उस पर स्नेह भरी दृष्टि स्थिर की और धीरे-धीरे मुस्कान उनके चेहरे पर खिचने लगी।

गंगाधर हिरियण्णाजी के यहाँ पहुँचा। चबूतरे पर अण्णाजी अखबार देखते

बैठे थे। उनके सामने पत्र बढ़ाकर स्वयं चबूतरे के किनारे बैठ गया। अण्णाजी ने अखबार रख दिया और ध्यान से पत्र पढ़ लिया। सिर हिलाया। पत्र लौटा दिया। इनसे गंगाधर कभी उक्तियों से प्रतिक्रिया की अपेक्षा नहीं करता था।

आँगन में ज्योतिषीजी की धर्मपत्नी सीतम्माजी के साथ जयलक्ष्म्माजी पापड़ बेल रही थीं। गंगाधर ने जयलक्ष्म्माजी के सामने, अम्माजी को सुनाते समय की तत्परता से ही, सारा विवरण पेश किया।

"मैं तो संदेह में रही ही नहीं। भविष्य में गाँव के सामने बड़ी कठिन परीक्षा है। आपत्तियों का पहाड़ ही है। पर राजाराम की कृपादृष्टि हो जाए, तो कोई कार्य दूभर नहीं। समझे।" उन्होंने भगवान् की मढ़ी तस्वीर की ओर इशारा करते हुए कहा और थोड़ी देर आँखें बन्द कर लीं।

"मुझे तरस हो आती है तुम लोगों पर! कल-भोर निकले तो भ्रम खुल जाए। यहाँ की जनता की जवाबदेही किससे छिपी है? सभी तरह-तरह की माँगें पेश करनेवाले ही होंगे, मैदान में कूद पड़नेवाला कोई नही? कोई काम-धाम में जान खपाए तो खोए-खोए ताका करेंगे। अपने गले पड़ जाए तो चुप-चाप खिसक जाएँगे। इन लोगों का यह स्वभाव कोई नया थोड़ ही है? यह बड़ा ही अहमक है; कोई भी परीक्षा पास कर लेने से क्या हुआ? दूसरों की बातों पर कान नहीं देता। बेकार की मुसीबत मोल लेकर उछलकूद में समय नष्ट करता जा रहा है। विवेक से कोई नौकरी-चाकरी…।" पास ही खम्भे के सहारे खड़ी नंजत्त पुराना राग अलापने लगीं।

"ननद! तुम्हें भी दो-चार बटिकाएँ दूँ। बेलने के लिए?" जयलक्ष्म्माजी ने प्रसंग बदलने के इरादे से कहा।

"राम कहो! आदत छूट जो गई, मैं बेलना ही भूल गई हूँ। बंगलोर में यह कोई झमेला ही नहीं। कोई पचड़ा ही नहीं बेलने-ब्रालने का, समझीं। पापड़, नमकीन भुनेदाने, भरे मिर्चे, गोलियाँ ये सब दरवाजे पर ही बिकते हैं। अम्मामी महिलाएँ ही बेचने लाती हैं। और उनका स्वाद क्या बताऊँ? साबू-दाने के पापड़ धोबी के धुले कपड़ों की तरह शुभ्र होते हैं। तल दो तो आँखें चौंधिया जाएँ। उड़द का पापड़ घी में पड़ते ही हाथ भर चौड़ा हो जाए, कुलथी का पापड़ हाँ, एक से एक बढ़ कर।"

गंगाधर मौका देखकर वहाँ से चंपत हो गया—जयलक्ष्म्माजी को मन-ही-मन अभिवन्दन करते।

"नंजम्माजी, इस लड़के की शादी हो जाए, तो यह सारी सनक हवा हो

जाए, यही दवा सी लगती है ।" गंगाधर के जाने के बाद सीतम्माजी बोल उठीं ।

"शादी, और वह भी इसकी ? क्या कह रही हैं ? बड़ा दिमागचट है ! कभी बेड़ा पार न लगेगा, तय मानिए । इसके हाथ लड़की सौंपनेवाले धूल फाँकने को लाचार हो जाएँ । कायदे का होता, तो कन्यापक्ष वाले आगा पीछा देखेभाले बिना आगे बात बढ़ाने का साहस भी करते । भला-यहाँ हनुमानजी की पूँछ-सरीखे परिवार में यही तो जेठ है । जितना भी प्रबन्ध किया जाए कम ही पड़ेगा । तिस पर निपट निठल्लुओं का खानदान मायके में सुख से पाली गई वधू ससुराल में किस प्रकार साँस लेने लायक रह सकेगी ? माता-पिता का हाल क्या होगा, मन कैसे करेगा ? आप ही सोचें । एक तो वर्षा तिस पर कीचड़, झक्की भी तो है । कैसा बेमेल हाल है ?" कहती हुई नंजत्ते मामी को देखकर कहकहा मारने लगीं ।

"किसके भाग्य में क्या बदा है, कौन जाने ? दिखाई कुछ और देता है, होता है कुछ और । कितनी जगहों पर यह लक्षित नहीं हो रहा है ?" जयलक्ष्माजी ने बड़ी सावधानी से पूरा किया ।

मेम साहब भागीरथी ठेठ अमरीकी वेशधारी कैंट साहब के संग टहलने गई थी । मादण्ण छाता, लालटेन लिये पीछे-पीछे हो लिया था ।

"तो बाँध कब तक उठ जाएगा ? हफ्ते भर में या पखवारे में ?" गंगाधर से विवरण सुनने पर भागीरथी हँसती हुई पूछ बैठी ।

"तुम भी साथ दो, तो तीन ही दिन में···।" गंगाधर भी हँसा ।

"आप सब साथी हैं तो । वह काफी है ।"

"और क्या, थोड़े ही दिनों में हम दोनों डैम पर बिछी सड़क पर हवाखोरी के लिए जा सकेंगे ।" कैंट साहब भागीरथी की ओर मुस्कराते देख आगे कहने लगे, "भागीरथी, असल में इस मामूली काम के लिए कितने दिन लगेंगे समझ रखा है—स्टेट्स में ? बुलडोज़र चलाया तो पल भर में सब कुछ सपाट हो जाए । शावेल दौड़ाया, मिट्टी के ढेर लगा दिए । 'शीप फुट रोलर' से मिट्टी पलक झपकाने के पहले ही जमा दी जाए । 'बैचिंग प्लैंट' मँगवा काँक्रीट मिलाया, 'रोप वे' या ट्राली पर से 'स्पिल वे' में दिया । बस सब निपटा दिया । यह हंगामा, शोर शराबा कुछ नहीं । सब काम एक मिस्त्री की देखभाल में चल जाता है ।"

कैंट साहब तड़ातड़ सुनाते गए । भागीरथी भौंचक्की हो सुनती रह गई ।

"अपना देश गरीब है, जनाब ! आधा पेट खा खाली हाथ वाले ही अपनी

पूँजी हैं। वही अपना यन्त्र भी, तन्त्र भी। मिस्त्री से इंजीनियर होशियार हो रहे, यह भी कोई नियम नहीं। पुराना रोगी नए वैद्य से बड़ा अनुभवी होता है। धीरे-धीरे काम होने दीजिए, सर ! हवाखोरी के लिए बाँध उठने तक क्यों राह देखी जाए ? उठँगने के लिए मिट्टी पड़ती जाए, तभी आप उस पर टहल लीजिए न ! उसके बैठ जाने में थोड़ी-बहुत मदद आपकी ओर मिल ही जाएगी। बाँध उठाने में आपकी ओर से सेवा भी हो जाए।" गंगाधर भी हँसते हुए बोला।

सब सड़क पर आ चुके थे।

"तुम्हारे कई एक 'प्रेस्सिंग एंगेजमेंट्स" बड़े जरूरी काम—इस वक्त न हों, तो हम लोगों के साथ आने की कृपा करो।" भागीरथी ने आमंत्रित किया।

"यही सवाल मैं तुमसे करना चाहता था। अपने सारे साथी अभी जमा होने वाले हैं। इन सब बातों पर विचार-विनिमय होगा, आगे का कार्यक्रम निश्चित होगा। आप भी आइए न, सर ! बड़ी सहायता मिलेगी।" गंगाधर ने कहा। उसने कैंट साहब को भी आमन्त्रित किया।

"अनेकानेक धन्यवाद ! ऐसा पुण्यकार्य इस बंदे के भाग्य में लिखा ही न गया, हम जैसे पापियों के लिए ! उससे कोसों दूर रहेंगे—तेजी से कदम आगे बढ़ा लेंगे। ताज़ी हवा की जरूरत है, सिरदर्द दूर करने चले हैं।" कहती हुई भागीरथी बिदा हो गई।

"डिटो।" कहते हुए कैंट साहब भी कदम मिलाए आगे बढ़े।

●●●

:२३:

छह बजे हुई युवकों की मीटिंग में बड़ा कोलाहल-सा मच गया। खत के विवरण जानने पर युद्ध जीतने-जैसा उत्साह फैल गया।

"अब अपना काम शुरू कर सकते हैं न?" पार्वती आतुर हो उठी।

"कोई शुभ दिन, साइत वगैरह तय करा लें—तिप्पाजोयिस ज्योतिषीजी की सलाह ले ली जाए।" वीरप्प विचार करते हुए बोला।

"शुभ कार्य से लिए प्रतिपल भला होता है।" गंगाधर बोल पड़ा।

"तो और क्या चाहिए।" भीमण्ण ने बगल में बैठे गुण्ड की पीठ पर जोर से हाथ दे मारा।

"बाप रे। मर गए !" गुण्ड चीख उठा।

"हट, इस वक्त अमंगलसूचक शब्द मुँह से न निकाल !" भीमण्ण ने धमकाया। गुण्ड को बाँहों में कसकर हड्डियाँ जकड़ी न रहें, इस विचार से उन पर हाथ फेरा।

"मंगल-अमंगल बातों से सब कुछ हो जाय, तो अब तक न जाने क्या-क्या हो गया होता। परिश्रम के बिना वैसा कुछ भी होने-हवाने का नहीं।" पार्वती गंगाधर की ओर देखती बोली।

"जो भी हो, गाँव की प्रथा का पालन कर लें, तो नुकसान ही क्या ? अकेले यह हमीं लोगों का काम है भी नहीं। गाँव वालों को अपने साथ कर लेना होगा। यह नहीं हुआ, वह नहीं हुआ का षटराग क्यों अलापने दें ?"

"वीरप्प सही कह रहा है। सिद्धांत के विपरीत न हुआ, तो प्रथा-पालन में हानि कैसी ?" रेवती ने मनाया।

"सही बात है, वही हो। लेकिन एक बात याद रहे, वीरप्प ! सुनो, रेखा खींचनी है, खूँटियाँ गाड़नी हैं, चौरस का निशान बनाना है। इन कामों में चार-छह दिन लगेंगे ही। बाद को पूजन का अवसर आएगा। सो इसी के आसपास कोई मुहूर्त ठहरवा देना।" गंगाधर ने सुझाया।

"इसमें क्या धरा है, तिप्पाजोयिस ज्योतिषीजी का पंचांग उनका इशारा देखकर चलेगा।" चढ़ावा और कपूर की आरती उतारने का जिम्मा वीरप्प और मुझ पर।" गुण्ड ने पूरा किया।

"और नींव का पत्थर रखना ?" अंजली ने पूछा।

"इसके लिए मंत्री महोदय बसप्पाजी से ही प्रार्थना की जाए तो ठीक होगा। गाँव वालों पर गहरी धाक जमेगी।" कवि सदानंद ने सुझाया।

"मंत्रीजी से अपना तो काम सरल होने वाला है ही, इसमें कोई संदेह नहीं। पर इन बहानों से उन पर दबाव डाल कर जनता तथा उनका भी समय बरबाद करना जँचता नहीं। यह प्रस्ताव उनको भी न रुचे।" रेवती को सूचना अमान्य हो गई।

"ठीक कह रही है। माला, गुलदस्ता तथा चाय-पार्टी के मंत्री वे नहीं लगते।" गंगाधर का मत था।

"यदि आमंत्रित किया भी तो व्यय-राशि कहाँ से आवे ?" वीरप्प ने सवाल उठाया।

"यही तो, 'नाक से बेसर ही भारी' वाली बात हो जाती है। बाँध में आने-वाले व्यय की अपेक्षा नींव डालने का खर्च ही बढ़ जाए।" ज़मींदार

रुद्रप्पाजी की कन्या नागव्वा बोली।

'यही तो कई जगहों पर हो भी रहा है। अस्पताल में एक नया वार्ड बढ़ाना है, गाँव में कुआँ खोदवाना है, तो शिलान्यास-समारोह जरूर हो! दोहरा समारंभ आयोजित करना पड़े तो कितना व्यय लगेगा, अनुमान कर लीजिए न। तवे से मोटे सूजी के गुँथे आवरण में कागज़ सा पतला हाथ का किस्सा है।" गुण्ड ने आपत्ति उठाई।

"बाप रे अखबार में आया था। देश भर में न जाने कितनी ही जगहों पर शिलान्यास हो गए हैं। पर असल बात यह है कि आगे का कोई काम नहीं हुआ। चारो ओर कब्रगाह की सी शक्ल दिखाई देने लगी है। भवनों के उद्घाटन-समारोह की जगह शिलान्यास के पत्थर उखड़वाने की नौबत आ पहुँची है। इसके लिए नए मंत्रियों की नियुक्ति का सवाल सिर पर सवार हो गया है। भई खूब!' इस पर भीमण्ण के साथ सब हँस पड़े।

"खर्च सहा भी जाए तो फिर भाषणों की कीमत भी चुकानी ही होगी।" कोदंडरामरोडी का अनुज वेंकटाचलपति ने सुनाया।

"यह सब रहने दीजिए। इस पर अभी से ज़बानी जमाखर्च की जरूरत ही क्या?" पार्वती ने बात को इधर-उधर बढ़ने से रोका।

"पी० डब्ल्यू० डी० को सूचना दी ही जाएगी। तारीख मालूम हो जाने पर विभाग की ओर से कोई न कोई आएगा ही। इससे प्रभावित हो और भी कई सरकारी आदमी आएँ, तो आ जाएँ। विशेष निमंत्रण की आवश्यकता नहीं रह जाएगी।" गंगाधर ने पार्वती का समर्थन किया।

"ठीक कह रहे हैं आप लोग। शुरू के दिन कितने लोग काम पर जाने को तैयार हों या कोई गोलमाल हो जाए—बाहरियों को निमंत्रित कर सामुद्रिक के सामने मुद्राभंग हो जाने की हालत पैदा न हो, इसका भी विचार कर लेना होगा। इससे मैं अधीर नहीं होने का। धीरे-धीरे लोगों के आ मिलने की संभावना पर पूरा भरोसा है।" सदानंद ने हवा का रुख पहचान लिया और संशय की नांदी से निश्चय के मंगल का पल्ला पकड़ा।

"सही बात। पहले बच्चा पैदा हो जाय तो पीछे कुलही की सोच की जाय। प्रस्तुत प्रसव-पीड़ा अपनों तक ही व्यापी रहे। नेहरूजी ने भी तो कह दिया है—'कोई बात पक्की न हो तो मैं नींव का पत्थर नहीं डालने का। इमारत खड़ी हो जाय, तो उसका उद्घाटन सहर्ष करूँगा।" यही ठीक होगा भी।

अपना काम भी सध जाय, तो यह सब सोचा जाएगा।" वीरप्प ने चर्चा की परिसमाप्ति की।

बाहर पानी बरसने लगा था। छींटें भीतर भी आने लगी थीं। कमरे में बैठे मित्रगण ज़रा सरक कर अपने को इससे बचाने लगे।

"पी० डब्ल्यू० डी० वाले राजी होंगे क्या इस समय काम शुरू करने पर?" बात के सिलसिले में अपने मामाजी शंका व्यक्त कर उठे। कहने लगे कि "बरसात में कोई कामधाम न होने का।" मोजिनीदार का भानजा शामण्ण का संशय प्रकट हुआ।

"हाँ, हाँ। यह भी एक बात है।" कहते कुछ साथियों ने अपनी आशंका व्यक्त की। सब गंगाधर की ओर देखने लगे।

"आपकी आशंका निर्मूल नहीं। धारा पर होने वाला काम है! यह बात उठाई जा सकती है। इस पर भी विचार कर लिया है। लेकिन, बरसात में हाथ समेटे वक्त बरबाद करें, यह भी कोई कायदा नहीं है। अपने देश में समय काटने के लिए यह बहाना काम में लाया जाता है। जब जूं की चाल पर देश चलता रहा होगा, उस वक्त के लिए यह ढिलाई भले ही खतरनाक न रही हो, पर आज की क्षिप्रता और तत्परता के अनुकूल यह धारणा ठीक नहीं बैठती। विदेशों में वर्षा ऋतु कोई ठाले बैठने की ऋतु नहीं मानी जाती। थोड़े-थोड़े अन्तराल से सालों भर पानी बरसता ही रहता है सोचिए, इस अनिश्चितता का सामना वे लोग कैसे करते होंगे? जैसे बने, जितना बने, काम जारी ही रखते जाते हैं। चाहे बर्फ गिरे, तापमान शून्य से भी निम्नतम हो जाए, शरीर के अवयव ठिठुर जाएँ, गलने लग जाएँ, चाहे तापमान कई जगहों पर सवा सौ, एक सौ तीस भी बढ़ जाए अवयवों को झुलसा दे, मगर इन सारी विपरीत अवस्थाओं में लोग अद्भुत साहसपूर्ण कार्य अबाध गति से पूरा करते सुने गए हैं। यह केवल इसलिए कह रहा हूँ कि बड़ी-बड़ी विघ्नबाधाओं के रहते हुए भी उनकी प्रगति रुकी पड़ी नहीं रहती। प्राकृतिक आघात अनेक होंगे, पर असंभव नाम की कोई चीज़ नहीं। अपनी जानकारी की कमी, कार्य-प्रणाली की अबोधता आदि के कारण असंभव, असाध्य-जैसी स्थिति उत्पन्न होती होगी। कितने असाधारण पुरुषार्थ होते आए हैं इन पर भी गौर कर लीजिए।"

"तुम्हीं ने तो कहा था! भाखरा डैम में साल के पूरे तीन सौ पैंसठ दिन काम जारी रहे, इसलिए लगभग दो करोड़ की लागत पर ही उठँगने उठाए गए हैं। पानी कितने करोड़ रुपयों का? भूल गई मैं—दो सुरंगों द्वारा बाहर फेंका जा

रहा है। उन स्थानों पर नदी-नदी चिल्लाते नरम पड़ जाएँ, तो सारा देश जलमग्न हो जाएगा न ? अन्य बृहत् योजना-केन्द्रों में भी साल में तीन महीने तक मक्खी मारा करेंगे।" पार्वती ने शह दी।

"ठीक है, अपनी प्रदर्शनी में सिंचाई योजनाओं के साथ ही यह भी तो अंकित हुआ है।" गुण्ड की स्मृति तीव्र हुई।

"यह सब लागत पर, कुल अंदाज़ पर निर्भर माना जा सकता है। बड़े-बड़े नदी-नदों और समुद्र पर पुल बनाना, बंदरगाह बनाना, लाइट हाउस बनाना आदि काम भी तो हैं ! नदी-नद, समुद्र इनके सूख जाने तक क्या बैठा रहा जाए ? लड़ाई के ज़मानों में अपनाए जाने वाले तरीके फिर क्या हैं ? अपने देश में तो लड़ाई छिड़ गई है, गरीबी से ! अब बादल को ताकते रहा नहीं जा सकेगा। यहाँ होने वाली बरसात की अंकसूची, मैंने असिस्टेंट इंजीनियर लिंगेगौडर के दफ्तर में, देख ली है। धारा की सतह आदि का हिसाब तो लगाया ही जा चुका है। दोनों तटों पर काम चालू रखा जा सकेगा। कोई रुकावट नहीं पड़ेगी। ऊपर के काम पूरे होने तक बरसात-बाढ़ दोनों की शान हवा हुई रहेगी।" गंगाधर ने विशद वर्णन किया।

"तब तो ठीक है ! कोई समस्या ही नहीं ! धारा की बाढ़ से अप्रभावित होने वाले काम पड़े हुए हों, तो घड़ी भर की झड़ी से आतंकित हो दिन भर का समय गँवाया जाए, इसका कोई तुक नहीं रह जाता। कहीं आड़ में रुके रहे और फिर मैदान में कूद पड़े।" भीमण्ण बोला। उसे यह सब कोई पहाड़ न लगा।

"उत्तर भारत में बरसात में भी भींगते काम करते रहने वालों को देखा है। यहाँ भी वही हाल है। वहाँ लोग चिलचिलाती धूप में भी दिन भर काम जारी रखते हैं, साधारण किशोर भी झुलस उठते हैं। देखो तो आँखें डबडबा जाएँ।"

"यों तो गौरीजी का मन्दिर है, गंगाजी का मन्दिर है, दोनों टीलों पर। पेड़ों की गिनती ही नहीं, तने हुए हरे छाते ही सरीखे।" पार्वती ने भी सुझाया।

"यही नहीं, जरूरी सामान जुगाड़ कर रखना कोई मामूली काम समझ रखा है क्या ? ढठँगने के लिए चिकनी मिट्टी जमा करनी होगी····।" गंगाधर बोलता गया।

"कलडीहा से लानी होगी न ? कोई दूर नहीं। गाड़ीवान निंगप्प से कह दिया जाए। वह तो अपना आदमी है। जब खाली रहे, मिट्टी ला भरे। बाद को दूसरे भी. शरीक होंगे ही। फुर्सत की घड़ियों में यह काम करने के लिए उकसाया जाएगा, दबाव भी डाला जा सकेगा। मैं यह ज़िम्मा अपने ऊपर लूँगी।" रेवती पूर्ण आश्वस्त रही।

"उठँगने के लिए जरूरी पत्थर आसपास के टीलों से ला जमा करना…।" गंगाधर ने नया काम बताया।

"पत्थर ढोनेवाली चार गाड़ियाँ मैं तय कर दूँगा। पर थोड़ा-बहुत लिए बगैर वे काम पर आने को राजी न होंगे। अच्छा, देखा जाएगा। आखिरकार इन अपने हाथों से ही तोड़ ला कर ढेर लगा दूँगा। आप लोग भी साथ दें। हर कोई एक-एक हाथ रंमा चलाए तो काम बन जाए।" कहते हुए भीमण्ण ने अपने दोनों हाथ उठाए। उसकी बाँहों के मांसल खण्ड उभर उठे।

"जैसे वानरगण रामजी के लिए सेतु-निर्माण में सहायक रहे।" रेवती की बातों पर सब हँस पड़े।

यह देख भीमण्ण ने वीरप्प की पीठ पर हाथ दे मारा।

"इस मार से एक चट्टान ही चूर-चूर हो कर जाने कितने पत्थर मिल जाते! व्यर्थ ही शक्ति घटा ली अपनी, बच्चू।" गुण्ड ने मज़ाक किया।

"शक्ति की कोई कमी नहीं, बेटा! दिखा दूँ और भी?"

"रहने दो भले आदमी! जानते हो या नहीं कि भीमण्ण और बम सबके लिए पर्याय हो गया है।"

"अच्छा, गिलहरी की सेवा बराबर का काम अपना है।" अंजली नम्र हो बोली।

"वही सफल हो जाए भला!" सदानन्द की शुभेच्छा हुई।

"तथास्तु! तथास्तु!" कई ध्वनियाँ साथ मिल गईं।

"संगतराशों के लिए पैसों का प्रबन्ध?" चन्नेगौड़ चिंतित हो उठा।

"अभी इसकी चिन्ता क्यों सताए? हाल ही में प्रर्दशनी, नाटक इनके बहाने गाँव वालों की जेब खाली हुई है। कोई ज्यादा रक़म तो नहीं। पर वे यह भूल जाएँ, इसलिए दो-चार दिन का अन्तर छोड़ दिया जाए। पीछे झोली पसारे तैयार हो जाएँ। स्वीकार है?" कह कर वीरप्प गंगाधर को देखने लगा।

"अच्छी बात है। यह काम आख़ोर में होने वाला है। समय पर सोचा

जाएगा। उस समय तक बाँध का काम थोड़ा-बहुत हुआ रहे, तो और भी दिलेरी से हक जताते अच्छा लगेगा। तब तक कोई महाशय थोड़ा उधार-ऋण दें, सरकार भी यही उपाय सोचती है, तो लिया जाए और उसे साबित लौटा देने की व्यवस्था भी कर लें।" गंगाधर ने सुझाव दिया।

"यह भी उचित है। जितना बन पड़े, इस तरीके को भी अपनाया जाए। यही नहीं, बाहर के गाँवों में भी पैसे वालों के यहाँ अपने संगी-साथी निकल ही आएँगे।" पार्वती सबको देखते बोलती गई।

"वक्त आने दें।"

"ठीक है।"

"यही क्यों ?"

"दबाव भी डाला जाए।"

"कर, लगान, पुलिस की सख्ती, ये तीनों अपनों से बाहर की बातें हैं, समझ गए ?" भीमण्ण बोला। वह बाकी सब तरीके काम में लाने को तैयार था।

"मुहूर्त ठहरा दिया जाए तो आरम्भ होने की सूचना गाँव भर में प्रसारित हो। जहाँ तक बन पड़े घर-घर घूमा जाए।" सदानन्द की सलाह हुई।

"पहला काम भीमण्ण के जिम्मे, कहो भाई।" वीरप्प उसकी ओर मुड़ते हुए बोला—"डुग्गी वाले को तैनात कर दो तो।"

"उसकी जरूरत ? मैं खुद डुग्गी उठा लाता लूँ। शर्म क्या है ? मैं सारी बातें साफ-साफ समझाता जाऊँगा।" भीमण्ण बोला। उसने यह काम स्वयं अपने ऊपर ले लिया।

"वाह वाह ! शावाश !" एक साथ चार-छह आवाजें निकल पड़ीं।

"यदि इतवार के दिन निकलो, तो गाँव की समूची वानरी सेना तुम्हारे पीछे हो लेगी।" नागव्वा हँस पड़ी।

"यही अपने राम का भी ध्येय है। उनसे गीत भी गवाऊँगा। सदानंद, कोई रोबीला गीत लिख तो दो।"

भीमण्णा की बात भला सदानंद ठुकरा दे ? वह चार-पाँच लड़कों को भी तैयार करने की बात मान गया।

"घर घर घूमने का काम अपने ऊपर ले लिया जाय। हर एक के पीछे अमुक सड़क, इतने घर, समझी।" पार्वती बोली। उसकी सलाह सब मान गए। बँटवारा भी हो गया। वीरप्प तथा मरीगौडर का अनुज चुन्नेगौड़ दोनों ने आसपास के

गाँवों में संदेसा पहुँचाने का भार अपने ऊपर लिया।

"कुदाल, फावड़ा साँकल, लोहे की बटलोई आदि आप में से हर कोई जितना ला सकें लाइए। आने के लिए तैयार होने वालों से भी लाने को कहा जाए। थोड़ा-बहुत नए भी जुटा लें।" वीरप्प ने कहा। उसकी सलाह सबको रुची।

मीटिंग में उपस्थित सभों ने अपने यहाँ की चीज़ों का हिसाब आपस में फुसफुसाहट भरे स्वर में लगा लिया।

"इतना सब तो हो गया। और बारात में वर ही नदारद, की भाँति जनता ही न आए, तो?" अंजली ने अपनी आशंका व्यक्त की।

"हम इतने जो यहाँ हैं, उनमें से कोई गायब तो न होगा। वर-वधू सब हमी हैं। ब्याह होकर रहेगा। उठिए, अब चला जाए। अपने हक में गाँव में सिरे पर के हनुमानजी हैं ही। और तो कोई विषय नहीं?"

"उस सुदिन की सूचना सब को पहुँचा दी जायगी। उससे एक दिन पहले सब इसी वक्त पर मिलें।" गुण्ड बोला!

"मैं भी कृतज्ञताज्ञापन करते सुब्बरावजी, लिंगेगौडर दोनों को लिख भी देता हूँ। कल ही निशान लगाने जाना होगा। प्रॉजेक्ट की एक प्रति अपने पास है ही। सर्वे करने के लिए साथ रहे लोग कल भी हाज़िर जाएँ।" गंगाधर ने सामयिक ने सतर्कता दी।

"ज़हमत अभी से शुरू।' भीभण्णा हँसते उठा।

सभी उसका अनुगमन करते गए।

● ● ●

:२४:

साथियों के निर्णयानुसार ही लगभग सारे काम हो गए। पुल के काम के लिए आई 'थियोड़ोलाइट' लिंगेगौडरजी से मँगा ली गई। नरसप्पाजी भी बुला लिए गए। अपने साथियों के सहयोग से गंगाधर ने नक्शा देखते बरसात की रिमझिम में ही तैयारी पूरी कर ली। चार दिन लग गए। दर्शनार्थियों के सुविधार्थ अन्य योजना-केन्द्रों की भाँति प्रदर्शनी के लिए निर्मित नमूना ही गौरी टीले के मंदिर के मंडप में रख लिया गया। विवरण वाला बोर्ड भी रखा गया और चारों ओर टट्टी का घेरा डाल कर उसे सुरक्षित किया गया।

सुब्बरावजी ने जो आदेश दिया था, उसी के अनुरूप पाँचवें दिन लिंगेगौडर को निमंत्रित किया गया।

"सरकारी ठप्पा लगा दिया जाय, इसी आशय से आया मानिए। आप पर कोई अविश्वास नहीं।" गौडर महाशय ने गंगाधर से हाथ मिलते हुए कहा।

"यही लोक-व्यवहार है, गौडर साहब! दोस्ती अलग, काम अलग। इसमें दोष कैसा? कल आप बदनाम हो जाएं, तो मैं अपने को दंडनीय न मानूँ? आपने तो जिम्मेदारी के पद पर रहकर बाँध उठवा ही दिया है। मेरा तो बस पोथी-ज्ञान है। पर, आप तो अनुभवसिद्ध ज्ञान रखते हैं। वही अतिशय आदर का पात्र भी है। उससे लाभान्वित होना होगा। मैं यह भली-भाँति मैं जानता हूँ कि अभी बहुत कुछ सीखना बाकी है। आप यथासंभव मौका निकाल कर यदा-कदा आते रहें, सलाह देते जाएँ, यही मेरी आकांक्षा है, प्रार्थना है।" गंगाधर ने अपने मन की बात कही।

"सही कह रहे हैं आप! मैं अपना कर्त्तव्य निभाऊँगा ही। यही मेरा काम है। आपकी क्षमता को जानते हुए आपसे सहयोग लेने के लिए ही आऊँगा, आपके काम में रोड़े अटकाने के लिए नहीं।"

"मैं आपका मतलब समझ गया।"

"अन्यथा आत्मवंचक भी बन जाऊँगा और आपका गौरव-स्नेह भी खो बैठूँगा। परस्पर विश्वास की ये ही नींव है?" गौडर मुस्कुराते हुए बोले।

"दोनों ने एक दूसरे को पहचाना है।" कहकर गंगाधर भी हँसा।

"हम दोनों काम सँभालेंगे, यह सही है। अन्यथा सुब्बरावजी मौन रह जाएँगे? केवल व्यवस्था की सुविधा-हेतु भले ही मुझे काम सौंपा गया हो, पर कितनी ही बार स्वयं आकर ढाढ़स बँधाते रहेंगे, यह अपने से स्पष्ट हो जाएगा। वे विभागीय अधिकारी ही नहीं, इंजीनियर मात्र नहीं, प्रोफेसर की हैसियत से भी बहुत कुछ सिखाते जाएँगें। चंद साल बंगलोर कॉलेज में भी रहे हैं। इस वक्त भी जानकारी को जंग न लग जाए, इसकी सावधानी बरतते बरतते सदा उस पर सान चढ़ाते रहते हैं। हर सूरत में उनसे बेहतरीन ट्रेनिंग मिलेगी ही।" गौडर ने दिल खोल कर सुब्बाराव की तारीफ की।

"उनके बारे में मेरा भी यही अनुभव हैं। मुझे पूरा भरोसा है कि हमें इंसान बनने की सीख भी उनसे कुछ कम न मिलेगी। वरना मेरी लड़कपन की बातें सुनने, कामधाम धीरज से देखने, उसे ऊपर तक पहुँचाने, कइयों से बहस करने और इतनी जल्दी मंजूरी मँगवाने का काम दूसरा कोई करता भला?

कितना उत्साह बढ़ाया है ! ढिलाई के लिए मशहूर महकमों में ऐसे भी जौहरी होंगे, इस पर कोई विश्वास ही न करे। यह सही है, पैसे का झंझट नहीं ! पहले ही सोची गई पुरानी प्राजेक्ट भी। फिर देर लगाई जा सकती थी। इनसे अपने ताल्लुक और बढ़ा लेने को जी चाहने लगा है। कितने होंगे ऐसे लोग ? नौजवान नए-नए महकमे में आते रहे, तो उनकी जानकारी से डाह करते छीछा-लेदर करना, उनकी उमंग, ध्येय को समझे विना ही अपनी डफली अपना राग वाली स्थिति पैदा करना। उनकी तरक्की रोकने की कई अड़चनें पैदा करते जाना, उन्हें नाहक सताना, उनकी सीखी इंजीनियरी कांतिहीन हो जाए, उनकी सहज स्फूर्ति-प्रतिभा फीकी पड़ जाए, वे निरे कठपुतले बन जाएँ, मिस्त्री के दर्जे वाले रह जाएँ—ये सारे कारनामें दिखाने वाले अधिकारियों की बहुतायत ही तो सुनी जा रही है।"

"अजी सरकारी विभागों में ही क्यों, यही उठापटक दूसरे ढंग पर ही सही, घर-घर देखी जा सकेगी, सारे ! बुजुर्ग छोटों को काबू में न रखें, यह मेरा आशय नहीं। यह भी है, ताकि अपनी भूलचूक नई-पीढ़ी वाले भी न दुहराएँ। पर छोटे कह कर कोई आजादी या छूट दिए बगैर उन्हें लुंजपुंज मात्र रहने देने वाले परिवार ही अनगिन होंगे। हम चंद लोग अपना भाग्य ही सराहते हैं। गाँव पर बुजुर्ग लोग मानें या न मानें, यह अलग बात है। पर कई महानुभाव भले कामों में रोड़े अटकाने वाले न हुए, तभी हम इतनी प्रगति करने में समर्थ हुए हैं। आगे भी यही रफ्तार बनी रहने की उम्मीद है।" गुण्ड बोला।

"विभाग में भी इधर रंग तेजी से बदलने लगा है। उदारहृदय नई दृष्टि-संपन्न सज्जन भी ऊँचे ओहदों पर मिल जाएँगे। वे नाक की सीध तक ही दुनियाँ को देखने के मरीज़ नहीं हैं। घिसा-पिटा राग ही अलापते, ताव झाड़ते ही वक्त काटने वाले नहीं। जमाना बदल गया है, आगे बढ़कर काम में लगना है, इस खयाल के नये कर्मचारियों को साथ ले चलना होगा, यह रुख भी उनका है। असली शिक्षा-केवल बुद्धिमानी नहीं-जितनी बढ़ाई जाए, आर्थिक अवस्था जितनी ऊँची होती जाए उतनी ही ईमानदारी अपनी नींव जमाने लगती है, उसकी कीमत-इज्जत बढ़ने लगी है। अब तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि हालत सुधरने लगी है। इसके लिए अपवाद भी रहेंगे ही, यह कहनें की ज़रूरत नहीं।"

"अपने प्रोफेसर साहब का कहना था कि 'केवल बुद्धिमत्ता की दृष्टि से भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रगति ही दिखाई देने लगी है। आजकल के बच्चों से बोलिए,

तो बड़ा अचरज ही हो आए। विद्यार्थी हमसे भी तेज़ हैं। हर पीढ़ी वाले स्वयं को ही बुद्धि के ठेकेदार मानते हैं और हमेशा इसी का नारा बुलंद किए जाते हैं। नतीजा यह होता है कि किसी ज़माने में यही भ्रम जड़ें जमा लेता है। बुजुर्ग हैं, पुराने हैं, कहने से ही कोई श्रेष्ठ न हो जाए। इसी प्रकार नवीन है और नवयुग के हैं यह कहने भर से कोई हेठापन न रहे।"

ये ही बातें चलाते तीनों हांड़ी में इधर-उधर चावल का दाना परखने की भाँति बाँध के निशानों की जरूरी नाप, जाँच करते, दो-एक जगह थोड़ा रद्दोबदल करके प्रसन्न हुए। दस बजे गौडर साहब के बड़े थर्मस से सबने काफी बाँट कर पी ली थी। वही काफी दिन के दो बजे तक का सहारा रही। काम पूरा हुआ। तीसी के पेड़ तले धारा की ओर से बहती आई हवा की ओर रुख किए गुण्ड का मँगाया डाब पी लेने के बाद सारी थकान फुर्र हो गई। गौडर साहब ने अपनी जीप पर ही दोनों को गाँव में उतार दिया। वे खाने के लिए नहीं रुके। सीधे नरगेरे की ओर बढ़ गए।

गाँव पहुँच कर दोनों ने देखा कि डुग्गी की आवाज़ चारों ओर गूँज उठी है। गीत, जय-ध्वनि से वायुमंडल निनादित हो उठा है। बाज़ार के मोड़ पर भीमण्ण दिखाई पड़ गया। वह वानरी सेना का सेनानी ही नहीं, गाँव के बीच जुलूस का अगुआ भी बन गया था। जुलूस में भाग लेने वालों के हाथों में तिरंगे झंडे के साथ कई पोस्टर भी लक्षित हुए। यहाँ गंगाधरेश्वर के मेले की सरगर्मी, बाज़र का दृश्य, नाटक कंपनी का अभिनय-कौशल, बरात का बनाव-श्रृंगार आदि एक साथ दिखाई देते थे। सदानंद गाता जाता, बाकी दुहराते जाते।

एक तरफ डुग्गी वाला और दूसरी तरफ भीमण्ण थे। दोनों डुगडुग्गी लिए थे। एक ओर तिम्म तुरही भी बजा रहा था। इन ध्वनियों के बीच भीमण्ण का गर्जन भी होता रहता था।

"सुनिए, प्रकाशवाड़ी के प्रिय निवासियो सुनिए! ध्यान से सुनिए! आप लोगों को चिर प्रतीक्षा का बाँध वाला काम कल से शुरू होने जा रहा है। अपनी सुवरनधारा के खज़ाने से कुछ पाने की आशा है, तो हम सबको कुछ खोने के लिए भी तैयार रहना होगा। हाथ मटमैला हुए बिना जेब कैसे झनझना

सके ! कृपया परिवार पीछे एक के हिसाब से इसमें योग्यता भर परिश्रम करने की प्रार्थना है। इस सहज सत्प्रयास को सार्थक होने देना आपकी सक्रिय सेवा-सहायता पर ही निर्भर है। इस पुनीत कार्य में बाल-बच्चे, युवक-युवतियाँ, बूढ़े-जवान आदि सभी सहर्ष भाग लेने को स्वतंत्र हैं। सबका स्वागत है।.... सहयोग देने की इच्छा वाले कल सुबह ठीक सात बजे काम के सामान तथा कलेवा के साथ शानभोगजी के मकान के सामने इकट्ठा हो जाएँ।"

सड़क के दोनों ओर चौतरों पर घर के लोग एक दूसरे को धकियाते झाँकते देखते रहे, सुनते रहे, हँसते रहे, आपस में कुछ कह लेते रहे। भीमण्ण अपनी शर्त से सौगुना बढ़-चढ़ कर काम में तत्पर था।

वीरप्प और चन्नेगौड दोनों पड़ोस के गाँवों में सूचना देने गए थे। बाकी सहयोगी भी घर-घर घूमते गाँव में ही खबर फैलाते रहे।

रेवती गणपति पुराणिकजी के यहाँ पहुँची, तो उन्होंने ज़ोरदार बहस ही छेड़ दी। अपनी जानकारी और प्रतिभा का भड़कीला प्रदर्शन किया। इतिहास से शिक्षा ग्रहण करने योग्य कई प्रसंग सुनाए। उनसे सबक सीखने का अनुरोध किया। यह रेवती के लिए उस कौर की भाँति हो उठा जो न निगला ही जा सके, न उगला। वह योंही बोली—"देर हो गई, मास्टर साहब! और भी कई जगह जाना बाकी है।"

जवाब में मास्टर साहब ने इतना ही कहा, "व्यर्थ समय न गँवाओ। बक-बक से कुछ नहीं होने का। विवेक से काम लो। अपने देश के बारे में ज्ञातव्य विषयों का अध्ययन करो। तुम भी नासमझ हो, इसके कई सबूत मेरे सामने पेश हो चुके हैं।"

रेवती मन-ही-मन 'जान बची लाखों पाए' कहती वहाँ से खिसक गई।

निर्वाणय्याजी ने मुँह चलाना शुरू किया—"बेटी, तुम नादान हो। भगवान् ही तुम्हें बचावे। जीवन ही दो दिन का है। इसमें इहलोक के झंझट के लिए कोई गुंजाइश कहाँ ? मेरी बात मानो। इस स्वप्न-सदृश जगत् में कोई कार्य सधने का नहीं। उम्र बीतते तुम खुद जान जाओगी। जो थोड़ा सा समय यहाँ सौभाग्य से मिला है, उसके सदुपयोग के लिए ईश्वर का ध्यान लगाना होगा। वही सर्वसुख की अधिकारी मुद्रा है, अपने डाक विभाग के ठप्पों की तरह। वही मुक्तिमार्ग भी है, अपनी 'रायल मेल' की तरह। जाओ, अपने माता-पिता और बाकी बड़े लोगों की सीख मान कर चलो। तुम भी सयानी हो चली हो। ब्याह हो जाने पर परिवार में सुखमय जीवन बिता लो। भगवान् भला करे तुम्हारा।" इतना

समझाने के बाद फिर धीमें स्वर में बोले—"तुम्हारे लिए वर ढूंढना हो गया है। उस दिन तुम्हारे पिताजी बंगलोर में रहे अपने बिरादरी वालों को तार देने आये थे।"

'मैं क्या जानूं, मास्टरजी ! उसकी जरूरत ही क्या पड़ गई है अभी।" रेवती तनिक गरम हो उठी।

"तुम-जैसों की नब्ज मैं खूब पहचानता हूँ। मैं भी यही कहा करता था, बिटिया ! इस वक्त देखो, तुम्हारी उम्र की ही एक लड़की है मेरी, परिवार पारावार होकर ज्वार उठा है····।"

रेवती बोली, "यह सब रहने दें, मास्टरजी। आपसे न बन पड़े, तो मातहत रहे नौकरों को ही सही, छुट्टियों पर या शाम को फुर्सत की घड़ियों में····।"

रेवती योंही हार मानने वाली न थी।

"राम कहो, राम कहो ! यह भी कोई न्याय है ! कोई बाहरी काम करने लगो, तो सरकारी नौकरी से हाथ धो लेना पड़े। रूल-नियम बड़े कड़े हैं, सो भी डाक विभाग के। स्कूल, सेक्रेटेरिएट का-सा हाल मत जानो। अपना कोई भी आदमी राह से भटक जाए, तो मुझको उसकी बर्खास्तगी के लिए लिखना पड़ेगा····समझीं ! यह सुनो, कान में ही कहे देता हूँ। तुम्हारे पिताजी ने अपने असिस्टेंट के खिलाफ़ शिकायत की थी, वह बडे मज़े में अपना असर दिखा रही है। संदेसा दे देना घर पर। मैं खुद कभी मिल लूँगा और ब्योरे-वार हाल समझा दूँगा, यह भी बता देना। समझ गईं ?"

रेवती ओठ तक आई बात रोककर बिना कुछ कहे ही वहाँ से चल दी। उसे कहीं भी कोई सफलता न प्राप्त हुई हो, यह भी नहीं। कुछ लोग बड़े धैर्य से सुन लेने पर "ठीक है, बहिन !" भी बोले, पर आवाज़ में हास-परिहास बना ही रहा। बाकी कई औरतें, लड़के, बालबच्चे, गर्भावस्था, अकेलापन, गृहस्थी का जंजाल; बीमारियाँ, अशक्तता आदि के बहाने बनाकर साफ़ निकल गईं। नवयुवकों ने छेड़छाड़ की, तो डाँट-फटकार सुन हँस दिए। घर रेवती लौटी; तो घोर निराशा से मलिन पड़ गई थी।

हिरियण्णाजी के यहाँ पार्वती पहुँची। सभी आँगन में काफी पीने बैठे थे।

"आओ पार्वती ! तुम भी एक घूँट पी लो।" जयलक्ष्म्माजी ने प्रेम से स्वागत किया।

"भाभी, मैंने काफी पीना छोड़ दिया है···।" पार्वती ने इसके छूट जाने का हाल सुनाया।

"बड़ी स्थिर चित्तवाली हो, बिटिया! गंगाधर को भी परास्त कर दिया। अपने से यह सब न होने का। इतने अरसे से यह निगोड़ी आदत चिपक गई है···पार्वती की इच्छा तथा परिश्रम के अनुरूप काम चल जाए, तो बाँध पल भर में उठ जाय।" जयलक्ष्म्माजी मुस्करा कर बोलीं।

"यही बताने आई हूँ, मामी!" पार्वती ने सारा निर्णय सुना दिया। बोली, "भागू बहिन को भी साथ भेजिए, मामाजी!" वाक्य पूरा कर उसने अण्णाजी की ओर याचना-भरी दृष्टि फेरी।

"तुम ही मना ले जाओ, बिटिया!" अण्णाजी मुस्करा उठे।

"यही तो, हमने न मना किया है, न उकसाया ही है। वह भी तुम्हारी उम्र वाली ही है। सब कुछ समझ सकती भी है।" जयलक्ष्म्माजी ने सुर-में-सुर मिलाया।

"यह कैसी बात! निर्लज्जता की हद हो गई री छोकरी! 'वानर स्वयं तो बिगड़ा ही वन भी उजाड़ दिया' वाला हाल है। तू जो फ़जीहत भुगत रही है, वहीं तक रहने दे भला! भागू अपने स्थान-पान, शिक्षा-दीक्षा के अनुरूप ऊँचाई पर रहे, यह फूटी आँखों भी तुझे अच्छी न लगती होगी। मैं तो बिलकुल मानने वाली नहीं। दूसरे जो चाहे, कह लें। आखिर मेरा भी तो कुछ अधिकार है।" नंजत्ते बीच में बोल पड़ी।

"बोलो, भागू बहिन?" पार्वती ने प्रश्न किया। उसने नंजत्ते की उपेक्षा कर दी।

"अपना ध्येय कोई बड़ा नहीं। सरल जीवन बिताने के पक्ष में हूँ। यश, अभिलाषा आदि की भूख नहीं। मेरी आकांक्षा गृहिणी बनने वाली स्त्री की ही है। साथ ही क्लबों में करने योग्य सेवा की कोई कमी नहीं। खेलकूद, यह-वह, साथ ही मीटिंग, चर्चा, व्याख्यान इन्हें कालेज यूनियनों की भाँति निभा लूं, तो बहुत हो जाय।" भागीरथी कैंट साहब की ओर देखते रुखाई से बोली।

"सही बात कही!" कैंट साहब मान गए।

"खानदानी बानगी है।" नंजत्ते सराहने लगीं।

"सही है, तुम्हारा कहा ठीक होगा भी। फिर भी, इस सामाजिक सेवापूर्ण जीवन के लिए अनुभव की गहरी नींव भी पड़ जाए तो कैसा?" पार्वती भागीरथी की ओर देखकर पूछने लगी।

"मैं इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझती। मुझे किसी सर्टिफिकेट की जरूरत नहीं है। मैं किसी को अपनी ओर आकर्षित करना भी नहीं चाहती। ऐसे अनुभव से मिला अमृत तुम ही चख लो। मैं कोई डाह नहीं कर रही, तुमसे मेरी कोई प्रतिद्वंद्विता भी नहीं।"

"सौ बात की एक बात।" नंजत्ते उछल पड़ी।

पार्वती का चेहरा उतर गया। हिरियण्णाजी चुपके से उठे और चलते बने।

"यह क्या है, भाग्य ! घुमा-फिरा कर क्यों बोलने लग गई ? बचपन से दोनों संग खेली-कूदी सहेलियाँ ठहरीं ? 'आऊँगी नहीं' कह दिया होता तो छुट्टी !" जयलक्ष्म्मा जी भी खड़ी हुईं।

"अम्मा का कहा सही मान, पारी !" भागीरथी ने सोच-समझ कर जवाब देते हुए उसके हाथ अपने हाथ में लिये कह दिया, "वास्तव में यह काम मेरे अनुकूल नहीं पड़ता।" और पार्वती को तसल्ली हो जाए इसलिए तनिक मुस्करा उठी।

"इतनी सुगमता से मैं आशा का पल्ला छोड़ने वाली नहीं। देख लेना, एक न एक दिन यह काम तुम्हें बरबस अपनी लपेट में कर ही लेगा। ध्यान रखना, मैं क्या कह रही हूँ।" पार्वती तनिक मुदित हुई। फिर कैंट साहब से पूछा, "इस घर के प्रतिनिधि के नाते, आप आने को तैयार होंगे ?"

कैंट साहब कहकहे लगाते हुए बोले, "हाथ से काम करने का जमाना कभी का लद गया। सड़ी-गली रीति है, वक्त की कीमत न जाननें वाले युग तक ही सीमित है। इस पचड़े में पड़कर क्या मैं भी खोपड़ी खराब कर लूँ ?"

"खूब ! इसे भी इशारा करने लगी, छोकरी ! वह क्या, यहाँ-वहाँ घूम वह क्या है मुन्ना !" नंजत्ते लाड़ले से पूछने लगीं।

'स्टेट्स, अम्मा ! अमरीका !" कैंट से सूत्र मिल गया।

"हाँ, वहाँ गया, विलायत भर घूमा, हज़ारों रुपए लगे, उतनी बड़ी-बड़ी परीक्षा पास की वह क्या है, लल्लू।"

"एम० एस० अम्मा !"

"हाँ, हाँ ! यह सब पास कर लेना, मिट्टी खोदने के लिए ही, समझ बैठी ? कितनी सार्थकता; धूल सिर पर डालने के बराबर ही।"

"हाथ का काम सही है, यह सीखने के लिए बड़ी परीक्षाएँ पास कर लेना अनिवार्य लगता है, नंजत्ते !" पार्वती ने प्रतिवाद किया।

"चुप रह, कलमुँही कहीं की ! बड़ी विदुषी बन बैठी है। जबान पर लगाम

रख । उस बाँध का बखेड़ा ढोये तू ही उन मनचले लौंडों के साथ 'थक थैं, थक थैं' कर ले....अच्छा ठहर जा, तेरी अम्मा से कहे देती हूँ—कब की सयानी कन्या हो गई है, उम्र ढलने को आ रही है, व्याह कर दीजिए, घर में बाँध रखिए, वरना खाई में पैर पड़ जाने की संभावना है।' तेरी मर्ज़ी हो, तो उस गंगाधर को ही वर ले। दोनों की जोड़ी बड़ी निराली भी तो लगेगी ! कंठी को भी इसी तरह के विनोद में घसीटना चाहती है। तेरी हिम्मत इतनी बढ़ जाए ! आदमी जो भी रहे, सब धान बाईस पसेरी ही ! कोई शरम-हया कुछ नहीं ! इस उम्र में हम कितनी दबती रहीं, कितनी शर्म खाती रहीं।" नंजत्ते ने सारा गर्द-गुबार निकाल लिया।

पार्वती का चेहरा तमतमा उठा। आँखें छलछला आईं। ओठ फड़क उठे। झट उठ खड़ी हुई, तो जंघा काँप उठी।

"अपने माँ-बाप जरूरी जानकारी रखते हैं। आपको कष्ट उठावे की नौबत ही न आएगी। आदमी क्या कोई बाघ-भालू हैं कि उन्हें देखते ही दरवाज़े की आड़ में जा छिपूँ ? वह युग नहीं रह गया। वह सारा दिखावे का संकोच मात्र था। उससे कोई लाभ हुआ तो इतना ही रंधने, खाने और जनने के सिवा हमने कुछ नहीं जाना। बस, इतना ही ! जीवन का आधा अंश सूना ही रहा ! हम आज के युग में इन्हीं से संतुष्ट होने वाली नहीं। समाज के महत्वपूर्ण कार्यों की सिद्धि में भी अपना हक रखेंगी। पीछे न पड़ी रहेंगी।" पार्वती चोट खाए साँप की तरह रोष से उठ खड़ी हो फुफकारते बाहर निकल गई। कैंट और भागीरथी दोनों फक् हो उसी देखते रह गए।

"हाय रे डाइन ! देखने में खरगोश-सरीखी, पर गुस्से में शेरनी को भी मात देने वाली। बड़ों के प्रति कोई गौरव आदर कुछ नहीं।" नंजत्ते [illegible] से बड़बड़ाती रही।

यह सच है कि पार्वती को सर्वत्र यही अनुभव नहीं हुआ। पर, उसे [illegible]हीं सफलता भी प्राप्त हुई हो, इसकी भी तसल्ली न हुई। रेवती की सी ही दशा हुई। ढेरों उपदेश मिलते गए।

उस दिन तीसरे पहरवाली डाक से गंगाधर को उसके अंतरंग साथी आनंद की चिट्ठी मिली।

'प्यारे मेरे,

हार्दिक अभिवादन !

पहला वर वक्र ही रह गया—करते आँसू बहाते बैठना छोड़ दूसरे का ही

हाथ थाम प्रसन्न हो, यही विश्वास कर ले रहा हूँ। साथ ही बनारस से रवाना होते समय सेवा का जो भूत तुम पर था, वह अपने माता-पिता की झाड़-फूँक से उतर गया होगा। तुम भी अपने राम की तरह साधारण मनुष्य की श्रेणी में ही आ गए होगे। यही सही मान ले रहा हूँ। अथवा और किसी मोहिनी के मोह-पाश में तो नहीं पड़े! साफ लिखना।

संगदोष ही समझो। मैं भी फूल के साथ डोरी की तरह, चंदन के धूप के घुएँ की तरह—वड़ी प्रांजल भाषा तो न हो गई?—स्वर्ग सिधार चुका हूँ। बंदा भी फर्स्ट क्लास! स्वयं पर ही अविश्वास हो उठा है। इस झटके से खाई मरोड़ से अभी तक मुक्ति न मिली। धीरे-धीरे सँभल रहा हूँ। परीक्षक परम लंठ ही होगा, भगवान जाने। इसका परिणाम जानते हो क्या हो गया है? इधर और छह माह तक परीक्षा की तालाबन्दी है। घर पर, कारागार में नहीं। यही श्रीमद्दुर्मुखिनाम संवत्सर के पौष शुक्ल के शुभ दिन रेल सेवा-वधू से मेरा शुभ विवाह संपन्न देखना समस्त गुरुजन-प्रियजन निश्चय कर चुके हैं। चील की तरह उनसे मैं नोचा जा रहा हूँ। अतः इस शुभ मुहूर्त के लिए तैयारी में में लग गया हूँ।

मतलब तो तुम समझ ही गए होगे। देशी कन्नड़ में रोगी-पिसाई फिर से शुरू हुई है। तुम्हारी भी यही दुर्गत हुई होगी। हम दोनों के व्यसन—सिगरेट सिनेमा नहीं प्यारे-समान हैं। पर यह न सोच वैठो कि अपने रेल सेवा के रैंक में अडंगा आ पड़ा। उतना लम्बा हाथ मारूँ, बन्दे में इतनी हिमाकत कहाँ! बनारस की तरह इस वक्त दोनों अगल-बगल के कमरों में नहीं हैं। दो हज़ार मील का अन्तर है। यही अपने राम की फ़ज़ीहत है। भगवान् भरोसे तुम पर सारा बोझ लादे, तुम्हारी पढ़ाई का लाभ उठाए कान उमेठवाकर पास होने का सुयोग तो न रह गया। निजी कोशिश की किचकिची में पड़ गया हूँ। किन्तु प्यारे, यह सब होते हुए तुमसे एक वरदान माँग रहा हूँ। यह तुमसे छिपी थोड़े ही है कि पुस्तक-नोट से बन्दे की लाग-डाँट है ही। इसलिए जो नोट इस समय काम के नहीं, उन्हें रजिस्ट्री से भिजवा सकोगे? उन्हें उतार लूँगा और वापिस कर दूँगा। इसके बाद दूसरा बंडल। राजी हो?

यहाँ अपना जीवन आज तक—इस वक्त भी कह लो—"पेट-खाट" तक ही है। शाम को कनाट सर्कस पहुँच जाता हूँ। इस दिल्ली की दहकती आग में दमड़ी पास रहे तो "एयरकंडीशंड" सिनेमा में "आइसक्रीम" उड़ाते जाओ, स्वर्ग से थोड़ा ही नीचे। दूसरा पहलू क्या है, यह कुशाग्रमति तुम्हें साफ लिखने

की जरूरत नहीं। भाग्य में बदा होता, तो उस उमर खैय्याम की शैली की चतुष्पदी ही रच देता। वह क्या भाई !" "हाथ में इक प्याला, साथ में इक बाला...."यही तो ? सिनेमा से बाहर निकलो, तो पहले ही लिख दिया है न ! परियों की दुनियाँ की सैर ही समझो। यहाँ की बहार का क्या बयान करूँ—। तुम्हारा ही आनन्द ?"

दिल्ली की शाम का विलासमय जीवन विस्तार से अंकित कर पत्र इस वाक्य से समाप्त हुआ था कि "यहाँ, इस पावन पुरी में बसने पर पंचवर्षीय योजना की हवा ही न लगे।"

गंगाधर मुस्कुराते हुए पढ़ गया। पीछे प्रकाशवाड़ी का विवरण संक्षेप में यों लिखा—"समझ गए, भूत मेरे पादाक्रांत ही है। छुटकारा नहीं सृजनात्मक कार्यों में लीन हो जाने पर सुख-दुःख बड़े साधारण प्रतीत हो जाते हैं। यही अनुभव होने लगा है। इस विशाल नक्शे पर रैंक, नौकरी क्षुद्र बिंदिया हो उठी है। आँखें उन पर जातीं ही नहीं। यही कार्य-समाधि-दशा सतत बनी रहे, यही मेरी अपूर्व अभिलाषा है।" उत्साह की ध्वनि से उत्तर समाप्त किया। अपने नोट बक्से से निकाल आनन्द के लिए उनका पैकेट बनाते समय सीने में बड़ी कसक हो उठी। पर, यह दशा पल भर से अधिक देर न रही।

उस शाम वाली मीटिंग में प्रत्येक ने अपना-अपना अलग-अलग अनुभव सुनाया। इससे उत्साह उमड़ा तो नहीं, पर सिकुड़ा भी नहीं। दूसरे दिन की लड़ाई में भिड़ जाने वाले सेनानियों की टोली की भाँति ही। साथी गम्भीर मुद्रा में ही बाहर निकले।

● ● ●

:२५:

फावड़ा-पूजन का दिन आ ही गया।

उस दिन सुबह रेवती—बगल में टोकरी दबाए निकल पड़ी, तो घर पर एक कांड ही मच गया।

"यह क्या मुन्नी, मिट्टी ढोने निकल ही पड़ी हो ? सोचा था, विनोद में थोड़ा बहुत बकबका लेगी।" दादी घबरा उठीं।

"यह सब छोड़ दे बिटिया, हाथ खींच ले। करीगौडर की कन्या मिट्टी ढोने जाए, तो जनता क्या कहने लगेगी।" अदालत के कागजात देखते काफी पी रहे गौडर ने आपत्ति उठायी।

"कौन बट्टा लग गया ? और हेठी काहे की ? मान-अपमान काम में नहीं, करने के ढंग में है। क्या दादी कभी मिट्टी-खाद नहीं ढोती रहीं ? क्या दादा कभी खेत जोतता न रहा ?"

"मैं कैसी रही तुम क्या जानो, बिटिया ! स्कूल में पढ़ने जाकर तुम्हारी तरह दुबला थोड़ी गई थी। साँस भारी हो जाए, तो हायतोबा मचा देती हो। उस धूप में मिट्टी ढोये जिंदा भी लौट आओगी ?"

"देखा जाएगा दादी ! वह किस ढंग का होगा।"

"वह पुराना ज़माना नहीं रह गया। तब हम निपट दरिद्र रहे। नौकर-चाकर कोई न था। इस वक्त तो हम लोगों का स्थान-मान, प्रतिष्ठा···।" गौडर बातें समझाने लगे।

"हटाओ बाबूजी, सब ढोंग है। हाथ से काम करने वालों के बराबर कोई नहीं, होना भी नहीं चाहिए।"

"घर के कामकाज से जी चुराने वाली तुम, इस वक्त उपदेश झाड़ने लग गई।" अम्मा बोलीं।

"यह तो भूल हो गई। इसके माने आगे भी वही दुहराई जाए, । लड़की जो ठहरी ! यहीं सोचते चुप रह गई थी। यह तो हद से बाहर जा रही दिखाई देने लगी है। इन सबके पीछे व्यर्थ पड़ना नहीं चाहिए, मुनिया।"

"कौन ऐसा पढ़ा-लिखा लड़का होगा, जो तुमको व्याहना पसंद करेगा।" अम्मा बोलीं।

"वह पढ़ा-लिखा ही न माना जाएगा। मैं उसकी तरफ आँखें उठा कर देखूँगी ही नहीं।"

"बाप रे ! इन थोड़े दिनों में ही कितना बदल गई है यह !"

"इस पर कोई ध्यान न भी दिया जाए, मैं मानता हूँ। आजकल यह फैशन-सा हो गया है कि कोई-न-कोई नाटक रचा जाए। पर बाँध, नाला आदि बन जाएँ, तो अपने परम वैरी मरीगौड के खेत की सिंचाई भी हो उठेगी। समझ खो बैठी है ? अपनी बिटिया ही ऐसे काम में···।" गौडर का पारा चढ़ रहा था।

"बिटिया हो गई तो क्या ? गाँव को तहस-नहस करने वाली पार्टीबंदी की झूठी शान से अपना कोई सरोकार नहीं। जहाँ तक गाँव की तरक्की के कामों से सबंध है, मैं गाँव की कुमारी मात्र हूँ ! अपना यह काम पीढ़ी-दर-पीढ़ी के प्रपंच का नहीं, परस्पर सहकार का है, परिश्रम का है।"

"हद हो गई ! लाड़-प्यार से पाली-पोसी मान कर, मैं मौन रह जाऊँ, तो ऊँच-नीच वकवास करने लगती हो ! गुस्सा बढ़ाया तो मैं आव-ताव न देखने का ! याद रखना !" गौडर गरज उठे।

"यह क्या खुराफात मचा रहे, बेटा ! गुस्सा होने से भला होता है ? उसके दादाजी घर पर होते, तो समझा-बुझाकर काम निकाल ले सकते······।"

"भला हो तेरा, कहते और आशीर्वाद देते। दादा को मैं पहचानती हूँ। निरक्षर भले ही हों, अज्ञानी तो हर्गिज़ नहीं हैं।"

"वाह ! आशीर्वाद देते ! पिताजी को मैं भी जानता हूँ। सीधे अंदर आ जा बातें न वढ़ा। तुझे कमरे में वंद कर देने से भी हिचकने वाला नहीं, समझी।"

रेवती विना कुछ कहे कदम आगे बढ़ाने लगी। गौडर तन कर खड़े हो गए।

"यह क्या कर रहे हो वेटा ! उस नादान से क्या घमासान ! भला, वैठ जा। अपना कामधाम देख। वह भी तुम्हारी तरह तुनुकमिज़ाज ही है। कमरे में वंद करने की सोचो तो जान से हाथ धो वैठने पर भी उतारू हो जाय छोकरी ! मन भर लेने दो, खुद जान जाएगी। दूसरों की सीख से दिल में न वैठने वाली वात अनुभव से अपने-आप लग ही जाएगी। यह सारी उछलकूद बहुत रोज नहीं चलने की। उसकी हालत तुम आज तक नहीं जानते ? एक रोज़ खँचिया ढोएगी तो बदन टूटने लगे और चिल्लपों करते लौटकर लेट जाए। अपने भगवान का जी और मैं न जानूँ ? उस हालत में अपने से दम मारते रह जाएगी। इतने के लिए यह सारा हंगामा क्यों मचे ?" दादी उठकर गौडर के पास उसे मना करने गई।

"उसे दाना-पानी कुछ न भेजा जाय। खबरदार ?" गौडर धम से बैठ तो गए, पर हार न मानने की भाँति बीवी की ओर देखते हुए तेज़ आवाज़ में कहते गए। मगर, बीबी भी चुप्पी साधे थी। आदमी की वात से क्या होगा, माता का हृदय भी तो रखती थी ?

"वावूजी ! मन को रुचा काम करना हो तो हर साँसत को भोगना ही पड़ेगा। मैं इसके लिए चिरौरी करने की नहीं।" कहती हुई रेवती सीढ़ी पर से उतरी।

"यह घर में लौटकर लौटकर कदम न रखने पाए।" गौड़र की लाचारी भरी धमकियाँ जारी थीं।

"यह क्या सत्यानास करने लगे बेटा ! खब्त सवार है क्या ? आपे से बाहर हो अनर्थ करने पर तुले हो ? लड़की को बाहर निकाल दे, तेरी इज्जत तो कौड़ी की हो जाय । सो भी इतने भर के लिए । जो भी करे, जितना भी करे अपनी बिटिया ही तो ठहरी ? दौड़ो, लौट आने को कह दे । दुलार-पुचकार कर । कहीं हाथ से निकल जाय भला……।" दादी बिगड़ गईं ।

"इस कोख से निकली कन्या कितनी भी कुटिल हो उससे यह बात कहने को जी कैसे कड़ा कर लें ?" बच्ची की माँ जोर से रो पड़ी । गौडर स्थिति की गंभीरता को ताड़ गए, तो फौरन चौतरे की ओर बढ़े ।

"मुन्नी मेरी! ! तू जो चाहे कर ले । तेरे से उलझूँगा नहीं । जितनी जल्द लौट आ सको, लौट आना !…सुना बिट्टन…?" बाप बड़े आर्त्त स्वर से बिटिया से कह उठा ।

झौवा उठाए बिटिया कुछ मुड़ कर देखती गई । गला थोड़ा झुका । बाप को इतने से ही तसल्ली हो आई । रेवती तेज़ी से आगे बढ़ती गई, पूरी उमंग के साथ । अंजली के यहाँ पहुँची । बाहर से आवाज़ दी । उसके पिताजी ही बाहर निकले और साफ़ कह दिया,—"वह जाएगी नहीं ।" अंजली की छाया तक न दिखी । उसके साथ हुए व्यवहार का अनुमान वह सहज ही करती गई ।

रेवती जब शानभोगजी के मकान की ओर मुड़ी, तो वहाँ परिचितों की टोली ही दिखाई दी । उसका दिल बैठ गया । इन पुरानों को छोड़ कोई नया चेहरा वहाँ न दिखा । इनमें भी अंजली न रही । टोली अपनी निराशा को दूर करने के लिए हँसी-मज़ाक की बातें करने में भूली रही ।

पार्वती चार झौवे उठाये कमर पर गगरा लिए रही । कुएँ से पानी काढ़ना उसके लिए कोई मुश्किल काम न था । गंगाधर बायें कंधे पर फावड़ा लगाए, दायें हाथ में रम्मा लिए था । गुण्ड फावड़ा तथा पूजन-सामग्री वाली टोकरी लिए रहा । भीमण्णं के एक कंधे पर कुदाल और दूसरे पर रम्मा था । लगता, जैसे बंदूकधारी सिपाही हो । वीरप्प के कंधों पर भी कुदाल, फावड़ा थे । नागव्वा के सिर पर दी टोकरियाँ काम दे रही थीं । चन्नेगौड़ कुल्हाड़ी, हँसुली.लाया था । सदानंद की जंग खाई कुदाल से बढ़कर उसके कंधे पर से झूलता पाथेय ही भारी था ।

"क्यों रेवती, देर लगा दी ? मन तो कहने लगा था कि तुम आओगी ही नहीं !" पार्वती ने कहा ।

"मैं और न आऊँ! देर तो लगी घर पर···।" रेवती ने सारा वृत्तांत कह सुनाया।

"वाह, जीत तुम्हारी ही रही! बड़े भैया से भारी झड़प हो गई। वे, और मुझे धमकाएँ बँटवारा हो जाए, अपना हिस्सा मिल जाए, मर्जी से जो चाहा किया, यहाँ तक नौबत आ गई। देखा जाएगा। बड़े भैया और तुम्हारे बावूजी इन दोनों में अनबन हो, तो हम दोनों साथ मिल कर कोई भला काम क्यों न करें! मैंने साफ कह दिया—पार्टी बनाओगे तो देश न बनेगा, इसमें मिल्लत जरूरी है।' सड़क की बदबू में ही ये रेंग रहे हैं। नई पीढ़ी वालों के हौसले, उनकी जिन्दगी आदि का मर्म क्या जानें।" कहता हुआ चन्नेगौड़ फूला नहीं समा रहा था।

"शाबाश! बहादुर सिपाही हो बेटा चन्नप्प!" भीमण्ण ने उसकी पीठ पर जोर से हाथ दे मारा।

"रेवती मर्द होती, तो उसे भी यह प्रसाद मिल जा सकता था।"

"उसका सीना मर्दानों का ही तो है!" चन्नेगौड़ तारीफ करते अपनी पीठ सहलाने लगा।

"अपने सत्प्रयास से गाँव में एका हो जाए।" पार्वती की कल्पना कौंध गई।

"गाँव फले-फूले!" सदानंद की अभिलाषा हुई।

"क्यों भाई गंगाधर! गुण्ड! चेहरे क्यों लटकाए हो जी?" भीमण्ण ने ताड़ लिया।

"और किसी के आने की उम्मीद नहीं।" गंगाधर धीमे बोला।

"कौन जाने गाँव वालों में से कई धारा पर ही पहुँच चुके हों।" गुण्ड ने आस लगाई।

"अपनों में ही बचा कौन? सावित्री खाना लाएगी। शंकर बंगलोर चला गया। बचे रामप्प, देवय्या, कमला, अंजली···।" पार्वती नाम गिनाने लगी।

रेवती ने अपने मन की बात कह दी, "अच्छी बात है, बाकियों में किस पर क्या बीती होगी।" गंगाधर सोच में पड़ गया।

"कोई बात नहीं। चलिए। हम ही आगे बढ़ें।" भीमण्ण ने कदम उठाया।

"सोचा था कुछ तो आ ही जाएँगे सो अपने दो नौकर भी साथ नहीं लाया। यही रवैया रहे तो कब तक····।" डग बढ़ाते हुए वीरप्प बोला।

"कोई चिंता नहीं। तब तक अपनी दाढ़ी पक जाए, अपनी देह गल

जाए," भीमण्ण विचलित न हुआ।

'इससे कौन पुरुषार्थ ? खाली मिट्टी का एक ढूह उठ जाए तो बाँध बन गया ?' सदानंद शंकित हो उठा।

"यही दुर्दशा रहे तो यह प्रकाशवाड़ी, उसका उत्साह, उसकी उन्नति आदि की समाप्ति बन जाए। यही होना भी पड़ेगा।" चन्नेगौड़ खिन्न हो उठा।

"इन अनहोनियों का असगुन आज से ही क्यों, आरम्भ के दिन ही ?" पार्वती बोली। वह अचानक छाए अवसाद का अंत देखना चाहती थी।

"सही कह रही है। निराशा, अतृप्ति आदि का कोई प्रसंग ही नहीं उठा। धैर्य से प्रतीक्षा की जाए। सुधर जाने की संभावना है।" इस प्रकार गंगाधर भी आश्वासन देता गया।

"इतने भर के लिए, उतने जोरों का प्रचार करना पड़ा तो।" कहती हुई रेवती जैसे अभिभूत हो उठी।

'नुकसान ही क्या ? प्रचार का असर तो हो ही रहा है। कहीं कोई खामी है तो वह भी निकल जाएगी। चलिए तो सही ! हारे हुओं की सी रुआँसी शक्ल न रहे ! दिल सूना भले ही रह जाए, पर बाहर से चेहरा खिला रखिए। इसकी ताकत, करामात दोनों अनंत हैं। कदम बढ़ाते चलिए। ब्राह्मणों की अर्थी की भाँति गाँव से बाहर चेहरे लटकाए न चलें। विजेताओं की शान से गान की तान छेड़े, बीच बाज़ार से ही जाया जाय। हम डरपोक नहीं, बुज़दिल नहीं, यह सभी जान जाएँ। उन सब पर थप्पड़ पड़ जाए। भीमण्ण बाज़ार की ओर मुड़ा। फिर उसने साथी सदानंद की ओर देखते हुए कहा—"सदानंद ! गाओ तो, कारीगर-गुणगान वाला गीत, हाँ, जरा ऊँचे से !"

"भीमण्ण लाख रुपये की बात कह रहा है।" कहते हुए गंगाधर चुपचाप उसके पीछे हो लिया।

"पते की बात है ! अपने ढीले पड़ जाने की गंध लग जाए, तो जनता में अधूरा उत्साह रखने वाले भी ठंढे पड़ जाएँ। हम ठोस रहें, तो आज न सही कल, ये लोग साथ देने आएँगे ही। चला जाए !" कहकर गुण्ड भी भीमण्ण की बगल में सटकर कदम बढ़ाता गया।

साथी गीत समवेत स्वर से गाते बाजार से प्रभातफेरी निकालते बढ़ चले। बीच-बीच में जयध्वनि भी सुनाई देने लगी। गाँव का गाँव दूसरी बार ताकता रह गया, हँस पड़ा, पर काम पर निकलने का नाम न लिया। शाला जाने वाला किशोरवृंद टोली के साथ हो गया, वह भी शाला के फाटक तक ही, बस।

धारा के निकट आते-आते साथियों को वहाँ कुछ लोग एकत्र दिखाई पड़े। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

"लो ! मैंने कहा जो था, लोग सीधे ही वहाँ पहुँचे होंगे।" गुण्ड ने कहा। वह जैसे फूलकर कुप्पा हो गया।

"हो सकता है, किसी अपने काम से खड़े हों।" सदानन्द को आशंका हुई।

"वह देखो,कुदाल, फावड़े जो हाथ में लिए हैं।" रेवतो ने इशारा किया।

"ओ ! ओ ! हो !" कई कंठ साथ फूटे।

"सही है। ये कारीगर ही हैं। दस जने रहे स्त्री-पुरुष, प्रकाशवाड़ी के ही निवासी !"

उन्हें पहचानने में देर न लगी।

"अपने प्रचार का जोरदार असर हुआ है।" रेवती खिल उठी।

"भाग्य कोई खोटा नहीं।" चन्नेगौड का उद्‌गार निकला।

"ठीक कह रहे हो। आरंभ में इतने आदमी तो आ पहुँचे हैं।" गंगाधर को तसल्ली हुई।

"काम पर आए हैं ?" उसने उनसे पूछा।

"हाँ, भैया ! अणदय्याजी ने पठाया है।" एक बोल उठा।

"क्या !" गंगाधर ठिठक गया। बाकी साथियों की भी यही दशा रही।

"यहीं धारा के पास की उनकी खेती करने वाले असामी है। अण्णाजी बोले हैं- 'आइंदा खेत पर काम न हो। जमीन पानी में डूब जाएगी। बाँध का काम कर लो। गंगाधर जो कहे, वही करते जाना। दाना-पानी का बंधान अपनी ओर से ही रहेगा।' बोलो भैया, क्या करना है ?"

पल भर के लिए साथियों की जबान जकड़ी ही रह गई। आश्चर्य-प्रसन्नता के मारे मौन छा गया।

"अण्णाजी का स्वभाव है। कहेंगे नहीं, करते रहेंगे।" गंगाधर बोला।

"तो फिर ! हिरियण्णाजी ही अपने दल के हैं ! अपनी ताकत क्यों घटाएँ ?" भीमण्ण तृप्त हो उठा।

"यह भेद प्रकट हो जाए, तो बाकी लोग भी भरोसा रखने लग जाएँ। आगे बढ़ आवें।" गुण्ड विचार करने लगा।

"इस तरह अन्य दिशाओं से भी धीरे-धीरे सहायता प्राप्त होती जाए।" पार्वती ने भविष्यवाणी की।

"तुम्हारा कहा सच निकले।"

"अच्छा, अब काम शुरू किया जाए।" गंगाधर जैसे होश सँभालने लगा।

"झट पूजन-अर्चन कर लूँ।" कहकर गुण्ड तेजी से धारा की ओर बढ़ा। पहले तो हाथ-पैर धो लिए, फिर मंत्र का उच्चार करते ही लौटा। नारियल चढ़ाया, माला अर्पित की, कपूर की आरती उतारी। घंटी हिलाई। वीरप्प मुरमुरी, बताशे बाँटने लगा। भीमण्ण ने गरी छिलके से अलग करके दे दी। उपस्थित नौजवान अपनी-अपनी कमीज उतार काम पर जुटने की तैयारी में लग गए।

"आप लोग भी खोदाई-ढोवाई-फेंकाई करेंगे? पढ़-लिख कर भी, स्कूल जाने पर भी?" एक असामी आश्चर्य से पूछ बैठा।

"हाँ भइया, जमाना बदल गया है। इसका असर ही कुछ और है। पोशाक पहने छड़ी हाथ में लेने भर से काम नहीं बनेगा। अब तो हाथ-से-हाथ मिलाए हर काम के लिए तैयार हो जाना होगा।" गंगाधर बोला।

"रहने दो भैया। तुम लोगों से जीतना मुश्किल है, वैसे यह सब करना आसान नहीं हैं। बाबू लोग ठहरे न!" एक असामी हँसकर बोला।

"अच्छी बात है! होड़ लग जाए, हम भी दिखा दें भला।" भीमण्ण सीने पर हथेली मारते, भिड़ जाने वाले साँड़ की तरह हुंकार कर उठा।

सब हँस पड़े।

"भैयाजी! फावड़ा चलाने से पहले कोई बलि चढ़ानी होगी।" एक असामी ने धीमे से कहा।

'यही तो, वरना फावड़ा पहले चलाने वाले की बलि धारा ले लेगी।" दूसरे ने समर्थन किया।

"छीः, हट! कैसी बात निकाल रहे हो!" गंगाधर मुस्करा उठा। दूसरे कुछ नहीं बोले।

'यह बात नहीं भैया! हँस कर टालो मत। धारा का मामला है। खतरे से खाली नहीं।"

"अगर बकरी न चढ़ा सको तो एक मुर्गी ही दे दो। यह होना चाहिए। दौड़कर घर जाता हूँ। फौरन ले आऊँगा।" कह कर असामी चल पड़ा।

"यह सब जरूरी नहीं, भाई! ठहर जाओ। मैं यह सब मानने का नहीं। फावड़ा पहले खुद ही चला दूँ। जो भी विपदा आवे, सह लेने को तैयार हूँ।" कहते हुए गंगाधर ने फावड़ा उठाया।

"गंगाधर!" वीरप्प मना करते हुए चिल्ला उठा।

"इस हालत में मैं भी चला दूँ साथ ही।" चन्नेगौड़ ने कुदाल उठाई।

"ठहर जाओ! ठहर जाओ! हम भी!" कई कंठ एक साथ बोल उठे। कई हाथ औजार उठाने लग गए। युवतियाँ झौवा लिए तैयार खड़ी हो गईं।

"हम सब एक हैं, जो भी भोगना पड़ जाए बराबर बाँट लें।" भीमण्ण के इतना कहते ही कुदाल, फावड़े एक साथ धरती पर गिरे। युवतियाँ झौवा आगे बढ़ाती गईं। काम शुरू हो गया। एक वृद्ध असामी ने अन्त तक इन शब्दों पर अपना अन्धविश्वास थोपना चाहा पर जब उसकी एक न सुनी गई, तो जैसे उसमें भी साहस आ गया। उसने अपने साथियों को काम पर लग जाने के लिए ललकार दिया।

गंगाधर की देखरेख में नपाई के बाद निशान लगे स्थानों पर परस्पर काम बाँट कर सब अलग-अलग हो गए। वीरप्प के नेतृत्व में उसकी टोली वाले झाड़-झंखाड़ को जड़ सहित उखाड़ कर एक ओर ढेर लगाते गए। चन्नेगौड़ की भाँति और भी कई जोड़ियाँ सतही मुलायम मिट्टी छह-सात अंगुल भर खोदकर उसकी ढेरी लगाती गईं। भीमण्ण-नागव्वा की जोड़ी से होड़ करते कई लोग बाँध के भीतर की चिकनी मिट्टी की नींव खोदने में जुट गए। गंगाधर-पार्वती की जोड़ी भी इन्हीं के साथ रही। गुण्ड चारो ओर घूमते-घामते थके हुओं का सहारा बना हुआ था। सभी लोग समय-समय पर काम बदल ले रहे थे। युवतियाँ मिट्टी तो ढोती ही थीं, साथ ही कुएँ से पानी काढ़ कर नींव की मिट्टी में तरावट पहुँचाने उसे गिराती जातीं। गगरे से गिरता पानी चुल्लू में पीते रहने वालों की भी कोई कमी न थी। काम मुस्तैदी से होता भी जाता, साथ ही विनोद भरी बातें, कहकहे आदि का भी अभाव न था। सदानन्द पेड़ों को गिराता हुआ गीत गाए जा रहा था। असामी भी इनके साथ हिलमिल गए थे, अपना अलगाव भुला दिया था।

"यह देखो, बाँहों के मांसल खंड! गंगाधरेश्वरजी के रथ का रस्सा है, कसा हुआ।" भीमण्ण ने अपनी सुदृढ़ भुजाएँ हवा में उठाईं।

"इसी चाल से काम करें तो हम लोग भी गामा पहलवान, किंगकांग आदि की बराबरी पर आ जाएँ।" गुण्ड ने अपनी बाँहें परख लीं।

"यह देखो, फेस पाउडर, गुलाबजल!" नागव्वा मजाक उड़ाने लगी। उसके चेहरे पर मिट्टी चिपक गई थी। गाल पर से पसीना उतरते ठोड़ी से चू पड़ रहा था। काम में लगी गंगाधर—पार्वती की जोड़ी भी इन्हें देखते, अपना हुलिया भी समझ गई। सब हँस पड़े।

"यह लो, रोज़ ।" पास ही कटी झाड़ी का ठूँठ ढोये जा रही रेवती हँसी, उसके कपोलों पर काँटों की खुरचन से ललाई छा गई थी ।

"और थोड़ा सब्र कर ले। लिपस्टिक भी आवश्यक न लगेगी ।" पार्वती उसे देखकर बोली ।

"आज यह महसूस होने लगा है कि खूब दो-चार बार नहा लिया जाए, कपड़े बदले जाएँ । पसीने से तर-ब-तर हो उठी हूँ ।" मंडी मल्लप्प की बेटी चिक्कव्वा बोली ।

"यही तो, नागरिक बने लोग बनाव-ठनाव के लिए उतनी बार कपड़े बदला करें तो अपने लोगों को इसकी सचमुच ही जरूरत हो जाएगी ।" रेवती ने समझाया।

इस वक्त हम लोग कुलियों की भाँति कारीगर हैं। इस दशा के मेल में अपने को बना लीजिए—पसीने का नहान, एक ही पोशाक । उस फिसड्डी गुड्डियों वाली नागरिकता से नाता तोड़ दें । पुरुषार्थी नागरिकता सोने में भर लें। भीमण्ण ने हथेली सीने पर रखते हुए कहा ।

"जिस दिन से तुम्हारी हवा लगी, उसी दिन से नागरिकता हवा हो गई ।" नागव्वा की यह बात सुनते ही सब हँसी में लोट-पोट हो गए ।

"वह गामा पहलवान कौन है भइया ?" एक असामी ने जिज्ञासा की ।

"नागव्वा ने गुलाबजल और कुछ और कहा, वह सब क्या है ? और पीछे रेवती ने कहा ?" टोली की एक कृषकपत्नी ने उत्कंठा प्रकट की ।

साथियों ने दोनों को विस्तार से समझाया ।

धूप चढ़ती गई, तो काम के साथ ही बात भी कम होने लगी । शरीर जवाब देने लगा था, पेट में खलबली मचने लगी थी । पर किसी से कुछ कहने में बड़ी झिझक होती रही । लस्टम-पस्टम काम जारी था । सावित्री जब सबके लिए खाना ले आई, तो सूरज मध्याकाश में आ गया था । आगे रेवती का अनुज भी एक भारी गठरी लादे था । चन्द साथियों का कलेवा सुबह ही उनके साथ पहुँच गया था ।

"क्या भोजन नहीं होगा ?" एक असामी ने पूछा ।

"वंदा तो हाज़िर है ।" भीमण्ण ने जवाब दिया ।

"मैं भी । मैं भी ! हाँ, हाँ ।"

औजार वहीं फेंकते सब धारा की ओर, छाया की ओर दौड़ते गए ।

"असली वनभोज तो यही है ।" भीमण्ण ने थालीनुमा रागी रोटी तोड़ते उसमें चटनी लगा मुँह में ठूँसना शुरू किया ।

"हाँ, शहरों के आसपास के बगीचों में अपच होने लायक सीरा-खीर झोले में भरने का-सा नहीं।" गुण्ड खट्टी दाल-सना चावल मुँह में डालने को हुआ।

"प्याज की दाल है रे गुण्ड? बघार की भीनी खुशबू! पार्वती, थोड़ा इधर भी लाओ!" भीमण्ण नथुने फुलाए माँगने लगा। पार्वती ने भरे हाथ का कौर ही परसा।

"अच्चम्माजी का बनाया रसम् बड़ा बढ़िया है। सावित्री, थोड़ा यहाँ भी मिलेगा?" वीरप्प ने सस्नेह पूछा।

"थोड़ा ही क्यों, पूरा लो।" सावित्री ने कटोरा भरते हुए कहा।

"यह लो एवज़ में, चखो तो भला!" वीरप्प ने अपने सीरे वाला कटोरा गंगाधर की ओर सरकाया।

"रेवती की अम्मा ने ज़ोरदार पकवान भेजा है, भाई! मैसूर के दास-प्रकाश में बनने वाला लगता है।" चन्नेगौड़ आँखें फाड़-फाड़कर कहता गया, "सुबह की झड़प का असर है।"

"कहीं तुम्हारी नज़र लग जाने से पेट में दर्द न हो जाए। चाहिए क्या, बोल तो भले आदमी।" रेवती हँसी।

"इधर अचार बढ़ा दो ज़रा।"

"अपने लिए भी।"

"इधर भी।"

रेवती के लिए अचार बचा ही नहीं। कुल बँट गया। असामियों से भीमण्ण ने "मुद्दा" भी ले ही लिया। अपने पास की रोटी के बदले उनसे हिस्सा लिया गया। पार्वती, सावित्री, रेवती, नागव्वा सबने पास ही बैठे असामियों को अपने डिब्बे में से थोड़ा-बहुत निकाल कर दिया। सबने खाना खा लिया।

"साल भर का काज, तो पल भर की मौज।" भीमण्ण ने कहावत गढ़ ली।

थोड़ी देर सुस्ता लेने के बाद सब अपने-अपने काम पर लौटे। तीसरे पहर का काम सुबह के काम की अपेक्षा दसगुना तकलीफ़देह लगा। पर किसी ने चूँ तक नहीं निकाली। चेहरे चूल्हे के सामने बैठने पर चमक उठने की भाँति चमक उठे। पानी पसीना बनकर निकल आता था। पैर जकड़ गए थे। हाथ ढीले पड़ रहे थे। हर कोई एक दूसरे की हालत से परिचित, पर कोई किसी का भेद न खोले। ऊपर से हँसते ही रहे।

इन्हीं की तरह थका-माँदा दिनमान भी खिले अरुण कपोलों की हँसी

बिखेरते रंगीन पोशाक धारण किए हाथ ऊपर उठाए बन्धुजनों से विदा माँगने लगा, तो नीड की ओर अग्रसर होते पक्षी "चलो ! चलो ! घर की राह लो !" का कूजन कर उठे। कारीगर भी काम से छुट्टी पा गए।

"आज तो हम हार मान जाते हैं, तुम लोगों से भाई ! कल तुम लोगों को न हराया तो देख लेना !" भीमण्ण आँखों के अन्दाज़ से ही काम देखते कहता गया, अपनी हार के लिए मिट्‌टी ढोने वाली इन बहिनों का नखरा ही कारण हुआ मानो।"

"वाह खूब जमाते हो। तुम्हारी बाँहें खचिया न उठा सकीं, यह क्यों नहीं कहते !" नागव्वा बोली। वह कोई ताव सहने वाली थोड़ी ही थी।

"ये वाहें ? अजी ये बाँहें हैं। भीम की हैं !" कहते हुए भीमण्ण ने अपनी भुजाएँ ठोंकीं।

"काम न सरे तो मचा ले झगड़े। दूसरों पर दोष थोप दें। यही तो दुनियाँ का कायदा है। अपने गाँव को ही देख लो न।" रेवती ने याद दिलाई।

"यही सही। मान लिया। करनी में कुशल रहने वाले हँसते-हँसते अपनी भूल कबूल लेते हैं। यह लो, मैं ही हारा !" भीमण्ण बनावटी हँसी हँसने लगा।

"नकलची श्याम की जगह नकलची भीम कहना ठीक होगा।" चन्नेगौड विनोद करने लगा।

सदानन्द से भीमण्ण ने गाने को कहा, तो उसने थोड़ा हिचकिचाते हुए, कहा, "सुर ही नहीं निकल रहा, प्यारे ! सांस रहे तब तो ?"

पर पल भर में ही कारीगरों के काम पर से लौटने का गीत शुरू किया।

"

सब लोग गीत गाते पथ की थकान कम करते गए। गाँव पहुँचे, तो घरों में दीपक टिमटिमाते दिखे। लड़ाई से जयमाला पहने लौटते योद्धाओं की भाँति इनकी पलटन सड़क से गुज़री। इनके गीतों की गूँज तथा जयध्वनि सुनकर लोग घरों से बाहर निकल पड़े।

भागीरथी तथा कैंट साहब चबूतरे पर से ही देखते रहे।

"तुम भी शामिल हो जाती ! बुलावा आया तो था।" कैंट साहब मुँह विचकाए हँसे।

"जुलूस में जाने को जी तो चाहता है....पर इस चाल से नहीं।" भागीरथी भी हँसी, पर सोच में पड़ गई।

हिरियण्णाजी को धन्यवाद देने गंगाधर उनके मकान की ओर मुड़ा।

"इंजीनियर साहब! नमस्कार!" भागीरथी ने स्वागत किया और फिर तत्क्षण पूछा, "अथवा हेड कुली कहना होगा?"

"कुली कह लें, मेम साहब!" गंगाधर उसकी बगल में जा खड़ा हुआ।

"हट, पसीने की बदबू! दूर हो जा भला!" भागीरथी ने नाक सिकोड़ ली। रूमाल मुँह पर धरे मुस्कराने लगी।

"तुम्हारी काहिली से भी ज्यादा नाक में दम करने वाली बदबू है यहाँ?" पूछते हुए गंगाधर भी हँसा। आगे बोला, "यह, भगवान् के लिए जलाई धूपबत्ती की सुगंध है। हम धरती-पसीने के लाल हैं, भूलो मत। सहज सुगंध मिट्टी पर पानी पड़ने पर निकलने वाली महक है, वर्षा के समय की सोंधी महक, वाह!"

उसका दुबारा अनुभव करने वाले की भाँति गंगाधर गहरी साँस खींचने लगा।

"यह सुभग जीवन तुम्हें ही सुलभ रहे।"

"तुम्हारे लिए भी सुलभ है और जो भी मन में निश्चय कर ले। उस ठोस जिंदगी के मुकाबले तुम्हारा हाल फिसड्डी गुड्डी का-सा है, आज ही किसी ने कहा था...।"

"रहने दो, रहने दो। यही सुनाने के लिए यहाँ तक आना हुआ?"

"नहीं, अन्दर काम है।" गंगाधर चल पड़ा।

"जाओ तो, बला टले।"

"कहिए सर! बाँध कितना उठ गया?" कैंट साहब ने जानबूझ कर आदरसूचक सम्बोधन द्वारा कटाक्ष किया।

"कितनी शतियों में पूरा हो जाएगा?" भागीरथी ने जैसे कसके मारा।

"तुम्हारे-आप जैसों के आने तक पूरा न होने का।" गंगाधर देहली के भीतर कदम रखते बोला। आँगन से उसे बातें सुनाई पड़ने लगी थीं।

"कंठी कल जाने वाला है, भैया?" नंजत्ते ने पूछा।

"वही करे। ठीक है।" अण्णाजी बोले। लालटेन की रोशनी में वे कोई पत्र पढ़ रहे थे।

"इस वर्ष के लिए शादी होने वाली नहीं। मुहूरत भी तो निकले जा रहे हैं।" इसका कोई जवाब न मिला।

"कल ही अंतिम लग्न बताया जाता है—यात्रा के लिए। हो आवे...दूसरी

वात यह कि उसके न रहते वंगलोर में अकेली मैं क्या करने को रहूँ ? उतने बड़े मकान में अकेली प्रेतिनी की तरह रहा भी कैसे जाए ! मानोगे न ?"

"हाँ ।"

"वह जो जा रहा है, वहीं कोई घर वगैरह ढूंढ़ ले और सन्देसा दे । उससे यही कहना चाह रही हूँ । पीछे देखा जाएगा ।"

"हाँ !"

अबतक गंगाधर हिरियण्णाजी के पास पहुँचकर खड़ा हो गया था । उन्होंने आँखें ऊपर उठाईं, वत्ती तेज़ की और उसे देख मुस्कुरा उठे । गंगाधर ने कृतज्ञता व्यक्त की । इस पर वे इतना ही बोले, "उन असामियों की जीविका भी तो चलानी होगी ।"

"कहो, भैया ! आज का काम निपट गया ?" ढिवरी लिए कक्ष की ओर वढ़ती जयलक्ष्म्माजी रुक कर पूछने लगीं ।

"खूव, कैसी भंगिमा है तुम्हारी ? भव्य तेज से निखर उठी है, भाई !" ढेबरी थोड़ा ऊपर उठाए देखकर बोलीं ।

गंगाधर प्रसन्न हो उठा । सारा किस्सा सुना दिया । हाँ, बीच-बीच में निराशा का खटराग निकल ही जाता ।

"ठीक है, भाई, हर नए काम का यही हाल होगा । झटपट होने का नहीं । चूल्हा सुलगाने की तरह समझो । शुरू-शुरू में सन्देह ही हो उठता है कि चूल्हा सुलगेगा भी या सिर्फ धुआँ-ही-धुआँ होगा । आग पकड़ ली कि नहीं, वस, धीमे-धीमे जलती रह जाए । जो भी रसोई चाहो, जितनी भी चाहो, बना लो । व्याह, जनेऊ, गौना, सन्तानोत्पत्ति, वर्षगाँठ या कोई पर्व-त्योहार—इन सबका यही हाल है । इतने दिनों के वाद भी मुझे कभी-न-कभी आशंका हो ही जाती है, शुरू-शुरू में निरुत्साह हो ही जाता है । जम कर काम करते जाइए ।"

जयलक्ष्म्माजी की स्फूर्ति-भरी वाणी से गंगाधर का रूखा पड़ा उत्साह हरा हो उठा । आगे वोलीं, "हाँ, सुनो । कल अपने कंठी की बिदाई होगी । तुम दिन में खाली न रहोगे । रात में यहीं खाने के लिए आ जाना । अच्छा, कंठी की यात्रा कल के लिए ही न ठहरी ?"

"हाँ ।" अण्णाजी ने जवाव दिया ।

नंजत्ते मौन रही ।

"अपनी अम्मा से सुवह तड़के ही आने को कह देना । बच्चे दोनों बेर यहीं आ जाएँ । तुम्हारा खाना यहीं से भेज दिया जाएगा ।"

"कह दूँगा, मामी !"

गंगाधर को परिस्थिति समझने में देर न लगी।

● ● ●

:२६:

दूसरे दिन साथी जुटे, तो सभी पैर खींचते हुए चलने लगे थे।

"क्या कहने हैं। कल रात जैसी झपकी आई, वैसी झपकी जनम भर लगाने को न मिली थी। धरन-सरीखा लेटा रहा।" भीमण्ण आते ही बोला।

"धरन-सरीखा नहीं, मृतक की तरह कहो।" गुण्ड हँसा।

"मज़े में जवाब दे चुके हैं।"

"सौ साल तक किसी काम पर बोला जा सकेगा, पर इसका मरम जानना हो तो दिन भर काम करना होगा।" चन्नेगौड़ बोला।

"बाप रे ! पूरे शरीर पर फोड़े सरीखे निकल आए हैं।" नागव्वा बोली उसका घाव साफ़ दिखाई दे रहा था।

"इस माने में कौन आगे पीछे है, कहना मुश्किल है ! रस्सी की कसावट से होने वाली पीड़ा बदन भर व्याप चुकी है। कदम उठा कर रखना ही एक समस्या है। सुबह आँखें खुलीं तो सवाल खड़ा हो गया कि चला जाए या नहीं। पर आए बिना चैन कहाँ ? घर वाले पहले ही टोक चुके हैं। केवल तीन दिन की उछल कूद कह दिया है। हँसने वालों के सामने फिसल पड़ने की भाँति मुसीबत न हो जाए ! यही सोच कर दिल कड़ा किए निकल पड़ी। असल बात कहे दे रही हूँ। आप इसका मतलब न लगा लें कि एक दिन चेहरा दिखा कर गायब हो गई। कभी नहीं। दिन भर की छुट्टी लेने की इच्छा हुई थी, बस !" रेवती ने अपनी दशा का सहज वर्णन किया।

"दो-चार दिन काम कर लें, तो धीरे-धीरे सब ठीक हो जाए। बदन का दर्द रहे ही न।" पार्वती ने साहस बढ़ाने की दृष्टि से कहा।

"सही बात है ! विष की ओषधि विष ही तो है।" गंगाधर ने मिसाल दी।

"गाली सुनते-सुनते खाल मोटी पड़ जाए, इसी तरह मेहनत करते-करते अवयव हट्टेकट्टे हो जाएँ। हाँ, तय मानिए। यही नुस्खा कारीगरों को जिंदा रखता है।" भीमण्ण ने समझाया।

"आज चिक्कव्वा नदारद है।"

"पथ पर न जाने कितने लड़के लुढ़क जाएँ।"

"रहे-सहे दो-चार का ही यह हाल ?'

"थोथा उड़ा दें, सार गहे रहें।"

"सो बात नहीं। हमें तो नियम से चलना पड़ेगा। पहला यह कि निरुत्साह पास फटकने न पाए और दूसरा यह कि आपसी छींटाकशी न हो। कहिए ? मानेंगे तो ?" गंगाधर ने पूछा।

"सही है, एक से आत्मा ही मिट जाए और दूसरा संसार को ही उजाड़ दे।" वीरप्प बोला।

"ना-ना, यह सब तो पल भर का आवेश है। आगे न जाने विष की कितनी घड़ियाँ पड़ी होंगी। सजग रहना ही सर्वोत्तम है।" चन्नेगौड़ ने सबकी सहमति माँगी।

"प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत।" सभापति की भाँति गुण्ड बोल उठा।

"चले चलिए। सदा हँसते हुए आगे बढ़ा जाए। यही तीसरा नियम है।" भीमण्ण ज़ोरों से हँस पड़ा। चार-छह साथियों की पीठ की मरम्मत की।

तीसरे-चौथे दिन का भी यही हाल रहा। निगप्प ने दो गाड़ियाँ चिकनी मिट्टी ढोई थी। इसके अलावा कोई नया काम हुआ ही नहीं। रहे सहे साथी एकमत थे। खटते थे। हँस भी लेते। पर, धीरे-धीरे यह कम पड़ने लगा। इसकी जगह मौन का प्रभाव विदित होने लगा। उसका मतलब कोई जानता न रहा हो, यह भी नहीं। उत्साहहीनता बाहर दिखाई न पड़ी। यह ठीक है। पर भीतर-ही-भीतर लगे घुन से बचाव का कोई तरीका ही सुलभ न हो पाया था। मिकावर की भाँति प्रतिदिन कुछ-न-कुछ हो जाए की प्रतीक्षा निराशा में बदली जा रही थी। गाँव-का-गाँव सुबह-शाम जलूस देखता, हँसता, चुप पड़ा रह जाता। इस पीड़ा के—जो उनकी क्रीड़ा हो बैठी थी—अन्त की घड़ियाँ भी गिनता रहा हो, कौन बताए।

चौथे रोज रात में थकान न रहने पर भी, आतंक के मारे गंगाधर की पलकें नहीं लगीं। यों ही बिस्तर पर उठ बैठा था। बत्ती जल रही थी। दिमाग चारों ओर भटक रहा था। इतने दिनों तक हुआ काम, बाकी पड़ा काम इनकी सुध आते ही दिल की धड़कन तेज हो उठी। बगल ही पड़े बक्से पर उसका हाथ पहुँचा। आनंद की चिट्ठी, कॉलेज का पत्र दोनों उठाए खोलता गया। आँखें उन पर घूम गई-एक, दो, कई बार। एक ओर परीक्षा की प्रतिद्वंद्विता, अफसरी जिन्दगी की तस्वीर-आनन्द, भागीरथी दोनों ने साफ कह तो दिया था—आ खड़ी

हुई। उसके पास ही अपने सत्प्रयास की दुरवस्था और परिणामस्वरूप अपने परिवार की दर्दनाक हालत, ये दोनों तस्वीरें झूलती रह गईं। देर तक उनको आँखें गड़ाए देखता रहा, फिर आँखें मूँद लीं। पर तस्वीरें बनी रहीं, सालतीं रहीं, पत्र फेंक दिए। बक्स बंद किया। बत्ती बढ़ा दी। करवटें लेने लगा पर चिंता हटने का नाम न लेती, वह तो उसे अजगर की भाँति जैसे निगले जा रही थी।

"यह क्या, कई लोग जो कह चुके हैं, कह रहे हैं—इसके अनुरूप मैं विवेकहीन हूँ ? यह किसी भूले-भटके का झाँसा तो नहीं ? कोई निरनुभवप्राय सपना तो नहीं देख रहा ? इसी के लिए कइयों की बलि चढ़ा रहा हूँ क्या ? स्वयं को धोखा देने के अलावा अपने अनन्य साथियों को भी भ्रम में डाल उन्हें मिट्टी में मिला तो नहीं रहा हूँ ? क्या गाँव भर का तिरस्कार ही इस प्रयास का पुरस्कार रह जाएगा ? इसके लिए इतनी साँसत। खिलवाड़ हो, सराहनीय प्रयास हो; न जाने क्या हो ! पर लगता है कि देश-काल के अनुकूल नहीं या अपने जमाने से बहुत आगे की सूझ हो ? और यह यहीं रोक दूँ तो ? सारा श्रम, संकट व्यर्थ ! कितना उत्पात ! उस हालत में भी उपहासभाजन होना पड़े ! इससे बरी नहीं रह सकते। किसी भी दशा में काम तो ठप होगा ही, आज न सही, कल, अधूरा ही रह जाएगा। आज ही क्यों न रोक दिया जाए। गाँव में चार दिन की भद होगी, पीछे सब भूल जाएगा। इस वक्त भी तो वे लोग इसे विनोद ही मान बैठे हैं। इसी कारण यह दुरवस्था भी देखनी पड़ी है। हटाओ, चाहे कितने ही दिन उपहास अट्टहास हो जाए, बला से अपना घाटा ही क्या ? भाई-बिरादरों के साथ चैन से रहा जाएगा। चंद लोगों को गहरी चोट पहुँचेगी। पर समय तो घाव को भर ही देगा। यही हो। यहाँ शाश्वत नामधारी कोई है भी ? यह भी लुप्त हो ही जाएगा। वे भी पीछे से सुखी रह जाएँगे-हाँ, यही रास्ता अपनाऊँ ?··· कॉलेज पत्र लिख दूँ ?···आनन्द से अपने सारे लिखे नोट मँगा लूँ···ऐं···ऐं··· हाय, यह कैसा अन्याय ! ऐसे कमीने खयालात आए भी कैसे ?···राम कहो, राम कहो !···उत्साहहीनता को धता बताना ही होगा···अवश्य···हाँ···पर कैसे हाय···कैसे धता बताई जाए ? इस अवस्था में··कैसी कराल रात्रि है यह ! गाँव जिस दिन लौट आया; उस रात में भी यही रस्साकशी रही न ?···हाँ··· सच है। पर वह तो एक कुघड़ी रही, निकल गई··यह कौन सी विकट होगी ? निश्चय ही···यह भी टल जाएगी, उसी की तरह···क्यों नहीं ?···"

गंगाधर करवटें बदलता रहा। पलकें कब लग गईं, पता न चला।

दो दिन और गुजरे।

एक दिन खाने से पहले साहसी वीरों के संघर्षलीन रहते समय अचानक सिद्देगौडर वहाँ दिखाई पड़ गए। बगल में हल्का लपेटा विस्तर, हाथ की टोकरी। इनसे भान हो गया कि ये अभी-अभी रेल सफर कर आ रहे हैं।

"दद्दा, दद्दा !" रेवती उनकी ओर भागती गई।

उत्तर में गौडर मौन हो, विस्फारित नेत्रों से उसके बिखरे बालों पर की जूड़ी से लेकर मटमैला लथपथ चेहरा, गंदी पड़ी साड़ी, हाथ का झौवा, नंगे पैर तक देखते ही रह गए।

"दद्दा, यह क्यों घूरते रह गए ? पहचान सके या नहीं ?" रेवती जोर से हँसी।

"बंगलोर में सब कुशल तो है ? अपना नन्हा भानजा कैसा है ?"

"यह क्या मुनियाँ, तेरी शक्ल-सूरत ?" गौडर उसकी बातें सुन ही न सके।

"झुलस जाने जैसी चेहरे पर मुरझाहट ! देखते ही पेट में मरोड़ आ जाए ! कितनी खूबसूरत शुकबाला-सी रही, मुन्नी-चमचमाती धानी साड़ी गुराई-अरुणाई से कांतियुत आकृतिवाली रही !"

"अब वनमयूर सरीखी हो उठी है, क्यों दादा ?" जवाब में चन्नेगौड़ बोला। इतने में सभी गौडर को घेर चुके थे।

"यही बाँध उठाने का फंदा है ? हटाओ, इन सबसे होता क्या है ?" गौडर अपनी पटरी पर ही रहे।

"तुम भी वही कहोगे दद्दा ? अप्पाजी की तरह ? ऐरे-गैरों की भाँति बाँध उठाना होगा, तुम्हीं ने तो था कहा था। कितने उत्साह से मेरा धैर्य बँधाते रहे।" रेवती ने याद दिलाई।

"हाँ, कहा तो था। लेकिन तुम,—ये सारे लोग सूख जाओ इस तरह···।"

"शुरू हम ही से हुआ भी तो। हम ही पलट जाएँ तो फिर कौन आ जुटे दद्दा ?"

"ठीक है ! बिटिया, मान गया।" गौडर ने लंबी आह भरी। उनकी मुद्रा से अनिश्चय स्पष्ट होता था।

"देखो भला, दूसरा कोई झाँकने भी न आया। कितना प्रचार किया, कितना परिश्रम पड़ा····?"

"यही बात सोचने लगा था तेरे कहने के बाद।" गौडर की नज़र चारों ओर घूम गई।

"यह क्या तमाशा है, गाँव वाले मक्खी मार रहे हैं ?',

"छींटाकशी ही तो, और क्या ।"

"यह मज़ाल ?···बेशरम हैं। उजड्ड हैं !···अच्छा, कोई बात नहीं । ये कौन हैं ?" गौड ने असामियों को देखकर पूछा ।

चन्नेगौड ने सारा हाल कह सुनाया ।

"अणदय्याजी जानकार आदमी हैं । पुरानी पीढ़ी वाले होकर भी ज़माने का रुख पहचानेते हैं, उसका साथ देते हैं। गुण को परख लेते हैं । उसकी तारीफ करते हैं । बिना जाने-बूझे दुत्कार देना उनका स्वभाव ही नहीं । मैं उनकी नस-नस पहचानता हूँ । हम दोनों ने साथ ही जमाने की गति देखी है । यही अक्ल तुम्हारे भाई को, इसके अप्पाजी को रह गई होती, तो गाँव नंदगाँव हो जाता । बाँध की कौन बिसात ? यह कौन पहाड़ हो जाता ! फूल हाथ में लेने की तरह सरल न हो जाए ? इसके बजाय बेकार की हुज्जत में वक्त बरबाद करते हैं—बिल्ली-कुत्तों की भाँति । तू तो अपने को बचाए आ गया, पार्टी के फंदे से छुटकारा !!" गौडर का चिंतन प्रवाह कुछ और हो उठा । पोती की पीड़ा मन से हट गई थी ।

"यह क्या दद्दा, गाड़ी स्टेशन पर भिजवाने को न लिखा ?" यह पूछते रेवती ने उनके हाथ से टोकरी ले ली । गंगाधर बिस्तरा उतरवाने को हाथ बढ़ाता गया ।

"रहने दो, भैया ! यह भी कोई बोझ है ! जरूरत पड़ जाती, तो मजूरा कर लेता ।" गौडर उसके हाथ में बिस्तर न देना चाहते थे । पर, जब हाथ साथ बढ़ आए, तो पकड़ ढीली कर दी । गुण्ड ने उसे अपने वश में कर लिया ।

"मेरे लिए गाड़ी ? यह कैसा मुन्नी ! राह तो कोई नहीं ? यों ही आ रहा था । इस ओर काम करने वालों का झुंड देखा, तो इस ओर बढ़ गया । प्रकाशवाड़ी का पथ मेरे लिए पीड़ाप्रद थोड़े ही है ? तेरे से आधी उम्र का रहा होगा-आठ साल की उम्र से ही पैदल कितनी ही बार बाहर पथ पर घूमा होऊँगा, तू क्या जाने ? इस उम्र में भी, दस बरस और पैदल घूम सकूँगा । निगोड़ी शान-शाकैत-परस्ती तेरे अप्पाजी के ज़माने से शुरू हो गई मानो, बिट्टन ।"

'पोती-पोता इनकी पीढ़ी में हवा हो रही है । यही सबूत देखिए तो दादा !" गंगाधर गर्व से कहते उनका ध्यान आकर्षित करता गया ।

"शूर-वीरों का युग है यह, दादा ।" भीमण्णा हुंकार भरने लगा ।

"सही बात है, भाई ! सब झरता गया था । दिखाई देते युग में थोड़े-बहुत

नन्हें अंकुर फूटते से लग रहे हैं । डूबते के लिए तो तिनका ही सहारा ।"

"तिनका नहीं, गुटका ही दादा ।" पार्वती ने पूर्ण विश्वास से कहा ।

"वही तो, बेटी ! कहो तो भला···गाँव का काम ! सब साथ मिलकर करते, तो सब कितना रंजक हो उठता····," गौडर अपने को संबोधित करते से लगे ।

तपे-गले तरुणों को गौडर की सहानुभूति भरी वाणी रेगिस्तान के राहगीर के लिए उपवन और चातक के लिए स्वाती की बूँद का काम कर गई । उनकी स्फूर्ति सजीव हो उठी । काम भारी न लगा । दिल हल्का हो उठा ।

"दादा, यहीं खा लें आप-हमारे साथ ही ।"भीमण्णा ने प्रार्थना की ।

"कोई ज़रूरत नहीं । घर पर राह देखते होंगे । तुम लोग भर पेट खाओ ।"

"भर-पेट ज्यादा ही हो जाएगा, दादा ! रोज़ ढेर हो जाता है ।" पार्वती ने आग्रह किया ।

"लीजिए-आप ही के यहाँ से खाना आ रहा है । पोता कुँअर ही तो ला रहा है ।" गंगाधर दूर से ही देख कर उस ओर इशारा करने लगा ।

"छटंकी सिद्द ? वह भी सेवा में लगा गया है अब ।" गौडर ने सिर हिलाया । उनकी वाणी में पोते के लिए परिताप ही नहीं, प्रशंसा भी थी ।

"हाँ, दद्दा ! उससे घर खबर दे दी जाए ।" रेवती उत्साह से बोल उठी ।

'ठीक है,' 'ठीक है,' 'वही होगा,' 'यही सही' 'तय हो ही गया'—कई कंठों से निकले आग्रह और निर्णय के सामने गौडर की एक न चली ।

गौडर की आवभगत में सबने बड़ी तत्परता दिखाई । गौडर ने साथ लाई टोकरी का ढकना खोला ।

"कोई ज़रूरत नहीं दादा ! वह बन्द ही रहे । हम सबका पेट भर गया है ।" वीरप्प ने ढकना लगा दिया ।

"हाँ, यहीं सब उड़ जाएगा । घर के लिए रहने दिया जाए ।" भीमण्ण हँसा ।

"और तुम लोग गैर हो ।"

"पोते-पोतियाँ ही, दादा !" गंगाधर का कलेजा तर हो उठा था ।

"वाह ! 'सही है ।' 'कोई अनुचित थोड़े ही ।' नवयुवकों में यह मनोभाव कोई अस्वाभाविक नहीं था । अपनी सादगी, स्नेह और सहानुभूति से गौडर ने इन सबको मोह लिया था । युवकों के मुहँ से ये बातें सुन उनका खिला आनन और प्रोद्भासित हो उठा । उनकी आँखों की जोत बढ़ गई । उनकी मीठी मुस्कान

के आलिगंन में सब आनन्दित हो उठे। दादा से मिली गुझिया पोती-पोते चाव से चटकारते गए।

बाँध की सारी प्रगति का विवरण गौडर को मालूम हो गया।

घर जाने के लिए तैयार होते समय उन्होंने रेवती के माथे पर हाथ फेरते सबकी दृष्टि अपनी ओर आकर्षित करते हुए कहा, "मिहनत कीजिए। मिहनती आदमी का नुकसान नहीं होगा। दो-चार दिन के बाद तो इस वक्त मलिन पड़ी मुखाकृति पर चपला की सी चमक छा जाएगी। फीके चेहरे पर खून दौड़ने लगेगा, धरती के असली सपूतों के चेहरे पर छिटकी छवि की तरह। शुरू में ही ज़रूरत से ज्यादा जोश दिखा उखड़ न जाइएगा, दाँव लगाकर दौड़ में भिड़ने वाले न होइए। नियमित रूप से लगातार काम में लगे रहिए, सब ठीक हो जाएगा।" गौडर की इन बातों से ठंडा पड़ा उत्साह शक्ति-संचय करता-सा लगा।

"आप सरीखे बुजुर्गों, कर्म-कुशल वीरों के आशीर्वाद से अनोखी स्फूर्ति आ ही जाती है।" गंगाधर ने विनम्र हो कृतज्ञता-ज्ञापन किया।

"सच बात है, दादा! अपनी मिहनत का फल, ये बातें सुनने पर, हमें मिल गया सा लग रहा है।" वीरप्प बोला।

"आगे बढ़ने में स्फूर्ति मिलेगी। इसी तरह दो-चार जनें सहारा देते चलें, तो हम कोई भी काम अनायास करते जाएँ।" गुण्ड ने हामी भरी।

'सही बात है' 'अवश्य,' वह कैसे बन पड़े। इसका अता-पता न होने पर भी सभी गुण्ड की बातें ठीक मानने को मजबूर हुए।

"आत्मबल का भरोसा रखते हुए काम करते जाइए। वही सबको चारों ओर से खींच लेगा। इसकी लपेट से कोई बचेगा नहीं।"

"आज तक इसका कोई सबूत न मिला, दादा?" चन्नेगौड ने कहा, उसकी आशंका बनी ही रही।

"यह न कहो। कौन जाने? बोआई के बाद ही फसल-कटाई हो? इसमें कुछ समय लगेगा, भाई।"

गौडर विदा हुए। बिस्तर-टोकरी साथियों के पास ही रह गई। घर पहुँचा देने की बात कह कर उन्हें रोक लिया गया।

नौजवान गौडर की आखिरी बातों की ही जुगाली करते रह गए। आपस में सोच-विचार कर लिया। गहराई में धँसता उनका उत्साह धीरे-धीरे सतह पर आकर तैरने लगा। हृदय उससे भरा-पूरा हो उठा। नई लहर दौड़ गई। आशा का झीना आवरण गोचर हो उठा।

दूसरे दिन सुबह सिद्दगौडर के मकान के सामने असाधारण घटना घटी। इस समय असाधारण प्रतीत होने पर भी यह साधारण ही रही, दस-पन्द्रह साल से चलती चली आई थी। सिद्दगौडर बीच सड़क पर खड़े सिंहनाद कर रहे थे। आँखों से चिनगारियाँ छूटने लगी थीं। बाँध के काम पर निकली रेवती बगल में ही अवाक् हो खड़ी रह गई थी। गौडर का इस तरह गरज उठना, उसने पहले कभी नहीं सुना था। दोनों ओर के मकानों में से लोग बाहर हो चौतरों पर आ खड़े हुए थे। कोई हँस नहीं रहा था। सभी सिर झुकाए थे। पर, आँखें बूढ़े की ओर घूम जातीं, कई आँखें चकित हो उठी थीं। कई आँखें भयभीत-सी लग रही थीं। और कहीं लज्जा टपकती, दो एक जगह विरोध भी। लेकिन कहीं भी उपेक्षा न दिखाई दी।

"...यह क्या, गाँव के बाशिंदे नहीं हो? यही अपने ललाट पर लिखा है—सूकर-सरीखा जीवन! बाँध का काम, अपने बाँध का काम, चलता रहे और चोर की तरह तुम सभी अंदर घुसे बैठे रहो? कल पानी से सिंचाई का फायदा कौन उठाएगा? गन्ना, धान की फसल कौन चखेगा? सुखी-संतोषी कौन होगा? हाथ भर पैसे जेब के हवाले करने वाला कौन होगा? इस ओर तुम लोगों का ध्यान ही न जाए?...सरकार से इसकी तारीफ भी हुई, मंजूरी भी मिल गई। अणदय्याजी इसके लिए सहारा बने हैं—दस असामियों को काम पर लगवाया है....मंडी शिवप्पाजी ने चार आदमी भेजे हैं। शानभोगजी, पटेलजी का तो साथ हैं ही। इन्हीं लोगों की खोपड़ी खराब हो गई है? गाँव के अपने नौजवान....पढ़-लिख लेने पर भी फावड़ा लिए मिट्टी खोदने निकल पड़े हैं....चूड़ियाँ पहने लड़कियाँ खून-पसीना एक कर रही हैं—धूप-छाया की कोई परवाह नहीं कर रही हैं। देखते ही उनको आँखें छलछला उठें। खुद अपनी आँखों यह सब देख आया हूँ।—सारा मुल्क मिहनत कर रहा है, यह भी सुना है। चारों ओर दिन-रात सिलसिला जारी है। सबका भला हो, यही उनकी मंशा है। तुम्हें शर्म नहीं आती, टाँग पसारे लेटे रहो—लड़के-लड़कियों से गए-गुजरे। फुर्सत के वक्त घर पीछे एक आदमी नहीं जा सकेगा?...."

'फुर्सत कहाँ है काका?' किसी ने आवाज लगाई।

"वाह बेटा! तुम लोगों का हाल और मैं न जानूँ? दाई से ही पेट छिपाना? दोसा, काफी की लत पड़ गई, पार्टीबाजी का नशा छा गया, अदालत-दफ्तर की ड्योढ़ी लाँघने की धूम मच गई, आठों पहर मारा-मारी? मुद्दा खाया सपूत कौन है, जो गाँव के काम के लिए वक्त निकाल न सके? खेत जोत कर लौटते चार

खँचिया मिट्टी न ढो पाता, एक गाड़ी चिकनी मिट्टी न खोल पाए ? जबान पर लगाम रखो। पचास साल खाक छान चुका हूँ, मुझी को पट्टी पढ़ाओगे ? कौन बड़ा काम समझ रखा है ? आज भी अपनी बीवी झुर्रियाँ पड़ जाने पर भी तुम से बढ़ कर मिहनत कर लेगी।"

"बिल्ली के गले में घन्टी कौन बाँधे ?" गौडर आगे कहते गए, "किसकी भलाई करने जा रहे हो, भाई ? अपनी तरक्की अपने हाथ से हो जाए, तुम लोगों के दिमाग में बात ही न घुसे ? मुल्क के बाजू बने तुम लोगों का यह हाल ? धत् तेरी की ! कहाँ मर गये रे केचेगौड, दोड्डितिम्मप्प, करीवंट रामय्या, चिक्कपंच, नंदीबसप्प...पुराने लोग सब ! यदि तुम सभी जीवित हो, तो अभी मेरे साथ निकल पड़ो। यह लो, चल पड़ा, आगे के जमाने की तरह। चलो, साठ-सत्तर के बूढ़े हो गए तो क्या हुआ ? इन नालायकों की सेवा-टहल की जाए। आगे जो बन पड़ी है, उतने से ये खुश नहीं दीखते। अब भी इन्हीं हाथों परसते जाएँ, खा लेने दो।"

इतना सुनते ही दस-आठ बूढ़े अपने-अपने चौतरे पर से धीरे-धीरे उतरने लगे।

"अब इस भीड़ में पानीदार जो बचे हों, वे भी हमारे साथ हो लें।" गौडर ने एक कदम बढ़ाए पीछे मुड़ते हुए घर की ओर यह आवाज लगाई,—"तुम भी चली आओ।"

बिन बोले बुढिया भी बाहर निकल आई और गौड़ के पीछे हो ली।

गौडर की बातें लोगों के दिल-दिमाग पर छा गईं। फिर क्या था, दूसरे ही क्षण वहाँ जादू का असर दिखाई दिया। चाबी देने पर गुड्डी जिस तरह हिलने-डुलने लग जाए, उसी भाँति कई एक साथ चौतरों पर से सड़क पर कूद पड़े। तुमुल कोलाहल ही मच गया। घरों में अन्दर-बाहर जाने-आने की चहल-पहल दिखाई दी। फावड़े, कुदालें, झौवे, कुल्हाडियाँ, हँसियाँ आदि औजार हाथ में आ गए। कई लोग इन बूढ़ों का अनुगमन करने लग गए।

"ये बूढ़े लोग ही चल पड़े, तो क्या हम बैठे रहें ?"

"इस पर तो शर्म खानी चाहिए।"

"उनकी बात सही रही।"

"ऐसे ही बोलने का असर भी होता है। उन लड़कों की तरह मुलायमियत से बोलने का कोई असर नहीं होता।"

"मैं तो पहले ही निकलने को सोच रहा था। मगर, बाकी लोगों के बहकावे में आ गया।"

"मैं भी चार लोगों के साथ निकल पड़ने की ताक में था।"

"मेरा हाल भी वही रहा।"

"अजी तुम्हारा क्या, सबका यही हाल रहा।"

"भाग्य में सिद्दे गौडर की डाँट खानी बदी थी, और क्या?"

"उनका हाल तुम क्या जानो। किसी जमाने में उनके नाम का चिराग जलता रहा। उनकी एक आवाज़ पर ही गाँव-का-गाँव थर-थर काँपने लगता था, समझे? हिम्मत से काम करनेवाला यहाँ और कौन रहा? इस वक्त भी सुना दे रहे हैं। बबुआ ई बखत भी सुनात जात हौवन। 'चल' मुँह से निकला कि नहीं, बिना आगा-पीछा सोचे, सभी जमा हो जाते थे।"

"अरे, तो क्या वह गड्ढे में खींचते थे? सबका कल्याण चाहते थे, तभी तो लोग उनकी बातें मानते थे।"

"अब तक उनकी वही धाक है, इसका यह प्रमाण है।"

"अपने से पिछड़ गए तो दूसरी गद्दी मुखिया की मिली।"

"मुखिया ऐसा ही होना चाहिए। आजकल के मुखियों को देखो, आपस में झगड़ा खड़ा कर देंगे।"

"अदालत कचहरी के नाम पर पैसे लूटते जाते हैं?"

"ठीक है, उस पर करीगौडर का भी ख्याल करना पड़ेगा।"

"सिद्दे गौडर उनके पिता हैं, भूलो मत।"

"करीगौडर अगर खुराफात मचाने लगे तो, यह भय बना हुआ है।"

"उधर देखो, वह भी इधर ही आ रहे हैं।"

"और क्या, कोई दाल नहीं गलेगी। उनकी पार्टी के लोग चल पड़े हैं तो।"

"और भला क्या उपाय है? मुखियों का असली मंत्र यही तो है। हवा का रुख देख कर पलट जाना!"

"करीगौडर को शुरू से ही कुछ करना चाहिए था। चुप रह जाना ठीक नहीं रहा।"

करीगौडर पिताजी के पास पहुँचे।

"अप्पाजी! आपको कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। हम मौजूद हैं।" बड़ी मृदुता से छोटे गौडर कहते गए, सिर झुकाए रहे।

"आप में से कोई निकला ही नहीं, सो हम चल पड़े हैं। यह सही है। पर

गाँव का काम है तो बूढ़े, जवान सबको भरसक परिश्रम करना होगा ही····घर पीछे एक के हिसाब से। खाली गाड़ियाँ लगा दी जाएँ। काम बे-रोकटोक चले। पीछे आराम की बात हम लोग सोंवें! हम तो दिन गिनने वाले ही ठहरे।" बड़े गौडर की बातों में दृढ़ संकल्प ही नहीं, कठोर आज्ञा भी थी।

'सण्ण मंचय्या, पुट्टगौड, चिक्कीरप्प तुम लोग यहाँ आओ तो सही।" करीगौडर ने अपने प्रमुख अनुयायियों को संबोधित कर कहा और आगे यह हिदायत दी—"गाँव भर में खबर हो जाए, सिद्देगौडर ने कहा है कि बांध के काम के लिए घर पीछे एक आदमी आए, खाली रहते गाड़ी भी साथ ले जाए। यह भी बता दो कि हम सब काम पर निकल पड़े हैं।"

उस दिन निकल पड़ी भारी भीड़ में गंगाधर की टोली पहचानी न जा सकी। जुलूस आगे बढ़ता जाता, तो छोंटी-मोटी टुकड़ियाँ भी उसमें आ मिलती थीं। बाढ़ से आ मिलने वाली उपनदियों का सा हाल रहा। हिरियण्णाजी के मकान से ये गुजरते गए तो गायगोठ से गोबर हाथ में लिए जा रही जयलक्षम्माजी वहीं रुक गईं। नंजत्ते भीड़ का कोलाहल सुन चबूतरे पर आ गई। कैंट साहब राजस्थान रवाना हो गए थे। हिरियण्णाजी गाँव से बाहर गए थे। भागीरथी अभी सोई ही रही।

"देखो ननद! कितना अच्छा लग रहा है। उधर सिद्देगौडर, पास ही उनकी पोती, पीछे ये सारे आदमी! इन्हें देखने से गांधीजी की 'डांडी' यात्रा का स्मरण हो आता है। अखबार में वह चित्र देखा था तुमने?" जयलक्षम्माजी याद करके पूछती गईं।

"हट, कहाँ की बात कहाँ लगा रही हो भाभी! खूब मिलान करने लगी।"

"यह क्या कहती तो ननद! गांधी जी का जौहर, थोड़ा ही सही, किसी किसी में न रहे भला? रहेगा। गाँव-गाँव में एक गांधी जी न हों, तो यह देश पनपने का नहीं, गंगाधर कहा करता है।"

"वह भी कोई बड़ा आदमी है कि उसकी बात को तुम वेदवाणी मान बैठी हो?"

"सचाई चाहे जहाँ से निकल पड़ जाए। छोटे-बड़े का भेद कहाँ? इस पीढ़ी वालों की जानकारी का शतांश भी हम लोग नहीं जानतीं। सीखना बहुत बाकी रहता है।"

"सीख लो भाभी, प्रेम से सीखो। कौन मना कर रहा है।" कह कह कर नंजत्ते अन्दर चली गई।

"अम्माजी !" सिद्दगौडर ने जयलक्षम्माजी का ध्यान आकर्षित किया। बोला, "अण्णय्या जी से कह दीजिए, उनके प्रोत्साहन से चले काम में गाँव का गाँव जुट गया है। कोई किनारा खींचे न रहेगा।"

"सिद्दगौडर ही निकल पड़े तो किनारा खींच लेने का प्रश्न ही कहाँ ? बाँध की बाधा दूर हो गई। गाँव आने पर बता दूंगी।"

जुलूस आगे बढ़ा।

बाँध उठाने की जगह पहुँचने पर इतने लोगों में काम बाँटने और सही मार्गदर्शन करने में बड़ी गड़बड़ी मच गई। शुरू-शुरू में युवकों को भारी उलझन का ही सामना करना पड़ा। पर फौरन स्त्री-पुरुष का भेद न करते हुए हर कोई एक-एक दल का प्रमुख हो उठा। इतना ही नहीं, पहले काम पर लगे मजूरे भी अगुवा मान लिए गए। सब कुछ होने के बाद भी इस बँटवारे को व्यवस्थित रूप देने में आधा दिन ही लग गया। लेकिन इस कारण हुई कमी आरंभिक दिन के उत्साह से पूरी हो गई।

साथी मिलने और आपस में बातें करने तक का समय न निकाल सके। पर, लगातार चिल्लाते रह जाने से उनका गला थोड़ी देर में ही बैठ गया। सबको संकेत द्वारा समझाने में उठाए हाथ दर्द करने लग गए थे। लेकिन, चेहरों पर संतोष खिल उठा था।

खाना लानेवाली स्त्रियाँ भी जुट गईं, तो धारा के पास एक मेला-सा लग गया। गंगाधर को खाना अनावश्यक प्रतीत हुआ, यह दृश्य ही तृप्तिविधायक रहा। वास्तव में वहाँ दो-तीन सौ से ज्यादा लोग न रहे होंगे। लेकिन अगले दिन की तुलना में कितनी बड़ी संख्या में ! यही नहीं, आज तो बहुतेरे अपने-अपने काम पर निकल गए थे। कई अभी तैयार न रहे होंगे। इसमें कोई संदेह न रहा कि संख्या क्रम से बढ़ती जाती।

यही कारण था कि गंगाधर को इस समूह में भी हजारों भावी सहयोगी दिखाई पड़े थे। अपने मोहक भव्य स्वप्न का चित्र नयनों के सामने खिच गया। इसी समय सब कुछ होता रहा-सा भ्रम भी हुआ। इन सबके मूल में दादा सिद्दगौडर थे, जिन्होंने निज को दाँव पर लगाया और अंकुर उगाकर भविष्य का कार्य सुगम दिया। उन प्रिय दादाजी से दो-चार बातें करने को जी ललक उठा था। बातें रूप धारण करती जातीं। शीघ्र ही भोजन से छुट्टी पाकर वह उनके समीप पहुँचा और बोला, "दादा ! आप हमारे और गाँव के हक में देवता हैं।"

"यह न कहो, भैया ! इतनी बड़ी इज्जत....लौटा लो ये बातें।" गौडर थोड़ी देर आँखे मूँदे रहें मानो भगवान् के ध्यान में लीन हुए हों। मृदुल स्वर में बोले, "परमात्मा अंतर्यामी हैं, इस माने में ,कहो तो मान लिया जा सके, भाई !..यों तो उन गंगाधरेश्वरजी की चिनगी, उनकी शक्ति सब में है ही। लोककल्याण की कामना में आतुर रहेंगी ही। उन्हें जगाना भर होगा, भैया।"

"यह सही है। लेकिन उस चिनगी को बाहर होने दिया आपने, चुंबक से लोहा जैसे खिंच उठे।" पास आया गुण्ड भी बोला।

"तुम लोगों ने न जाने कितना परिश्रम किया। इस विद्युद् गति को प्रवाहित किया। मेरा काम तो केवल बटन दबाने भर का सा था।" गौडर बोले, उनकी बातों में नवयुवकों की कार्य क्षमता की व्याख्या छिपी हुई थी।

● ● ●

:२७:

इस रीति से बाँध वाला काम आगे कभी रुका नहीं, पीछे कभी मुड़ा नहीं। पूरे जोर होने में दिन ही नहीं, महीनों लग गए। पर दिन-ब-दिन लोगों की संख्या बढ़ती ही गई। पड़ोसियों के उपदेश, स्नेह, आग्रह, उपेक्षा, निजी उत्कंठा-फायदे का प्रलोभन, आसक्ति, निरा संकोच इनमें से न जाने कितने ही भाव बाँध के दूत बन कर, प्रेरक बन कर जनता से काम लेते, उसमें सेवा की भावना जागृत करते रहे। एक बार जो काम पर जाता, वह बाँध का हिस्सेदार बन जाता और मालिक की ही आस्था से काम देखता जाता। प्रतिदिन नए-नए नेता आते-जाते और काम करने-कराने तथा दूसरों का काम की ओर खींचने में अभिरुचि दिखाते। धीरे-धीरे बाँध का उठँगना ऊँचाई पर पहुँच रहा था। इन कामों के अलावा प्रचार का दूसरा साधन ही क्या रहे ? इसे देखने, इस बारे में सुनने मात्र से ही जानता को यह आश्वासन होने लगा कि यह कोई खिलवाड़ नहीं, महत्त्वपूर्ण काम है। इसके प्रति आदर-भाव जगा। उपेक्षा-अवज्ञा दूर हुई। भविष्य में इससे होने वाले हित की सम्भावना निश्चय में बदलती गई। गाँव की भलाई के लिए अपनी ओर से भी योगदान का उत्साह उमड़ता गया। बाढ़ के दिनों में धारा पतली ही न रह कर उन्मत्त हो उठती और गाँव को हानि पहुँचा देती थी। 'बाँध की साध' गाँव में, क्रम से, पर निश्चित रूप से जड़ें जमाती गई। प्रकाशवाड़ी का यह शुभ संक्रामक आसपास के इलाकों में अविलंब ही फैलता गया। गाँव-गाँव में बाँध, नहर आदि के संघ स्थापित हो उठे। प्रचार-कार्य

तीव्र हुआ। प्रकाशवाड़ी के तरुणों, किसानों का आदर्श दूर-दूर तक संदेश पहुँचाने, मार्गदर्शन करने, उत्साह बढ़ाने आदि में समर्थ हुआ था। इसके अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं, यह भी स्पष्ट होने लग गया था।

बाँध की सीध पर, धारा के किनारे, नाले के नीचे-ऊपर कतारों में—समूहों में चिल्लाते, गाते और मोद मनाते कारीगर काम में लगे रहे। इसमें कोई बाधा न पड़ी। यह प्रतिदिन का दृश्य हो उठा। युवकों का बोया बीज, प्रौढ़ों-बुजुर्गों से सींचा जा कर अंकुरित हुआ, पनपता गया, जड़ें जमीन में छोड़ता गया, शाखा-प्रशाखाओं में फूटा। फूल-फल की सूचनाएँ भी मिलने लगीं।

इसका यह मतलब नहीं कि बांध का भाग्य एक समान चमक ही उठा, वह उछलता ही रहा। कभी-कभी लँगड़ा भी जाता, लड़खड़ाता भी था। खेतों की जुताई, बोआई, कटाई आदि के मौसमों में किसान की दृष्टि बाँध से ओझल हो जाती। जितना काम बन पड़ना चाहिए, उतना हुआ भी न रहा होगा। खलिहान के लग जाने, मेला, पर्व-त्योहारों के आ जाने, ब्याह-गौना के ठहरने-इन अवसरों पर उसका कोई भरोसा न था। चोर, आलसी, लफंगे इनसे खाली कभी कोई समाज रहा भी? भले-बुरे इनके अनुपात पर ही तो समाज की सही परख निर्भर है।

मरीगौड तो खुल कर ही विरोध करता था। शुरू-शुरू में उसने एलान किया, "खबरदार! वह करीगौड का बाँध है। उधर पैर बढ़ाया, तो खैर नहीं।" इस घुड़की से उसके अनुयायी कुछ समय तक बाँध से दूर ही पड़े रहे। आरंभ में काम तो करीगौड की पार्टी के लोगों से चलने भी लगा था। पर, धीरे-धीरे पार्टियों से बाहर रहे लोग भी आते गए। बाद को मरीगौड से मिले रह कर भी अलग रहने वाले उससे खिसक गए। कुछ तो करीगौड से ही आ मिले, बाकी और लोग इसी कार्य से आए, किसी पार्टी से मिलने नहीं। दिन बीतते जाते, मरीगौड के उपदेश, और धमकियाँ बढ़ती जातीं। पर, उसकी पकड़ ढीली पड़ती गई। गाँव के लिए बाँध-नाले बन रहे हैं। अपनी ज़मीन और मरीगौड की ज़मीन भी सींची जा सकेगी। इसका भेद ज्यों-ज्यों खुलता गया, त्यों-त्यों ये अनुयायी अपने मुखिया की बातों पर अविश्वास करने लगे। नाला, नहर अपनी ज़मीन के पास से निकले और सिंचाई के लिए पानी की माँग करते मरीगौड के कहे अनुसार झगड़ा उठाया जाए? इन साँसतों से ये पूर्व-परिचित थे। यह भी जाने दे। पर अपने बराबर के विरोधियों से याचना की जाए? किसी बहाने पानी का प्रबन्ध तो हो जाए। इज्जत के साथ अपना हक़ जताना छोड़ दें, तो भद न होगी? मुफ्त में मिली, सो भी विरोधियों के उद्योग से प्राप्त, सहूलियत

किसान के सम्मान-स्वाभिमान के अनुकूल होगी ? तभी लोगों में इस बात की अवज्ञा-भरी चर्चा होने लग गई थी। कइयों ने पानी की सुविधा पर रोक लगाने की धमकी भी दी थी। इस प्रतिकूल परिस्थिति में किया क्या जाए ? मौन की विधेयता से संदेह, संदेह से चर्चा, चर्चा से अंतर्विरोध का क्रम चल पड़ा था। इसके अलावा इन लोगों को अपनी तरफ खींच लेने के लिए करीगौड के पार्टी वाले तथा अन्य निवासी भी जम कर काम करते जा रहे थे, यह अलग। करीगौड के पार्टी वाले अब बाँध उठाने वाले, गाँव की भलाई चाहने वाले इसके लिए जी-जान से जुटने वाले हो गए थे। इससे इनकी ताकत बढ़ गई थी, बढ़ रही थी। लोग गँवार हों चाहे पार्टी वाले, मनुष्य ही तो हैं। एक-एक करके बिना पता दिए, खुले ही, क्रम से सीधी राह पर, सरल मार्ग पर, लोग आने लगे थे, गौरव की साधना की ओर सरकते जा रहे थे। मरीगौड यह सब देखता था, समझता था। पर, क्या कर पाता ? साम की बात सोचता, तो प्रत्यक्ष सत्य को मिथ्या से दबाना पड़ता। यह संभव न था। दान की बात उठाता तो कितनों को क्या-क्या दे पाता ? इतने लोगों के खेत तर-ज़मीन में बदल जाने वाले थे। इसे कैसे मना कर सकता ? अदालत-कचहरी के खर्च के लिए टेंट में पैसे न होने से अनुयायियों से नोंच कर काम चलाता जाता था ! भेद का उपाय ध्यान में आता, तो इस समय अकेले करीगौड के खिलाफ नहीं, समूचे गाँव के विरुद्ध सबको भड़काना पड़ता। विरोधी इसी हथियार से इसके दल पर प्रहार करते उत्पात मचाने लग गए थे। दंड का नाम ही न लिया जा सकता था। दिन-दिन शक्ति घटती जा रही हो, इस दशा में धैर्य कहाँ ? इससे और भी क्षति उठानी पड़ती, इससे वह पूर्णतया परिचित था। अतः, मरीगौड की तरफ से यह असत् प्रचार होता रहा कि बाँध पार्टी विशेष का हथकंडा बन बैठा है। तिस पर दिन-दिन गिरती अपनी हालत भी लाचार हो देखता जाता। निरुपाय नपुंसक रौद्र से रगड़ा जाने लगा था। अतः बाँध के लिए इस ओर की बाधा भी कम होती गई।

नाला खोदा जाने लगा। खुदाई बारेण्ण की ज़मीन तक बढ़ आई। बारेण्ण मरीगौड़ का प्रबल समर्थक और पार्टी का एक शक्तिशाली उपनेता था। कंगाल को रोटी का टुकड़ा मिल गया। गौडर का फन उठा। इस वक्त वह रोड़ा बन उसकी सलाह पर बारेण्ण ने खुदाई आगे बढ़ने दी।

"यह अपनी ज़मीन है। कोई इसमें पाँव रखे तो उसे काट दूँ, खबरदार ! जान भले ही चली जाए, बला से। कोई हो माई का लाल, तो आगे बढ़े।"

इस तरह चुनौती दे उसने पहरा लगा दिया। खुदाई वहीं रुक गई। हाँ, बारेण्ण की ज़मीन से आगे काम जारी रखा गया।

बाँध पर बात उठी तो करीगौड बिगड़ उठा,—"यह सब उस मरीगौड़ की चाल है। मैं जानता हूँ। वरनां बारेण्ण यह सब अडंगा डाले, उसकी इतनी हिम्मत ! पार्टी का मामला मान बैठे हैं। अच्छी बात है ! अपने आदमी काम पर लगा ही दें, देख लिया जाए एक हाथ ! मार काट की मस्ती कोई नई नहीं ! किसे पट्टी पढ़ा रहा है वह ? अपने आदमी कम थोड़े हैं ? उसे धूल में मिला देने का यही तो सुनहला अवसर है।"

"यह झड़प फूस की ढेरी में चिनगारी का काम न कर जाए। पार्टी-वार्टी भूल जाओ। और भी सैकड़ों तरीके हैं ?" सिद्देगौडर सहमत न हुए।

"सही है। इतना तूल पकड़ने न पाए। कल मरीगौड से मिला जाए।" गंगाधर ने सुझाया।

"कोई फायदा न निकलेगा। कोशिश की जा सकती है।" गुण्ड को आशंका हुई।

"बुजुर्ग लोग समझा दें तो……।" गंगाधर सिद्देगौडर की ओर देखते हुए बोला।

"इन बौंडों की डील-डौल का क्या कहना है। दुर्योधन से मिलने गये श्रीकृष्ण भगवान् की ही भद हो गई तो ? क्या फल निकलेगा ! बुजुर्गों से भी यह काम न सरेगा।"

इतने पर भी मानवीय सुशीलता पर की गंगाधर वाली आस्था नहीं डिगी। पर गुण्ड के साथ की गई उसकी कोशिशें भी बेकार गईं।

"यह सब मैं नहीं जानता। तुम सब उस करीगौड की पार्टी में शरीक हो हमारे खिलाफ उन्हें उभार रहे हो। देख लेना, इसका नतीजा भी बड़ा खतरनाक होगा। तुम लोगों की गोटी मेरे यहाँ लाल न होगी।" मरीगौड दंभ से धिक्कारने लगा। साथी निराश न हुए। गाँव की भलाई की कई-एक बातें सुनाते-सुनाते थक गए। खाली गला सूख गया।

"गौडर साहब ! वैरभाव से सबकी हानि होगी, किसी का भला न होने का। आप भी अपने साथियों से आ मिलें। साथ मिल कर मिहनत करें।" गंगाधर ने बात पूरी की।

"तुम लोगों की नसीहत की जरूरत नहीं। उस करीगौड को बाँध के काम

से हटा पहले देना, पीछे मेरे यहाँ आने की बात सोचना । तभी बातचीत होगी । अब चुपके से निकल जाना बेहतर है ।" मरीगौड ने बात आगे बन बढ़ने दी ।

इसके बाद युवकों में कइयों ने सत्याग्रह, अनशन आदि की बात चलाई । इसके लिए तैयार भी हो उठे । चुनाव में हर कोई अपने को ही प्रस्तावित करता जाता । पुर्जा उठाया गया । पार्वती और चन्नेगौड़ का सितारा बुलंद था । बाकियों के चेहरे उतर गए । दोनों बारेण्ण के मकान के सामने तीन दिन तक केवल पानी पीते अनशन करने लगे । गाँव भर में तहलका मच गया । मरीगौड की पार्टी से और भी कई लोग अलग हो गए । बारेण्ण सिर ऊँचा किए बाहर निकल ही न सका । मरीगौड के पास पहुँचा ।

"सुन बे, यह कितने दिन चलेगा ? आज नहीं तो कल अनशन तोड़ेंगे ही, देख लेना । इसके लिए क्या दब जाएँ ? इतने पर कुछ हो ही गया तो अपनी जिम्मेदारी काहे की ? हमने उन्हें बाँध थोड़े ही रखा है ? अदालत-कचहरी में इनकी एक न चलेगी । और क्या···हम दोनों भाइयों के बीच अनबन ला ही दी थी, अब उसी को मेरे खिलाफ खड़ा किया है । सोचा होगा, छोटे भाई का चेहरा देखते ही मैं पसीज जाऊँ, एक कोख का जन्मा सगा भाई ही किस तरह दुखी हो मुझसे अलग हो उठा है, यह भेद गाँव वालों पर खुल जाए । मेरी तौहीनी हो जाए । उन शानभोगजी की मूरख लड़की को भी मिला लिया है—गाँव वाले और भी ज्यादा पिघल उठे और हम पर उत्तेजित हो धावा बोल दें । यही चाल है । इन भेड़ों को देख कर दिल तो जरूर गल जाता है । लेकिन इन सबकी तह में रही चाल पहचाननी होगी, बारेण्ण ! यह सब गहरा षड्यंत्र है, मुझे झुकाने के लिए रचा गया है । खूब ! मैं और फंदे में फँसने वाला ? आँख मूंदे रह जाना होगा । होने दो, उस करीगौड के आदमी यही सब करते-धरते रह जाएँ । सब का सत्यानाश हो जाए । एक तरह से ये सब जड़-समेत उखड़ जाएँ, तो चैन की साँस ली जा सके । इसके बाद मैं गाँव की मदद और बाँध उठाने में सेवा-सहयोग सब कुछ करने को तैयार । तू जा, चुप लगा जा । उतने पर भी दिल डावाँडोल हो उठे तो गाँव से बाहर निकल जा । लौटने तक देखा जाए, क्या रंग रहे ।" मरीगौड ने समझा-बुझाकर तसल्ली दी और पीठ थपथपाते उसे रवाना किया ।

दो दिन और गुजरे । पार्वती और चन्नेगौड़ इन दोनों का स्वास्थ्य गिरता गया । पार्वती की हालत ज्यादा खराब थी । डाक्टर विशेष चिंतित हो उठे गाँव में उदासी छा गई । बाँध पर काम कम, बातें ज्यादा होने लगीं । घर-घर इसी की चर्चा रही । गाँव में बारेण्ण के विरुद्ध हाथ उठाने की बात चलने लगी । वह

गाँव से भाग गया। शानभोगजी और वेंकम्माजी अधीर हो उठीं। लड़की से कही बातों का कोई असर न हुआ।

"अपने निश्चय के अनुरूप हो कर ही रहेगा। फल जो निकल आवे।" पार्वती ने साफ कह दिया।

ये अत्यधिक व्याकुल हो उठे; आँखों के सामने अँधेरा छा गया। गुण्ड, गंगाधर तथा अन्य युवकों के चेहरे फक् हो गए। इन दोनों की जगह अनशन जारी रखने न जाने कितने ही आगे आए।

"गंगाधर! अब क्या होगा, भाई!" वेंकम्माजी आँचल पसार उठीं।

"जो भी हो, इतनी दूर तक बढ़ने न देना था, भाई! फौरन कोई उपाय निकालना ही होगा।" शानभोगजी की बातें निठुराई से खाली न थीं।

"सही बात है। यह कदम जो उठाया, इसके औचित्य पर हम भी चिंतित हो उठे हैं। तुरन्त कोई निर्णय ले लेना होगा। पार्वती की स्थिति बड़ी चिन्ताजनक हो उठी है। हार माननी पड़ जाए, तो नुकसान क्या?" गंगाधर मान गया।

"अब तो हमें चुप लगाए रहना ठीक नहीं। लड़कों की ज़िद ठहरी, न जाने क्या रूप धारण कर ले। दुर्दैव से इन बच्चों को कुछ हो जाए, तो क्या होगा? समय रहते न चेते, तो हीरे-जैसे बच्चों से हाथ धो बैठेंगे। इतना ही नहीं, अकेले बारेण्ण ही बदनाम न होगा, गाँववालों पर ही कलंक छा जाए, मौके पर किसी ने स्थिति को सँभाला नहीं, यही कहा जाएगा।" जयलक्ष्म्माजी ने हिरियण्णाजी से कहा।

"मैं पहले ही मरीगौड से मिल चुका हूँ। उसने इसे बारेण्ण का मामला कह कर असमर्थता प्रकट की। वह जानते हुए झूठ बोल रहा था। लेकिन उस मनुष्य—नहीं राक्षस—से क्या कहा जाए, जी उकता जाता है। ये लोग ही स्थिति की गंभीरता का अनुभव करने लगे हैं। मैं बाकी लोगों से कहता जा रहा हूँ। जल्दी ही फैसला हो जाने वाला है।" अण्णाजी ने आश्वासन दिया।

"मैं पहले ही जानती थी कि यह कोई तिकड़म लड़ाएगा, उपद्रव मचाएगा। यह बाँध पूरा उठने तक न जाने और भी क्या-क्या होने को बाकी होगा। जानकार बुजुर्ग माने जाने वाले लोग इन नीचों को वश में रखने के बजाय हाथ-पर-हाथ धरे तमाशा देख रहे हैं, इन्हें हाथ जोड़ते हैं और अन्दर-ही-अन्दर इनकी मदद भी करते हैं। कारण वह परमात्मा, गंगाधरेश्वरजी, श्रीनिवास भगवान ये ही जानें। कंठी कह रहा था, यह सब होने का। वही सच निकलता दिखाई दे रहा है। उसकी बात मान कर तो चलते! इन सबकी जड़ वह गंगा-

घर ही तो है। उसे कालेपानी की सज़ा दे देनी चाहिए। तब सब शांत हो जाए.......।" नंजत्ते तिलमिला उठीं। आगे बोली, "इस नालायक लड़की के बारे में क्या कहा जाय। उसके इशारों पर ही नाचती है। पत्नी भी अपने पति के साथ ऐसा व्यवहार नहीं करेगी। देखने में कितनी भोली लगती है। पर अन्दर से साधारण नहीं लगती। उसी की तरह चंट है। हज करने जाने वाली बिल्ली की तरह ये लोग हैं। विश्वास नहीं किया जा सकता। जो भी हो....... जैसा भी हो, कोई अनर्थ न हो जाए। बेचारी को भगवान् ही बचा ले और दोनों साथ रह जाएँ। कौन मना करने वाला।"

"बाँध उठाएँ, नाला खोदें। कोई चिंता नहीं। थोड़ा-बहुत हो भी रहा है न ! लेकिन यह सब राजनीतिक दाँवपेंच किस काम का ! अच्छा नहीं लगता। और कोई तरीका ही नहीं ? पार्वती को इसमें नहीं पड़ना चाहिए था। वह यह सब पसन्द करने वाली है। इसके लिए मौका भी तो मिलता रहा !" भागीरथी कटु आलोचना तो करती गई, पर जब पार्वती की बिगड़ती हालत के बारे में सुना, तो उसके पास दौड़ती हुई पहुँची। उसकी सेवा की। दूसरों के साथ उसके पास ही बैठकर समय पर खाना, सोना भूल गई, कुम्हला गई।

"अनशन बन्द कर दो पार्वती। बन्नेगौड वही करे। यह कौन बड़ा विषय ठहरा। किसी तरह सुलझ जाएगा। दूसरा तरीका निकल आएगा। तुम लोग अपनी सारी शक्ति इसी में लगा दो, यह ठीक नहीं जँचता। इसी वक्त अपने को देख लो भला। क्या हाल हो उठा है तुम दोनों का ! यह दुर्बलता दूर करने में ही कितने दिन लग जाएँगे !" भागीरथी सहेली का लिए अनुनय करने लगी।

"किसके द्वारा किसको क्या होना होगा, होता होगा, कौन जाने ? किसी भी दशा में इससे भी लाभ होगा ही। भलाई को ध्यान में रख कर किया कोई काम व्यर्थ न होगा।" पार्वती का स्वर क्षीण पड़ गया था। वह रुक-रुक कर बोली, "यहाँ मैं, चन्नेगौड़ ये कोई व्यक्ति नहीं। हम सब एक बड़ी व्यवस्था के अंग मात्र हैं। यह प्रयास अपने पल्ले पड़ा है, बस ! बाकी भी हमारी ही भाँति यंत्रणा भोग रहे हैं।" पास ही रहे गुण्ड, गंगाधर आदि को देखकर कहती गई।

"क्या बात हो रही है ?" बगल के चौतरे पर लेटा चन्नेगौड पास आई रेवती से सारा हाल जान गया।

"पार्वती की बातें मैं अक्षरशः मानता हूँ। यह अपने पर आया संकट नहीं" भागीरथी ! यह सौभाग्य है, सौभान्य। कितने पैदा होते हैं, क्या कर गुज़रते हैं ? इस जीवन का मूल्य ही क्या ? मृत्यु का डट कर सामना न किया, तो क्या

सध जाएगा ? एक-न-एक अवसर हमारे पास से लहराता जाता है—नशे में बेहोश पड़े के सामने ही गुजरती रेलगाड़ी की तरह ।" चन्नेगौड बोला ।

दोनों की देह यंत्रणा से कृश हुई जा रही हैं । उनका मन चिंतन से तराशा जा कर तेज़ होता जा रहा !

भागीरथी का इनसे मिलने जाना नंजत्ते को बड़ा अनुचित प्रतीत हुआ ।

"ये लोग यही ऊटक-नाटक रचते भागू को भी अपने जाल में कर ही लेंगे। उसका उस भीड़भाड़ में वहाँ आना-जाना मैं तो अशोभनीय मानती हूँ, भाभी। साफ कहे दे रही हूँ । कल ऊँचे कुल में पहुँचने वाली है, सतर्क रहना होगा ।" उन्होंने जयलक्ष्म्माजी से कहा ।

पर, इसका कोई जवाब न मिला ।

"कंठी होता तो ठीक समझा-बुझा लेता । किसी दशा में वह यह सब पसंद भी न करता । इतने के लिए मौका भी न देता । मगर वह तो यहाँ है ही नहीं । इस पर नियंत्रण रखने वाला कोई नहीं रह गया । हट, मैं गला क्यों सुखा लूं ।" एक ही साँस में कह कर नंजत्ते चुप हो गई ।

पुराणिकजी डाकघर गए, तो निर्वाणय्याजी से बोले—"यह बाँध जानलेवा हो उठा है । पागलपन बेमतलब का रवैया गाँव भर में फैल गया है । कह लीजिए । कौन इतिहास-प्रसिद्ध लड़ाई समझते इस तरह जान देने पर उतारू हो उठे हैं ये !"

'नादान ठहरे । ये गँवार इतिहास क्या जानें, वेदांत की बात क्या समझें ? अस्थायी नयनगोचर होते हैं, इसी के लिए मर-मिटे । अनादिकाल से ही यह मानव की बहुत बड़ी दुर्बलता है । कितने ऋषि-महात्मा आए-गए । दशावतार हुआ । इतने पर भी यह कुत्ते की दुम टेढ़ो की टेढ़ी ही रही । प्रतिदिन ध्यान लगाने के लिए घंटे नियत हो जाने चाहिए, सर ! तब देखिए, सब ठीक हो जाए । उस दशा में इन उछल-कूदों में कम समय लगे । पर, वह सरकार ही कहाँ ।"

"सरकार का नाम न लीजिए, सर ! बात पूरी होगी ही नहीं । देह जल उठता है····।"

"ठीक कहा आपने, सत्कालक्षेप भी बन्द हो उठे ।"

"अपने असिस्टेंट के बाद आज तक कोई आर्डर न निकाला ?"

"यहाँ भी वही हाल हैं, सर, सर क्या माथा पटका जाए ?" निर्वाणय्याजी दफ्तर में रहे अपने सहयोगी की ओर देखते हुए कान में बोले ।" कभी-कभी मन

करता है, इस्तीफा दे दूँ। यह सब फेंक-फाँक कर संन्यास ले लूँ। वन में जा कर तपस्या करने लग जाऊँ। पर अपना यह परिवार कौन सँभाले, सर! यही तो झंझट।"

यह सच मानिए कोई दिन नहीं जब कि यह चिंता न सताती हो।"

इसी रफ्तार से बातचीत जारी रही।

अनशन के बारे में सिद्देगौडर का भी निर्णय हो गया।

"इतने दिनों तक की प्रतीक्षा थी, अब आगे तंग होने की क्या आवश्यकता! मानवों का प्रयोजन दानवों से कभी सिद्ध हुआ है? इन नादान बच्चों की वलि चढ़ाई जाए? बस कीजिए! हम ही हारे, दोष कैसा? अनशन का अपना असर हो चुका है। चंद जनों को छोड़ दें, तो अनशन की आग गाँव की मन निर्मल कर चुकी है—सारा कलुष भस्म हो चुका है। बारेण्ण भी लापता है। इस हालत में उपाय ही क्या? अब फल-दूध इन बच्चों को दीजिए। इन प्यारे बच्चों को बचा लेना बड़ा जरूरी काम है।" सिद्देगौडर बोले।

उसी दिन गाँव वालों की एक जरूरी सभा बुलायी गई। अनशन तोड़ देने का प्रस्ताव निर्विवाद रूप से स्वीकृत हो गया। कई साथी पार्वती चन्नेगौड के यहाँ दौड़े गए। साथ ही बारेण्ण की ज़मीन पर मुआवज़ा देने की बात उठाई गई, तो इसका विरोध हुआ।

"यह अनुचित है। यह तो उजड्डता से हार कर कीमत चुकाने-सरीखा हो जाएगा। दूसरों की जलन बढ़ेगी। हम निडर हो काम जारी रखें। वह हम लोगों की गति कब तक रोके रखेगा।" तीस बरस की उम्र के जबरेगौड़ ने प्रतिवाद किया।

'ठीक है! ठीक है', 'हाँ, सच है,' इसे समर्थन प्राप्त हुआ।

"कोई संघर्ष न हो, यह अपना निर्णय हो चुका है। यह प्रश्न नहीं उठेगा। रह गई दूसरी बात। बारेण्ण को देख जलने वाले और उसी बेशरमी से बर्ताव करने वाले किसान भाई विरल ही होंगे। देखा जाएगा।" बूढ़ा निंगय्य बोला।

'यही तो,' 'ठीक बात,' कोई नहीं, 'सच है,' 'भाड़ में जाए,' बला टली,' उसके समान कोई बेहया न होगा,' 'पैसे लेकर पानी सिंचाई के लिए कैसे इस्तेमाल करेगा, समझ लिया जाएगा।'

"हाँ, हाँ, हाथ कट जायगा। बाद को गाँव में रहेगा कैसे, यह भी स्पष्ट हो जाएगा।" चारों ओर से बौछारें होने लगी।

भविष्य पर विचार किया गया। मुआवजे की रकम चुकाने की बात उठी,

तो करीगौड बोला, "रकम मैं दे दूँ ?"

"मैं, मैं, मेरी रकम ही से जिन्दगी काटे बारेण्ण, कोई हो दे तो दिया,' दानियों का अभाव न रहा ।

"इस हालत में हर कोई थोड़ा-बहुत चन्दा ही दे, ले लीजिए। किसी पर बोझ भी न हो, सब बराबर दे दें, बाँट लें ।" तिम्मेगौडर की सलाह हुई ।

यह बात भी स्वीकृत हो गई ।

"और यदि इतने पर भी वह न माने तो ?" जवरेगौड ने पूछा ।

"हाँ वैसा ही आदमी है, उसके बारे में कोई विश्वास नहीं । उसे बहकानेवाले ताकतवर जीव भी जो है, हाँ, गांव के दुश्मन !" बात बढ़ गई थी ।

"मरीगौडर का नाम न लो, खबरदार !" किसी ने आवाज़ लगाई ।

"बाहर करो उसको ! धक्का दे निकालो बाहर, वह यहाँ साँस लेने लायक भी न रह जाए," लोग उन्मत्त हो उठे । उपद्रव मच गया ।

"न माने तो उसे गाँव से बाहर निकाला जाए ।" जवरेगौड ने प्रस्ताव रखा ।

"कबूल ।" "यही हो ।" "यह बात !" "हर्गिज नहीं ।" "ना-ना" "यही होना चाहिए !" "अवश्य !" उभय दलों की चिल्लाहट-शोर खत्म हुआ। प्रस्ताव की स्वीकृति की सूचना अध्यक्ष महोदय ने सुनाई । मरीगौड के अनुयायी और भी उत्तेजित हो उठे ।

"गाँव से बाहर निकालने की बात तो तय हो चुकी। मगर नाले का काम कैसे पूरा हो ? मामला यहीं तय न हुआ, तो सरकार के सामने इसे पेश किया जाए। सरकारी कब्जे के बाद ही अपनों को ज़मीन मिल जाए ।" वीरप्प ने आखिरी बात कही ।

सभा को यह बात रुची ।

उसी दिन रात को बारेण्ण गाँव लौटा। फूले न समाते रहे मरीगौड से मिला ।

"अब देख लिया अपने हथकंडे का जोर ? मेरी सीख से जय मिली न ! कोने में दुबके रहे तो हार खाए ! आगे बहिष्कार-तिरस्कार की बात उठाए तो डरना मत । हम लोग और किस दिन काम आएँगे ? इस वखत तो उन्होंने हमें दूर ही रखा था। कोई हानि नहीं। यह देख, इनसे रकम-वकम न लेना। ये कौन धन्नासेठ बने हैं जो रकम देंगे निज को ही सरकार लगाए बैठे हैं ? इनकी दी हुई भीख-करीगौड़ी की भीख पर अपना गुज़र-बसर हो ?

सतर्क रहना ! दिल कड़ा कर लेना। इन वातों में सरकार क्यों वीच में कूदे ? यह सब नहीं होने का। इनके वकने से क्या हो गया ? अगर दखल दें भा तो मैं चुप लगा जाऊँ ? विधानसभा, लोक-सभा, आदि में अपनी पार्टी के हिमायती भरे पड़े हैं। क्या हमसे घात कर बैठेंगे ? इतने पर अदालत है ही। हाईकोर्ट, दिल्ली सुप्रीम कोर्ट तक ज़ोर लगा दिया जाए। जो लग जाए। अगर नाला-नहर बन जाए और पानी लेने में अटकाव पैदा किया, तो उसे काट के पानी निकाल लिया जाएगा। सेंत में मिली इन्हें यह सुविधा ? किसके बाप का नाला समझ रखा है। खोदने वाले भले ही रहें, नाला-मालिक भी वन वैठेंगे ? यह गैरकानूनी है। मेरी बात मान लो। आगे भी सब अपने हक में ही होगा, आज की तरह। इनकी जड़ न हिला दूँ; इनकी खोपड़ी ठिकाने पर न लगा दूँ तो मेरा नाम ही मरीगौड़ न रहे।" वह बारेण्ण को भेद की वात जताते मूँछों पर ताव देने लगा।

बारेण्ण यह सब जान न पाया। संदेह बना ही रहा। गाँववालों से आतंक की संभावना अधिक हो उठी। चुपचाप वातें सुन कर ही रह गया।

मरीगौड से दिलासा मिलता गया था, मिल ही रहा था। पर, गाँव में बारेण्ण की जिंदगी मुसीबतों से खाली न रही। रही-सही सहूलियतें कम होती गईं। उसे सड़क पर, उसके मकान के सामने ही प्रत्यक्ष-परोक्ष गालियाँ सुनने को मिलतीं। लोग उसे खूब बनाते, कहकहे लगाते रहे। धमकियाँ भी दी जाने लगी थीं। परिवार की स्त्रियाँ पनघट से लौट आतीं, लड़के स्कूल से लौट आते तो कई शिकायतें सुननी पड़ जातीं। परिणाम स्वरूप घर प्रतिदिन अखाड़ा ही बना जा रहा था। बारेण्ण के लिए जिंदगी दूभर हो गई थी, लेकिन जब-जब वह कमज़ोर दिखाई देता, तब-तब मरीगौड इसे चग पर चढ़ाता जाता, "चुप रह वे, एक मामूली कहासुनी हो जाए। उसी को तूल पकड़ा दूँ, इन सबको आँव लगा दूँ। सब देख लेना इनका रोना-धोना। करीगौड को भी लपेट में कर लूँ और सबकी धज्जियाँ उड़ा दूँ।"

मरीगौड घात लगाए बैठा रहा। पर, गाँव भर में अहिंसा का पाठ पढ़ने में ये जननेता भले ही सफल न रहे हों, खुराफात से ज्यादा भगदड़ कोई न मचा दे, इस तरह की एहतियाती कार्रवाई अवश्य कर छोड़ी थी। छोटी-मोटी हार भी कबूल कर लेना इन्हें बुरा नहीं लग रहा था।

गाँव वालों से रकम लेना बारेण्ण को भद्दा लगा। उसने मरीगौड का पढ़ाया पाठ ही दुहराया। मामला डिप्टी कमिश्नर साहब के इजलास में पहुँचा। सरकार

की ओर से उनके यहाँ हिदायत पहले ही आ चुकी थी। बाँध पर मुआयने के लिए आते-जाते एक्जिक्यूटिव इंजीनियर सुब्बारावजी सारा हाल जानते ही थे। ज़बानी सब कुछ कह दिया। फलतः अमलदार, मणेगार पुलिस के नायब दरोगाजी के साथ आए। बारेण्ण की ज़मीन की नपाई हो गई। चन्द दिनों बाद बारेण्ण के यहाँ सरकारी हुक्म आ गया। इसमें कहा गया था कि सरकार ने ज़मीन कानूनन् कब्जा कर ली है और तीन सौ रुपये मुआवजे की रकम तय हुई है। बारेण्ण से मिलने वाला काँट्रिब्यूशन अभी कानूनन तय होना बाकी है। नाला-बाबत कोई रोड़ा न अटकाया जाए। अगर हुक्म तोड़ा गया, तो कानूनी कार्रवाई की जाएगी।

बारेण्ण दंग रह गया। लेकिन मरीगौड़ की सलाह पर उसने कचहरी में बेदखली के खिलाफ़ दरख्वास्त दी। दोनों हाकिम बहादुर से मिले, अपनी दलीलें पेश कीं। हुज्जती रुख अपनायां। डिप्टी कमिश्नर मुद्दप्पाजी ने सब कुछ गौर से सुन लेने के बाद काफी समझाया-बुझाया। पर इसका कोई असर होता न देख उबल पड़े, "यह सरकारी काम है, भले ही उसके खर्चे से न हो रहा हो। सरकार से मंजूरी मिल गई है। इस काम के लिए ज़मीन कब्जे में कर लेने का हक उसे हासिल है। कचहरी से इसे उलट देने का कोई फैसला नहीं सुनाया जा सकेगा। अगर आपको यह मंजूर न हो, तो कचहरी के फैसले के मुताबिक सरकार कार्रवाई करने को मजबूर होगी। कांट्रिब्यूशन देना पड़ जाय तो रकम मुआवजे से चौगुनी ठहराई जा सकेगी। लेकिन फिलहाल इतना तो तय है कि आप काम में अडंगा नहीं डाल सकेंगे। इस वक्त आप चूक गए, तो पीछे लेने के देने पड़ जाएँगे। यह उनकी चेतावनी रही।

"हम विधान सभा में सवाल उठवाएँगे। अपने कई मेम्बरान हैं। मन्त्रियों के पास शिकायत ले जाएँगे।" मरीगौड ने हथियार चलाए।

"सुनिए, आप अपने को काश्तकार कहाते हैं? भारत के बाशिंदें हैं? अच्छी बात तो यह होती कि आप ज़माने का रुख पहचानते, उस काम की कीमत जानते, सेवा-सहकार से मिलकर हँसते-हँसते काम में लग जाते। यह सराहनीय प्रयास है! सरकार को इसका पता है। उसने इसकी सराहना भी की है। सब लोगों के लिए आदर्श बन गया है। यह रास्ता अख्तियार कर इज्ज़तदार होने के बजाय, झगड़े-टंटे का कमीनापन पसंद कर रखा है आपने! ताज्जुब है! निकल जाइए, निकलिए यहाँ से! किस पर धौंस जमा रहे हैं—मन्त्री, मेम्बरान का डर मुझे न दिखाइए। आप लोगों की बात सुनने वाला कोई अहमक

हो भी, तो उसकी नाक कट जाएगी सभा-सरकार में। यहाँ आपकी बेवकूफी, बेहूदगी और बदमाशी का रवैया न चलेगा, खबरदार !" इतना कहते हुए उन्होंने घंटी बजाई।

गाँव लौट आने पर भी मरीगौड पिनकता ही गया। पर, वारेण्ण का चेहरा पूरा मुरझा गया था। अपने सरदार की बातों पर सिर तो हिलाता ही रहा, पर रात गिर जाने के बाद शानभोग रामण्णाजी के यहाँ पहुँचा। सारा किस्सा सुना दिया, "हुजूर, मैं शुरू से ही धोखा खा गया। जिस गाँव में जनमा, वहीं मुँह दिखाने लायक न रह गया। घर पड़ा रहूँ। जीवन ही बोझ हो गया है। यह भी हो जाने दें तो एक के फायदे की जगह छह का घाटा। कमीनी पार्टीबन्दी में पड़ गया, बरबाद हो गया। सरदारों की रब्त-जब्त, शागिदों की मौत-मरम्मत। पलकें न लगतीं। खाना न रुचता। अपनी हालत क्या बताऊँ, वह गंगाधरेश्वरजी ही जानें...।"

उन्होंने समझाया, "भूल सुधार लेना कोई पाप नहीं। मामला इतना आगे नहीं गया है कि उसे सँभाला न जा सके। अगर चाहो, तो सब तय हो जाएगा।"

दोनों ने विषय के सारे पहलुओं पर विचार कर लिया। वारेण्ण के मान जाने पर उसकी इच्छा रखने रामण्णाजी ने यह दरख्वास्त लिख दी, "मैं अपनी मर्ज़ी से आधी एकड़ जमीन नाला-नहर बनाने के लिए लिख दे रहा हूँ। सरकार मेरे विरुद्ध आगे की कोई कानूनी कार्रवाई न करे, यही मेरी अर्जी है।"

दरख्वास्त लिख जाने पर उसने उस पर दस्तखत लगा दी। मरीगौड की तरफ फिर झाँका तक नहीं।

अपने प्रधान उपनेता की इस बग़ावत की गंध पाते ही मरीगौड दांत पीसने लगा, आग बरसाने लगा और उस बुलवा कर सहलाया भी, पर वारेण्ण के लिए यह कोई नई बात न थी। बोला, "गरीब हूँ, भाई ! किसी तरह दिन काट लूँगा। इन झगड़ों से क्या सबसे-वास्ता। बड़प्पन का स्वांग न रचना ही ठीक है।"

इतना कह वह चला आया।

वारेण्ण के साथ ही और भी कई जने मरीगौड से अलग हो गए। उनकी रही-सही ताकत भी जाती रही।

वारेण्ण का प्रकरण चारों ओर कानों-कान मालूम हो गया। कोई देर ही न लगी। आगा-पीछा देखते रहने वाले विघ्न-बाधा डालने से हाथ हटाने को विवश हो गए।

अनशन की चर्चा से गाँव तथा आसपास के इलाकों में बड़ा अनुकूल प्रभाव दिखाई दिया। जनता बांध के कामों में और अधिक दिलचस्पी लेने लगी। काम बड़ी फुर्ती से होता गया।

● ● ●

:२८:

एक दिन शाम को गंगाधर घर लौटा, तो अम्मा उसे देखकर कहने लगीं, "बेटा, आज भी तुम्हारे लिए न्योता आया है। मामाजी ने संदेसा भेजा है। आज भागीरथी की वर्ष गाँठ है।"

"अम्मा! इधर तो मामी जी के यहाँ न्योते का सिलसिला ही लग गया है। आमन्त्रितों की तो वहाँ फौज ही इकट्ठा हो गई होगी, क्यों?" गंगाधर ने हँसते हुए कहा।

"हाँ भाई! प्रथा जो चल पड़ी है।"

"ठीक है। महीने में एक हफ्ता या दस दिन उन्हीं के यहाँ कट जाया करे। पर्व-त्योहार का अवसर भी तो एक के बाद एक लगा ही रहता है। महापुरुषों और अवतारों की जयंतियाँ, तथा भिन्न-भिन्न स्थानों की रथ-यात्राएँ आदि की कोई गिनती ही नहीं। व्रत, कथाएँ इनकी सूची अलग है। ऊपर से वर्षगांठ। लगता है कि नंजत्ते, मादण्ण इनकी भी वर्षगांव भाभी जी मनाने लग जाएँ। अपने लिए तो सदाबहार है। बाँध पर जो खाना पहुँचाया जाता है, वह अपने यहाँ से आता है या मामी के यहाँ से, पता ही नहीं लगता। हम लोग गरीब हैं ही, इसी बहाने बचत हो जाए तो अच्छा ही है।" कह कर गंगाधर जोरों से हँस पड़ा।

"यही उन सबका उद्देश्य प्रतीत होता है, बेटा! एक नई बात सुना दूँ? तुम्हारे पिताजी ने तो सहसा 'हाँ' कह दिया। तुम्हारा भी मन जान लूं और पीछे जवाब दूँ। तुम्हारी राय क्या है? मामी ने कहा है कि 'जब से भागू बड़ी हो गई है, तब से घर पर कोई बच्चा ही न हुआ। बच्चे घर की शोभा होते हैं, बहिन! अपने शिवू को हमारे यहाँ रहने दो ना? इधर-उधर हो आने, छोटे-मोटे ऊपरी काम करने में सहारा भो हो जाय।' दूसरी बात भी कह दूँ। वेंकम्माजी कह रही थीं—'अपनी पार्वती घर कभी रहती ही नहीं। घर पर अपना हाथ ही टूट-सा गया है। अकेले से काम न निभने का। अपनी पट्टु चार दिन हमारे यहाँ छोड़ दो न? सुनो, बड़ा सहारा हो जाए।' समझ गए बेटा! असली कारण

यह नहीं । उन दोनों ने आपस में बातें कर ली हैं कि इस परिवार की कोई सेवा सहायता करनी होगी । हम लोगों की परिस्थिति तथा तुम्हारी कार्य-तत्परता का ध्यान उन्हें है ही । अपने बड़े अनुकूल हैं, हितैषियों में से हैं—इतने पर हस्तामलकवत् सब कुछ देखा-दाखा है । उनके प्रस्ताव कैसे ठुकरा दिए जायँ ? अशोभन जो हो जाए ? इसका गरूर देख भला, यह कहीं कह बैठी तो ? अपना सहारा भी तो वे ही हैं । किस बूते पर उनकी बातों को टाल दूँ ?····इसीलिए कह चुकी हूँ कि 'इसमें आपत्ति कैसी ?' अब तुम जानो, वे जानें । तुम भी मान जाओ तो····।'' अम्मा यहीं रुक गईं, गंगाधर का चेहरा ही देखती रहीं ।

"यह कहाँ का न्याय, अम्मा ?" गंगाधर सोचते कहता गया ।

"मैं कुछ भी समझ नहीं पाती, बेटा।"

"देखा जाएगा, अम्मा····यह क्या, इतने नारियल, गुड़, चावल, दाल, घी वगैरह ? इतना कभी एक साथ देखने को भी न मिला था !"

"सब दान में मिला है । सुना है, दक्षिणा में पाँच रुपए भी मिले हैं । वेंकटसेट्टी जी के यहाँ से तुम्हारे पिताजी को मिले हैं । नौकर के हाथ पठाया है । सत्यनारायण कथा की पुरोहिताई की भेंट है ।"

'अप्पाजी पुरोहिताई क्या जानें ? केवल श्राद्ध-भोज····।"

"सही है । वे क्या जानें ? उनके यहाँ सर्वदा तिप्पाजोइसजी ही जाया करते हैं । उन्होंने आज कहलाया था—'आज मैं खाली नहीं हूँ । तुम ही हो आओ । सीख लेना, कोई हानि नहीं । पुस्तक देखते पढ़ लेना । सेट्टीजी पूजन-पद्धति से परिचित हैं ही । वे अन्यथा मानेंगे भी नहीं ।' इतना दबाव डालकर भेजा । सेट्टीजी के यहाँ से भी आदमी आया था । इतना सब हो गया, तो तुम जान ही गए होगे ?"

गंगाधर चुपचाप सिर हिलाता रहा । मतलब साफ था ।

"नई दाल आई है । रसम् जायकेदार बनेगा, सो भेजी है ।' कहलाते मंडी शिवप्पाजी ने लगभग पाँच सेर अरहर की दाल भेजी है । 'यह मिर्चा अपने खेत का है ।' 'इमली, दुकान में पुरानी पड़ रही है । नई आने ही वाली है । आप इस्तेमाल कीजिएगा ?' इस प्रकार कुछ-न-कुछ भेजते ही रहते हैं । उस दिन तो पटेल रंगप्पाजी ने आधा बोरा भर रागी ढोवा लाये और कहने लगे—'हमारे लिए दो-एक सेर के करीब सत्तू बनवा दीजिए और अपने घर के लिए रख लीजिए ।' 'इतना अधिक है' कहने पर भी आग्रह करते छोड़ गए हैं । इस तरह लोगों की सेवा बढ़ती ही जा रही है । समझ में नहीं आता कि इसकी रोकथाम

का उपाय क्या हो ! जो कुछ हो रहा है, तुमसे कहे दे रही हूँ। तुम भी मौन रह जा रहें हो, सो मैं भी चुप रह गई हूँ। इनके अतिरिक्त उन तुम्हारी भाभी, वेंकम्माजी इनके यहाँ से तो अनाज ही नहीं, भोजन-मिठाई भी आ ही जाती है।"

"ठीक कह रही हो अम्मा। शुरू के दो-एक दिन तो लगा कि यह कोई विशेष ध्यान देने योग्य नहीं। इधर तो प्रतिदिन, नए-नए साथी, पुराने परिचित भी···।"

"सही है, एक-न-एक का सिलसिला लगा है। साग-तरकारी, जलावन, आम, कटहल आदि ला देने वाले किसान-उसका कोई पता भी नहीं लगता।·· ।"

"उस दिन भोर में ही एक खँचिया गोहरे कोई गिरा गए थे तो अम्मा ! मना करने पर प्रकट रूप से आने वाले भी शायद यही उपाय सोचने लगे।"

"यही नहीं, ला देने वाले प्रेम से ही ले आते हैं। अस्वीकार किया भी जाए तो कैसे? यदि किया भी, तो वह अशिष्टता हीं नहीं, दंभ भी माना जाएगा। अपने पास तो कोई सहारा भी नहीं।"

"सच है··· ।"

इस बीच 'अम्मा, अम्मा' चिल्लाती पद्मा दौड़ी आई। अम्मा के सामने दोनों हाथ बढ़ाए बोली,—"चूड़ियाँ देखना तो ! अच्छी हैं, अम्मा ?

"किसने पहनाई री ?"

"शामय्यंगारजी के यहाँ रंगनायकी के साथ चौदहखाते खेलने गई थी, तो चूड़ीहारिन आई थी। रंगनायकी को पहनाई गई, तो मेरे भी पहना दीं।"

वास्तव में शामयंगारजी बच्चों के लिए कुछ-न-कुछ दिलाते-देते रहते। स्वयं स्टेशनरी की दुकान के मालिक थे। बंगलोर-मैसूर आना-जाना लगा ही रहता था। वहाँ से लौटते तो कभी पान, बीन्स, बेला आदि लाते जिसमें का हिस्सा गंगाधर के यहाँ जरूर पहुँच जाता। स्लेट, खड़िया, पेंसिल, कागज़ आदि खरीदने पर एक का दाम लेते, तो दूसरा यों ही देते जाते। अबकी बार बच्चों के लिए एक-एक प्राईमर भी दी थी।"

इधर हाल में घटित और घट रही कई एक घटनाओं को लेकर गंगाधर मन-ही-मन विचार करने लग गया था। गंगाधर के सामने ही शिवू पढ़ते बैठा था। उसके बदन पर की रेडिमेड' कमीज़ खंडोजीरावजी ने ही पहना भेजी थी। लड़के ने पूछा कि 'दाम कितना लगा ? तो जवाब में हँसते हुए कहा था कि 'हिसाब

में दर्ज कर लिया है बड़े भैया की नौकरी लग जाए तो मय-व्याज के वसूल लूँगा ।' शिवू ने ही वयान किया था ।

इन दिनों ऐसे प्रकरण असाधारण नहीं रह गए । अम्मा ने जो साड़ी पहनी थी, वह शेकदार सूरप्पाजी की घर वाली सुब्बम्माजी से देवी-पूजन के अवसर पर दी गई थी । हिरियण्णाजी की अम्मा के श्राद्ध पर अवकी एक नहीं, दो साड़ियाँ मिली थीं । गंगाधर की जो चप्पल थी, वह गुण्ड से मिली थी । गुण्ड ने कहा भी—'अपने दोनों जनों की नाप एक है । तुम्हारे लिए एक जोड़ी बनवाई है । गाँव की बनी चप्पल है, जरा देखो तो सही, कैसी रहेगी ! वैसे वहुत टिकाऊ होती है ।' मना किया गया उन फटे-पुराने सीवन लगे जूतों को उतरवाया था और चप्पल पहनने को मजबूर किया था । पार्वती भी अपने बड़े भाई से पीछे न रही । उसने भी एक जोड़े मोजे और एक जर्सी बुनी थी । दोनों सामने लाये गये तो 'धन्यवाद' कहते उन्हें स्वीकार किया और पूछा कि 'बड़ी छिपी रुस्तम हो । बुनने के लिए वक्त ही कहाँ रहा ?' इस पर उसने भी प्रश्न किया—'ड्राइंग के लिए समय कैसे निकाला था ?' गंगाधर की रात में आँखें जो जल रहीं थीं, वह याद आ गई ।

सावित्री जो साड़ी पहने थी, वह भागीरथी पहन चुकी थी, यह गंगाधर को मालूम था । हँसी में जयलक्ष्म्माजी सावित्री से जो कह चुकी थीं, उसका भी हाल गंगाधर जानता था । एक बार वे भागीरथी के कमरे में गईं । उसे सदा की भाँति सहेजने लगी थीं । दो नई साड़ियाँ बाहर ही फेंकी मिलीं । उसने कहा—"इन्हें बक्से में क्यों नहीं रखती, बिटिया ?"

"उसमें जगह भी तो हो ?"

"कोई चिंता नहीं । इन्हें सँभाल कर रख देती-रोज़ पहननेवाली जो हैं ?"

"पहन चुकी हूँ, अम्मा ! उनकी अब जरूरत न रह गई ।"

"यह क्या कह रही री, हाल में ही नरगेरे से मँगाई-गईं ?"

"मँगाई गईं तो क्या ? एक दिन पहन तो ली ? उकताहट आ गई । भली लगीं, रख लीं, पर मन उचट गया है । भूल हो गई ।"

"तुम न पहनो तो सावित्री को दे दो भला ।"

"यही क्यों, और भी बढ़िया दे दूँगी, उसे जो पसंद आए···।"

"कोई जरूरत नहीं । ये भी अच्छी ही हैं । वह भी तुम्हारी तरह शौकीन हो गई, तो वेड़ा पार कैसे हो ! वे बाकी साड़ियाँ दूसरे मौके के लिए सुरक्षित रखो ।"

साड़ियाँ दिखा कर भाभी ने सावित्री से पूछा "तुम्हें ये पसंद आएँगी ?"

जवाब में सावित्री ने कहा था "ठीक तो हैं, मामी।"

सावित्री जो भी माँगती, भागीरथी खुशी से देती जाती। उसे अपने कई कंगन पहनाती रही। अपने गहने जबर्दस्ती पहना देती, बनाव-शृंगार कर भर उसे साथ ले जाती और सबके साथ स्वयं भी प्रसन्न होती। पाउडर, स्नो, लिपस्टिक, सेंट आदि भी मिल जाते, पर सावित्री को इनकी आवश्यकता कभी हुई नहीं।

चन्द रोज़ पहले की बात है। मादण्ण गंगाधर के पास एक दफ्ती की पेटी ले आया। खोलने पर उसमें एक लक्स साबुन, एक पाकेट प्रिंस ब्लेड, एक हाथी-दाँत की कंघी, बेल्जियम का एक बड़ा आईना, एक बोतल 'टामको सेटेड' गरी का तेल, फ्रांसीसी इत्र की सीसी और छह सनलाइट साबुन आदि दिखाई पड़े। नीचे मखमल के शुभ्र छह रूमाल थे। हर एक के कोने में लाल रेशम का कढ़ा 'जी' अक्षर था। रूमाल उठाने पर उसमें से गिर पड़े पुर्जे में यह लिखा दिखाई पड़ा !

"तुम प्रतिदिन नागरिक बने रह सको, इसके लिए ये साधन हैं। चेहरे पर का मिट्टी-पसीना पोंछ लेने के लिए रूमाल हैं।"

गंगाधर ठठा कर हँस पड़ा। चीजें घर पर भी सबको दिखाईं। उसकी उंगलियाँ दो दिन की दाढ़ी पर से बिखरे केशों पर पहुँची। हाथ और बदन जगह-जगह सूँघते धोती कमीज़ देखकर प्रसन्नता से मुस्करा उठा। जवाब में इतना ही लिख भेजा–

'मेम साहब,

आपका आदेश सिर-आँखों पर रख कर पालन करूँगा। आपकी सेवा में उपस्थित होते समय यह जन आपको घृणा एवं रोष प्रकट करने का मौका न देगा। यह आश्वासन दे रहा हूँ।

इस उदार दान के लिए अनेक धन्यवाद। यही कृपा इस दीन पर बनी रहे और महीने दो महीने नागरिक बने रहने के साधन सुलभ बनाए जाएँ।'

चरणों का दास

गं०

अजीब लड़की है ! भागीरथी के विनाद का भाव गंगाधर जान गया था।

छोटा भाई पुस्तकें लिए मास्टर नारणप्पाजी के यहाँ जाने के लिए निकला। हाँ, उन्होंने हाल ही में एक पुस्तक की दुकान पर लड़कों को देखा था और कहा,

"कल से साँझ के समय अपने यहाँ आ जाओ। तुम्हारे क्लास के ही चार लड़के और आएँगे। उन्हें पढ़ाता रहूँगा, तो तुम भी सुनते जाना।"

शिवु संदेह से पड़ गया, तो बोला, "अम्माजी से अनुमति माँग लेंगे, मास्टर साहब !"

बाकी लड़के प्रति माह तीन-तीन रुपए देते थे। यह बात इन लड़कों को मालूम थी। इस पर मास्टर साहब ने कहा था, "वे मना नहीं करेंगी। तुम लोगों को फ़ी वगैरह नहीं देनी है। तुम्हारे लिए अलग पढ़ाई थोड़े ही हो रही है ?···जो फ़ी मिलनी है, सो तुम्हारे बड़े भैया देते आए हैं।"

मास्टर साहब सड़क पर मिले, तो गंगाधर ने कृतज्ञता व्यक्त की और कहा, "हमारे कारण आपको अधिक परिश्रम करना पड़ गया।" सहज ही वे उत्तर में बोले, "कहाँ का परिश्रम, भाई ? तुम खाली बैठे थोड़े हो-इतना संकोच क्यों ?" और आगे बढ़ गए थे।

इनके मकान से सटे पड़ोसी मकान के मालिक नरसिंह भट्टजी थे। उन्होंने अपने मकान की खपरैल जुड़वाई, तो इन्हें पता दिए बिना ही दीक्षितजी के मकान की खपरैल भी जोड़ देने के लिए आदमी लगा दिए।

"यह कहाँ का न्याय है ? किसने काम पर लगाया भाई ?" चिल्लाते अच्चम्माजी ने कारीगरों को रोका, तो भट्टजी खुद आ गए और कहने लगे, "जोड़ने दीजिए अच्चम्माजी ! मैंने ही कर रखा है। अपने ऊधमी लड़कों ने गेंद आदि फेंक-फाँक कर, ऊपर चढ़कर न जाने कितने खपरैल खराब कर दिए होंगे। जोड़ने दीजिए, कोई गलत काम नहीं, हम भी तो पड़सी ही हैं, बाहरी तो नहीं। अपने लड़के को देखिए, गाँव भर का बोझ कंधे पर नहीं उठाया ?" इतना कहते लाख मना करने पर भी उन्होंने काम शुरू करवा ही दिया। मजदूरी एवं खपरैल के दाम के रुपए लौटा भी दिए थे। यह समाचार लड़के को सुनाते समय अम्मा का चेहरा उतरा न था।

एक दिन शाम को करीगौडर इसे अपने यहाँ ले गए। घर पर थोड़ा-बहुत रद्दोबदल और बढ़ती के बारे में इससे सलाह माँगी थी। घरन, खम्भे आदि का हिसाब भी बताया था। चलते समय पान के साथ बीस रुपए भी रखे मिले। "छी:, यह सब क्या है ? बच्चों के खिलवाड़ सरीखा काम है। मैं नहीं लेने का।" कहते गंगाधर ने नहीं लिया।

"फ़ी है, इंजीनियर साहब ! आपके लिए खिलवाड़ भले ही हो, हमारे लिए तो बहुत बड़ा है। आप कोई दान-दक्षिणा नहीं ले रहे हैं। कृपया

अवश्य स्वीकार करें।" बड़ा आग्रह भी किया था।

"आपका स्नेह ही पर्याप्त है।"

"स्नेह स्नेह है, और व्यवहार व्यवहार"। दोनों मिला दिए जाएँ, तो एक अवश्य ही विकृत हो जाएगा। आप ही सोचिए तो, बाँध पर इंजीनियर के नाते कितनी कड़ाई बरतनी पड़ती है। चूक हो जाए, तो कोई बच नहीं सकता!" कहते हुए गौडर हँसते कहने लगे। गंगाधर भी उसे याद कर मुस्करा उठा था।

फ़ी के बारे में देर तक चर्चा होने पर सिद्देगौडर समझाने लगे, "यह उचित ही है; भाई! हमें असंतुष्ट देखना तुमको रुचता नहीं? अपना इंजीनियर जानकर दुबारा बुलाना होगा कि नहीं? भविष्य में और भी कई काम पड़ेंगे ही। ले लो। बुजुर्ग की बात मान जाओ।"

इतना अनुरोध करने पर वह टाल न सका, रुपए ले लिए। उसने पूछा भी, "भविष्य में काम कब शुरू कर रहे हैं?"

जवाब मिला था, "शुरू हो जाएँगे। अभी जल्दी कैसी? बाँध उठ जाए, उससे खाली हो जाओ, तो कभी भी शुरू हो सकेगा।"

इसके बाद साँझ-सबेरे या खाली रहते समय कोई-न-कोई अपने यहाँ लिवा ही जाता और सलाह माँगता ही रहता। दीवार में दरार पड़ गई, छत चूने लगी, फर्श में सीड़न है, दीमक बढ़ गए, धरन-पाटन का हिसाब लगाना है, मकान में कोई रद्दोबदल जरूरी, है आदि कुछ-न-कुछ लगा ही रहता। दो-एक धनी-मानी आग्रह से जो फ़ी के रूप में देते, वह कोई बड़ी रकम न होती, पर इससे काफ़ी काम निकल जाता था। जहाँ कुछ भी न लेता वे ही लोग संख्या में अधिक थे, वहाँ गरीब किसान भाई ऋण चुकाने के बहाने सेर भर मक्खन, एक गट्ठर जलावन या अन्य किसी भी वस्तुरूप में गंगाधर के जानते या उसके जाने बिना ही अवश्य पहुँचा जाता। गंगाधर को यह सब मालूम हो चला था। कभी-कभी वह अपने से सवाल कर बैठता, "ये लोग अपने काम आज तक कैसे चला लेते रहे होंगे? फिलहाल अपनी उपस्थिति का फायदा उठा रहे होंगे? या किसी-न-किसी रूप में मुझे सहायता देने का ध्येय भी इनका रहा हो!"

यही नहीं, एक दिन नंजत्ते भी अम्मा को कुछ देने के बहाने कह गई थीं, "री अच्चम्मा! ले ये दस रुपए। खर्चे के लिए काम आवेगा ही। तू बड़ी यातना भोग रही होगी। बेचारी! कमाने लायक लड़का ही हाथ समेटे रहे, तो और क्या उपाय रहे? कंठी ने अपने वेतन से पचास रुपए भेजे हैं। इतना

मैं किस काम में लगाऊँ ?" कहा ही नहीं, अम्मा को देने भी लगी थी।

अम्मा यह सुनाते समय बोलीं थी—"यह कैसे ले सकती थी, तुम ही बोलो बेटा ! इस समय कोई जरूरत नहीं। जरूरत पड़े तो ले लूंगी। यही जवाब दे दिया। यह सुन वे दबाव डालकर कह चलीं, 'लेती जा। गरीब का गरूर दाग लगवाने के बराबर।' 'पीछे देखा जायगा' कहकर मैं चलती बनी।"

यह सुनाते अम्मा बड़ी उदास हो गई थीं। गंगाधर इसे भूला न था। सच ही तो, पात्र के अनुरूप ही खारा पानी, पीने लायक मीठा नहीं। पर, वह भी पानी ही है।

पिताजी आए, लोटा ले कर निकल पड़े। गंगाधर का मन फौरन अतीत की एक साँझ की ओर मुड़ा। उस दिन वह सिर-दर्द से परेशान था। थोड़ी देर पहले ही बाँध पर से थका-माँदा लौटा था, चौतरे वाले अपने कमरे में लेटा था। पलकें लगी न थीं। किवाड़ बन्द था। कुछ समय बाद पिताजी खाँसते हुए लौटे। सुँघनी तैयार करते चौतरे पर बैठे रहे। वहीं पुराणिकजी, निर्वाण्णय्याजी दोनों आ धमके। उस वक्त की घटना थी। विवश हो वार्तालाप सुनना पड़ा था।

"अपने सपूत की प्रैक्टिस कैसे चल रही है, दीक्षितजी ?" पुराणिकजी ने प्रश्न उठाया।

"प्रैक्टिस, किस चीज़ की ?" यहीं तक पिताजी की बात पूरी हो चली थी। बाद को पुराणिकजी और निर्वाणय्याजी का ही मैदान रहा।

"वही, इंजीनियरिंग वाली। सुना है, कई लोग बुलाने आते रहते हैं, प्लैनिंग वगैरह के सिलसिले में ?"

"बड़ी रकम हाथ लग रही होगी। कस करके वसूल करता है फ़ी, सुना है।" निर्वाणय्याजी हँसे।

'खूब ! जंचने वाली बात है। मुफ्त में कौन खटे ? उतनी दूर जाकर पढ़ाई हासिल नहीं की ? कहिए दीक्षितजी ! खुले बाज़ार में एक बोर्ड भी लग जाए। सलाहकार इंजीनियर, बाँध उठाने के लिए वेतन माँग लेना चाहिए। कहिए दीक्षितजी, क्यों न माँगा जाय ?" पुराणिकज़ी ने पूछा।

"मैं भी इससे सहमत हूँ, सर ! मजे में आमदनी भी हो जाए। कोई जुर्म नहीं है, कदापि नहीं। ऊपर-ऊपर से सेवा आदि का ढकोसला क्यों ? सीधे रह जाए····मेरा मतलब इतना ही है कि सेवा लोक में भली मानी जाए, दस-पाँच उसकी तारीफ भी कर लें। पर उससे बड़ा नुकसान है। न्यायोचित दाम

नहीं मिलने का ! बस ! और कोई आपत्ति नहीं दीक्षितजी !" निर्वाणय्याजी अपने को सँभालने के लिए छटपटा उठे ।

"लड़के ठहरे । समझते नहीं । नाम कमाने की धुन सवार है ही, पर धन की लालसा भी सहज ही मसल नहीं दी जा सकेगी । इसकी लपेट से कौन बच सका है ? आजकल न जाने कैसे-कैसे महानुभाव माने जाने वाले ही आरम्भ में सेवा का बाना पहने अन्त में पैसे के पारावार में गोते लगाते देखे गए हैं । इस दशा में, साधारण जनों की क्या बिसात ? किसी पर दोष नहीं लगाया जा सकता । पर अज्ञानी लोग निरी दंभ-भावना से—कोरी दर्प-दीप्ति ही मानिए, आप चाहे सहमत हों या नहीं, सेवा-प्राप्ति दोनों को मिला कर घपला बनाए रखा है, जीवन को झमेले में डाल लिया है । ऐसों से न तो पवित्र सेवा ही बन पड़ेगी, न परितोषदायिनी प्राप्ति ही संभव । यही दयनीय दशा देख मैं विशेष द्रवित हो जाता हूँ । आपके लड़के के बारे में मैं नहीं कह रहा, साधारणतः लोक में जो लक्षित हो रहा है, बस वही कह रहा हूँ । प्राचीन युग में विजयनगर साम्राज्य के दिनों में विद्यारण्य-सदृश महापुरुष थे । इसके माने थोड़े ही है कि आज भी कोई उनका स्वांग रचे ? वे तो थे ही संन्यासी । गंगाधर के मन में ऐसी कोई आकांक्षा न होगी—मतलब उसने कभी इसे व्यक्त नहीं किया है, बस इतना ही ।"

"मैं भी यही लोकाभिराम शैली में कहने वाला हूँ, दूसरा कोई आशय नहीं । संन्यासी वे ही कहलाते हैं, जो इह लोक को सदा ही हेय समझते आए हैं । मोक्षप्राप्ति ही उनका लक्ष्य है । मोहमायाजन्य संसार से भली-भाँति परिचित हैं । इह में फँसे रहे भी कमाई से धन-प्राप्ति से अपने को बचा नहीं पाते । यह तो सहज-सिद्ध है । इस दशा में मेरा केवल यही प्रश्न रह जाता है कि लोग तरह-तरह के रंग में क्यों रँगे रहते हैं ? कहिए, आपकी राय क्या है ? यही न ? कोई भी हो, साफ़ रह जाए तो जाने क्या गँवा बैठे—यही चाल चला करते हैं । दाएँ हाथ से दी जाने वाली सेवा बाएँ हाथ से मेवा के रूप में ले ही ली जा रही है ।"

"यह नहीं, सर ! मुँह से सेवा, हाथ में मेवा ! ह्ह हा ! चारों ओर ऐसे कितने मिल जाएँगे, जरा खुली आँखों से देखिए भला । कहिए दीक्षितजी, सच-सच क़हिए ।"

"गंगाधर की निन्दा नहीं हो रही । पर यही गड़बड़घोटाला होकर रहेगा, यह मैं जानता था । कारण बताऊँ ? इतना लम्बा परिवार ! अकेले दीक्षितजी

मर-खप रहे हैं। यह उचित नहीं। इस अनौचित्य को वह भी पहचानता है, यह मैं कह सकता हूँ। वही हुआ भी। होना चाहिए था—बेशक ! इस अधकचरी राह को तज दे, सहज ही कमाई शुरू हो जाए, तो कोई मुँह न खोल सके। इस समय की कानाफूसी, अटकलबाज़ी सब शांत हो जाए—हाँ, दीक्षितजी, हम भली-भाँति समझते हैं— एक की जगह चौगुनी रकम भी हासिल हो जाए, चैन से रहा भी जाए। कहिए आपका क्या विचार है ?"

"मान गया सर ! यह गलतफ़हमी बन्द होनी चाहिए ऐसे शानदार राजपथ के रहते हुए। भाड़ में जाए यह सेवा। व्रत विफल हो जाए तो सुख से वंचित न हो, यही जायज़ है न ? इतनी देर तक हम यही आपसे कह रहे हैं, दीक्षितजी ! अपने लड़के को तनिक समझा दें। इस समय तक अक्ल ठिकाने लग गई होगी, दिमाग का जंग छूट गया होगा""मान लीजिए, इंजीनियर का वेतन इस गाँव वाले न दे सकें, तो दूसरी जगह है ही ! गाँव क्या, वस्ती क्या ? वेतन मिल जाए यही काफी है, आप सबका सुखी रहना ही अभीष्ट है। मानेंगे तो ? यही अपनी चर्चा का विषय भी है। अपने को क्या करना है, दीक्षितजी ! किसी से कोई द्वेषभाव नहीं। सच बात निडर होकर कहे जाते हैं—उस""उस"" मस्तक छिनवाने को भी प्रस्तुत तिम्मण्णनायक की भाँति।"

"इससे अधिक रह क्या गया, सर ? अपने लिए रहा एक साध्य, वही 'पर' है। उससे ऊँचा कुछ नहीं तो। और उसी की चर्चा में अपना सत्कालक्षेप भी हो जाता है। किसी की निंदा से क्या हासिल हो सकेगा ? पेट में जलन हो उठे, तो इधर-उधर को बातें कुछ बाहर निकल ही पड़ेंगी, अन्यथा नहीं।"

साथियों ने साँस खींचते सुँघनी चढ़ा ली, पिताजी को प्रणाम किया और विदा हो गए।

उसी रात को पिताजी ने संवाद का सार बताते हुए पूछा था, "सुना भाई ! यही मैं तुमसे कबसे कहता आया हूँ ! इस समय औरों से ये बातें सुन कर गूँगा रह जाना पड़ रहा है। सुनाम की बात तो दूर, बदनाम होना पड़ा है। वह ढकोसला माना जाने लगा है। गाँव भर में 'यही चर्चा है। इससे फायदा ही क्या, इज्ज़त ही कैसी ? इससे हाथ क्यों नहीं खींच लेते ?"

गंगाधर ने संक्षेप में ही उत्तर दिया था, "सेवा तथा धन-प्राप्ति में कोई तो विरोध नहीं। किसके माध्यम से कौन साधा जाय, यही प्रमुख ठहरता है।"

"बड़ी धन-प्राप्ति हो रही है ! वह तीन सौ कहाँ, यह तीन कौड़ी कहाँ ! इससे क्या हासिल होगा, ब्याह-जनेऊ का प्रबन्ध भी नहीं। गहने-वहने क्या

आएँगे ? निरा अविवेक ! बात छेड़ो, तो शुरू हो जाए, तुम्हारा तत्वोपदेश ! सुनते-सुनते नाक में दम आ गया है। अपनी ही हाँके जाते हो। हमारी बातें तुमको कहाँ जँचेंगी ! तुम-सरीखे बुद्धिशाली को इतना अज्ञान सताने लगे, तो ग्रहों की क्रूरता ही कही जाएगी, और कुछ नहीं। या जानबूझकर ही हमें आग में झोंक रहे हो ?" पिताजी उबल पड़े।

गंगाधर मौन रह गया था। इसका मतलब यह नहीं कि पुराणिकजी तथा निर्वाणय्याजी की उखड़ी बातें उसे सताती न रही हों, वे चोट पहुँचाने वाली न रही हों। कई दिनों तक यही यातना बनी रही, इस वक्त भी कई बार उसे कसती जातीं, उसमें मरोड़ पैदा करती जातीं। स्वार्थधता, धोखाधड़ी की बात कहीं भी छिड़ती, उनके बारे में जो भी कुछ पढ़ता, वे बातें स्मृतिपटल पर सजग हो जातीं। पर गाँव की तरफ़ से व्यक्त हुई ममता के सैकड़ों चित्र गवाह बन महाप्रवाह की भाँति मन में उमड़ आते और चन्द आदमियों की ओर से फेंका कूड़ा-करकट साफ कर देते। आत्मविश्वास का स्नान उसे परिशुद्ध रखने में समर्थ हुआ था।

इस समय भी गंगाधर अम्मा के सामने खड़े होकर उनकी सुनाई घटनाओं पर ध्यान देता तो पल भर में वे चित्र अंतस् में अंकित हो उठते, वही पुराना अनुभव दुबारा हो जाता। गाँव वालों से उपकृत हो मूक बनी अम्मा से उसने पूछा, "अम्मा ! मेरा प्रिय सुभाषित—सज्जन सेवा के माध्यम से ही धन-प्राप्ति के अधिकारी होंगे--चरितार्थ हो सकेगा, यही इन सबका इंगित लग रहा है। है न अम्मा ?"

"मैं क्या बताऊँ बेटा ! कुल मिला कर यही ठीक लग रहा है कि यह सब तुम्हारी ही कमाई है। अन्यथा, कब से अपना परिवार यहाँ है और कितनी साँसतें झेलता आया है। यह सही है, करुणाजनित थोड़ी-बहुत सहायता अवश्य मिल जा रही थी। पर, इस रूप में गाँव-का-गाँव प्रसन्नता से अपना परिवार-संचालन करता रहे, यह सूरत अभी दिखाई देने लगी है, बेटा !"

"इसके लिए हमें लघुता-बोध की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, अम्मा ! हम यथाशक्ति समाज की सेवा में लगे हुए हैं। उससे जो बन पड़े वह करता आ रहा है। यही ठीक ठहरता भी है।" कहता गंगाधर स्नान के लिए निकल पड़ा।

हिरियण्णाजी के यहाँ पहुँच कर उसने देखा कि आँगन में, अन्दर भी अपने समान ही कारीगर, आए असामी लोग, घर के नौकर, कई घरों के बच्चे आदि

सभी खाने बैठे हैं। जयलक्ष्म्मा ही साड़ी कसे परोस रही थीं और सबकी कुश-लता तथा आवश्यकताएँ पूछती जा रही थीं।

"कहो भाई, नंजेगौड, घर पर सब आनन्द से तो हैं ? तुम्हारी बिटिया की जचकी हुई ?" "बोलो, भाई मादण्ण, थोड़ी खट्टी दाल दूँ ? भात अभी तो ठीक सना ही नहीं ?" "यह क्या तिम्मब्बा, कुछ भी नहीं खाया ?" "श्रीकंठ, दिन में तुम्हारी अम्मा आई क्यों नहीं ? तबीयत तो ठीक है ?", "विमला ! तुम्हारे पिताजी लौटे ? रसम् तीता तो नहीं ?" "भोजन में कृपया कोई संकोच न करें। मैं भी बुढ़ा गई हूँ, सरपट सरपट आ-जा नहीं पाती।" ये ही बातें उनके मुँह से सुनाई दे रही थीं।

नंजत्ते आँगन में ही बैठी "थोड़ी खीर ले आना, पानी परस दो" आदि आदेश जारी कर रही थीं। गुण्ड तथा पार्वती इसी की राह देख रही थीं।

"आ गए, भाई, गंगाधर !" अन्दर इसके कदम पड़ते ही जयलक्ष्म्मा ने स्वागत किया और कहती गईं, "यह हाथ में झौवा लिए कैसे आए हो जी ? रात की ड्यूटी पर जा रहे हो ?"

"ना मामी ! यह गुड्डी की वर्षगाँठ पर गरीब की ओर से भेंट है।" कहते हुए गंगाधर ने झौवा ज़रा और आगे बढ़ाया, ताकि सबको वह दिखाई पड़ जाए।

आँगन भर की दृष्टि सहसा उसी ओर घूम गई। 'हो-हो' की आवाज़ के साथ हँसी चारों ओर सुनाई पड़ने लगी। छोटी दीवार के पीछे बैठे बच्चे भी खाना भूल गए, उठ भी गए और देखकर हँसे भी। नंजत्ते का मुँह भी तनिक खिल पड़ा, पर तुरंत ही उन्होंने उसे कड़ा बना लिया।

"जाओ, बैठो, जाओ ! खाना खाते समय पंगत से यों उठ जाना ठीक नहीं।" नंजत्ते ने धमकाया।

बच्चे लौट आए। ठहाके की गूँज कम होती गई, पर आपस में हँसी-ठट्ठा जारी ही रहा। परस्पर बातचीत भी चल ही रही थी। भागीरथी असलियत को जानने की उत्कंठा से अपने कक्ष से तेज कदम बढ़ाती आई। हरे रंग वाली जरीदार साड़ी में नव वधू के समान शोभित भागीरथी को देखते ही गंगाधर के हाथ का झौवा सहज ही नीचे गिर पड़ा। जयलक्ष्म्माजी कढ़ी परसना भूल गईं। दाएँ हाथ की कलछी बाएँ हाथ में रही पीतल की बाल्टी में धर दी। गिरा पड़ा झौवा उठा लिया। कमरे में बैठे हिरियण्णाजी के पास उसे दिखाने ले गईं और बोलीं,—"यह भागीरथी के लिए गंगाधर की ओर से उपहार है।" इतना कह

हँस पड़ीं, लौट आईं। अण्णाजी भी मुस्करा उठे।

भागीरथी की भवें तन जरूर गईं, पर आँखें खिल पड़ीं।

"मिट्टी का मजदूर और क्या दे सके भला ? मिट्टी ही तो ! इसकी ओर से उपहार न मिला, इसी सोच में सिसकियाँ भरती अन्दर बैठ गई थी।"

भागीरथी शुरू की किरकिरी भूल गई और विनोद में सम्मिलित हो चली।

"मृत्तिका से मीलों दूर रही कन्या के लिए लायक उपहार।" गुण्ड सहमत हुआ।

पार्वती और जोरों से हँसती ही रही।

"भाग्यशाली महाशय व्याह-जनेऊ के अवसरों पर साड़ी, खन, गहने, कपड़े, प्याला-तश्तरी आदि उपहार में देते हैं। यह नया तरीका निकल पड़ा लगता है। जहाँ देखो, वहीं इसकी यह उजड्डता दिखाई पड़ जाए। गँवार सरीखा हास-परिहास ! कल जिसे ब्याह कर लाओगे, उसके हाथ में भी यही झौवा थमाओगे। मैं तुम्हारा हाल न जानूँ ?" नंजत्ते की यह खीझ किसी पर असर न डाल सकी।

"और क्या ? मिट्टी का झौवा न सही, तलने की कढ़ाही ही सही। कोई अंतर नहीं ! वही ठीक होगा नंजत्तो—आपको वही मिली भी होगी ?" गंगाधर ने नंजत्तो को भी लपेट लिया।

"रहने दो। मुझसे हँसी-मजाक न करो। तुम्हारी माँ से भी मैं वड़ी ठहरी, समझे ?"

"चन्दन की बनी चारपाई, सोने का बना पालना और नाटक की वेशभूषा—इन सबसे यह झौवा अति उत्तम है, नंजत्ते ! आजकल की रंगभूमि, ड्राइंग रूम नहीं, क्लब भवन नहीं, कर्म-भूमि है। छाँव-तले खोखले आदमियों के बीच नहीं, थोथी पोथियों के संग नहीं, चूल्हे की आँच के सामने, चिलचिलाती धूप में, तलने वाली कड़ाही के पास, मिट्टी के झौवे के नीचे, मतलब तपोवन में, कर्मयोगियों के बीच…।" गंगाधर सहसा रुक गया। यह उसे भी नाटकीय अभिनय-सा लगा।

"वन्स मोर !" भागीरथी ताली बजाते शिशु की तरह नाक सिकोड़ कर चेहरा बनाए कहती गई।

"तुम क्या बक रहे हो, कौन जाने ! केवल वन्दर-भालू का नाच है।" नंजत्ते आँचल सँभाल कर चेहरा घुमाती बोलीं।

"भद्र महिला महोदयाजी, आपकी ओर से भेजे गए ब्लेड, साबुन आदि प्रसाधन की अनेक वस्तुओं का निस्संकोच भाव से उपयोग हो रहा है। इस समय

सेवक आपकी निगाहों में कैसा लग रहा है ? आपको पसंद है ?" गंगाधर सिर ऊँचा किए सीना बढ़ाए खड़ा हुआ और पूछा ।

"पहले से अच्छा है, बर्दाश्त किया जा सकता है । निरा बनमानुष नहीं है ।" भागीरथी तनिक लाल हुई, तुरंत सँभल कर शान से कह गई ।

"धन्य··वा····द !" गंगाधर सबके साथ हँस पड़ा ।

"अच्छा खाने चलो-पत्तल लग गई है । तुम लोगों को बातें कल के लिए कुछ रह जायँ तो । या इन्हीं बातों से पेट भर लोगे ?' जयलक्ष्माजी ने सतर्क किया ।

'मुझे तो भूख ही नहीं लग रही, अम्मा !" भागीरथी ने अलापना शुरू किया ।

"नई बात थोड़े ही ?···'उन लोगों को भी आने दो, एक कौर खा लूँगी' कह रही थी तो ?" अम्मा ने पूछा ।

"हाँ·····"

"तो चलो, बैठ जाओ ।"

"रहने दीजिए मामी ! उसके बदले मैं ही दोनों पत्तलों पर हाथ साफ कर दूँ ।" गंगाधर कहने लगा ।

"मिहनत करे तो भूख लगे । हम सबके पेट में खलबली मच गई है ।" कहते हुए गुण्ड उठा ।

पार्वती भी संग हो ली ।

"हाँ, यही तो अन्तर विश्रामजीवी तथा श्रमजीवी के बीच है । जरा मालूम हो जाए भला । कायक ही कैलास है—गुड्डी को यह समझाते-समझाते मैं हार गया । परिश्रम ही फलदायिनी आलकेमी है । कांतिहीन जीवन में चमक जगाने वाली होती है । सत्त्वहीनाओं को धीरागंनाओं में····।"

"नाक में दम आ गया ! यह लो, गुण्ड भी लय से ताल मिलाने लग गया । चाबी घुमा दो, रिकार्ड घूमने लग जाए, कितनी देर तक ।"

"अपनी कमज़ोरी है । मेरा क्या बस चले ? तुम-सरीखी जब तक रहें, तब तक ? हर कोई ᐯक-न-एक कमजोरी का शिकार है । तुम्हारी····।"

"दया करो भाई मुझ पर !"

"इससे जो कुछ कहना था, इसे जो भी गीत सुनाना था, सब समाप्त हो गया, मामी ! घसीट ले जाकर मिट्टी का माघस्नान कराना ही शेष रह जाता है । मिट्टी का काम माने कोरी मिट्टी मान बैठी है । वह जीवन को आध्यात्मिक आलोक से रंजित करने वाली भी है, इससे परिचित नहीं ।"

चारों खाने के लिए गए ।

"जोड़ी खूब फबती है, माँ जी ।' परोसती रही जयलक्ष्म्माजी से नंजेगौड बोला ।

"बचपन से इनका यही हाल है । साथ हुए नहीं कि होड़ाहोड़ी शुरू हो जाए । केवल बातें ही होती रहेंगी । कोई जरा भी परेशान हो तो बाकी विशेष विकल हो उठते हैं ।" मुस्कराते जयलक्ष्म्माजी ने कहा ।

"लड़कों को यही सोहता है, माँजी ! यही रोचक भी है ।" गौडर प्रसन्नता व्यक्त करने लगे ।

"कैसी रोचकता ! मैं तो इस छेड़छाड़ की बातचीत को कानों से सुन नहीं पाती !" नंजत्ते खीझ ऊठीं । पर, लगा ये बातें किसी ने सुनी ही नहीं ।

खाना खत्म हुआ । घर लौटने से पहले गंगाधर जयलक्ष्म्माजी से रसोई में ही मिलने गया और बोला, "मामीजी ! सुना कि आपने अम्माजी से शिवू के बारे में कुछ कह रखा है । आज तक मैं आप ही के यहाँ पला हूँ । इस समय भी अपने परिवार का न जाने कितना बोझ आप पर··· ।" यहीं उन्होंने इसे टोक कर कह दिया—"कैसी बात कह रहे हो, गंगाधर ! तुम्हारा काम बन गया तो काम पूरा हुआ मान लिया ? तुम्हारा छोटा भाई भी रह जाए तो नुकसान कैसा ? यहाँ तुम्हें कोई परेशानी रही है क्या ?"

"राम कहिए, मामीजी ! यह क्या तमाशा खड़ा हो गया ! कौन बालक है जिसे यह·· ।"

"तो बातें न बढ़ाओ । कल ही भेज देना । समझे । अपनी भी इच्छा है । तुम लोगों के हित से ही नहीं ।" निर्णय हो ही गया ।

"इसे क्या समझ रखा है, अम्मा ! ऊपर से भोलाभाला लगता है तो अंदर-अंदर डाह से भी भरापूरा है, मैं न जानूँ···शिवू यहाँ आ जाय तो इसका मुकुट कौन उतार लिया जाएगा ?" इसके पीछे पीछे आई भागीरथी ने खींच के तीर मारा ।

"स्वादिष्ट भोजन के बाद मीठी झिड़कियाँ भी खाने को मिल जाएँ तो मिठास और बढ़ ही जायगी ! पचेगा नहीं ।" गंगाधर ने कहा और हँसते हुए वहाँ से चल दिया ।

शानभोगजी के यहाँ पद्मा की बात छेड़ते ही बैंकम्माजी पूछा बैठीं, "खूब रहा तुम्हारा बखेड़ा ! उस घर से दोनों को ले लिया, एक को हमें देने में क्या हिचक ?"

"अम्मा का कहना सही है। पद्दू को यहाँ रहना होगा।" पार्वती ने भी समर्थन किया!

"वाह! कमाल कर रहे हो भाई। बड़े स्वार्थी हो! वह कल नहीं आई, तो मैं खुद ले आऊँ, हो जाए कन्याहरण! रहने दो ये सारी बातें।" गुण्ड ने गंगाधर को वहाँ से हटाया, बात उड़ाने का मौका ही न दिया।

"यह कौन मालिक बन बैठा अभी से? बच्चों की तरह रहना भूल कर?" रामण्णाजी ने लथेड़ा।

"पद्दू बहिन यहीं आ जाए तो कई पतंग बनवा लूँगा।" कहते हुए रंग फूला न समाया। गंगाधर गूँगा बना घर लौटा।

●●●

: २९ :

बाँध का उठाना अब इतनी प्रगति कर गया था कि जनता की निगाह उस पर सहज ही पड़ती रहती। यह देख गंगाधर अपने साथियों से कहने लगा, "अब ढलुई निकासी की पत्थर-जोड़ाई शुरू करनी होगी। आज तक तो धनाभाव से इसमें हाथ नहीं लगाया जा सका। इतना काम हो चुका है। इतने आदमी लगे हुए हैं। बाँध का काम होके रहेगा, इसका पूरा भरोसा हो चुका है। धारा की बाढ़ भी घट रही है। इस दशा में रोबीले चेहरे से भीख माँगी जा सकेगी। अधिकार-वाणी से माँग सकेंगे। आवश्यकता पड़ने पह दबाव भी डाला जा सकेगा।"

"ढलुई निकासी, उसका मुखद्वार, फटके, नाला-संबंधी बंधान इस सबके बारे में लगने वाले खर्च का अंदाज़ लगा कर पर्चा छपवाया जाय, उदारता से सहायता का विवेदन भी हो, पहले की भाँति पर्चे बाँटें। पीछे घर-घर घूमा जाय।" वीरप्प बोला।

अबकी पर्चे बाँटे गए तो पहले की तरह वाद-विवाद की कोई गुंजाइश, संदेह-तिरस्कार का उपहास-अट्टहास भी नहीं दिखा। इस समय जनता आसक्ति से उसे पढ़ लेती या पढ़वा लेती। मतलब समझ कर सिर हिलाए कुछ सोचने में भी प्रवृत्त होती।

"यह कौन नई बला आई" परिश्रम करावें, पैसे लें, ऊपर से और पैसों के लिए हाथ भी पसारें। यह कहाँ का न्याय?" युवक रंगेगौड सिर खुजलाते हुए बोला। पर उसके चेहरे पर मुस्कान बिखर गई थी।

"बेहूदगी की वातें न निकाल। कह रहे हो हाथ पसारते हैं, ये क्या कोई गैर हैं ? अपने ही तो हैं ?" चिक्कय्या ने फटकारा।

"होटल-सिनेमा का खर्च माँग रहे हैं, सब तो यहीं जमा है। खाली बाँध उठाए हाथ-पर-हाथ धरे रहने से फ़ायदा ? ढलुई निकासी के बिना ज्यादा पानी निकाला कैसे जाए ? मुखद्वार के बिना नाले में पानी बहाया जाएगा कैसे ? इनमें फालतू भी कोई है भला ?"

"गंगाधरप्प और भी बड़े-बड़े इंजीनियर आदि ने सोच-समझ कर हिसाब लगाया है। गाँव वालों से पैसे आए हैं, यह इन्हें मालूम नहीं क्या ? एक दमड़ी भी फालतू न लगाई जाएगी।" ईंटों के भट्ठे के मालिक लिंगप्पा ने आश्वासन दिया।

"रहने दो भी, रकम की देखभाल जानते हो किसके जिम्मे है ? अणदय्याजी, दूसरा कोई नहीं। उनके यहाँ कोई दाल न गलने की। यों ही इधर-उधर पैसे थोड़े ही गलने देंगे ? जो भी दिया जाएगा, उनके पास जमा हो जाएगा। वेंकट-शेट्टीजी तथा मंडी शिवप्पाजी भी उनके साथ हैं ही। इतने पर कोई संदेह व्यर्थ है। पर्चे में लिखा ही है—वसूली जाने वाली रकम की रसीद भी दी जा रही है। पाई-पाई का हिसाब रखा गया है। जो कोई देखना चाहे, देख ले सकेगा। मीटिंग में हिसाब की मंजूरी ली जाएगी।" मंडी का नौकर सोमण्ण ब्योरे देता गया।

"यह सब पक्का बना लिया है, भले आदमी ! इन्कार कौन कर रहा ? उतनी रकम भी जरूरी है। कोई गौना हो जाए, तो नाक रगड़ने तक का खर्चा बैठ जाए। मैं क्या जानता नहीं। उतनी बड़ी झील हो तो इतनी रकम न लगे ? मेरा मतलब यह नहीं। इस वक्त पल्ले से जो गिनाना पड़ रहा है, इस पर क्या कहेंगे आप ?" रंगेगौड ने अपना मंतव्य स्पष्ट कर दिया।

"वाह ! कल चौगुने ब्याज का मज़ा कौन चखेगा ? मुट्ठी भर धान बोले, बोरी भर धान पा ले, यह कौन भोगेगा ?" चिक्कय्या ने व्यंग्य किया।

"खूब, वह गंगाधरप्प भोगेगा ? दीक्षितजी की ज़मीन एकड़ भर भी तरी में नहीं बदल रही, बेचारे का क्या हाल हो !" लिंगय्या ने समवेदना दर्शाई।

"कैसी बातें कर रहे हो ? गाँव वाले उसे बेसहारा रहने देंगे ? अपनी जान लड़ा दे रहा है हम लोगों के साथ।" रंगेगौड यह कहते हुए आगे बढ़ा।

"हटाओ जी, हम कौन पहाड़ ढो रहे हैं ? जहाँ कहीं भी जिस परिमाण में मिट्टी गिराने के लिए कहा जाए, उतना ही कहते जाते हैं। सारा काम-धाम

सँभालने वाला वही रहता है तो ?"

"ऊँचाई पर खड़े हो हुक्म देने वाला वह नहीं है भैया, छड़ी घुमाते खड़े रहने वाले हाकिमसाहब वहादुरों की तरह। अपने साथ भी कमर कस कर काम करने उतर पड़ता है न। यही असल महत्व का है, समझे !" लिंगय्या ने हामी भरी।

"वह अकेला ही नहीं। कितनों को वही सवक सीखने को मिला है और वे काम के आदमी बन पाए हैं। लड़कियाँ भी मैदान में उतर पड़ी हैं। मैं भी वही कोशिश कर रहा हूँ...समझे !" रंगेगौड गर्व से कहता गया।

"खूब ! तो चंद ताँबे-पीतल की टुकड़ियाँ देने में टें वोल दे रहे हो ?"

"हटो भी, मजाक में कहा है, भाई ! बुरा न मानना। अब हम कोरे तमाशवीन नहीं, खिलाड़ी हैं। हम ही मालिक हैं, मजूरे हैं, सब कुछ हैं। इस दशा में दूसरा कौन पैसे दे और काम करे ? हमें ही सब करना है।" रंगेगौड उत्साह से छाती ठोंकते कहता गया।

जनमत साधारणतः यही रहा। इसका यह मतलब नहीं कि बेसुरा राग अलापने वोले न रहे हों। भीमण्ण का छोटा भाई रुद्र का कहना था कि निर्वाणय्याजी ने यों दुत्कारते मुँह फेर लिया था कि 'तुम लोगों को दूसरा कोई काम नहीं, निकल जाओ। वही पैसा रहे तो आरती में चढ़ा दूँगा। मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग भी खुल जाएगा।' 'वाह। लूटते जाओ, नदी में डुवोते जाओ। अपने पास कोई रकम सड़ नहीं रहो-विजयनगर में होती रही पद्धति की भाँति। हट जाओ, जानकारों के यहाँ भूल कर भी न जाना। गँवारों के सामने अपनी दान-पेटी हिलाओ-यहाँ से चम्पत हो जाओ।' इतनी फटकार बताकर पुराणिकजी चौतरे पर से उठे और अंदर घुस कर किवाड़ लगा लिया था। भीमण्ण को यह घटना मालूम हुई तो उसके मुँह से इतना ही निकल पड़ा-'कोई हर्ज नहीं। तंदुरुस्ती गाँव की जितनी भी सुधरती जाए अच्छा रहेगा। मरीज तो इधर-उधर मिलेगें ही।' मरीगौड़ के यहाँ कोई गया नहीं। वह पहले ही फुफकारने लग गया था—"यह देखो इनकी मजाल ! कितना दिमाग हो गया ! पास फटकते तक नहीं। दूर करते जा रहे हैं। अच्छी वात है। और भी जरा घड़ा भरने दो। अपना खेल दिखा ही दूँगा। यह सब उस करीगौड की चालबाजी है। उसकी मिट्टी पलीद न कर दूँ, तो अपने वाप का वेटा नहीं।"

इस रीति से, चन्द अपनाद छोड़ दिये जाएँ, तो रंगेगौड के कहे अनुसार बाँध के मालिक-मजूरे शेष ग्रामीण लोग खुले हाथ से धन देते गए। इस प्रकार का दान माँगते समय पहले का संकोच अब अनावश्यक प्रतीत हो उठा था। इस

समय परिश्रम उठाने का स्वाभिमान, 'शक्ति भर भेंट भी चढ़ाने' का भाव दोनों जागृत हो उठे थे ।

सड़कों पर, घरों में, बांध, नाला आदि पर भी बच्चे दानपेटी झनझनाते हुए दिखाई दिए । खरीतों से, पान-सुपारी की थैलियों से, टेंट से, रूमाल के कोनों से, साड़ी के आँचल की बँधी गाँठ से, पेटियों से, दुकानों पर पड़े खुदरा बक्सों से, आले से, न जाने और भी कई स्रोतों से धन बाहर झाँकने लगा । पैसा, इकन्नी, चवन्नी, रुपल्ली आदि के सिक्के, एक, पाँच दस वगैरह के नोट दानपेटी में जमा हो गए ।

नंजुडशेट्टाजी की दुकान के सामने मिठाई खरीदने स्कूली छात्र श्रीकांत पहुँचा था । शेट्टीजी को एक रुपया पेटी में छोड़ते देख उसने भी पल्ले का पैसा उसमें डाल दिया था । शेट्टीजी ने मिठाई उसे यों ही देकर भेजा था । पोपला मुँह, झुर्रियाँ पड़ा चेहरा, धुँधली आँखें इनसे विभूषित बुढ़िया सिद्दव्बा सारा हाल जान लेने के बाद अन्दर गई । अँधेरे में ढिबरी लिए कुछ टटोल, दीवार खोदी, एक छोटी-सी हँडिया बाहर निकाली और उसमें से कोई पीला-नीला पड़ गया सिक्का गिराया और पेटी में डालते कह उठी, "बाबा गंगाधरेसुर ही तृप्त हों ।"

कल्याणोत्सव के अवसर पर बाबा वेंकटेशजी के पुजारी नरसिंहभट्ट जी गंगाधर के यहाँ आए और मुट्ठी भर खुदरा उसे सौंपते हुए बोले, "लो भाई ! आज की समूची दक्षिणा उन बाबा वेंकटेशजी को ही अर्पित है । बाँध, गाँव, जनता सब उन प्रभु के ही हैं ।" पैसे गंगाधर ने गिन लिए और पार्वती ने रसीद दे दी ।

एक साँझ को किसी ने "गंगाधरप्प !" की आवाज़ लगाई । रात गिरने को आई थी । चौतरे पर बैठे दीक्षितजी व्यक्ति को पहचान न सके । पूछा, "कौन है ?"

"मैं हूँ चन्द्री, गुरुजी ! नीलव्वा की बिटिया ।"

नीलव्वा की बेटी चन्द्रव्वा को गाँव-का-गाँव वेश्या के रूप में जानता था ।

"यहाँ कैसे आई ? सो भी इस समय ? घरबारियों के निवास पर ? यहाँ कौन काम पड़ गया री, आँखों के सामने से हट जा !" दीक्षितजी ने घृणा प्रदर्शित की ।

"गुरु जी, बिगड़े क्यों जा रहे हैं ? मैं किसी कुकर्म के लिए थोड़े आई हूँ ? गंगाधरप्पाजी से चंद बातें करनी हैं । दिन भर तो, सुना है, काम पर

गए रहते हैं। सो इस बखत आई हूँ।" चन्द्रव्वा तन कर ही कहती गई।

इस बीच गंगाधर ही लालटेन लिए बाहर आया और पूछा, "क्या काम है, बहन ?" उसने इसकी सारी बातें अन्दर ही से सुन ली थीं।

"यह दुर्गति भी आंखों देखनी बाकी थी।" झल्लाते हुए दीक्षितजी वहाँ से उठ गए।

" ये दो-एक वस्तुएँ स्वीकार करेंगे, बाँध के लिए ?" कहते हुए चंद्रव्वा ने कमर से चाँदी की कर्धनी, गले से सोने की एक लड़ी उतारी, उँगली से अंगूठी उतार दी, कानों के कर्णफूल भी उतार दिए।

"स्वीकार क्यों न की जाएगी, बहन ?" गंगाधर चकित हो धीमे कहने लगा, "सुनो, तुम इन सारी चीजों को दे पाओगी ?"

"कर्धनी की जरूरत ही क्या रह गई, भाई साहब ? लड़ी, अँगूठी कर्णफूल की बात है तो इमिटेशन भी काम दे जाएँगे।" उसने दाम के बारे में शायद ही गौर किया हो।

"यह नहीं बहन, इनकी कीमत की बात कह रहा हूँ।"

"यह बात है ! बाँध गाँव का ही तो है भाई साहब ?"

"और किसका ? इसमें संदेह कैसा ?"

"तब ठीक है। ये जहाँ से आईं, वहीं मिलेंगी भी, इसके लिए रोना-धोना कैसा ? अपने लिए जो भी मिले, मन कहाँ भरता है ?"

वेश्या की वाणी सुन गंगाधर विस्मित हो उठा।

"इस दशा में दे दो, भाई !" कहते हुए उसने हाथ पसारे। फिर बोला, "अच्छा, जरा ठहर जा ! भट्टजी !"

उसने बगल के घर की ओर आवाज़ लगाई।

भट्टजी दौड़े आए। गंगाधर की बातें सुन कर मतलब समझने में उन्हें थोड़ा समय लग ही गया।

"चन्द्रव्वा को पावती देनी है। आप भी गवाह रहें तो ठीक होगा, यही सोचकर आपको कष्ट दिया।" गंगाधर ने अपनी बातें पूरी कीं।

"सालह-गवाह आदि की क्या जरूरत है, भाई साहब ? यहाँ आपको कौन नहीं जानता !"

"व्यवहार की बात होती है, बहन ! यही तरीका है। इसी पर चलने से विश्वास सुदृढ़ हो पाता है।"

"आप जो ठीक समझें, वही करें।"

"पुट्टाचार के यहाँ जाएँ, इन्हें तौलवा लें।" गंगाधर भट्टजी की ओर देखते हुए कहने लगा।

"कोई जरूरत नहीं। कर्धनी सेर भर की है, लड़ी पाव भर की है, अंगूठी डेढ़ गिन्नी की है।"

"अच्छी बात है, कोई अंतर पड़ जाए, तो कल कहलवा देंगे।" भट्टजी मान गए। पावती लिख दी गई।

"भैयाजी, एक बात पूछ सकती हूँ?" पावती मोड़ते चन्द्रव्वा कुछ झिझक उठी।

"झिझक क्यों? पूछो बहन!"

"मैं भी बाँध पर चार खँचिया मिट्टी गिराऊँ?"

"वाह! तुम्हारा सवाल ही दुहरा रहा हूँ। बाँध गाँव का ही तो है? ··· ठीक—फिर—फिर तुम भी गाँव की निवासी तो?"

"निवासी होने पर भी···"

"कोई आशंका नहीं, बहन! उसमें सब समान हकदार हैं।"

"बड़ी अच्छी बात है, भाई साहब।" चन्द्रव्वा बोली। उसकी वाणी से व्यक्त प्रसन्नता से स्पष्ट था कि उसकी हीन भावना हवा हो गई थी।

चंद्रव्वा के आँखों से ओझल होते ही गंगाधर भट्टजी को भी लेकर हिरियण्णा जी के यहाँ पहुँचा और गहने उन्हें सौंप दिए।

यह किस्सा सुनते ही जयलक्षम्माजी ने प्रशंसा में कहा,—"वेश्या रही तो क्या हुआ, विशुद्ध हृदय वाली है।"

"पाप की कमाई से निर्मित कोई वस्तु बचेगी नहीं।" नंजत्ते ने टोका।

"कमाई पाप की मानी गई तो सवाल उठता है कि पापरहित भी कोई कमाई होगी।"

"तरह-तरह की हत्याएँ, रण्डीबाज़ी आदि के ज़रिए ही कमाई बहती दिखाई देती है। हाँ, निष्पक्ष हो विचार करें तो···।" गंगाधर धीमे बोला।

"भले आदमी रहें तो घर भी भला, बुरे आदमी रहें तो घर भी बुरा। इसी भाँति भले हाथ की कमाई भली, बुरे हाथ की कमाई बुरी। घर का दोष कैसा, कमाई में ऐब कहाँ।"

"इतनी बड़ी-बड़ी बातें मेरी समझ से परे हैं।" नंजत्ते की ज़बान बंद हो गई!

"तुम्हारा हिस्सा ?" वहीं वातें सुनते खड़ी भागीरथी के सामने गंगाधर ने हाथ फैलाए ।

"हिस्सा कैसा ? तीन कौड़ी थी नहीं ।"

"यह कैसी वात कर रही हो भागू ? तुम साधनहीन हो, इसका यह मतलव नहीं कि होने पर देना ही पड़े । भैयाजो की जायदाद किसकी होगी ? तुम्हारी ही तो ?" नंजत्ते छलककर कहती गई ।

'ना–ना–अण्णाजी की ही ।"

"अण्णाजी ने पूरी जायदाद दे दी है ।" गंगाधर हँसा ।

"शौक से दे लें । मैं कहाँ मना कर रही ?"

"खूब, खूब ! दोनों की वातें बड़ी मज़ेदार हैं । मेनहत की कमाई मुफ़्त ही झील में फेंकी जाए ।"

"गुड्डी, तुम्हारी उदारता के लिए धन्यवाद ! अपना कुछ नहीं माना तो, वाह वाह ! परिश्रम ही से सही । हम पैसे ही माँगने वाले नहीं । जिस किसी भी रूप से मिले, स्वीकार कर लेते हैं ।"

"बड़े चालाक हो, घूम-फिर कर उस पर आ पहुँचते हो । 'जेहि-तेहि विसरूँ हरि ! तोहे विसारूँ ना' ।"

"ठीक कहा । हरिदास जो ठहरा । यही नाम रटा करूँ, ताकि तुम्हारी जिह्वा पर भी वही नाच उठे ।"

"कमी नहीं नाचेगा ।"

"मैं कभी रटे विना न मानूँगा ।"

गंगाधर घर लौट आया ।

चन्द्रव्वा का किस्सा गाँव भर में फैल गया । कइयों में उत्साह उमड़ उठा । वह खँचिया लिए बांध पर आई, तो लोग आपस में कानाफूसी करने लगे ।

"देखा, वाँध कैसे-कैसों को खींच ले रहा है !"

"बड़ा गजब कर दिया । उसकी भांति अपना सर्वस्व दे देनेवाले कितने हैं ?"

"यह ठीक है, भले आदमी ! पर नखरे दिखाने वाली काम क्या कर पाएगी, भाईजान !"

"वह देख, कैसे ठाट से काम कर रही है । ज़वान ढीली न छोड़ ।'

अवश्य ही चन्द्रव्वा ने निजी परिश्रम से भी उसी प्रकार सबको मुग्ध कर दिया, जिस प्रकार सर्वस्व-दान से किया था । पहलवान मल्लप्प ने रास्ते में उसे

छेड़ा था। उसने गाल पर खींच कर थप्पड़ लगा दी थी। साथ रहे दस-पाँच आदमियों ने मल्लप्प को खूब फटकारा भी। तब से वह सबकी निगाहों में और उठ गई। रही-सही, लुकी-छिपी अवज्ञा, छेड़छाड़ की लुप्त सी हो गई।

चंद्रव्वा की देखा-देखी घर-घर से छोटे-बड़े गहने भेंट में दिए जाने लगे। निधि समिति के सदस्य सर्राफ़ वेंकटशेट्टी थे। वे ही सबको परखते जाते, तौलवा लेते, कीमत आँकते और विक्री का इंतजाम भी करते जाते थे। सबसे अजीब वात यह थी कि कितने ही आदमी अपने से आते, गहनों के नामवनिशान बताते जाते, उन्हें चुन लेते और दाम देकर उन्हें खदीदते जाते। एक जोड़ी नागफनी, झुमका, लाल जड़ाऊ कर्णफूल, गाल पर की लड़ी इन्हें हिरियण्णाजी ने ही खरीद लिया। गाँव के बच्चों को पहनाए जाने वाले गहने किसके थे, यह वात समिति के सदस्यों से छिपी न रही। अण्णाजी ने अपनी अर्द्धांगिनी को उन्हें लौटाते हुए मुस्कान के साथ कहा,—"वार-वार दान में नहीं देना। मैं दिवालिया हो जाऊँगा।"

रामण्णाजी ने एक जोड़ा कंगन, गलेबंद खरीदे। शेट्टीजी तथा शिवप्पाजी को भी कम डाँड़ न भरनी पड़ी। पर, अच्चम्माजी के गले में काले दानों की लड़ी के साथ रहे सोने की दो गोलियाँ अनचीन्हीं ही रह गईं। पुट्टाचारी के कटोरे में ही गल गईं।

पैसे, पहने आदि के अलावा वस्तुरूप में चार सेर रागी, एक गट्ठर लकड़ी, सेर भर मक्खन, दस टुकड़े गुड़, इस प्रकार कई रूपों में दान मिलने लगा था। यह कार्य मंडी शिवप्पाजी के जिम्मे कर दिया गया था।

पहले साथियों ने ही नाटक खेला-खेलवाया था। इस समय पुराणिकजी के सहयोगी शिवस्वामी शाम के वक्त छुट्टियों में लड़कों को बटोर कर 'बेंलगूर के वीर, 'प्रकाशबाडी के पुरुषार्थी'—'आलोकित भारत,' 'निर्वाण की समस्या,' 'आकाश पुराण,' 'विदेशी विचित्रता,' 'भूल में रही भामिनी' आदि एकांकियों का अभिनय करवाने लगे। बाँध-निधि की सहायता के लिए टिकट जारी कर काफी धनसंग्रह किया। नाटकाभिनय के फेर में पड़कर शिवस्वामी अपने तथा छात्रों के समय का जो दुरुपयोग कर रहे थे, इस वावत पुराणिकजी ने एक शिकायत अधिकारियों के पास और भेजी।

नाटक के लिए टट्टी पड़े इसी अहाते में पहलवान मल्लप्पा के अखाड़े वालों से पहलवान हुसेनखान के अखाड़े वालों का दंगल हुआ। वसूली गई राशि बाँध-निर्माण निधि को अर्पित हुई।

देवेगौडर के यहाँ ब्याह हुआ, तो गाँव की दक्षिणा के रूप में बाँध-निधि में इक्यावन रुपए जमा हुए। इससे भविष्य में शुभ पर्व-त्योहारों पर गाँव की दक्षिणा बाँधने की प्रथा की नींव पड़ गई। चौदह साल का शेषगिरि अपने जनेऊ की शुभ घड़ी में पिताजी मध्वाचार्यजी की ओर से यह दक्षिणा न चुकाए जाने पर पीढ़े पर से ही उठ गया और मन की बात होने के बाद ही लौटा।

शिवलिंग जंगमय्याजी पूरे गल गए थे, आँखों से भी कुछ न सूझ पड़ रहा। गंगाधरेश्वरजी के मंदिर के ओसारे पर ही उनका निवास था। गाँव से कोई-न-कोई वहीं साधु-सेवा का प्रबंध करते रहते। एक दिन उन महापुरुष ने सिद्दव्वा का लाया भोजन स्पर्श तक नहीं किया। केवल पलकें लगाए शिव-ध्यान में लीन हो रहे। उसने जब कारण जानना चाहा, तो बड़ी नम्रता से इतना ही कहा, "सुनो बहिन ! गाँव में कोई महान् बृहत्कार्य संपन्न हो रहा बताया जाता है। प्रत्येक ग्रामवासी उस हेतु बनाई गई निधि में कुछ-न-कुछ दे ही रहा है। यह जन क्या दे सके ? पास केवल दो गेरुए कपड़े। हाथ-पैर काँप उठते हैं, परिश्रम नहीं कर पाता। उस महान् कार्य की सिद्धि हेतु दिन भर निराहार रह कर जप में प्रवृत्त हूँ। अपने से यही बन पड़ेगा, और कोई उपाय नहीं।"

बाँध की भाँति ही निधि भी व्यक्त-अव्यक्त रूप से फूलती गई। इतने पर भी जमा रकम अन्दाज़ लगाई रकम से कम पड़ ही गई। पर, यह कमी समिति-वालों ने ही पूरी की।

वीरप्प नरगेरे पहुँचा। लिंगेगौडर से मुलाकात की। अपनी जान-पहचान-वालों का भी पता लगाया और संगतराशों को पकड़ लाया। वेलगूर (प्रकाश-वाड़ी) से कतार बाँध कर गाड़ियाँ निकल पड़ीं, चूना भर लायीं। धारा के पात्र में ही बालू मिल गया। कुम्हार केंच और साथियों ने ईंटों की भट्ठी तैयार की, ईंटें मिल गईं। आसपास के टीलों पर चट्टानें बारूद से उड़ायी गईं। संगतराशों द्वारा छेनी पर की चोटें बाँध पर होते स्वर-समूह से संगत का काम दे रही थीं। ढलुई निकासी की जगह बाएँ तट पर मिट्टी का ढेर लगा कर थोड़ी सी ज़मीन घेर दी गई। काफी पतली पड़ गई धारा का पानी रोका गया। खुदाई शुरू हो गई। लिंगेगौडर से मँगाया गया 'पपं सेट' घड़बड़ाता, तेज आवाज करता गया। पाए के नीचे का पानी लगातार फेंका जाने लगा। गैस की बत्तियों की रोशनी में रात में भी यहाँ काम जारी रखा गया। 'सुर्खी' गारे की चक्की चलने लगी और खुदाई के बाद पोख्ता पाया मिल गया, तो कांक्रीट दनादन पड़ने लगी। साथ-साथ धौंसना भी शुरू हुआ, पाया मजबूत बनता गया। बाईं ओर

की जुड़ाई आरम्भ हो गई । क्रम से यही काम निकासी की लम्बाई भर हो चला। मुखद्वार की जुड़ाई की तैयारी भी होती गई । बाद को काम देने वाले फटके गंगाधर के नक्शे के हिसाब से नरगेरे में तैयार हो रहे थे । नाला-सम्बन्धी जुड़ाई नरसप्प के जिम्मे कर, गंगाधर कभी-कभी जाकर उसकी देखरेख कर लेता था।

धीरे-धीरे काम घड़ी की चाल के बराबर होने लगा था ।

गंगाधर की प्रगति यहाँ इस प्रकार चल रही थी, तो दिली दोस्त आनन्द अपनी तरक्की का विवरण भी यदा-कदा भेजा करता था। जनवरी में लिखा था—"प्यारे, तुम्हारे नोट परीक्षा में साफ निकल गए। आखिरकार उन्हें इन आँखों से ही पढ़ने को विवश किया और इन्हें दुखाया भी—कितने निर्दयी हो तुम ! बनारस में तो अपना प्राइवेट सेक्रेटरी गंगाधर रहा करता साथ । अबकी मेरी हालत बावर्ची बिना रसोई पकाने को मजबूर हुई मेम साहब सरीखी हो गई थी । बड़ी दर्दनाक दशा रही ।"

मार्चवाली चिट्ठी में लिखा—"मेरे अजीज ! रेल विभाग वालों ने इण्टरव्यू के लिए इस पट्ठे को भी बुला ही लिया। कल ही खत्म हुआ है। ठाट से फुलझड़ियाँ छोड़ी हैं । गजब हो गया समझ लो, चन्द सवालों के जवाब दे ही दिया। शुभ सूचना के लिए प्रतीक्षा में रह जाना....अरे यार, तुम भी कैसे गधे निकले ! इस खोपड़ी में खाक भरी है चिल्ला रहे थे। अब अपनी खोपड़ी खुरच देख भला !"

अप्रैल की चिट्ठी :—"होश गँवा लेने को तैयार हो जाओ ! मैं भी कोई रैंक पा ही गया। बुद्धूपन से तुम जो गँवा बैठे थे, उतना ऊँचा तो नहीं, खाली पन्द्रहवाँ स्थान है। पर एक सौ बीस लिए जाने वाले हैं, तो अपनी भुजाएँ मैंने ही ठोंक ली हैं—इतने ऊँचे नंबर पर आ गया तो। पर खुदा की क़सम, तुम्हारी कसम से कह दूँ—सच बोलूँ तो भी मानोगे, झूठ हो तो जरूर यकीन कर लोगे, है तो पट्ठे ?—अपना नतीजा देख उछला तो जरूर, पर आँखें डबडबा आईं, प्यारे, सदा की भाँति शुरू के दो-एक नामों में हमारा नाम गायब ! सीने में मरोड़ उठी, नालायक ! क्या, बेवकूफी कर ली ! धत्, सेंटिमेंटल हो गए ? यहीं रोक दे रहा हूँ ।"

पढ़ने के बाद देर तक गंगाधर सुन्न-सा निचला होठ दबाए बैठा रहा। पीछे बधाई का पत्र लिखा, लेट गया ! पलकें आसानी से लग न सकीं ।

● ● ●

:३०:

मिट्टी झौवे में भर रहा गंगाधर कमर सीधी क़र देखता है, तो गौरी टीले पर लिगेगौडर की जीप आ गई थी।

"लिंगण्णा, ज़रा मिट्टी ढुलवा देना। फौरन आ जाऊँगा!" मिट्टी खोद रहे लिगण्णा से कह गंगाधर ने हाथ झाड़ लिए।

"सुब्वारावजी भी आए हैं।" लिंगण्णा वोला, उसे पहचानने में देर न लगी। सुव्वारावजी को साधारणतः सव जानते थे। वे हफ्ते-पखवारे में आया करते थे। देर तक रह जाते। चारों ओर का चक्कर लगा कर काम की देख-भाल करते रहते। मजूरों से घुलमिल कर वातें करते। दो-एक जगह स्वयं करके काम का सलीका सिखाते रहे। लिगेगौडर तो सबके अपने हो ही गए थे।

"एँ, और भी कोई!" मिट्टी ढोती पार्वती कह उठी।

सही है, धोंती, कुर्ता तथा सफेद टोपीधारी कोई सज्जन जीप से उतरते दिखाई पड़े।

गंगाधर निकट आ पहुँचा। उस क्षण में तीनों गौरीजी के मन्दिर के समीप उतरे, चारों ओर दृष्टि फेरी और वातों में तल्लीन हो उठे थे। उसने अभिवादन किया।

"आपही यहाँ के सूत्रधार गंगाधरजी हैं। इन्हीं के वारे में मैं कहता आ रहा था।" सुव्बरावजी ने नवागंतुक महोदय से परिचय कराया।

"नमस्कार! आपसे मिलकर वड़ी प्रसन्नता हुई। इस क्षण की प्रतीक्षा कई दिनों से करता रहा हूँ। इस समय विना कोई सूचना दिए ही आ गया।" कहते हुए उन्होंने हाथ वढ़ाया।

"हाथ मटमैले हैं।" गंगाधर ने आगे वढ़ाया हाथ तनिक पीछे हटा लिया।

"कोई चिंता की बात नहीं। मटमैले हाथ विरल हो उठे हैं।" कहकर उन्होंने हाथ मिलाया।

"आप बासप्पाजी! पब्लिक वर्क्स तथा स्वास्थ्य विभाग के मंत्री। परिचय तो पर्याप्त हो ही चुका है?—इस समय आप जिस ढंग से आए हैं, जो वातें सुनने को मिली हैं, इनसे आपका घनिष्ठ संपर्क सहज ही स्पष्ट हो जाएगा।"

"आने के ढंग के माने! साथ अधिकारियों की पलटन, जगह-जगह पर मालाओं, गुलदस्तों आदि का प्रबन्ध, कैमरे के साथ संवाददाताओं की भीड़, सूखी भाषणमाला

इन्हीं तड़क-भड़क की ओर इशारा है ?" बासप्पाजी हँसे। "सो सब, पुरानी चाल है, सुब्बरावजी ! अपने यहाँ ब्याह-शादी के अवसरों पर मचने वाली धूमधाम या आडम्बर की भाँति ही कुछ लोगों का ख्याल है कि इस टीमटाम से थोड़ा-बहुत प्रचार-कार्य हो जाएगा। इस दशा में भी संस्थाओं, विषय-सूचनाओं, चिंतन-धाराओं आदि के प्रचार की जगह व्यक्ति का प्रचार ही प्रमुख हो जाता है। जहाँ इसकी अति हो गई, वहाँ निरा अविवेक ही मानिए। प्रजाराज्य में आज रहे हम लोग कल न रहनेवाले। 'फटेहाल आदमी एकाएक धनवान् हो जाए, तो आधी रात में भी छाता तनवा ले' की कहावत के मुताबिक आचरण भद्दा न हो जाएगा ? जितने दिन रहें, अपनी इच्छा के अनुरूप काम करने के लिये समय ही नहीं मिलेगा। इस ढकोसलाबाज़ी के लिये समय कहाँ ? हर कोई अपना काम करता जाए तो कोई किसी के पीछे कदम क्यों मिलाता चले ? यहाँ लिंगेगौडर की आवश्यकता है, बस अकेले से काम हो जाए। अरे···भाषण तो नहीं झाड़ रहा !"

बसप्पाजी हँसते रुक गए।

"आप जो कुछ कहते रहे, उस पर अब विश्वास किया जा सकेगा।" गंगाधर ने सुब्बरावजी को देखते हुए कहा। चालीस पार हुए व्यक्ति के बारे में जगी प्रशंसा श्रद्धा में परिणत होती गई।

"साथ में मेरे आने की भी कोई आवश्यकता न रही। इस पुनीत प्रयास का आकर्षण मुझे बरबस यहाँ खींच लाया है। आपकी, अपनी तथा यहाँ की जनता की कृतज्ञता के यथार्थ अधिकारी ये ही हैं। अपने चीफ़ इंजीनियर साहब भी फेर में पड़े रह गए थे। उस दशा में आपने बड़ा धैर्य दिखाया, सरकारी मान्यता प्रदान की और आपकी इस योजना, भव्य कल्पना को कार्यान्वित होने दिया। इन महानुभाव के बिना कुछ भी न हो पाता।" सुब्बरावजी ने खुले दिल से प्रशंसा की।

"अपने मन की बात आप ही कह गए सर ! आप सत्यासत्य का महत्त्व जान लेने पर ही अपने विचार व्यक्त करने वाले हैं; यह मैं भली-भाँति जानता हूँ।" गंगाधर संतुष्ट और संतृप्त होकर कहता गया।

"रहने दीजिए, इसमें कौन बड़ी बात हो गई, ऐसा न करता तो विशेष उल्लेखयोग्य माना जा सकता। सरकार तथा जनता का ध्येय, भावना आदि की अवहेलना होती। इस युग में अपने लिए कोई जगह भी न रहती···सुब्बरावजी ! इस पुनीत प्रयास के आकर्षण की बात उठाई आपने। सामने का दृश्य देखते समय 'यह कितना सच है' का भान हो रहा है। सरकारी सहायता की अपेक्षा

नहीं । आत्मनिर्भर हो जनता कितने बड़े कार्य में प्रवृत्त हुई ! काम हो भी रहा है, इस पर विश्वास हो सके, इसके लिए यहाँ आकर स्वयं यह सब देखना भी होगा । केवल विवरण पढ़ लेने से काम नहीं चलेगा ।" कहते हुए वासप्पाजी एकाग्र होकर देखते रहे, फिर पल भर के लिए मौन हो गए ।

उधर दूर उन मामूली गड्ढों में लाल मिट्टी खोदी जा रही थी । और खँचिया में भर-भर कर उसे हाथोंहाथ पहुँचाने वाली टोली जुट गई थी । वहाँ से कतार बाँध कर निकले लोग इधर फावड़े की बनी सीढ़ियों पर से ऊपर-नीचे आ-जा रहे थे । मिट्टी बांध के दोनों तरफ गिराई जा रही है । धौंसने का कार्य जारी है । ये लोग योद्धाओं की भाँति पंक्ति बनाकर एक साथ धौंसना करते आगे-पीछे बढ़ते-हटते रहे । अन्यत्र 'भेंड़ की टाँग' रोलर चार-छह आदमी साथ खींचते 'हे-हो' की आवाज़ निकालते रहे । इधर-उधर बैलों की जोड़ियाँ भी इसी काम में लगी हुई थीं । बाँध के मध्य भाग में दो लाल रेखाओं के बीच काली पट्टी-सरीखी गीली चिकनी मिट्टी पर धौंसने के साथ ही खलिहान का सामूहिक नृत्य भी चल रहा था । टोलों को घेरती हुई सड़कों पर, धारा के दोनों किनारे, बाँध के दोनों बगलों में चिकनी मिट्टी या गिट्टी भरी गाड़ियाँ या उन्हें खाली कर लौटी गाँड़ियाँ एक के पीछे एक सरक रही हैं । ढलुई निकासी पर तो बाँध के सीने की धड़कन खूब सुनाई दे रही है ।

कार्यकर्ता की दृष्टि में घाटी वस्तुतः बड़ी मनोरम और सजीव कांति से सुशोभित थी । इस बाँध रूपी माँगवाली हिरिण्यगर्भिणी धरित्रीमाता के संपत्-शिशु के जनन-पूर्व होते सीमंतोन्नयन के हुलास में घाटी भर उठी थी । यहाँ मानव प्रकृति के सौंदर्य के आवरण उसके अंगरूप हो चले थे । कलकूजन में निरत से बसी वृक्षराजि गतिशील हो उठी थी । उनके कूजन-गायन से इनकी चाल संयत दिखाई दे रही है । सुषुप्त पड़ी प्रकृति की पलकें यहाँ खुलती लग रही थीं ।

"ये सारे मेरी दृष्टि में जो लग रहे हैं, उसका हाल बता दूँ ?" बसप्पाजी विचारमग्न हो कहते गए । "चेतनता की प्रतिमाएँ ! जोग-प्रपात के जलकण में रवि की परछाईं पड़ने की भाँति विधाता की शक्ति के स्फुलिंग ! ऐसा लग रहा है, मानो संपत्ति तथा सुख की ढेरी उठ रही हो । मैंने कश्मीर में सुरंग-मार्ग का निर्माण-विधान देखा है । उस समय भी वहाँ के कारीगर ऐसे लगे मानो हिमालय की जड़ता का जंग छुड़ाने वाले इसी अनन्त शक्ति के अस्त्र रहे हों । कवि नाम प्रतिभाशील व्यक्ति इन प्रयासों की सचाई सत्त्वपूर्णता के सम्बन्ध में सम्भवतः अनेक गीत रच सकेगा ।"

"ठीक तो, प्रकृति का ही चित्रण करने वाले इसके अंगरूप मानव को इससे पृथक् या इसके विपरीत देखे बिना, उसके अद्‌भुत, रमणीय तथा सराहनीय प्रयासों की ओर भी रुचि जगा सकें, तो कितना भला हो। नुकीले पत्थर में प्रभा फूट पड़ सके, तो इन्हीं बाँध की योजनाओं में भी वह होनी चाहिए। विहग उपयोगी माना जाए तो वायुयान क्यों नहीं ? इन्द्रधनुष कविता का आलंबन हो सके, तो पुल क्यों नहीं! भ्रमरों के गुंजार में स्वर-माधुरी मानी जाए तो डाइनमो के गीत में भी आकर्षण होगा! गगन के झिलमिलाते तारों में जो अनुपम इंगित है, वही बिजली की दीप-माला में लक्षित क्यों न हो!" लिंगे-गौडर बसप्पाजी के भावों के अनुकूल अपने को बनाने लगे थे।

"हूँ, ऐसा अविवेक कोई न कर बैठे कि फिल्म-अभिनेत्रियों की ओर अवाक् हो देखते हुए घर-वाली से ही आँख मूँद लेने के समान हो जाए।" सुब्ब-रावजी हँसे।

"मनुष्य की ओर ध्यान देते समय उसके अविवेक को ही बढ़ा-चढ़ा कर चारों ओर निशाला फैलाने में ही संतुष्ट न हो, चारों ओर निरन्तर होते रहे निर्माण-कार्यों-यहाँ केवल वस्तुजगत् तक ही मेरा संकेत न माना जाए—आदि में विवेक की सत्ता का अनुभव कराने तथा धैर्य-आश्वासन जगाने की भी आवश्यकता है।"

"खुजली है तो खुजलाने की चाह भी सहज है, खुजला देना भी सरल है। पर उससे केवल जलन ही होगी। दवा करने के लिए जानकारी और सहन-शीलता दोनों जरूरी हैं। यह कठिन है भी। लेकिन इसके बिना कोई लाभ न होने का।" सुब्बरावजी ने बसप्पाजी का समर्थन किया।

"साहित्यकार के लिए साहित्य-निर्माण हेतु अनन्त व्यापक क्षेत्र खुला पड़ा है, यह मेरा अनुमान है। वह अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के प्रवाह से खुश्क पड़ी ज़मीन को तरी, बगान आदि में बदल भी सकेगा। वह घनघोर वर्षा, बाढ़-जैसे प्राकृतिक प्रकोपों तथा दुर्बलता से भरे-पूरे दीन मानवों की उपेक्षा या अवज्ञा ही करता जाए, सो जँचने का नहीं। इन बिखरी शक्तियों को संचित कर एक झील तैयार की जाए, नालों-नहरों द्वारा इसके वितरण का विधान जनता को विदित होने योग्य बनाए।" गंगाधर सहज ही कह गया।

"अच्छा, अंततोगत्वा काव्य-साधना से बाँध-योजना पर आ ही गए।" बसप्पाजी तनिक मुस्कराते हुए सजग हो उठे।

"उचित ही तो है। अपने जैसों के लिए कर्म का अनुष्ठान ही काव्य-

साधना है, मान्यवर ! पर्याप्त आनन्द मिल जाएगा। इस काव्य-साधना द्वारा ही अपना प्रचार""गंगाधर जी ! वसप्पाजी को सव वताना होगा।" सुव्वरावजी कदम वढ़ाने लगे।

सब लोग गौरी टीले वाले मन्दिर में रखे वाँध का नमूना देखने गए। गंगाधर ने छड़ी के सहारे उन जगहों का परिचय कराया, खुले नक्शों पर उँगली के सहारे बाकी विवरण सुनाए। लिंगेगौडर तथा सुव्वरावजी वीच-वीच में अपेक्षित व्याख्या करते गए। मन्त्री महोदय ने ध्यान से सब सुना। कहीं-कहीं सन्देह दूर कर लेने के लिए प्रश्न भी किए। दो-एक वातों पर विचार-विनिमय भी किया। पूरी जानकारी हासिल करने के वाद ये लोग वाँध की कर्मभूमि की ओर वढ़े। रास्ते में तीनों इंजीनियरों ने वसप्पाजी को कार्य-प्रणाली से अवगत कराया। लिंगेगौडर, सुव्वरावजी इन दोनों से मिली सहायता के लिए कृतज्ञता व्यक्त करते गंगाधर ने उनसे प्राप्त यंत्रोपकरण आदि भी दिखाए। सामने दिखाई पड़े साथियों से परिचय भी कराते गए। आगे वढ़ते जाते, वीच-वीच रुके रहते समय सुनाई पड़ती रही वातों से इस योजना का पूरा चित्र अधिक स्पष्ट होता जाता।

"ये रोलर भी आपके विभाग की कृपा से सुलभ हुए हैं," गंगाधर ने कृतज्ञता व्यक्त की तो वसप्पाजी का जवाव मिला—"विभाग का काम आप स्वयं करते जा रहे हैं, इसमें कृपा कैसी ?"

"इनका भाग्य चमक उठा कहिए। यहाँ गंगाधरेश्वरजी के सम्मुख मिट्टी पर लौटने का सुयोग उनका रहा।" सुव्वरावजी के कथन से सव हँस पड़े।

"इनका निर्माण ही इस प्रयोजन से हुआ है।" लिंगेगौडर ने अपनी ओर से कड़ी जोड़ी।

एक ओर कुछ लोग धौंसने का काम कर रहे थे।

"यह भी कोई तरीका है धौंसने का !" कहते सुव्वरावजी ने एक कारीगर से थापी ले ली।

"क्षमा करें कुछ अपना भी काम कर लूँ !" उन्होंने मंत्रीजी से कहा और कारीगर को समझाया, "पिटाई ऐसी होनी चाहिए भैया ! प्रत्येक स्थान पर दो-दो धमकें पड़ेगी, ठिकाने की। पदचाप यों पड़े जैसे यष्टिका-नृत्य में घुँघरू बँधे पैरों की गति। उस दशा में थकान न होने की। समूह का साथ देना चाहिए, उत्साह वना रहेगा।" इतना कह सुव्बारावजी पग वढ़ाए पिटाई का ढंग वताने लगे। वहाँ आए चन्नेगौडर से कहा, "चन्नेगौडर महाशय, अभी कसर रह ही

गई, भाई । सब जगह एकसी ठसक होनी चाहिए ।"

"अच्छी बात है मालिक ! और सुधार लूंगा ।" मुस्कराते चन्नेगौड मान गया ।

"युवकों के बारे में आपसे कहा ही जा चुका है । उनमें से आप भी हैं । अतिरथी, महारथी इनमें से ही एक हैं । रावण से पृथक हुए विभीषण की भाँति आप भी अपने बड़े भाई मरीगौड से अलग हो गए हैं ।" रावजी ने बसप्पाजी से परिचय कराया ।

बसप्पाजी ने चन्नेगौडर में विशेष आसक्ति दिखाई और कहा, "उस रावण की बात त्रेतायुग की हो गई । आज के कार्ययुग में रावण भी बदल जाएँगे ।"

इतने में रेवती मिट्टी ढोती उस ओर से गुजर रही थी ।

"यह बिटिया फेसपाउडर छोड़ और कोई चीज़ जानती ही न थी । इस समय देखिए भला, मिट्टी में ही लोटपोट हुई जा रही है ! इसके दादा, पिताजी और इनके द्वारा आधा गाँव ही काम पर हाजिर हो गया । इसका सारा श्रेय इसी को मिलना चाहिए । कोई काम ठान ले, तो कभी चैन की साँस न लेने वाली ! यहाँ आना तो रेवती !" रावजी ने आवाज दी ।

"ऐसी दृढ़ता के अभाव में कार्यसिद्धि नहीं होने की । सुखी रहो बेटी !" बसप्पाजी हर्षित हो असीस देते बातें करने लगे ।

भीमण्ण दिखाई पड़ा, तो रावजी ने उसका परिचय यों दिया, "आप कलियुग के भीम ही हैं—कर्मकौशल में, हास परिहास में भी ।"

"सही बात है । वही हालत है ।" गंगाधर प्रसन्न हो उठा । देर तक बातें हुई तो रावजी की ओर मुँह मोड़ते भीमण्ण गर्व से पूछ बैठा, "सर ! आज के काम बारे में आपकी क्या राय है ?"

"अच्छा ! गदा से ढाल नापी न जा सकेगी ।" रावजी सामने देखकर हँस पड़े ।

"मतलब ? कहीं चूक हुई है ? · · यह हो नहीं सकता ।" भीमण्ण भौंचक्का हो सिर हिलाता गया ।

"आपके पीछे ही, पन्द्रह फुट के लगभग । उस तरफ चार-छह अंगुल उभरा दिखाई दे रहा है ।"

"यह बात ! गंगाधर ज़रा फीता तो धर लो । मैंने आँखें गड़ा कर नापा है ।" भीमण्ण फीते के बराबर स्पिरिट के लेवेल लिए जाँचने लगा । फिर "हाय रे ।" कहता फक् हो गया ।

सब हँस पड़े ।

"इन नन्हीं आँखों में तेल डाले काम करता हूँ··।"

"बुढोती की आँखें घुँधली भले ही पड़ जाएँ, खामियाँ पहचानने की सूझ उनमें बनी रहेगी ही ।" हँसते हुए बसप्पाजी कहने लगे ।

"भीमण्ण ! रसोई तैयार करना मुश्किल है, चखकर नमक तेज है, तीता ज्यादा है, यह बता देना आसान है । इसी ढंग से आप काम हो जाने पर एक बार अवश्य देख लीजिए । स्वाद देखने का यही तरीका है ।" कहते हुए रावजी दूसरों के साथ आगे बढ़े ।

भीमण्ण नाक पर उँगली चढ़ाए ही थोड़ी दूर उन्हें पहुँचाने गया ।

सब ढलुई निकासी पर आए । वहाँ होती पत्थर जुड़ाई देखते हुए रावजी ने पूछा "आपको यह सही लग रहा है, गंगाधरजी !"

"आपका आशय यही न होगा कि दीवार के बीच वाले हिस्से में थोड़ी सी गिट्टी और डाल दी जाय, गारा कम कर दिया जाए ?" गंगाधर ने अनुमान लगाते हुए कहा ।

"यही तो । जुड़ाई भी मज़बूत होगी, गारा भी कम लगेगा । जरा उस राजगीर को तो बुलाइए ।"

"सुनो भाई ! गारा कोई फालतू पड़ा है—इतनी बेफिक्री से डाले जा रहे हो ? खूब ! गाँव वालों का पैसा है, पाई-पाई जुगाड़ कर जमा किया है । होश से काम लेना ! गिट्टी भरने में ढिलाई न हो । कल से यहाँ आने न दिया जाएगा, समझे !" रावजी ने राजगीर से कहा ।

"वीरप्प जी ! इस राजगीर पर निगाह रहे । मनमानी नहीं करने दीजिएगा ।" निकट आए वीरप्पाजी से कहा ।

गंगाधर कार्य की गतिविधि का प्रायोगिक रूप समझा रहा था । इसी समय रावजी ने मंत्री महोदय से वीरप्प का परिचय कराते हुए कहा, "आप बड़े धनी परिवार के हैं । विशेष निष्ठा वाले हैं । इन्हें इस संघटन की रीढ़ मान लीजिए । शुरू-शुरू में द्रव्याभाव के दिनों में इस प्रयास को जिलाए रखनेवालों में से हैं । अपने पिता जी को भी इसमें आकर्षित कर लिया है ।"

"सबों ने अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार किया है, सर !" वीरप्प ने विनय व्यक्त की ।

"धन के अनुरूप गुण भी है ।" बसप्पाजी प्रशंसा करने लगे ।

यहाँ से वे नीचे उतरे । धारा में पानी बड़ा पतला बह रहा था । उस पर

कामचलाऊ 'काज़वे' लगाया गया था। लोग उसे पार कर गंगाटीले के तट पर पहुँचे। घुटने तक धोती चढ़ाए मोटा पग्गड़ पहने सिद्देगौडर कारीगरों को चेता रहे थे, "यहाँ से कदम तेज़ बढ़ाओ, अभी बुढ़ौती सवार हुई क्या! खँचिया भरते जाओ, जल्दी करो,—तुम्हारी वजह से कितने हाथ रुके पड़े हैं।"

"इस 'भारत' के भीष्मराज आप ही हैं। हाँ, इन्हें कौरवों की तरफ़ से जूझने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी है। इन महानुभाव के संकल्प के अभाव में इस 'भारत' की कथा ही कुछ और होती।" सुब्बरावजी कहते ही गए, तो सबने नत-मस्तक हो प्रणाम किया।

"आप-सरीखे बुजुर्गों के कारण ही बेलगूर-प्रकाशबाड़ी-एक गाँव बना हुआ है, भारत एक देश कहलाने का अधिकारी है।" बसप्पाजी ने कृतज्ञता व्यक्त की।

"आपका शील ही ऐसी सात्विक वाणी का मूल स्रोत है। इस सत्प्रयास का सारा श्रेय इन नवयुवकों को मिलना होगा। बड़े निष्ठावान् हैं। प्रग के लिए प्राण अर्पित करने को तैयार हैं। हम तो यों ही पीछे रहकर तनिक आवाज़ लगाते जाने वाले मात्र हैं।" गौडर प्रसन्नता से कहते गए और बसप्पाजी का मंत्री-रूप में परिचय मिलने पर हर्षातिरेक से असीस दी, "बड़ी योग्यता दर्शाई है आपने! आप भी कारीगर लगते हैं। लंबी-चौड़ी पलटन बाँध कर शोभा-यात्रा पर निकलने वाली कोई उत्सव-मूर्ति नहीं! इस योजना को कार्यान्वित होने देने का अधिकांश गौरव आपको ही मिलेगा। आप सदा सुखी रहें।"

किसी गाड़ी का पहिया धँस गया था। करीगौडर उसे कंधा दिए उठा रहे थे। रावजी ने इस ओर बसप्पाजी का ध्यान आकर्षित कर कहा,—"कुटेव से छुटकारा पाने वाले विरल होते हैं। बुरी लत से पिंड छुड़ा लेने वाले धीरों में आप भी हैं। ये पार्टीबंदी से मुक्त हो, गाँव के काम में जुट गए हैं। इनके कारण बाँध की साध पूरी हुई, मानिए।"

यह सुन गौडर विनीत भाव से बोले,—"बाँध के बहाने मेरा जीवन बन गया, कहिए। वरना यह जिंदगी धूल में मिल जानेवाली रही। पुराने धब्बे को धोने के लिए भविष्य में बहुत कुछ साधना बाकी रह गई है। मैं अपने से, इस काम में प्रवृत्त भी न हुआ। परिस्थिति का दबाव इस ओर मुझे खींच लाया है। इस दशा में सराहना का पात्र भी अपने को क्योंकर मानूँ?"

"यह आत्मग्लानि ही मन का मैल धोने के लिए काफी है। आप पवित्र कार्य में लग गए हैं। राजनीतिक दाँवपेंच से यह अधिक ठोस काम है।" बसप्पाजी ने प्रोत्साहित किया।

ये लोग उठँगने पर चढ़ने लगे, तो सामने ही खाली झौत्रा लिए पार्वती आती दिखाई दी।

"क्या हाल है, पार्वती ?⋯इस कुमारी को देखा आपने ?" रावजी के कहने से पहले ही बसप्पाजी उसे ध्यान से देखने लगे थे। बोले, "यही गंगाधर की छाया है। इस भव्य दृश्य-काव्य के सूत्रधार गंगाधर माने जाएँ, तो यही कुशल नटी ठहरती है।"

रावजी की इन बातों को सुनते ही पल भर के लिए लिए गंगाधर-पार्वती की आँखें चार हो गईं और तुरंत बाद दो रह गईं। पार्वती का चेहरा खिल उठा, कमल की नाईं अरुणिम हो गया।

रावजी आगे कहते गए,—"पर इसमें आपको नटी का हाव-भाव, नाज़ नखरा ढूँढ़े न मिलेगा। शालीनता की पुत्तलिका है।"

'यही लग भी रहा है, जैसे वसुंधरा सी वैभव-समृद्धि ही साकार हुई हो।" बसप्पाजी बड़े प्रभावित हुए।

"उस प्रचार-कार्य में, चन्नेगौडर के साथ अनशन आदि में भी भाग लेते⋯।"

"खरी बात है। यह प्रधान भूमिका न निभाती तो यहाँ कोई काम होता ही न था, होता भी नहीं।"

"ये ही संतानें गाँव की शोभा हैं। यह गर्व का विषय भी है। तुम्हारा संयत-शालीन जीवन और भी संपन्न हो उठे और अधिकाधिक सेवा का पुरस्कार सबको मिले, यही मेरी मंगलाशा है, बहन।" कहते हुए बसप्पाजी दूसरों के संग उठँगने पर चढ़े।

थोड़ी दूर आगे लोग चिकनी मिट्टी पर पैर मार रहे थे।

"यह क्या बेमेल पैर चला रहे हो जी, तवायफ़ की तरह ऊपर ही ?⋯शादी-शुदा हो क्या ? अभी इस काम के लिए नए लग रहे हो!" रावजी मुस्कराते हुए किसी युवक से पूछने लगे।

"जी हुज़ूर ! आज ही मल्लेगाँव से आया हूँ।" कहते युवक तेज़ी से पैर पटकने लगा।

"गलत तरीका है, ठीक नहीं है। बीवी के सामने नखरे दिखाने के तरह करने से काम न चलेगा। गंगाधरजी, आप तरीका सिखा सकेंगे?" रावजी बोले। मगर, गंगाधर की बताई चाल से भी उनको संतोष न हुआ।

"लीजिए, गौडरजी सिखाएँगे।" रावजी लिंगेगौडर की ओर देखकर कहते गए।

गौडर ने अपनी काबुली चप्पल उतारी। पैंट ऊपर चढ़ाया और बारी-बारी से धीमे अनायास ही पैर चलाए 'स्टीम इंजिन' की 'पिस्टन' की तरह।

"समझ गए, यही सही तरीका है।" प्रसन्न हो रावजी बोले।

मिट्टी पुते पैरों से ही गुण्ड समीप आया दिखा, तो रावजी हँसते हुए कहने लगे—"गुण्डप्पाजी ! हम आपके इन नए रंगरूटों को सबक सिखा रहे हैं।"

"आप ही हम सब लोगों के गुरु ठहरे।"

"आप गंगाधर के दाएँ हाथ के बराबर हैं। कभी इन दोनों को लारेल-हार्डी कह दिया था। पीछे राम-लक्ष्मण सदृश मान लिया। पहले-पहल मिलने आए, तो आपने ही अपनी बुलंद आवाज से मुझे परास्त किया था। उस निर्भीक स्वर के सामने मेरा सारा तिरस्कार सहज ही फुर्र हो गया।" रावजी ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा।

"इनके बारे में भी बहुत कुछ आप बता ही चुके थे। अपूर्व संघटित दल है यह। ऐसे युवक सम्मिलित होकर सत्कार्य में प्रवृत्त हों, तो असंभव क्या रह जाय ! शाबाश ! इधर हाथ मिलाइए तो सही।" बसप्पाजी ने प्रसन्नता से हाथ दबाए।

इसी समय चन्द्रव्वा खँचिया भर चिकनी मिट्टी गिरा कर गई।

"इसकी बाबत आप लोगों से अभी कुछ कहा न गया होगा।" गंगाधर सबसे कहता गया।

"वाह ! विश्वास ही नहीं हो पाता ! अंबपालियाँ आज भी मौजूद हैं !" बसप्पाजी अभिभूत हो उठे। चंद्रव्वा दुबारा उस ओर दिखाई पड़ी, तो उसकी सराहना में बोले,—"महोन्नत त्याग का परिचय दिया है, माई।"

"एक न एक क्षण में ही सही, प्रभु की महती अनुकम्पा से, बुद्धि जाग उठी, इसमें कोई विशेषता कैसी ?" चन्द्रव्वा पूरे परितोष के साथ जवाब दे चली गई।

"चार-छह खँचिया मिट्टी गिराने की याचना करती आई, लगातार काम पर आने लग गई।" गुण्ड ने प्रकरण पूरा किया।

"इस सत्प्रयास में गंगा की धारा का अपूर्व आकर्षण है।" सुब्बरावजी ने कहा।

"मैं भी इस पुनीत धारा में अवगाहन कर क्यों न पुण्य कमा लूँ ?" बसप्पा

जी भाव-विभोर हो कहते गए और कुर्त्ता उतारते हुए बोले· "मैं भी चार-छह झौवे मिट्टी यहाँ गिरा ही दूँ।"

"हमें भी यह सौभाग्य सुलभ हो ही चुका है। थोड़ा और पुण्य-संचय कर लें।" रावजी ने हामी भरी।

"हथेली भर के सोने का फावड़ा यहाँ कहाँ, महोदय !" मुस्कराते गुण्ड बोल उठा।

"खिलौने का फावड़ा, ट्रवेल, इन सबकी जरूरत नहीं। चकनाचूर होने भर कोई मिहनत नहीं कर रहा। यो ही कोई चिकनिया भी नहीं हूँ। खिलवाड़ नहीं, काम करना होगा। यह मिट्टी लगा इस्पात वाला फावड़ा ही अपने राम के लिए ठीक पड़ेगा। यही दे दीजिए, अपने मंत्रिमंडल के सामने दिखाऊँ। अरे बाबा, मुट्ठी भर मिट्टी गिरा देने से क्या यहाँ का ऋण चुक जायगा ? भविष्य में यह सब याद कर लज्जित न हो उठूँ, इसके लिए दूसरे पहर तक खटना न होगा ? सोने का फावड़ा देर तक टिकेगा ? जरूरी काम से बंगलोर न लौटना होता तो शाम तक यहीं काम करते रह जाता।" यह कहते बसप्पाजी ने पास ही पड़ा फावड़ा उठा लिया।

बसप्पाजी की विशेषताएँ कारीगरों को अनयास ही विदित हो गईं। उस दिन खाने के लिए छुट्टी हो जाने तक अपने साथ ही परिश्रम में तत्पर मंत्री महोदय को देख लोग ठिठक गए, प्रसन्न हो उठे।

"यह भी कभी देखने को मिला था जब मंत्री महानुभाव सहज रूप से अपने लोगों के संग खूब मिहनत करते दिखे हों ?"

"यह प्रयास महान् है, असाधारण है, इसका यही सबूत है या नहीं ? हम लोग इसमें शरीक हुए, तो कोई भूल नहीं की है, समझे !"

"कैसी बकवाद कर रहे हो ? मंत्रियों के आने पर ही इसका राज़ खुले ? भगवान् की ओर से हमें भी तो बुद्धि मिली है।"

"सरकारी महकमों में भी बड़ी जोरदार हलचल हुई-सी दिखाई दे रही है। सरकार भी जनता के साथ सम्पर्क बढ़ाने लगी है। खाली हुकूमत करना ही उसका इरादा नहीं दिख रहा।"

"या हो सकता है कि वे अपवादस्वरूप मात्र हों। कारण बता दूँ ? हाल ही में नरगेरे में आम का पौधा लगाने एक मन्त्री महोदय पधारे थे। उनके बारे में आम जनता इतना कहती गई, इतना कहती गई कि सुनाने लगूँ तो कोई रामायण ही हो जाए। एक मामूली आम का पौधा ! कहीं फेंकी गई गुठली से

अंकुरित कह लो। किसी ने क्यारी बना दी थी, जिसमें पौधा रोपा गया। उसे मिट्टी से मजबूत कर उसमें पानी सींचने वाला कोई दूसरा ही रहा। इतने के लिए नगरपालिका की ओर से तीन हजार रुपए लगाए गए। उनके साथ एक भारी पलटन ही आ गई थी। तिस पर गाँव वाले मिमियाते-घिघियाते। वला के मेहमान बन आए थे। इसके लिए पंडाल में मजे की चाय पार्टी का आयोजन था। बाजे-गाजे धूमधाम से! फ़ोटो भी खिँचवा ली। इस सारे नाटक का वर्णन ही क्या करूँ? वह पौधा भी कोई बछड़ा चर ले गया दूसरे ही दिन। किसी को पता नहीं चला।"

"उतने भर के लिए यह शान समारोह आवश्यक हो गया, तो यहाँ के इस वृहत् कार्य के अनुपात में कितना विराट् आयोजन होना चाहिए था! विवेक से काम लिए जाने से वह उपद्रव यहाँ नहीं हो पाया।"

"सुनो भाई। वोट पड़े, तो ऐसों को पड़ना चाहिए। कितने सीधे-सादे हैं! ऊपर से परिश्रमी भो। जो कोई देखे, सम्मान करने लग जाए। इसके विपरीत ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे विद्याहीन बुद्धिशून्य को सिर के वल होने पर केवल उसके पास रहे पैसों के लालच या उसकी धुप्पलवाजी से दबकर वोट दिए जाएँ तो दुनियाँ ही उलट जाए। ऐसे लोग हमें ही चबा जाएँगे, अपनी तृष्णा बुझा लेंगे और सबको डकार तक जाएँगे। हमें खाना भी नसोब न हो, धूल ही फाँकनी पड़ जाए।"

"गावदी हम हैं भाई, जो ऐसे लोगों को चुनते हैं। नब्ज़ न जानने वाले महावैद्य से चिकित्सा कौन करावे? ज़रा सी योग्यता नहीं, पढ़ाई-लिखाई नहीं, ऐसे लोगों के हाथों देश की वागडोर थमा कर वेखवर लेटे जो रहते है, इसके लिए कौन-सी दवा है, बताओ तो सही।"

खाने का समय हो चला तो लोग यही बात करते रहे।

मन्त्री महोदय का कार्यक्रम मालूम होने पर गंगाधर ने हिरियण्णाजी, वेंकटशेट्टीजी और शिवप्पाजी आदि के यहाँ संदेसा भेजा और गाँव के प्रमुखों के यहाँ भी सूचना दे दी।

हिरियण्णाजी खाना खिलाने भागीरथी के साथ आ पहुँचे तो, बारह बज चुके थे। अन्य कई प्रमुख व्यक्ति भी उनके साथ आए थे। शाला की ओर निकले पुराणिकजी ने सुना, तो उस दिन के काम से पिंड छुड़ा लिया, शिव-स्वामीजी से शाला बन्द कर देने को कहला दिया और गाँव के प्रमुखों में शामिल हो गए। मरीगौडर के यहाँ भी सूचना पहुँची। लेकिन वे यही कहते चुप लगा

गए कि "ये तो अपनी पार्टी के हैं नहीं ! इनसे मिलने से क्या फायदा ?"

सब भोजन करने बैठे। परिचय कराया गया। पुराणिकजी से मंत्री ने पूछा, "आज कोई छुट्टी है ? किस बात की ?"

"आप जैसे महापुरुषों का शुभागमन ही एक विशेष उत्सव है। इससे अधिक चाहिए क्या ? आप के आगमन के उपलक्ष्य में स्कूल बन्द करने का आदेश दे आया, मान्यवर के दर्शनलाभ के लिए।" पुराणिकजी दाँत निपोरे कहते गए।

"यह बात ! मेरा आगमन यहाँ, तो नुकसान वहाँ तक पहुँच ही गया।"

"यह कैसी बात श्रीमुख से निकल रही, मान्यवर ! नुकसान के माने....।"

"हाँ, और क्या, वही तो ? मेरे आगमन के उपलक्ष्य में एक घंटा और पढ़ाई जारी रखते—आज के युग-धर्म के अनुरूप।"

"मान्यवर विनोद करने लगे हैं। मैं जानता हूँ।" पुराणिकजी और भी दाँत खीसने लगे।

"मास्टर साहब ! इसमें विनोद नहीं, मुझे तो प्रमाद ही दिखाई दे रहा है।" कहते हुए बसप्पाजी दूसरों की तरफ मुड़े।

भोजन भागीरथी ही परोस रही थी।

"कहो बहन ! इस प्रयास में तुम्हारी सेवा इसी रूप में हो रही है।" मुस्कुराते हुए बसप्पाजी बोले।

भागीरथी को कोई जवाब ही नहीं सूझा। वह केवल मुस्करा कर रह गई। "इसके नैतिक बल के सहारे ही यह सारा प्रयास चल रहा है।" गंगाधर बोला।

"वाह वाह !" मंत्री के उद्गार निकले।

भागीरथी की दृष्टि गंगाधर को घूरती लौटी।

"आपके आगमन की पूर्व-सूचना मिली ही नहीं। जो भी बना था, वही लाना पड़ा है। इस भोजन की यही विशेषता मान लीजिए रागी मुद्दा और सेम की फलियों की दाल।" हिरियण्णाजी ने प्रसंग बदला।

"सचमुच यही विशेषता है, महाराज ! जब से बंगलोर गया हूँ, ताज़ी फलियों की दाल चखने तक को नहीं मिली। रागी मुद्दा कभी-कभी बनवा लेते हैं। अपने बड़प्पन के तकाज़ों से दूसरों की देखादेखी रोज़ चावल ही पर उतर आए हैं। लेकिन यह मेरी दृढ़ धारणा है कि जो अपनी है वह पहले गाँव में खाए रागी मुद्दा का ही परिणाम है। उसी मूलधन पर ब्याज मात्र है।...हाँ, यह मलाई जमा दही अलग। और चाहिए क्या ? वहाँ की चाय-पार्टियों से

उचट गई जीभ के लिए बड़ी रुचिकर वस्तुएँ हैं। लोग मान बैठे हैं कि मंत्री लोग मलाई पर हाथ साफ़ करते हैं। यह सत्य से कोसों दूर है ! मंत्री अपनी गद्दी नीलाम में बेच भी लें, पर बंगलोर में मलाई जमा दही बूँद भर नहीं मिलने का। वहाँ का मक्खन-बिना दूध जमा दही रक्तहीन से जन्मे शिशु के समान होता है।"

यों ही कई बातें होती रहीं। कई नगरों-देशों की चर्चा भी आई-गई।

"इस अपूर्व उत्साह को ललित कर नवयुग के आगमन, नव जीवन के सूत्रपात आदि का आश्वासन मिल जा रहा है, उल्लास बना हुआ है। इसी से जीवन भी थोड़ा बहुत सार्थक प्रतीत होने लगा है। अन्यथा वही पुराना रवैया रहता तो बिना सोचे-विचारे आत्महत्या भली लग जाती।" बसप्पाजी ने बाँध की ओर इशारा करते हुए कहा।

पुराणिकजी ने मुँह खोला ही था, पर दूसरे ही क्षण, जाने क्या सोच कर उसे बंद कर लिया।

"ऐसे प्रयासों में आपके स्तर पर रहने वालों का प्रोत्साहन बड़े महत्त्व का होता है। जनता और सरकार दोनों पति-पत्नी के समान हैं। एक की आवाज़ दूसरे को जागरूक बनाए। दोनों चिल्ला उठें तो केवल कोलाहल मच जाए। कोई काम न सरेगा।" शिवप्पाजी कहते गए।

"मान्यवर मंत्रीजी ने जागरूकता दिखाई। आदर्श मंत्री महोदय हैं। उनके बदन पर लगी मिट्टी ही पुकार उठती है।" पुराणिकजी ने स्तवन किया।

"यह मिट्टी नहीं, प्रकृतिदेवी की कुकुंम-अर्चना से प्राप्त प्रसाद है।"

"मान्यवर ने उचित ही अभिमत व्यक्त किया है ! मंत्री हो जाने पर इतना समय कोई निकाल सके, प्रभु ? यहाँ के कार्यक्रम से जाने कितने अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य अटक गए हों।"

"यह भी तो महत्त्वपूर्ण है। इसमें भी मंत्री की ओर से होने लायक थोड़ा-बहुत किया है, यही अपनी धारणा है।"

"अवश्य, हाँ हाँ, अवश्य ही ! इन लोगों को सही पटरी पर लगाने का बड़ा काम हो गया।"

"ना-ना ! यहाँ मैंने बहुत कुछ सीखा है। भविष्य में यह अपना संबल रहेगा।"

"मान्यवर,, और सीखें !"

"सीख की आवश्यकता का अनुभव न हो, ऐसा भी कोई पंडित होगा !

सोखने के लिए अपने पास सदा समय है । इतना पहाड़-सरीखा कार्यभार नहीं ।"

"मान्यवर, कार्यभार नहीं ! खूब कहा आपने !"

"कर्मकुशल जो भी हों, समयाभाव से परेशान नहीं होते । आलसी कभी खाली रहेंगे नहीं, यह अपने प्रोफेसर साहब कहा करते थे ।" गंगावर बोला ।

"यदि अनिवार्य पड़ जाए, तो कागज़ के सामने दो घण्टे और बैठ गए, बस ! अभिनन्दन-पत्र, भाषण आदि का प्रवन्ध रहता तो इतना ही समय उसमें लग जाता ।"

"ठीक कहा आपने ! मान्यवर के अधीन रहे विभाग बड़े विख्यात हैं ।"

"आपके बीच ही राज्य-संचालन में समर्थ धीर-वीर हैं तो !"

"धन्यवाद ! हम आपसे बड़े उपकृत हैं ।" कहते हुए पुराणिकजी फूले न समाए ।

अधिकाधिक क्षमता-प्राप्त लोगों की संख्या बढ़े, तो यह देश अन्य प्रगतिशील राष्ट्रों की भाँति जल्द ही तरक्की कर उठे । उस अवस्था में हम न केवल सुखी होंगे, बल्कि औरों के सामने सिर झुकाने की दुर्दशा से भी मुक्त रहेंगे । मैं योरप तथा अमरीका भी हो आया हूँ । वहाँ के निवासी बड़े पुरुषार्थी श्रमजीवी हैं । अमरीकी में तो ये बातें साफ दिखाई देंगी । बीहड़ दुर्गम वन भी चन्द लोगों के अथक परिश्रम से नन्दन में परिणत हो उठे हैं । वे साधन-संपन्न हैं, यह सही है । पर व्यक्ति ही सर्वोपरि ठहरता है । हर राष्ट्र में अगणित महान् कार्य गोचर होंगे । सरकार की ओर से भी बहुत कुछ हुआ है, पर ये असाधारण कार्य सरकारी प्रयास का परिणाम नहीं । सरकार पर ही पूर्णतः निर्भर हो हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने वाले लोग वहाँ नहीं हैं । यही कारण है कि वहाँ दसगुना काम हो जाता है । उनकी स्वतन्त्रता, संपन्नता का मूल मंत्र आत्म-निर्भरता प्रतीत होती है । सरकार जनता की है, यह सही है । 'हम भी कुछ कर सकेंगे । अपने पैरों पर खड़े हो पाएँगे ।' जब तक यह भावना जनता के मन में उफानें न मारने लगेगी, लोग अपनी सहज शक्ति की परिपूर्णता को पहचानते हुए सरकार से मिले आश्वासन, धैर्य आदि को आत्मसात् न कर लेंगे, तब तक यह अवश्य कहा जाता रहेगा कि जनता को असली आज़ादी का स्वाद मिला ही नहीं । राजनैतिक स्वतन्त्रता पूरी स्वतन्त्रता नहीं है । 'अपने आपको पहचानना ही बन्धन-मोचन है' वाली उक्ति इस अर्थ में भी प्रयुक्त हो तो प्रायः अनुचित न लगे ।" बसप्पाजी इसी जोश में कह गए, कई देशों की विशेषताओं का उल्लेख किया और वहाँ के महान् प्रयासों का परिचय कराया ।

"अमरिका में करोड़ों डालर कीमतवाले एक सन्तरे के वगीचे को जलापूर्ति करनेवाली सुरंग जब ढह कर बरबाद हो गई, तब बगीचे को सूखने से रोकने के लिए थोड़े ही समय में एक दूसरी सुरंग का तुरंग निर्माण जरूरी पड़ गया। ठेके की शर्तें तोड़ें तो दिन-ब-दिन भारी जुरमाना देना था। लेकिन जैसे ही काम चलने लगा, बगीचे के और भी जल्द ही सूखने का चिह्न नज़र आया। तब कंट्राक्टर फ़र्म ने स्वेच्छा से एक के दुगुने-तिगुने लोगों को लगा कर चार-छह जगहों में एक साथ काम करवाने का इन्तज़ाम किया। दिन-रात की पाली चालू की। फल यह हुआ कि निश्चित अवधि से कुछ सप्ताह पहले ही सुरंग पूरी कर ली और वगीचा सूखने से बच गया। हालाँकि फ़र्म को इससे बहुत नुक-सान हुआ, पर उस ने परवाह न की। यह समाचार 'रीडर्स डाइजेस्ट' में छप कर आया है। देश की संपत्ति के बारे में उन लोगों को कितना अभिमान है! इस बात को मैं अपने ठेकेदारों को हमेशा बताया करता हूँ।" बतलाते हुए लिंगेगौडर जी ने उस कार्य के कई विवरण भी दिए।

"आधुनिक रूसी साहित्य में भी जनता के साहसिक कार्यों का उल्लेख आया करता है। 'फार फ्राम मास्को' नामक किताब में लिखा गया है कि युवजनों की एक टोली ने शून्य डिग्री से काफ़ी नीचे वाले शैत्य में, हिम की ठिठुराई में, एक लम्बी पाइप लाइन का काम कितनी मिहनत से कैसे साध लिया। याद करने से हारते हुए मन को स्फूर्ति मिलेगी। ऐसी घटनाएँ और कितनी ही हैं।" गंगाधर ने अपनी जानकारी से लोगों को अवगत कराया।

"उन जैसे लोग, उनकी दृष्टि, शक्ति और साहस ही प्रगतिशील राष्ट्रों का रहस्य है। देख सकने वाली आँखों को यह दिखाई पड़ता है कि हमारे यहाँ भी बहुतेरे अद्भुत कार्य चल रहे हैं। लीजिए, यहाँ के साहस को ही देखिए, इन हमारे जनों को ही देखिए। ऐसे प्रयत्न जब सभी क्षेत्रों में सौ गुना, सहस्र गुना और लाख गुना होवें, तभी इतने बड़े देश का उद्धार साध्य होना। जनों की यह शक्ति अमित कही जा सकती है।" सुब्बराव जी भावुकता से बोले।

"इस तरह सोचने और करनेवाले देश के गौरव पुरुष हैं।" बसप्पाजी ने तृप्ति से बात पूरी कर दी।

खाना खत्म हुआ। मंत्री जी विदा माँगते हुए सबको हाथ जोड़ कर कहने लगे, "वेलगूर-प्रकाशबाड़ी-अभिधान सार्थक ही उठे, होगा भी, इस पर पूरा भरोसा है।"

"मान्यवर, गाँव में भी पधारते और सबको दर्शनों का सुयोग प्रदान

करते···।"

"गाँव के निवासियों के दर्शन यहीं कर लिए हैं। प्राणधारा यहीं तो है।"

"कोई संदेश दें तो जनता आनंदातिरेक से नाच उठती।"

"करने के बाद कहने-देने के लिए कुछ नहीं रह जाता।"

जीप चल पड़ी।

गाँव की ओर बातें करते सारे प्रमुख चल पड़े। गाँव पहुँचे तो देखा पुराणिक जी की शाला चालू रही।

"यह देखा सर! कैसी अवज्ञा! मैंने आर्डर कुछ दिया तो यहाँ यह कुछ और करता जा रहा है। यही रवैया रहे तो काम कैसे चले। आप सब इसके साक्षी हैं।" पुराणिक गरजने लगे और नौकर को आवाज़ देकर बोले, "सुनो, शिवस्वामी से कह दो, मुझसे मिल लें।"

इतना कह सबके साथ बढ़े। बाकी सज्जन मंत्री महोदय की वार्ता में तल्लीन थे। पुराणिकजी की ओर ध्यान नहीं दिया।

शिवस्वामी जी आए और साथ हो लिए।

"यह क्या··· क्यों···।" पुराणिकजी हकलाने लगे।

"कोई आवश्यकता प्रतीत न हुई, सर!"

"क्या कहा! इसका निर्णय कौन करेगा? मैं या आप?"

"आप पहुँच ही गए हैं। अब मर्ज़ी के माफिक···।"

"आप से मैं यह समझूँ, क्यों?"

"चलाने दीजिए मास्टर साहब! मंत्री जी की भी यही राय रही।" पास ही खड़ी भागीरथी बीच में बोल उठी। पुराणिकजी सकपका गए, "अच्छी बात है, अबकी जाने दीजिए," कहते अपने को सँभालने लगे और बोले, "सुनिए शिवस्वामीजी! मंत्रीजी से बहुत कुछ बातें कर आया हूँ। हम प्रमुखों को कई महत्त्वपूर्ण बातें बताई हैं। हम लोग वही चर्चा चलाते आए हैं। इस समय मैं खाली न हो पाऊँगा। बड़ी थकान भी है। मेरा आखिरी पीरियड आप ही देख लें-कंबाइन कर लें। समझे?"

शिवस्वामी कोई जवाब दिए बिना ही चल पड़े।

उस दिन शाम को निर्माणय्याजी ने पुराणिकजी से पूछा, "कहिए सर! इन मंत्रियों की तूती बोलने लगी है! गाँव-भर में यही चर्चा है। किसी राजा साहब के बारे में भी इतनी जोरदार चर्चा सुनने में न आई। डाकघर आए सभी

यही रट रहे, बखान कर रहे, तिल का ताड़ वनाते रहे। सुना, आप भी गए थे…।"

"हाँ, गाँव के प्रमुखों में से एक। शिक्षा-विभाग के प्रतिनिधि के नाते बुलावा आया था। अपना विभाग तो स्टेट से संबद्ध है, आपका सम्बन्ध तो केन्द्र से है।"

"हाँ, अन्यथा…।"

"आप कैसे बच पाते, अवश्य ही आप भी….।"

"अपना हाल कहिए, सर!"

"कहने के लिए रहा क्या गया, सर! खाक़ है उसमें मंत्री का काम न जानें तो और करें ही क्या? मातहतों के विना कहीं भी पहुँच जाना सादगी मानी जाय, मनहूस कहीं का! अधिकारियों पर कोई वस न चलने का, यह स्वीकार करने में शर्म क्यों? यह कहाँ का मंत्री, सर! कोई वस न चलने का, यह स्वीकार करने में शर्म क्यों? यह कहाँ मंत्री, सर! कोई रोब-दाब नहीं। अधिकार चलाने में कोई शान भी तो हो? शासन-व्यवस्था शिथिल पड़ जाएगी और आखिरी मुगल बादशाहों की सी दशा हो जाएगी, सर्वनाश! पुराने ज़माने में वजीर दौरे पर निकल पड़ते, तो रियासत के आधे से अधिक अधिकारी हाथ जोड़े हाजिरी बजाते! जिले का जिला वहीं मौजूद रह जाता। डाकबँगले के चारों ओर चुंचुनकट्टे वाले मेला-सरीखा दृश्य उपस्थित हो जाता। उनके सामने जाने की हिम्मत किसे पड़ती सर! थरथर काँप न उठें, मुँह खोलकर बातें करना तो दूर। 'जी हुजूर,' 'हाँ हुजूर,' 'जो हुक्म हुजूर' इन तीन तीन जवाबों को छोड़ चौथा स्वर ही न सुनाई दे। जनता, मातहत इन पर कैसी सख्त पाबंदी थी!…हट, ये लोग भी हैं। जो भी दिखाई पड़ जाय उसके कंधे पर हाथ रखे 'कहो भाई, कहिए वहन' की रट लगाए उनसे मिली रूखी-सूखी ही निगल जाते हैं। यही रवैया रहे, तो सरकार चलेगी कैसे? निकट भविष्य में ही दम तोड़ देगी, देख लीजिएगा।"

"सब इनके-जैसे थोड़े ही होंगे? पुराने वजीरों को भी मात करने वाले चंद मंत्री हैं ही। वे ही शासनसूत्र सँभाल रहे हैं।"

"हम हज़ारगुना अच्छे हैं, सर! अपने स्कूल, दफ्तर इन्हें कैसे सँभाला है! मैं तो हुकूमत लोहे की छड़ी से ही चला रहा हूँ। वरना, वह शिवस्वामी काबू में रहता? बगावत खड़ी कर देता। हाँ, आज उसकी धज्जियाँ उड़ा दीं, सर! आँखों से आँसू का ढुलकना ही शेष रह गया था। क्या वताऊँ?" कहते उस दिन की घटना अपने अनुकूल बना कर चित्रित करते बोलते गए, "कोई बात

नहीं, हिरियण्णाजी धनी-मानी हैं, अपने हैं, उन्हीं की बिटिया ने सिफ़ारिश की, यही ख्याल कर माफ़ कर दिया उसे। अन्यथा क्या हो जाता.......।''

''अच्छा ! हम लोगों से ही छेड़खानी ! सो तो ठीक, सर ! आप से मंत्री जी ने किन प्रमुख विषयों पर चर्चा की ?''

''हटाइए जी, पता नहीं, क्या-क्या वक गए। मंत्री बन बैठा है, तो उतना ही रेंकना भी तो पड़ेगा। इसकी भी कोई कीमत है, सर ? पुराने ज़माने में, कहते हैं, कुछ भी ठीक न था। आज और कल ही आशा-आश्वासन की गुंजाइश बताते हैं। उनका आशय अति प्राचीन युग से संबद्ध न रहा होगा। तिस पर भी घोर प्रतिवाद करने के लिए जीभ ललचा उठी थी। किसी भाँति अपने को रोक़ लिया। कारण बस इतना ही है। आज इस विभाग का मंत्री है, तो कल अपने विभाग का सर्वेसर्वा हो सकेगा। प्रजाराज्य जो ठहरा, किसी भी पोतनायक को कोई भी पोर्टफोलियो मिल जाय, कौन जाने, ह्‌ह हा !''

''लाजवाब कहा आपने, ह्‌ह हा ! सच वात है ह्‌ह हा !''

निर्वाणय्याजी खूब हँसे, आँखों में पानी छलछला उठा। सुँघनी की वटिका माँगी।

''अपने राम की समझ में यही आता है, सर ! व्यक्ति अपने को निर्लिप्त माने तो मंत्री के ओहदे के लिए लालायित क्यों हो उठे ! संन्यास ग्रहण कर ले, सदा सृष्टिकर्ता के ध्यान में लीन हो जाए और मोक्षप्राप्ति का उद्योग करने में लग जाए।''

''उतना समझ में आ सके इसके लिए यह भी तो चाहिए न, सर !'' पुराणिक जी ने खोपड़ी पर हाथ रख कर दिखाया।

दोनों ने सुँघनी चढ़ाई। अट्टहास करते ही रहे।

●●●

: ३१ :

काम पर से लौटते समय गंगाधर ने जब प्राइमरी शाला की ओर दृष्टि दौड़ाई, तो सहसा रुक गया। इतने दिनों तक शिथिल पड़ी, झुकी आकृति, विकार-भरी छाजन वाली शाला नई चेतना से स्पंदित हो उठी थी। छोटे-छोटे वालक दीवारों को घेरे खड़े थे। सनी हुई मिट्टी के गोले दीवारों पर रखते दीवार की दरारों को भर रहे थे। नसेनी के ऊपरी हिस्से पर खड़े मास्टरों को ये गोले नीचे से ऊपर तक कतार बाँधे खड़े वालक पहुँचाते रहे। गंगाधर शाला के

समीप पहुँचा। मिट्टी सानते रहे तथा चारों ओर गोले बनाते रहने वालों को सावधान करते रहे नारणप्पाजी ने सिर उठाया और इसे देखकर मुस्कराने लगे।

"यह गाँव वालों को तुम्हारे सिखलाए सबक का परिणाम है, भाई! इस समय वास्तव में तुमसे गुरुदक्षिणा मैं पा ही गया।"

"मेरा सिखलाया सबक! मास्टर साहब, यह आपका बड़प्पन सूचित करता है। जो भी सूझा, मैंने कह दिया, उसके लिए थोड़ा-बहुत जोर भी अवश्य लगाया। बस, इससे अधिक अपना कुछ नहीं। गाँव का गाँव कभी का मुझे परास्त कर चुका है और इससे मैं बहुत कुछ सीख सका हूँ, सीख रहा हूँ। यह अपना सारा प्रयास आप-सरीखे हितैषियों द्वारा मिले धैर्य-अधैर्य का ही साकार रूप है।"

"इतनी बातें सुनने को मिलें किससे, भाई? मैं बड़ा प्रसन्न हूँ।"

"यह सारा काम देखकर मैं भी विशेष प्रसन्न हो रहा हूँ।"

"बाँध उठने की तरह गाँव भर में गूंज उठी प्रतिध्वनियों में से यह भी एक ध्वनि मात्र मान लो। इसका आरंभ कैसे हुआ, जानना चाहोगे! उस एतवार के दिन शाला के बालकों को बाँध पर घुमा लाया था, याद है तुमको?"

"अच्छा!" गंगाधर को भली-भाँति याद था। उस अवसर पर स्वयं बालकों और मास्टरों को सब कुछ दिखाया था। अंत में नारायणप्पाजी बड़े गर्व से कहने लगे थे–'देखिए, अकेले का धैर्य-उत्साह; कितना अपूर्व कार्य होने लगा! भविष्य में आपको भी बड़े-बड़े अवसर मिल सकेंगे। वे अवसर हाथ से जाने न पाएँ, इसलिए अभी से शक्ति-साहस संचित करते जाइए। अपनी शाला का ही पुराना विद्यार्थी–अपने बड़े भाई के कदमों पर चलना सीखिए।"

यह सुन हँसकर गंगाधर बोला था, "आवश्यकता पड़ने पर इनकी सहायता भी ली जाएगी। अभी तो इन बालकों ने यहाँ चक्कर लगा कर मिट्टी की धँसाई में सहयोग दिया ही है। यह राम द्वारा सेतु-निर्माण कार्य में गिलहरियों से हुई सिकताकण-सेवा सदृश ही तो है।"

इस पर मास्टर साहब ने कहा था, "इस दशा में और भी चन्द चक्कर लगा लें।" और फिर उन्होंने अपनी सारी पलटन को वहाँ देर तक दौड़ाया था।

"उस दिन लौटते समय शाला-सम्बन्धी इस काम के बारे में अपने सहयोगियों तथा इन बालकों से चर्चा चलाई। सरकार के साथ हुई लिखा-पढ़ी का भी ज़िक्र किया। सबने बड़ा उत्साह दिखाया, खुशी से मान गए। फिर क्या, व्यायाम के पीरियड में काम शुरू करने का भी निर्णय भी हो गया। यह देखो,

अँधेरा छा जाने पर भी काम में लगे ही हैं—काम में जबर्दस्त आकर्षण होता है।" मास्टर साहब ने बात पूरी की।

"यह अपनी भी तो शाला है, कहते गंगाधर ने मोटे-मोटे गोले उठाए, ढो कर ऊपर चढ़ा और उन्हें दीवार में जमा दिया। एक तरफ़ की दीवार का आधा हिस्सा चौरस बनाने वाली लकड़ी से तराशा। अन्त तक उनके साथ ही काम करने के बाद सबके साथ गाँव लौटा।

"इसी तरह जंगली झाड़ियाँ कटवा कर मँगा लेंगे, उन्हें बाँस की पट्टियों के बीच बँधवा देंगे। मिट्टी की पुताई करेंगे। अन्दर तीन दीवारें उठाएँगे। यदि इस वक्त की एक कोठरी चार समान हिस्से वाले कक्षों में बदल लें, तो चार कक्षाएँ एक साथ चलाई जा सकेंगी। टट्टी के किवाड़ रख लिए जाएँगे। अब की सरस्वती-पूजन के निमित्त बालकों से जमा हुई निधि का थोड़ा पैसा लगा कर चूना मँगा लिया जाएगा और अन्दर-बाहर सफेदी हो जाएगी। शाला के सामने घेरा भी लगा देंगे, एक बगीचा भी हो जाएगा। कोई काम हो, शुरू करना ही महत्व रखता है—आधा काम हो ही गया समझ लो। क्रम से वह किसी सूरत से पूरा होकर ही रहेगा, यही देखा गया है···" इस तरह मास्टर साहब भावी योजनाएँ भी बताने लगे थे।

"आपका कहना सोलह आने सही है। यह स्वावलम्बन की असली पढ़ाई होगी। इतिहास, भूगोल आदि विषयों की तरह तुरंत भूल न जाएगा। सदा के लिए खून की भाँति नसों में समा जाएगा। बालक वास्तव में पुरुषार्थी होंगे।"

गंगाधर सबसे विदा माँग कर अपनी सड़क के मोड़ पर पहुँचा तो प्रतिदिन की भाँति नागप्पाजी के मकान की मोरी से बहते गंदे पानी को लाँघने की नौबत नहीं रही। इतनी पनारी मिट्टी से ढँक दी गई थी। उसकी दृष्टि घर की ओर पड़ी, तो चौतरे पर खड़े बूढ़े नागप्पाजी मुस्कराते हुए कहने लगे, "क्यों, ताज्जुब लग रहा है? इतने अरसे तक इतनी छोटी-सी बात खोपड़ी में आई कैसे नहीं, यह मुझे लज्जित कर दे रही है। यहाँ तनिक देख लो भाई, मोरी ठीक घुमाई गई है या नहीं!"

इस समय ईंट-मिट्टी से बनी पनारी से पानी पीछे की ओर बहता और क्यारियों में जमा होता जा रहा था।

"मैं भी यही करता···।" गंगाधर ने देखदाख कर कहा।

"मैंने ही बनाई भाई! अपने हाथों से। मजूरा-वजूरा कोई नहीं लगाया।" गर्व से कहने लगे।

"गारा मिल जाए, तो पनारी के अन्दर पोत दीजिए। पनारी ठोस हो जाएगी। पानी बढ़ गया तो एक 'सोक पिट' में जमा हो जाए।"

"वही होगा, वही होगा। आज से यह गंदा पानी पड़क पर आने-जाने वालों में घिन न पैदा करे, सड़क भद्दी न लगे, इसका प्रबन्ध देख लूँगा। इतना ही नहीं, जो बाकी रह गया है, वह बता दूँ? सामने वाली सड़क और मोरी भी दुरुस्त करनी है, तुम्हारी सलाह से ही। हर कोई अपना अपना काम सँभाल ले, तो सड़क-की-सड़क पक्की हो जाए, क्यों?"

"अवश्य! वह युग भी आया चाहता है।"

"ठीक कह रहे हो, भाई! इस वक्त तो सभी काम में लग गए हैं। टाँग पसारे लेटे रहने वाले, दल बना कर गप्पें हाँकने वाले तक आँख में नहीं पड़ रहे हैं। खुराफाती मनोवृत्ति अपने से मिटती जा रही है। जो शरीर से लाचार हैं, बाँध पर काम करने नहीं पहुँच पा रहे हैं, उनका भी ध्यान उसी ओर केंद्रित होने लगा है। मेरा ही अनुभव. इसका प्रमाण है। पड़ोसिन रामक्का मुझसे ढाई साल बड़ी है। कमर भी झुक गई है। इस दशा में भी बरसों से सड़ी पड़ी, चौपायों के घुस पड़ने के लिए खुली रही, नाटी दीवार ऊपर उठा ही दी है उसने। यह सब कब-कैसे कर सकी, इश्वर जाने। न जाने अन्यत्र भी बाकी लोग क्या-क्या न करते रहे हों। लगता है कि क्रियासक्ति और क्रियाशक्ति दोनों का झोंका ही लग गया हो। अच्छी बात है, भाई। फिर बातें होंगी। हम बूढ़े जो ठहरे, बकना शुरू कर दें तो·····।"

"ऐसी कोई बात नहीं, नागप्पाजी! यह तो अपने लिए बड़ा ही शुभ समाचार है। और भी उत्साह बढ़ेगा।" इन शब्दों के साथ गंगाधर ने विदा माँगी और चल दिया।

पर, चार कदम भी न बढ़ा होगा कि कांजी हाउस के करियप्प की बीवी तिम्मब्बा से भेंट हो गई।

"कहो भैया, अपना लड़का काम पर आया रहा? काम ठीक किया तो?"

"हाँ बहन! यह क्यों पूछ रही हो?"

"बुद्धू कहीं का, घर पड़े-पड़े जान खा लेता था। स्कूल छोड़े सालों हो गए। तिस पर कोई नौकरी-चाकरी भी न करे। मैं बोली भी, 'जाते क्यों नहीं, गाँव-का-गाँव काम पर जा रहा है। तुम भी जाओ न।' इस पर कोई ध्यान ही न दिया। आज दुबारा धमकाया—'काम पर नहीं जाओगे, तो घर खाने को न मिलेगा।' इसका थोड़ा असर दिखाई पड़ा। झल्ला कर सुबह निकला। उसकी

कमाई पर ही तो पेट नहीं काटना। उसका बाप कमाने वाला है ही। लेकिन मूँछें उग आने पर भी नालायक घर बैठा रहे, तो दुनियाँ क्या कहेगी, बोलो भैया ? सो भी इस वक्त, ज़बकि गाँव भर में जान आ गई हो। यह आलस्य उसके हक में भी क्या अच्छा होगा ? खा-पीकर कहीं कुराह पर न पड़ जाए, यही आशंका है।"

"अच्छा किया, बहन !"

"उस पर निगाह रखे रहो भैया ! वह कहीं जी चुराने न लग जाए, समझे ?"

"मैं सँभाल लूँगा, बहन।" मुस्कराते गंगाधर बोला।

"बड़ा उपकार होगा, मन अब थिर हुआ, मानो। यहाँ से उसे रवाना करना अपने जिम्मे।"

गंगाधर पल भर के लिए रुका। आगे बढ़ी तिम्मव्वा को देख कर विचारों में डूब गया। लंबी साँस खींचते पग बढ़ाए। 'नमस्कार !' घर की सीढ़ियों पर चढ़ते गंगाधर ने पड़ोस के चौतरे पर खड़े नरसिंहभट्टजी का अभिवादन किया। बोला, "आज इसी बेला में घर लौट पड़े हैं !"

"यह सब तुम्हारी ओर से मिला प्रसाद है, भैया !" भट्टजी मुस्करा कर बोले, "मंदिर में दर्शनार्थियों की संख्या घट गई है। वहाँ पड़े-पड़े क्या करता ? आरती के बाद ही लौट आया।"

"यह बात ?" गंगाधर जैसे कुछ खिन्न हुआ।

"खेद की कोई बात नहीं, भैया ! परिहास मात्र समझो। लोग खाली कहाँ हैं ? पूजन-अर्चन तो बाँध पर ही चल रहा है न। मानों ईश्वर भी पूजास्थल से कार्यस्थल पर ही पहुँच गया हो। कल से मैं भी वहीं आ जाऊँ, भगवान् का प्रसाद-वितरण वहीं हो जाए।" कहते भट्टजी ज़ोरों से हँसे।

"बड़ी अच्छी व्यवस्था हो जाय भट्टजी ! हम आपका स्वागत करते हैं। जन-जन को 'इह' और 'पर' दोनों एक ही ठाँव साधने का सुयोग प्राप्त हो जाय।" हँसते हुए गंगाधर अन्दर गया।

आनंद का पत्र आया था—

"प्यारे, मेरी प्रार्थना मान कर दक्षिण रेल इलाके में ही पोस्टिंग हुई है—प्रोबेशनर के नाते (कन्नड़ की जानकारी हवा हो गई है)। मौका निकाल कर तुम्हारे गाँव आऊँगा ही। इसमें कोई शक नहीं। इधर साल भर में तुम्हारी करामात से हवा में जो भी समाँ बँध गया है, वह सब देख ही लूँगा......और

एक बात है। शायद तुम न जानो। मुद्दत से माँ-बाप लड़कियों को मेरी ओर ठेलते ही आए हैं। इस वक्त पास भी हो गया हूँ तो आँधी में टपाटप गिरनेवाले आम की भाँति लड़कियाँ लगातार सिर पर सवार ही रहने लगी हैं। बड़ा सिरदर्द हो आया है। न साँप मरे, न लाठी टूटे, की तरह मेरा तिरस्कार भी बंद न हुआ, घर वालों की ओर से लड़की के बाद लड़की को पुरस्कार रूप में हाज़िर करना भी न रुका। फिलम स्टार को छोड़ आनन्द किसे अपनाए, यह तो तुमसे छिपा नहीं। इस समय तक जाने कितनी 'सेलेक्शन बोर्ड मीटिंग', 'इंटरव्यू', 'वैवावोस' ये सब हो चुके। बाकी मेम्बरान 'हाँ' करते गए तो 'चेयरमैन' के नाते मैंने 'ओवररूल' कर दिया है। इस मुसीबत से बचने के लिए, यहाँ की छाँह से दूर तुम्हारे यहाँ कुछ रोज छिप जाने का इरादा है, मौका पाकर। पनाह दोगे न ?"

गंगाधर ने मुस्कराकर पत्र लिफाफे में रख दिया।

"भैया, कैंट साहब लौट आए हैं, पता है तुमको ?" सावित्री ने पूछा।

"ऐं, यह बात ? चार-छह दिन पहले चिट्ठी आई थी, सो तो मालूम था। इधर मामी के यहाँ से न्योता नहीं मिला है। मैं भी उस ओर नहीं गया हूँ। कोई विशेष जानकारी नहीं। इस्तीफ़ा क्यों दे दिया ?"

"यह सब मैं क्या जानूँ भैया ! भागीरथी से पूछा तो वह इतना ही बोली कि 'सुजन कड़ी-कड़ी धूप है, कुछ कहासुनी भी हो गई।'

"अच्छी बात है। साथियों से मिल आऊँ। वहाँ का हालचाल मालूम हो जाए।"

गंगाधर मामीजी के यहाँ जा रहा था, तो शानभोगजी के मकान से उल्लास से पार्वती ने आवाज़ लगाई, "गंगाधर, ज़रा यहाँ तो आना। सुनने लायक किस्सा है।"

वह अंदर कदम बढ़ाता आया, तो वह आगे बोली, "पुराणिकजी के स्कूल में एक दिलचस्प बात हो गई, इसी शाम को......रंग के मुँह से ही सुनना होगा !" 'रंग ! रंग !'

रंग अंदर से दौड़ा आया।

"अच्छा, कहो तो सही क्या हुआ था, गंगाधर मामा सुनेंगे।"

"हट रहने भी दो ! कितनी बार......।" रंग झल्ला उठा।

"सुना तो मुन्ना, मेरी बात टालोगे ? गंगाधर मामा की भी......।" पार्वती पुचकारने लगी।

गंगाधर ने रंग को गोद में ले लिया और कहा, "सुनाओगे या छोटे बच्चे की भाँति तुम्हें गोद में लिए गाँव भर घुमा लाऊँ !" गंगाधर हँसा। रंग को दुलारा।

"उतार दो मामाजी ! सुनाऊँगा।"

रंग मान गया। बड़ी परेशानी से नीचे उतर पड़ा। फिर कहना शुरू किया, "आज आखिरी पीरियड में हेडमास्टर साहब इतिहास पढ़ा रहे थे।"

"अच्छा", गंगाधर कहानी सुनने में दिलचस्पी दिखाता गया।

"उन्होंने रामय्या से पूछा, 'बताओ तो सही, मुहम्मद गज़नी के धावे कितनी बार हुए ? उसने जवाब दिया—नौ बार। गोपाल बोल उठा—आठ बार! गोविंद गरज पड़ा—अट्ठाईस बार ! मास्टर साहब ने चिढ़ कर डाँटा—गधे हो सब लोग, बैठ जाओ। सत्रह बार, समझे। पीछे सवाल किया—मुहम्मद गज़नी का निधन-संवत् क्या है ? कोई जवाब देने वाला न रहा। 'वाह रे अक्ल तुम्हारी ! इन सबों को इतिहास पढ़ाना बेकार है।' कहते बिगड़ गए। 'उसके बाद... उसके बाद.... मुहम्मद गजनी कहाँ दफ़नाया गया ? कम से कम यही बता दो, वेंकण्णाचारी !' पूछने लगे। उसके मुँह से सहसा छूट गया—जहाँ मरा हो वहीं सर ! सब ठठा कर हँस पड़े। मास्टर साहब तिलमिला उठे और धमकाया—'शांति ! शांति ! तुम लोग कुछ पी आए हो क्या ? सबको एब्सेंट लगा दूंगा, खबरदार ! स्कूल में सीखने आए हो, या टिकिया बेचने ? लानत है तुम लोगों पर।' थोड़ी देर सन्नाटा छाया रहा। इसी बीच दोड्डुतिम्मय्या ने खड़े हो पूछ ही दिया—कौन कहाँ मरा, कौन कहाँ गाड़ा गया, गाड़ने की तारीख, दिन, ये सारी बातें पुराने ज़माने की हो गईं। जो काम की नहीं, उन्हें सीखने से फ़ायदा ? मास्टर साहब दाँत पीसने लगे। बोले 'फायदा ? खाना खाते हो उससे फायदा ? पेट भरने का फायदा ? दुम दबा कर बैठ जाओ।' धमकी दी।.... बाद में... बाद में जो हुआ... हाँ—गोपाल उठ खड़ा हुआ और कहता गया—इन दोनों का मेल कैसा, सर ! ये बातें इतने महत्त्व की थोड़ी ही हैं ? शिवस्वामी जी का कहना है कि जनसाधारण का इतिहास—जनता की प्रगति, उत्थान-पतन, इनके मूल में रहे गुण-दोष इससे आज जो कुछ हमें सीखना है, आज जो इतिहास-निर्माण हो रहा है, वही वास्तव में महत्वपूर्ण है। इस पर मास्टर साहब का पारा चढ़ गया—बोले, 'तुम्हारा शिवस्वामी कोई ठिकाने का आदमी है भला ? उनकी उम्र ही क्या मेरे मुकाबले ? मैं जो पढ़ा दूँ सो सब नहीं रटोगे तो परीक्षा में फेल हो जाओगे तुम लोग। भविष्य से हाथ धो बैठगे। नतीजा यह होगा कि

मिट्टी ढोने को मजबूर हो जाओगे–इधर बाँध पर सबके सब जो कर रहे हैं, वही हाल होगा तुम लोगों का।' क्लास का क्लास खड़ा हो उठा और जोरों से चिल्लाने लगा–'बाँध पर जाएँगे, सर! बाँध पर जाएँगे, सर!' शामू बोला–'सुना है वहाँ दिन भर में पढ़ाये जाने लायक इतिहास-भूगोल पढ़ने को मिलेंगे। वेंकटाचलपति ने कहा–नारणप्पाजी शाला बालकों को वहाँ ले गए थे, सर! मास्टर साहब डाँटने लगे–'वे प्राइमरी स्कूल के मास्टर हैं और मैं मिडिल स्कूल का मास्टर! मैं, उनके बताए रास्ते पर चलूँ? चुप रहो बैठ जाओ! शोर न करो!' क्लास में कोई चिल्ला उठा, बाँध पर से लौटने के बाद ही पढ़ाई हो। सब एक साथ बोल उठे–वही हो, वही हो। कहीं से एक आवाज़ सुनाई पड़ी–वरना पढ़ाई होने की नहीं। लड़के चिल्ला उठे–यही तय रही। मास्टर साहब आग-बबूला हो उठे 'बोले, स्ट्राइक की धमकी दे रहे हो? तुम लोग सेलेक्शन परीक्षा में फेल हो जाओगे। याद रहे!' पर लड़कों ने माना नहीं। कोलाहल ही मचा दिया–बाँध! बाँध स्ट्राइक! स्ट्राइक! मास्टर साहब भी तिलमिला गए, मेज़ पर हाथ पटके। पर शोर शांत हुआ ही नहीं। अन्त में हार मान कर बोले, 'वही होगा। शिवस्वामी को साथ कर दूँगा।' लड़कों को यह मान्य न था। वे अलग-अलग नारे लगाने लगे–आप! आप! आप ही! आप ही को साथ चलना होगा। वे भी साथ रहें। वरना पढ़ेंगे ही नहीं। पढ़ाई हरगिज़ न होगी। हम खुद पढ़ लेंगे। शिवस्वामीजी सिखाएँगे। बाँध पर भी ले जाएँगे। उन्हीं के दर्जे में जाएँगे। यह दर्जा उकताहट पैदा करने वाला है...।' घंटी बज गई, लड़कों ने मास्टर साहब को घेर लिया और शोर मचाना जारी रहा–बाँध पर चलिए सर! चलना पड़ेगा, सर, अवश्य साथ चलना होगा सर! आखिरकार मास्टर साहब पसीना पोंछते हुए कहने लगे, 'ले चलूंगा भाई! जरूर ले चलूंगा! खुद साथ रहूँगा। आज नहीं, कल! अब मुझे जाने भी दोगे? बड़े चंट हो।' चंट मनचले लड़के चिल्लाने लगे–आज! आज ही! पर, बाकी लड़के बोले–'कल ही सही भूगोल के पीरियड में!' 'अच्छी बात है, अच्छी बात है!" कहते सबने उन्हें जाने दिया। कल देखना चाहिए क्या गुल खिले।" रंग ने लम्बी साँस खींच कर किस्सा पूरा किया।

"वे आएँ या नहीं, हड़ताल नहीं होनी चाहिए। यह हड़ताल की धमकी आवारों का काम है। यह बरबादी का तरीका है। समझ गए? सबसे कह देना, मेरी ओर से संदेसा दे देना। इसके लिए और भी तरीके निकल आएँगे। आप लोगों को बाँध पर मैं खुद ले चलूंगा।" गंगाधर ने हँसी रोक ली और गंभीर

हो कर समझाया ।

"वे न आएँ तो हम चुप रह जाएँगे भला ?" रंग ने छाती ठोंकते हुए कहा, "मामाजी, वहाँ पहुँचने पर आप ही हमें सब समझा दीजिए ।"

"पीछे पुराणिकजी ने रुद्रप्प मास्टर से क्या कहा था, बोलो तो ?" पार्वती ने पूछा । उसकी हँसी रुकी ही नहीं ।

"हाँ-हाँ, 'जिन मास्टर से लड़कों का हेल-मेल बढ़ जाता है, उन्हें तो ये नोच के खा डालते हैं । हर काम के लिए उनकी हाज़िरी पर अड़ जाते हैं । ज़िद पकड़ रखी है । ट्रिप पर जाने को मजबूर कर रहे हैं । शिवस्वामी या और किसी को साथ भेजने की बात कही । पर मानें तब न ! लड़के परच जाएं, तो उन्हें दंडित करने को जीं नहीं करता ।"

घर के सारे लोग इकट्ठा हो गए थे, यह सुनते ही खुल कर हँस पड़े ।

"इनकी भाँति अँधेरे में पड़े हुए लोगों में वे निर्वाणय्याजी भी तो हैं । रंग जब भी जाए और बचत टिकट माँगे, तो टरकाते ही रहते हैं । बचत सर्टिफिकेट के बारे में भी लोगों को यही जवाब देते जाते हैं । यदि कोई दर्याफ्त करे कि मँगाते क्यों नहीं, तो अपने विभाग को ही दोष देते रहते हैं । इसमें संदेह है कि ये मन लगा कर मिहनत करेंगे । वेंकटय्याजी ने इस मामले में ऊपर शिकायत कर ही दी है। दोष जिसका भी हो, उसे दंडित होना ही पड़ेगा ।" गुण्ड ने आरोप लगाया । और 'समाज के बैरी !' कहते भड़क उठा ।

"हाँ, सर्टिफिकेट की बात उठाई, तो याद आ गया । सीतारामय्याजी का लड़का शीनप्प है न ! हाल ही में उसकी शादी हुई, तो सुना गया कि वह बोला था—'गहने, कपड़े, चढ़ावे आदि की कोई आवश्यकता नहीं है । उतनी ही रकम से राष्ट्रीय योजना सर्टिफिकेट खरीद कर दे दें । इससे अपना तथा देश का भी भला होगा । सुना कि वह ज़िद पकड़े रह गया । हजार रुपए को जायदाद भी बना ली । सस्ते में शादी भी हो गई । शादी के बाद सब लौट भी आए ।" वेंकम्माजी ने कहा ।

'थावर राचप्पा का अनुज नंगप्पा है न, उससे पुट्टमल्लय्या की लड़की गंगम्मा का विवाह इसी महीने होने को रहा है । वह विवाह टल गया । नंगप्पा ने कहा—'बाँध पूरा उठ जाय, बाद को शादी होगी । इस बीच यह उपद्रव क्यों ?" शानभोगजी ने कहा ।

"इसी तरह और भी कितने ही कार्य टल गए हों, कौन जाने ? कितने काम रुके पड़े हों, कौन बताए ?" वेंकम्माजी ने मन की बात कही ।

"अच्छा, सुना है, कैंट साहब आए हैं ? आप लोग नहीं जानते ? अबकी बार अवश्य ही भागीरथी का ब्याह होके रहेगा, यही लगता है ।" गंगाधर के मुँह से सहसा छूट गया । वह स्वयं न जान सका कि वह कथन निकला क्योंकर। यहाँ से कोई सूचना या इंगित मिल जाए, यही इरादा रहा क्या ? या अपने से ये बातें कह कर अपनी नब्ज़ टटोलने लगा था ? या ब्याह की चर्चा जो चल पड़ी थी, इसलिए अनायास बोल उठा ?

"नंजत्ते तो साल भर से यहीं डेरा डाले बैठी हैं । लगता है कि हर संभव युक्ति, दबाव आदि से काम ले रही हैं । पर इस समय तक कोई प्रयोजन निकला नहीं दिखाई देता । भागू का जी भगवान् जाने । उसने किसी से मन की बात नहीं कही है । यह भी नहीं बताया जा सकता कि वह स्वयं इस बारे में कोई विचार कर पाई या नहीं । उस पर तो विधाता का भी कोई वश नहीं चलने का । उसके माँ-बाप भी इस ओर से उदासीन हैं । संभवतः उनकी भी इच्छा न हो । वह ब्याह करने की बात उठाए तो कोई बाधा नहीं डालेगा । नंजत्ते, दो-एक बार भागू से चर्चा छेड़ने के बाद, इस समय मौन धारण कर चुकी हैं। लेकिन, वे यों ही मानने वाली नहीं । देखना पड़ेगा ।" कहते वेंकम्माजी ने अर्थ-पूर्ण यह उक्ति भी कह दी—'उसकी शादी के बाद ही पार्वती का ब्याह भी होना है ।'

"हटाओ, अम्माजी ! तुम भी वही रट लगाया करती हो, नंजत्ते की भाँति। मैं क्वारी ही रह जाऊँगी—जी भर काम करते रहते । इच्छा न हो तो ब्याह करने की आवश्यकता ? ब्याह के बिना ही मानव बने रहना दूभर है क्या ?" पार्वती बनावटी रोष से मुँह फेर कर कहती गई, तो उसकी दृष्टि गंगाधर पर से हो कर गुजर गई ।

"मामीजी के यहाँ कोई साथ चलेगा ?" पार्वती को ही देखकर गंगाधर तुरंत स्वयं को सँभालते पूछने लगा ।

"तुम ही अपने प्राणप्यारे साथियों से मिल आओ, भाई ।" गुण्ड हँस पड़ा । पार्वती की हँसी ही उत्तर का काम देने लगी ।

यहाँ से गंगाधर निकल पड़ा, तो उसका मन बड़ा बेचैन था । भागीरथी के ब्याह के बारे में वह भली-भाँति सोच चुका था । उसे कोई अस्पष्ट वेदना व्यथित कर गई थी । उसे भुलाने की चेष्टा भी की थी । उस पर विचार करने का उसका कोई स्वयं का अधिकार नहीं, यह बार-बार अपने से कहता और जी बहला लेता । इतने पर अतृप्ति बनी ही रही । उसे जब-जब देखता, यह बात रह-रह कर

सताती जाती । पर, पार्वती के परिणय की चर्चा पहले कई बार हुई होगी । शुरू शुरू में उसके मन में वह बात गहरे न पैठी थी । इधर वह उसके बहुत समीप हुई जा रही थी। बाँध के बहाने तो ऐसा कोई दिन गुजरा न होगा, जबकि दोनों एक दूसरे से मिले न हों, बातें न की हों और साथ-साथ दिन भर काम में लगे न रहे हों । उसके उत्साह, क्रियाशक्ति, निष्ठा, कष्टसहिष्णुता, अपने प्रति उसका आदर, सहज विश्वास, अमित स्नेह, मृदुल मंजुल स्वभाव आदि की गहरी छाप धीरे-धीरे उसके हृदय-पटल पर पड़ी थी । उसे अभिभूत कर चुकी थी। अनजाने में ही वह उसे क्रमशः जीतती जा रही थी ।

"पार्वती ! कितनी अच्छी लड़की ! बचपन से ही उसे ठीक-ठीक पहचाना क्यों नहीं ? समझा क्यों नहीं ? क्यों ?''''हाँ, यह भागीरथी की भाँति भभक कर आँखें चौंधिया देने वाली नहीं, चारों ओर, अन्दर, बाहर सर्वत्र व्याप्त होकर भी अगोचर रहने वाला स्वच्छ स्निग्ध समीर है । इसीलिए तो''''।" गंगाधर ने विचार करते सिर हिलाया । समीर में ही उसकी पूरी तस्वीर बनाते उसने भावी अप्सरा को देखा, दृष्टि उसी पर स्थिर रखी, उससे प्रभावित हुआ और बडे आश्चर्य से ये उद्‌गार निकाले—'इसकी बराबरी की दूसरी कोई होगी भी ?'

इसका भी ब्याह हो गया और यह भी चली गई तो ! उसकी रही-सही साँस भी मानो निकल गई । तब तो इन दोनों सहेलियों के जीवन का अपना हिस्सा पूरा होने को आया ? कौन जाने ! उसने संदेहजन्य अन्धकार में ठोकर खाई, लड़खड़ाया भी, सँभल जाने लिए सहारा टटोला'''हाय ! आज की तरह, पहले की भाँति यही मित्रता, स्नेह-विनोद सदा के लिए बना रह जाए ! गंगाधर जानता था कि यह बात पूर्णतया अर्थहीन है, कपोल-कल्पना मात्र है । पर, इस अवस्था में उसमें कोई सामर्थ्य भी न रही कि वह कोई निर्णय कर पाता ।

चबूतरे पर अण्णाजी स्वभावानुसार अखबार देखते बैठे रहे । जयलक्ष्म्माजी सुपारी काट रही थीं । नंजत्ते दीवार के सहारे बैठी थीं । भागीरथी खम्भे के सहारे बैठी पैर नीचे लटकाए थी । कैंट साहब नहीं थे ।

"इधर आना ही छोड़ दिया, भाई !" जयलक्ष्म्माजी ने स्वागत किया ।

"ऐसी कोई बात नहीं, मामी ! आया तो हूँ । चार दिनों से मुखद्वार का काम सरगर्मी से होने लगा है, इसलिए देर से घर लौटना हो रहा है ।"

"पूरा हो गया ?" अण्णाजी ने पूछा ।

"पूरा हुआ ही मानिए, अण्णाजी ! वहीं रह कर निगरानी से होने वाले

कठिन काम हो चुके हैं। निकासी की जुड़ाई भी बहुत कुछ हो गई है। इस समय धारा से काम में किसी अड़चन की संभावना नहीं।"

"तब तो इसी साल एक फसल लगाई और काटी जा सकेगी ?" प्रसन्न हो जयलक्ष्म्माजी ने पूछा।

"क्यों नहीं मामी जी ! मेघराज की कृपा से धारा समय पर भर जाए, अपने अंदाज़ के अनुसार काम हो जाए, तो एक फसल का लगना और कटना कुछ असम्भव नहीं। उठँगने के ऊपर का पुल, सड़क और हल्के-फुल्के काम रह जाएँगे। पर, इनसे कोई रुकावट नहीं पड़ने की, काम भी अटकने का नहीं। लोगों का इस समय का जोश तो किसी भी हालत में ठंडा न पड़ने का। नाले का काम तो एक तरह से पूरा हुआ ही मानिए।"

"भला हुआ। शुरू हुआ काम सार्थक भी हो गया। तुम कृतकार्य हुए। गंगाधरेश्वरजी ने ही सहारा बने रह कर तुम लोगों का संकल्प चरितार्थ होने दिया। इससे ईश्वर ही तृप्त हो। इतने लोगों के न जाने किस जन्म का सुकृत ही इस योजना के रूप में साकार हो उठा है।"

"इस जन्म का सुकृत तो सुलभ ही हुआ, मामीजी ! साल भर पहले एक झक्की का सपना इतनी शीघ्रता से सत्य सिद्ध हो जाएगा, इसकी कोई आशा नहीं थी। मेरी आशंका थी कि इस में कई साल लग जाएँगे। ऐसे भी दिन आए जबकि इसके कार्यान्वित होने में ही संदेह सताता रहा। इस इलाके के गाँव एक होकर कैसे खड़े हो उठे, जिससे यह अनोखा कार्य संपन्न हो सका, इतना ही कहा जा सकेगा।"

"ठीक है, पुरुष-प्रयत्न के बाद ही इसका पता लग सकेगा कि मानव से क्या बन पड़ेगा, अन्यथा सब कुछ असंभव ही प्रतीत होगा।"

"सही बात है, मामीजी !" गंगाधर ने हामी भरी। यों ही हँसते हुए भागीरथी की ओर देख कर कहा, "तुम्हारा राय क्या है ?"

"कुछ नहीं।"

"सोचने में भी आनाकानी ?" गंगाधर ने छेड़ा। पर उससे कोई जवाब न मिला।

"यह क्या, असंतोष भी नहीं, भागीरथी… ?" कहते हुए विनोद किया। पर कोई असर न होता देख आतंक के स्वर में पूछा, "तबीयत ठीक तो है ?"

"यों ही मन उदास है, और कुछ नहीं।"

"इस गरीब से उदासीन तो नहीं ?"

उसके अधखुले होंठों की मुस्कान से उसे जवाब मिल गया। पर नंजत्ते यह जान न सकीं।

"इसलिए हवाखोरी करने जाना था। उदासी हवा हो जाती। कंठी ने कितनी बार साथ चलने को कहा, भागू ?" नंजत्ते ने आक्षेप किया। बोलीं, "वह देख, वह लौट भी आया। जाओ, पासा या कोई खेल खेल लो। जी बहल जाएगा।"

"नमस्कार, सर! अच्छे हैं?" गंगाधर ने पूछा।

"अच्छा है! देख ले, कैसा घुल गया है! ईश्वर की कृपा से जीवित लौटा है, यही अपना भाग्य मानती हूँ।" नंजत्ते ने जवाब दिया। कैंट साहब चबूतरे के पास ही रुक गए।

"यह क्यों? आखिर हुआ क्या?" गंगाधर ने आतुरता से पूछा।

"क्यों-क्यों क्या कर रहे हो! बड़ी रद्दी जगह है वह। पूरा जंगल है····।"

"रेगिस्तान के बीचोबीच, अम्मा!" कैंट साहब ने जोर देकर कहा।

"आप कोटा के बाँध के इलाके में तो गए थे? रेगिस्तान से पछाँह पर।"

"पछाँह पर होने से क्या हुआ, वह भी मरुथल ही है। गरमियों में तो सदा आग बरसती रह जाती है। वहाँ गरमी का तापमान कितना चढ़ जाता है, बेटा!"

"एक सौ तेरह, पन्द्रह, अठारह, बीस।"

"बाप रे बाप! सुनकर ही छाती फटी जाती है।"

"बनारस में भी इतना ही···।"गंगाधर बात पूरी न कर सका।

"कैसी बात कहता है रे! बनारस मरुस्थल के मध्य में है? वहाँ से कितनी दूरी पर है! कई मानों में उत्तम ही रहेगा।" नंजत्ते ने प्रतिवाद किया।

"मानता हूँ, सही बात है।" गंगाधर ने स्वीकार किया।

"ठहरने के लिए जगह नहीं, पीने के लिए पानी नहीं। ऐसे प्रदेश में इनसे मिले ठिकरे भर के वेतन का मुँह देखते क्या कोई अपनी जान गँवा ले? यह भी कोई नौकरी है?"

"इतना बुरा हाल है, सर? मैं जब ट्रिप पर गया था···।"

"कहाँ की बकवाद कर रहा रे! यह वहीं रहा है, भुक्तभोगी लौट आया है! किसी प्रकार से इसे भी सह लिया जाए। पर, दफ्तर में भी आराम नहीं। दफ्तर क्या है, पूरी भट्ठी।"

"पंखा चलता रहे, तो तनिक आराम रहेगा न, सर?"

"कहाँ का आराम ! गरम हवा के झोंके ही लग रहे थे। वहाँ रहा कैसे जाए, जीवित रहा कैसे जाए ?···सुनती हूँ काम भी जानलेवा है। अन्दर बैठा भी न रहा जा सके। सदा धूप में ही खड़े रहना पड़े। खड़े न रहे तो डाँट पड़े। यह भी कोई नौकरी है ? क्या यह कोई कुली है, मिस्त्री है, जो धूप में झुलस कर काम करता रहे ? इसके साहब से इसी बात को लेकर बड़ी कहा-सुनी तक हो जाती रही।"

"इतना ही नहीं, अम्मा ! यह ग़लत है, इतना ही काफी नहीं है। हमेशा खामी ही निकाला करता था। दो-एक दिन मैं चुप रहा, पर हद हो गई तो लथाड़ दिया, यह भी कह दिया कि तू निरा गँवार है।"

"और क्या, तुम्हारी गलती निकाला करे !"

"इतने पर भी वह मामूली बी० ई० अम्मा, स्टेट्स भी नहीं हो आया है, कहीं बाहर गया ही नहीं। यहीं चार-छह जगह बाँध उठवा देने मात्र से उसे और भी योग्य व्यक्तियों के सिर पर विठा दिया जाए ? उसे मुझसे इस बात की डाह रही कि मैं उससे ज्यादा पढ़ा-लिखा हूँ। यही कारण है कि उसका व्यवहार उतना गिरा हुआ था। बाकी लोगों के साथ, जो मामूली बी० ई०, बी० एस-सी० थे, उनका व्यवहार ठीक था। इतने से ही उसकी तरफदारी वाली मनोवृत्ति की कलई खुल न जाएगी !"

"हाँ, यही तो, हट ! ऐसे के नीचे तुम जैसे का नौकरी पर रहना ही बेइज्जती है। इसी बात पर तुम नौकरी पर लात मार लौट आते, तो भी ठीक रहता। वह तुम पर हुकूमत चलाए-कहीं इधर-उधर जो न हो आया हो ? ऐसों को बड़े-बड़े ओहदों पर कैसे भेज देते होंगे, इसका रहस्य मैं क्या जानूँ। हो सकता है, ईश्वर जानता हो। कितनी दूर हो आओ, पैसे पानी की तरह बहाओ, इतनी बड़ी योग्यता प्राप्त भी करो और नौकरी के लिए भटकते फिरो। निरा अन्याय है। किसी की सिफारिश हो, वसीला हो, इसीलिए तो यह अविवेक हो जाता होगा।"

अण्णाजी ने अखबार समेटा, उठ कर चल पड़े। जयलक्ष्माजी "गाय दूहनी है" कहती सुपारी की तश्तरी लिए उठ खड़ी हुईं।

"इतने पर भी खाना नदारद ! तुम ही बताओ अम्मा।"

"हाँ मुन्ना ! दुबला गए हो। उस उजड़ी बस्ती में मैसूर की छौंक देने वाला कोई न हो। फिर कौर कैसे मुँह में पड़े ?"

"लेकिन आप स्टेट्स वगैरह...।" गंगाधर माँ-बेटे की बातचीत में कूद पड़ा।

"हाँ, स्टेट्स में केवल दूध-फल पर ही गुजारा हो जाए। इतनी ठंड पड़ती हैं। वहाँ के आइसक्रीम, चाकलेट बार, सैंडविच-कितना गिनाऊँ? मैसूर नहीं उसे भी मात करने वाला शहर भी भूल जाए और मस्ती से रहा जाए। यहाँ सूखी रोटी, बटाटे, उड़द की दाल, ये ही, बस! खाई कौन चीज़ जाए?"

"हाँ, वही तो। गले के नीचे उतरें कैसे, भद्दी चीज़ें। उल्टी न आ जाए तो गनीमत समझो!"

"और नींद की कोई बात ही नहीं।"

"अफसोस, यह क्यों, सर?"

"सोशल-लाइफ़ (सामाजिक जीवन) नाम के लिए भी नहीं, ऊजड़ गाँव है। ठीक भी है। मैंने कोई ज्यादा उम्मीद न रखी। कारण, वह कोई न्यूयार्क या वाशिगंटन तो है नहीं? यह बात नहीं। इतने पर भी थोड़ा-बहुत चाहिए न? नाम के लिए एक क्लब है लेकिन वहाँ कोई आता ही नहीं—इनमें भी बड़े माने जाने वाले कोई भी गपशप, ताश-तमाशे के लिए भी नहीं। मैं भी चार दिन गया जरूर, पर आखिर जाना ही बन्द कर दिया।"

"हाँ, ऐरे-गैरे, लुच्चों-लफंगों के साथ खेलने-कूदने के बजाय, न जाना ही उत्तम है। तुमने ठीक ही किया।"

"कन्नड़भाषी भी चंद लोग होंगे तो?"

"हैं क्यों नहीं, एक संघ भी है। पर प्रयोजन? बड़ा नखरा दिखाया। रहे लोगों में ही पार्टीबंदी, खिलाफत, कोई किसी से खुश नहीं—इनका हाल कोई नया है। तिस पर मैं मेंबर भी बना। सोचा, मौका मिल जाय तो हालत जरा सुधारी जाय। पर गत दिसम्बर वाले इलेक्शन (चुनाव) में आपस में तय करके एक असिस्टेंट इंजीनियर को प्रेसिडेंट चुन लिया। वहाँ अकेला असिस्टेंट एग्जिक्यूटिव इंजीनियर मैं रहा। मेजारिटी (बहुमत) उसके दर्जेवालों की रही। उसकी लियाकत मैं भी जानता था। इसी से बड़ी घिन हो आई, मेंबरशिप (सदस्यता) को लात मार कर किनारा खींच लिया।"

"और क्या? जानबूझकर बेइज्जत करें!......ठीक.....ठीक किया, लाड़ले।" नंजत्ते ने लंबी साँस छोड़ी। बोली, "जिस किसी भी सूरत से देखो तो वह नरकप्राय स्थान ठहरा, मुन्ना! इतने दिन वहाँ कैसे रह गए, भाई! उसका विचार आते ही बड़ा आश्चर्य हो जाता है। यह सब नौकरी पर रहते हुए।

यहाँ इतनी सुविधाओं के रहते हुए हमें नाक रगड़नी पड़ रही है।"

"हाँ; अम्मा ! यहाँ की सी मस्त हवा, खाने-पीने का प्रवंध, मीठी नींद आदि की सुविधाएँ हों और ऊपर से किसी प्रकार की रोकथान न रहे, तो जितना भी, जैसा भी काम चुटकी बजाते पूरा हो जाय। इसमें कौन सी विशेषता ?"

"ऐसा न होता तो इतनी जल्दी यहाँ का बाँध सुगमता से उठ पाता ? भ्रम है। उस राजस्थान-सरीखा कोई स्थान होता······।"

"पर वहाँ भी लोग बसते हैं, काम भी चला ले रहे हैं तो नंजत्ते।"

"हाँ, दूसरा कोई उपाय न देख पाने वाले लोग थोड़ा-बहुत काम कर ही रहे हैं। हाँ, मुन्ना के कहने के मुताबिक लाचारी है। इस पर कौन भूत सवार है कि यह वहीं जान देता ? और कहीं ठिकाने की जगह मिल ही जाएगी—कोई बड़ी नौकरी ही। यह क्या कोई दस के साथ ग्यारह का हिसाब लगाने वाला है ? या कि लावारिस है ?"

भागीरथी चबूतरे पर से खिसक गई। पर गंगाधर के कहने पर कि 'मैं भी चलूँगा, बैठो तो सही,' वहाँ बैठी रही।

"नौकरी की चिंता क्यों रहे, नंजत्ते ! इन्हें कमी किस बात की है ?" गंगाधर ने पूछा।

"कोटा बाँध कितनी प्रगति कर चुका है, सर ? बाकी क्या रह गया है ? अंदाज के अनुसार काम पूरा हो रहा है।"

"कहाँ का काम ! पूरा हो जाय, तो देखा जाएगा ?"

"गाँधी सागर ?"

"कौन सागर ?"

"वही चंबल नदी पर दूसरा।"

"मैं तो उसके बारे में जानता ही नहीं ? मैं वहाँ गया ही नहीं।"

इस समय तक जयलक्ष्म्माजी दूध की भांडी लिये बाहर आईं। मादण्ण लालटेन लिये उनके साथ आ रहा था।

"गंगाधरप्प, यह अपनी नई गोशाला देखी है—अम्माजी ने ही खड़ी की है।"

"वाह ! मैं तो जानता ही न था। मामीजी ! आपने भी बताया नहीं ?" गंगाधर उठ खड़ा हुआ।

"यह कौन बड़ी बात हो गई, भाई !"

"यह बात नहीं भैया। देखना चाहिए। आदर्श गोशाला है।"

"अखबार में लिखा था। बड़ी सावधानी से कई दिनों तक पढ़कर समझा। वहाँ दिये नक्शे के हिसाब से मादण्ण को भी साथ करके मैंने बनाई। सो भी रुक-रुक कर। सिलमिट, गारा आदि कुछ नहीं पड़ा। खाली ईंट-मिट्टी की जुड़ाई है। फ़र्श, नलिका, छाजन, चारा डालने की जगह, इतने ही हैं, बस! बाकी तो वही पुराना ही!"

"मैं देखूँगा ही मामी जी! घरेलू \जिम्मेदारियों के अलावा भी आप कोई-न-कोई नया काम करती ही जाती हैं। जितना किए जा रही हैं, उतना समय भी आप को निकल आ ही रहा है···चलो गुड्डी। तुमने देखा है?···चलिए सर! आप भी!" गंगाधर ने बड़े उत्साह से सबको बुलाया।

"तुम्हीं देख आओ!" भागीरथी अपनी जगह से नहीं हटी।

"मुझे कपड़े बदलने हैं। वहाँपर भी थोड़ी-बहुत ऊमस है ही।" कैंट साहब तैयार न हुए।

"गुड्डी, तुम्हें साथ चलना ही पड़ेगा। तुमसे कुछ करते न बने, कोई चिंता नहीं, कम-से-कम देख तो लो। तुम्हारे कृपा-कटाक्ष से ही बहुत कुछ हो जा सकेगा। उठो भी, उठो न।" गंगाधर ने बलपूर्वक ही भागीरथी को उठने के लिए विवश किया।

"तुम्हारा यह आग्रह, मैं तंग आ गई।" वह अनिच्छा से ही कदम बढ़ाती गई।

दोनों उस ओर चल पड़े तो नंजत्ते अपने लाड़ले से कहने लगीं, "देखा, वह अनुनय-अनुरोध का अभिनय पसंद करने वाली है। बड़ी जिद्दी लड़की है, जंगली घोड़ी-सरीखी। अपना खानदान ही, इस मेल का है। पर उसे काबू में कर लेना कोई दुष्कर कार्य नहीं। तुम्हारे पिताजी को मैंने यों ही पसंद थोड़े ही किया? विवाह-मंडप में पीढ़े पर आने में भी बड़ी हुज्जत मचा दी थी। अपने पिताजी चार लड़ी सोने के पैसोंवाला हार पहनाकर मनाकर लाये थे पीढ़े पर। उस समय मैं बड़ी छोटी थी, पर बातें याद हैं अच्छी तरह। उस ज़माने में लड़कों को कोई दिक्कत नहीं उठानी पड़ती थी। इस समय यह और किसी से दबने-वाली नहीं। बड़ी चतुराई से अक्ल लड़ा कर तुम्हें ही इसे वश में कर लेना होगा। ये बातें नए सिरे से तुम्हें सिखाने की ज़रूरत ही कहाँ? विदेश में होते रहे नाटकों का ब्योरेवार वर्णन तुम्हीं ने किया भी है। यह भी नई रंगत की लाड़ली बिटिया है। वह सब खूब पढ़ चुकी है। किसी भी तरीके से उससे 'हाँ' कहलवा लेना तुम्हारे जिम्मे रहेगा। बाकी मैं सँभाल लूँगी। मैंने तभी सौदा

पटा लिया, मान लो।"

"इन चीज़ों की जरूरत, अम्मा! वाहियात बात है। वह जिसको चाहे, पसंद करे, उसी से व्याह कर ले। चलो, बंगलोर चलें।" कैंट साहब भागीरथी के भावों में हुए हेर-फेर को ताड़ गए थे। राजस्थान के लिए रवाना होने से पहले ही, वह इनके प्रति अपना रुख हटा लेने में ही लगी हुई थी, यह बात वे भूले न थे।

"बंगलोर में रखा क्या है, बेटा! तुमसे छिपा थोड़े है? तुम कोई नौकरी कर लो तो डेवढ़ बैठे।"

"कर लूँगा, कोई भी नौकरी सही।"

"बेटा, तुम अभी नादान हो। मेरी राय मान कर चलो। थोड़ा और टटोल लें। यह रिश्ता सरलता से गँवाने लायक नहीं····।"

कैंट साहब अंदर चले गए। नंजत्ते पाठ पढ़ाते ही पीछे हो लीं।

गंगाधर को गोशाला बड़ी पसंद आई। उसने ईंटों की सूराख में गारा भरवा देने की सलाह दी और कहा, "मामीजी! कल बाँध पर आए किसान भाइयों से यह देख जाने के लिए सुझाऊँगा और इसी तरह अपने यहाँ भी गोशाला बना लेने को बताऊँगा।"

"तब तो इसका बनाना सार्थक ही हुआ। इसका भी अनुकरण सर्वत्र हो जाय, तुम्हारे बनाए अपने यहाँ के आदर्श मलविसर्जन की तरह। शामाचारजी के लड़के क्रिट्ट और अनंत दोनों आए थे। शौचालय की नाप ले गए। न जाने और भी कितने ही लोग क्या-क्या कर रहे होंगे।"

"यही बात है, मामीजी!" गंगाधर ने जो कुछ सुन रखा था, सब सुना गया।

"गाँव में खाली हाथवाले नहीं के बराबर हो गए हैं।" गंगाधर भागीरथी की ओर दृष्टि फेरता कहने लगा।

"हाँ, जब से बाँध की हवा लगी है, लोग कार्य में रुचि लेने लगे हैं। हाथ का काम अब कोई हेय नहीं माना जा रहा है।"

"सुनो गुड्डी! तुम भी कूद पड़ो कार्यक्षेत्र में! मिट्टी नहीं ढो पाती; तो अपनी पसन्द का कोई काम चुन लो। गाँव-का-गाँव परिश्रम में लगा रहे, तो खाली हाथ बैठे रहना शोभा नहीं देता। घरेलू कामकाज ही कर लो सही।"

"मुझसे कामकाज क्या होगा, इतनी कमज़ोरी है...।"

"यह शरीर की कमजोरी नहीं, मानसिक दुर्बलता—शिथिलता है बिट्टी!

कोई बात नहीं। चार वालिकाओं को वीणा बजाना ही सिखा दे, कितना सुंदर बजा लेती है।"

"कैसी बकवास कर रही हो अम्मा ? तुम क्या जानो ? बजाती जाऊँ तो उँगलियाँ ही थक जाती हैं। थोड़ी देर के लिए सीध पर बैठूँ तो कमर ही मोच खा जाए !"

"अरी पगली ! कोई काम-धाम नहीं। सो हाथ-पैर आदि जकड़ जाते हैं, समझी। काम करने वाला कोई खिन्न नहीं, गाँठ बाँध ले यह बात काम के बिना ताकत नहीं, ताकत बिना काम नहीं—इस चक्कर में तुम पड़ गई हो। काम ही स्वास्थ्यवर्धक है, स्वास्थ्य-रक्षक है। 'काम करो और घोड़े की तरह शान से रहो' कहावत ही मशहूर है।"

"हाँ, है, और कहावत सुनाने में कमाल हासिल है तुम्हें !"

"धन्यवाद। अधिक अनाप-शनाप न बको। यही शुभ संकेत काफ़ी है।"

उस दिन गंगाधर घर लौटा, तो उसका हृदय अनिर्वचनीय आनन्द से भर उठा था, हल्का होकर गुब्बारे की तरह कहीं दूर ऊपर उड़ गया था। रात में अजीब तरह का सपना देखा। सपने में वैचित्र्य और सौन्दर्य दोनों थे।

दूसरे दिन शाम को अकेले पुराणिकजी का दर्जा ही नहीं, स्कूल-का-स्कूल श्रमिकों के समवेत स्वर के गीत, जयनाद के साथ बाँध पर आ गया। सभी मास्टर आगे-आगे थे, लड़के उनके पीछे चले आ रहे थे। पुराणिकजी सबसे आगे थे। सारा बाँध प्रदेश लड़कों की जय के नारो से गूँज उठा। पिछले दिन शाला में हुए प्रसंग की चर्चा घर-घर होने लग गई थी।। चारों ओर प्रसन्नता-भरी मुसकान फैल गई। गंगाधर तथा अन्य साथियों ने सबका स्वागत किया।

"कहिए मास्टर साहब ! आखिरकार आ ही गए तो......" भीमण्ण से बिना कहे रहा न गया। न जाने और भी क्या बक देता, पर गंगाधर ने इशारे से उसे मना किया और प्रशंसात्मक उद्गार निकाले, "बड़ा, अच्छा हुआ मास्टर साहब, आपने लड़कों के लिए योग्य आदर्श उपस्थित किया।"

"हाँ, इतने निकट ही यह कार्य चल रहा है। सो कम-से-कम एक बार ही सही घुमा लाऊँ, इसका विचार अरसे से कर रहा था। आज मौका आ ही गया।" पुराणिकजी ने कहा।

गंगाधर ने लड़कों को बड़ी रोचक तथा सुबोध शैली में बाँध का किस्सा सुनाया। उसके उठाने का तरीका समझाया। उससे होने वाले लाभ बताए। साथ ही संक्षेप में देश का वर्तमान इतिहास भी पढ़ाया। लड़के उसे घेर चुके थे।

आँखें फाड़ कर अपलक उसी को देखते, उसकी बातें सुनने में तल्लीन हो उठे थे।

"क्लास की पढ़ाई से बेहतर है।" किसी लड़के ने कहा।

"अवश्य ! अवश्य !" बाकी लड़के भी उछलने लगे।

"एँ!" पुराणिकजी एकाएक उनकी ओर घूमे।

"जी हाँ !' 'जी हाँ !' 'दिलचस्प है, सर !' 'बड़ा बढ़िया है, सर !" कई आवाजें सुनाई पड़ने लगीं।

पुराणिकजी ने हँसते हुए परिस्थिति के अनुकूल अपने को बना लिया।

"गंगाधर को मास्टरी कर लेनी चाहिए थी।"शिवस्वामी ने प्रशंसा व्यक्त की।

"बड़ा अच्छा होता ! बड़ा अच्छा होता !" एक साथ लड़के चिल्ला उठे।

"धन्यवाद !" गंगाधर मुस्कराते बोला। विदा करते समय उसने अनुरोध किया, "बीच-बीच में लड़कों के साथ अवश्य आया करें, सर !"

"ऍं ?" मास्टर साहब कुछ कह न सके।

"हाँ, सर !", 'अवश्य, सर !', "आना चाहिए, सर !",

आगे की कतार की यह 'हाँ, सर !' आवाज़ जाने-अनजाने आखिरी कतार तक पहुँच ही गई और अलार्म घड़ी की तरह लगातार सुनाई पड़ने लगी।

"दूसरी बार यहाँ आना है तो देखने के लिए नई चीज़ क्या रहेगी ?" पुराणिकजी ने दहाड़ा।

'शांत हो जाइए !' 'आना चाहिए, सर !' 'आना होगा, सर।' 'यहाँ आकर हम लोग भी कुछ काम करें, सर !' 'हाँ, सर !' 'इतवार के दिन आएँ, सर !', 'हाँ, सर !' 'हाँ, इतवार को !' 'इतवार के दिन !' आवाज़ों की बौछार सी होने लगी।

"तुम लोगों से काम क्या होगा, भाई ! बताओ !"

"जितना बन पड़े, उतना ही सही, सर !', 'बहुत कुछ कर पाएँगे, सर !' 'हम कोई बच्चे थोड़े ही हैं, सर ?' 'प्राइमरी के छोकरे थोड़े ही हैं सर ?' 'कुछ किया जाए, सर !' 'साथ ले आइए, सर !' 'ले आना होगा, सर !' 'हाँ, सर !' 'हाँ, सर।'

"धत्, तुम लोगों के 'हाँ सर !' की। शोर न मचाओ, भाई ! छात्रों को विनयी रहना होगा !" पुराणिकजी ने धमकाना छोड़ दिया था। पर रोदन, बोधन का भी कोई असर न हुआ।

"शिवस्वामी ! रुद्रप्प ! अपने-अपने क्लास के लड़कों से कहिए तो सही। चौथे वर्ग के अपने लड़के, मेरी बात सुन कर शांत रहे हैं। मैं वह क्लास पढ़ाता

हूँ, वे सब समझदार हैं।" पुराणिकजी ने ज़रा तन कर कहा।

"आप लोग शांत हो जाइए!" शिवस्वामीजी ने इशारा किया तो आवाजें बन्द हो गईं।

"हेडमास्टर साहब आपके किसी भी भले काम में बाधा पहुँचाने वाले थोड़े हैं! आज हम लोगों को वे ही तो साथ लाए हैं। आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। सबको तृप्ति मिल सके, ऐसा काम किया जाएगा।"

कुछ देर बाद टोली जय-ध्वनि करती लौट गई।

इतवार के पहले ही निर्वाणय्याजी पर बड़ी आफत ही आ गई। वेंकटय्याजी की शिकायती चिट्ठी पहुँच चुकी थी। फलतः बिना कोई सूचना दिए विभागीय अधिकारी शुक्रवार को ही मौका-मुआयना करने आ पहुँचे। बचत टिकट बिके कई महीने बीत गए थे। पर, निर्वाणय्याजी ने टिकटों के लिए माँग ही न भेजी थी। कभी के मँगाए सभी नमूनों के बचत सर्टिफिकेट दफ्तर में पड़े पाए गए। वेंकटप्पाजी और उनके बताए दो-चार जनों से पूछताछ करने पर साफ मालूम हो गया कि निर्वाणय्याजी ने न जाने किन कारणों से कइयों को सर्टिफिकेट माँगने पर टरका दिया था और ऊपर के कार्यालयों पर दोष मढ़ दिया था। इसके अलावा 'ढिलाई, उपेक्षा' आदि की शिकायत भी उनके खिलाफ आ गई। विभागीय अधिकारी ने यहाँ के हिसाब-किताब की जाँच की। यहाँ की व्यवस्था भी उन्हें असंतोषजनक प्रतीत हुई। अन्त में उन्होंने एक लम्बा विवरण तैयार किया, जिसमें उल्लेख था कि निर्वाणय्याजी युग-धर्म के अनुरूप अपनी जिम्मेदारियों को नहीं समझते। इनमें व्यापार-विभाग के लिए आवश्यक चुस्ती, फुर्ती, विनय, प्रजारंजन-क्षमता आदि गुण नहीं। किसी बड़े कार्यालय में अधीनस्थ कर्मचारी के नाते इनका तबादला फौरन होना चाहिए। इस समय बन पड़ी चूक के लिए इनकी सालाना बढ़ती रोक दी जाए। किसी सक्षम उत्साही व्यक्ति को वेलगूर-प्रकाशवाड़ी-डाकघर में भेजा जाए। इस शिफारिश के अतिरिक्त यह भी आदेश जारी कर दिया कि फिलहाल निर्वाणय्याजी मुअत्तल किए जा रहे हैं। वे दफ्तर की कुंजी अपने सहायक अधिकारी के हवाले कर दें।

विभागीय अधिकारी का मुआयना, जाँच-पड़ताल, कार्रवाई आदि की चर्चा घर-घर होने लगी। सज़ा की शिफारिश की खबर धीरे-धीरे चारों ओर फैल गई।

"काम-काज कुछ न करे, वेदांत झाड़ते वक्त काटा करे। भलेमानुष को नौकरी से ही छुटकारा मिल जाता, तो संन्यास लेने की सुविधा हो जाती।"

"इतना तो हो ही गया। बच्चू की पूँछ इस ढंग से कटी है कि किटकिटा भी न सके। आइन्दा दूसरों का हुक्म मानते हुए चुपचाप काम करते जाना होगा।"

"यह आदमी है भी इसी लायक।"

"अपनी सरकार सोई पड़ी नहीं, यों ही लोग अटकलें लगाया करते हैं। वेंकटय्याजी ने केवल लिखा है कि 'बात क्या है?' चिट्ठी मिली नहीं कि इस महाशय की नींव ही हिल गई! खूब! विभाग जागरूक है।"

"फिर क्या समझ रखा है? उठँगना बड़ा मान कर उसका छोटा वाला छेद बिना बन्द किए रहने दिया? रिसते-रिसते समूचा बाँध ही फट पड़े। उसे बन्द कर देना होगा। सरकार कोई अजीब चीज़ है? यह डाकघर, वह स्कूल ये सब वही।"

"स्कूल के बारे में थोड़ा-बहुत कहना-सुनना रह जाता है।"

"इसके बाद ही वह भी दुरुस्त हो ही जायगा। लड़कों में से किसी एक की मरम्मत की जाए तो बाकी खुद ठण्डे पड़ जाते हैं, उसी प्रकार समझ लो। पुराणिकजी और निर्वाणय्याजी दोनों एक ही जिगर के दो टुकड़े तो हैं?"

निर्वाणय्याजी अपने प्रिय साथी से रोना रो रहे थे, "मैं जानता था, सर! इस बाँध के बहाने कोई-न-कोई विघ्न-बाधा उपस्थित होगी ही। सो हो ही गई, देख तो लिया। इससे पहले बड़े मज़े में रहे हम लोग। सारा गाँव भी निरापद रहा। कोई परेशानी नहीं। मेरा कोई बड़ा दोष न था, सर! मेरे विरोधियों का षड्यंत्र है सर! वह, अपना सहायक ही, मूल कारण है, सर! मैं बरबाद हो गया, सर! आगामी मास मिलने वाली बढ़ती रुक गई। उस रकम में अपनी चौथी बिटिया के लिए लोलक खरीद देने का वादा किया था, सर! बंगलौर के केन्द्रीय कार्यालय में तबादला होने जा रहा है। उस शहर में इस लम्बे परिवार के साथ इतनी तनख्वाह पर कैसे दिन गुजारे जाएँगे, यही बड़ी जटिल समस्या हो गई है, सर! अपने राम तो इसी क्षण संन्यास ग्रहण करने को प्रस्तुत हैं, सर! पर श्रीमती और इन दस सन्तानों का क्या होगा? इन लोगों के लिए एक वक्त भी मक्खन का घी न मिले, तो मेरा मन मरोड़ खा कर रह जाएगा छटपटा जाता हूँ, सर! बंगलोर में मक्खन का भाव क्या होगा, कैसा घी मिले··· तैयार बटिका होगी, या नहीं, भगवान् जाने।"

"ठीक कह रहे हैं, सर! बड़ी आफ़त आ गई। अनहोनी होकर रही, युग ही विकृत हो गया है, सर! जितनी भी सावधानी बर्ती जाए कम ही मानिए

उसे। मैं कितनी विपदाओं से व्याकुल हो उठा हूँ? मौन ही निगल ले रहा हूँ। गाँव का गाँव ही गुप्तचरों का अड्डा मानिए। निगोड़ी सरकार की क्या कहें, भूखी वाघिन की तरह ताक में लगी रहती है। सबका रुख रखते हुए कैसे अपने को बचा लें, इसकी चिंता ही कँपा देने वाली सिद्ध होती है। भगवान् ही बचाए, सर! भाग्य सराहिए कि कोई विशेष हानि आपकी न हुई। इतने से ही तसल्ली हो जानी चाहिए। और दूसरा उपाय ही क्या है सर? हाँ''' जनमत जान ही ले ले, युग ही ऐसा है। अच्छे दिन फिर न लौटने के, लेकिन इस समय हम साँस भी न ले पाएँगे, सर।' पुराणिकजी ने हाथ हिलाया, कुछ फुसफुसाया और निर्वाणय्याजी के वढ़ाए हाथ में डिबिया धर दी, फिर बोले, "अपने से मतलब, रहा सो रहा, गया सो गया। भाड़ में जाए। हवा का रुख पहचान कर अपनी खोपड़ी बचा लें। आपकी क्या राय है, सर?"

"दूसरा कोई उपाय भी तो नहीं सूझ रहा, सर! बंगलोर में अपने सुपीरियर अफ़सर के आदेशों का अक्षरशः पालन करना होगा। कोई तिकडम लड़ा कर अपनी सालाना वढ़ती हासिल कर लेनी होगी। वहाँ से किसी दूसरी बस्ती में खिसक जाना होगा। बाकी उपाय ही क्या? संसार में ईमानदारों की पूछ ही कहाँ होती है सर? अच्छी बात है'''भगवान् जो चाहे कर ले। उसी की लीला-माया होकर रहेगी। हम तीन दिन के मेहमान मानव किस खेत की मूली हैं, क्या कर सकेंगे?" कहते तेज़ सुँघनी चढ़ाई, जैसे अपने को आश्वस्त कर लिया।

गाँव में जो भी मिल जाता, पुराणिकजी उनसे कहते फिरने लगे, "मैंने शुरू से ही उस महाशय को सतर्क किया। यह ठीक नहीं, यह अनुचित है, सँभल जाइए, युग बदल रहा है, हमें भी अपने को समय के अनुकूल बना लेना होगा। सरकार का नमक खाते हैं। उसके नौकर हैं। नौकरी पर रहकर उसके ध्येय-आदर्श को अपनाकर चलना पड़ेगा। अन्यथा यह द्रोह माना जाएगा, भूल समझी जाएगी, आफत के पहाड़ टूट पड़ेंगे, चेत जाइए। शुक सारिका को पढ़ाने की भाँति पढ़ाया-समझाया। पर उस भलेमानुस ने कोई ध्यान ही नहीं दिया। कोई क्या करे? जो होना था, होकर रहा। जैसी करनी, वैसी भरनी। रुख पहचान कर अपने राम भी अपने को अनुकूल बना ले रहा तो?" इस प्रकार डींग हाँकने लगे। शिक्षा-विभाग के ऊँचे अधिकारियों के नाम लिख भेजा भी—"शिवस्वामी इधर काफी सुधर रहे हैं। इनके खिलाफ पहले भेजी शिकायतों की कोई सुनवाई न हो, कोई मौका-मुआयना भी इस वक्त जरूरी नहीं।"

इतवार को उनका उत्साह वर्णनातीत था। देवता भी इस दिव्य दृश्य को देख फूल बरसाने को ललच जाते। पुराणिकजी पोंगा न थे, इतिहास की सीखें भला भूल कैसे जाते।

● ● ●

:३२:

कैंट साहब तेजी से अपना डोरा डालने लगे, डौल बाँधने लगे।

अपनी खूबसूरती को बढ़ा लेने और मोर की तरह नाच उठने का कौशल क्रम से गोचर होने लगा, दिन-पर-दिन बढ़ता गया। ब्रिलिएंटाइन के सहारे सँवारे केश इतने गजब के हो उठे कि उनकी चमक देख बटलर ब्वाय भी शर्मिदा हो जाते। गोरम्मा की माँग, दिलीपकुमार का स्वांग, शीतलामाई का टाँग आदि सारे प्रयोग हो गए। फ्रांसीसी इत्र से तो सारा घर ही महक उठा। मूँछ की काट-छाँट का कोई हिसाब ही नहीं-मक्खी, हजारा, पोआ, बिच्छू आदि की की बनावट, चार्ली चापलिन, एरालफ्लिन, मार्क्स ब्रदर्स, जनरस मैकफर्सन आदि के नमूने। रंग-विरंगी फेल्ट हैटें कई कोणों में सिर पर विराजने लगीं। यदि सिगरेट से चेहरे का आकर्षण बढ़ता न लगा तो पाइप, सिगार मुँह के कोरों पर धँसे पाये जाते। नागभूषण के गले पर फन काढ़े कराल सर्पों की भाँति अमरीका की भड़कीली टाई ऊँचे पर उठी दिखाई दी। निराशा की घड़ियों में संभवतः आत्महत्या की धमकी देने वाले 'बाड' भी गोचर हो जाते। तीन 'पीस' के मन्मथ सूट ओझल हो जाते, दो टुकड़ों से अरुचि हो जाती तो भारी-भरकम बुश शर्ट बाहर निकल पड़ते। उन पर समुद्र तट पर जलक्रीड़ारत रमणियों की भंगिमाएँ भड़कीले रंगों में अंकित थीं। उन्हे देखते ही आँखें चौंधिया जातीं। कैंट साहब पर बुश्शर्ट इसी प्रकार शोभित थे, जिस प्रकार नाव के मस्तूल में बँधा पाल। इनसे मेल खाने वाली पनामा हैट भी कभी-कभी बाहर झाँक जाती। मादण्णा के लिए चेरी ब्लॉसम से बूट पालिश गायों के बदन रगड़ने की भाँति दैनिक कार्य हो गया था। इस प्रकार एड़ी से चोटी तक अंग-अंग का आकर्षण अनंग की भाँति बढ़ा लेने पर भी कैंट साहब का प्रेम-प्रदर्शन घर के अंदर सीमित हो गया था। कारण इतना ही था कि भागीरथी को उनके साथ टहलने बाहर जाना पसंद न था। अनिच्छा, थकान, सिर-दर्द और पैरों की सूजन आदि कोई-न-कोई बहाना बनाती रहती। फलतः वे भी टहल आने का स्वांग रचकर जल्द लौट आते, वेशभूषा धारण किए ही वक्त गँवाते जाते। यह भी नहीं कि घर पर

भागीरथी उनके अनुकूल कभी हुई हो। शतरंज और कैरम खेलने के लिए बार-बार बुलाया, पर बेकार। पासा खेले वगैर ही हज़रत पस्त हो गए। उसे अपने कमरे से बाहर बुलाने में भी विफल हो गए, झख मार कर रह जाना पड़ा। अंत में मौका देख कर उसके कमरे में ही थोड़ी देर बिता लेने का उपक्रम किया। पुस्तकें, तस्वीरें, प्रेम, अमरीका-विषयक विचार-विनिमय ही से खुश रहने लगे, पर धीरे-धीरे भागीरथी केशवय्यगारजी की पुत्री चित्रा से हेल-मेल बढ़ाने लग गई, उसके यहाँ आने-जाने लगी तो कैंट साहब का रहा-सहा सहारा भी छिन गया। अब तब बंद किवाड़ पर उँगली रखकर देख लेना और अन्दर से कुण्डी लगे रहने का अनुभव करते लौट जाना भी पड़ता था।

कैंट साहब भागीरथी की कमजोरी जानते थे। सो उपहारों का अस्त्र चलाना शुरू किया। छोटा, बड़ा, प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से उपहार उसे अर्पित किये जाने लगे। जयलक्ष्म्माजी फूल खोंसे रहतीं, तो कैंट साहब गिड़गिड़ा उठते, "फूल कैसा लगता है? बाजार में दिखाई पड़ा, सुन्दर लगा, सो ले आया।" भागीरथी को समझने में देर न लगती कि यह उसी के लिए लाया गया है। अचानक आईने के सामने उसे एक इत्र की बोतल दिखाई पड़ी। वह बोतल कैंट साहब के पास ले गई और बोली, "मेरे पास ही तरह-तरह के इत्र हैं। इसकी आवश्यकता नहीं, यह किस काम में आए।" जवाब में कैंट साहब ने मुँह चौड़ा करके अर्थपूर्ण हँसी हँसते हुए कहा, "इस्तेमाल का तरीका मैं तुम्हें सिखा सकूं-लावण्य की ललना को? कितना भी पास में रहे, इसकी खुशबू ही निराली है। "ताजे खिले फूल का मजे का परिमल!" यह भी जोड़ दिया।

वह सकपका गई और मुंह लटकाए बोतल साथ ले आई। लेकिन सफेद दफ़्तीवाली पेटी लाल रेशमी फीते से बाँध कर जब मुस्कराते हुए वे उसे आगे बढ़ाने लगे, तो उसने उसे छूआ तक नहीं।

"खोल कर देख लेने में हर्ज ही क्या?" कहते उन्होंने पेटी खोल दी। भीतर नीले मखमल पर दो लड़ी का नकली मोतीवाला हार था भागीरथी उससे आकर्षित हुई।

"यह लेकर मैं क्या करूँगी?" भागीरथी ने सिर हिला दिया।

"क्या करना है? इस गले का चुंबन वह कर सके, इसलिए।"

"यह फैशन पर लट्टू हुई लौंडियों के लायक है।" उसने कैंट की बातों पर ध्यान ही नहीं दिया।

"रानियों के लायक भी।"

"यह बखान सोहता नहीं। यह मैं नहीं लेने की। लौटा देना ही बेहतर होगा।"

"यह डाक से मँगाया है—बम्बई से। 'इलस्ट्रेटेड वीकली'......में...... विज्ञापन आया था। लौटा कैसे दिया जायगा? मेरी तसल्ली के लिए पहन तो लो। तुम्हारे गले में पहनाने का सुयोग इस जन को मिलेगा?" कैंट हार लिए कदम बढ़ाते गए।

"यह गलत है! शोभा नहीं देता आपको! वहीं रख दीजिए।" भागीरथी ने हाथ आगे बढ़ाते हुए रोका। कैंट साहब हार उसकी कलाइयों पर ही पहना चुके और वहाँ से नौ-दो ग्यारह हो गए। भागीरथी देर तक सोच में पड़ी रही, इससे कैसे निपटा जाए! उनके कमरे की ओर जाना और ऐसा प्रसंग दुबारा खड़ा होने देना तथा घर-भर का ध्यान आकर्षित करना उसे अनुचित प्रतीत हुआ। उसने वह हार पेटी में बन्द कर दिया और अपने कमरे के किवाड़ के बारे में और सतर्क हो गई।

एक शाम को उसके साथ ही कैंट साहब कमरे में दाखिल हो गए।

'क्या लिखा है, पढ़ो तो सही' एक सोने की अँगूठी सामने दिखाई। 'भाग्यम्-कैंट' उस पर अंकित था। 'स्वीकार करने की कृपा हो'......अपने यहाँ 'एंगेजमेंट रिंग' का कोई प्रचलन नहीं—सो अब विदेश की प्रथा है।"

"मैं पहले ही मना कर चुकी थी कि कोई चीज लाई न जाए। मैं यह सब पसंद नहीं करती, ले जाइए इसे यहाँ से!' भागीरथी बिगड़ गई।

"इतनी रुखाई क्यों? स्नेह की भेंट भी कोई भूल है?" कैंट साहब मुँह लटकाए रह गए। फिर भी बोले "कम से कम इसे अस्वीकार न कर दो भाग्यम्! तुम राजी नहीं हो, तो फिर कभी कोई चीज न ले जाऊँगा।"

"यह सच है, अंतिम बार......"

"तुम्हारी मर्जी ही पक्की रही, इसके खिलाफ भी?......भाग्यम्! तुम्हारी उँगली में पहनाने का सौभाग्य मुझे........।"

"कदापि नहीं। इस हालत में कोई जरूरत नहीं इसकी।"

कैंट साहब हाथ छू कर हथेली पर उसे रख गए। यह भी हार की राह पेटी में रवाना हो गई। ब्रोच की डिबिया एक बार भेजी गई तो भागीरथी ने उसे मादण्ण के हाथों लौटा दिया। गहने लेने को तैयार न होने पर भी, भागीरथी पुस्तकें ले लेने में हिचकती न रही। कैंट साहब ने यही हथकंडा अपनाया। भेंट में पुस्तकें ही नहीं आतीं, उनके अंदर प्रेमगीत भी रखे होते थे,

कुछ तो भूल से और बाकी जान-बूझ कर ही । अन्य कवियों के प्रेमगीत ही नहीं, कैंट साहब के स्वरचित प्रेमगीत भी इत्र लगे कागज पर देखने को मिल जाते ।

*'मैसूर मल्लिगे' के प्रथम पृष्ठ पर कैंट साहब ने लिखा था ।

"बेला के फूल को भी अपनी सौन्दर्य सुगन्ध से लज्जित करने वाली भागीरथी के लिए ।"

इस प्रकार कैंट का बहुमुखी प्रणायानुरोध-कोर्टशिप-होता गया ।

जून का महीना था । एक दिन शाम को कैंट साहब हवाखोरी से जल्द ही लौट आए, तो देखा भागीरथी कहीं बाहर निकल रही है । उसे देखते ही हज़रत उसका पीछा करने लगे ।

"मैं चित्रा के यहाँ···।"

"जानता हूँ । वहाँ तक छोड़ आऊँगा ।"

"कोई ज़रूरत नहीं ।"

"क्यों, इसमें क्या दोष ?"

"दोष नहीं····।" भागीरथी को इनके संग गाँव में टहलना पसन्द न था ।

"व्यर्थ ही का आयास···।"

"तुम्हारे साथ चलने में आयास ? ह्,ह ! ह्,ह !"

पिंड छुड़ाना मुश्किल दिखा, तो भागीरथी ने लाचार होकर कहा, "गाँव से बाहर चार कदम···।"

"तब तो कहना ही क्या ! इतनी कृपा हो जाए, तो कृतार्थ हो जाऊँ भला !"

शीतलामाई के मन्दिर पर आए तो भागीरथी ने कहा—"पैर दुखने लगे हैं । लौटा जाय यहीं से ।"

"तब तो यहीं बैठा जाए, तनिक सुस्ता लें ।"

"ना-ना । इतनी थकान नहीं है ।"

"कोई बात नहीं, चली आओ न थोड़ी देर टहल लें ।"

मंदिर के पिछवाड़े कैथ के पेड़ के नीचे रही चट्टान के पास दोनों गए । भागीरथी भी पीछे-पीछे कदम बढ़ाती गई । यह दोनों के लिए कोई नई जगह न थी । पहले भी कई बार यहीं समय बिताया था ।

न जाने पहले कितनी ही बार कैंट साहब अपनी लियाकत भर अमरीका में प्रचलित युवा-युवतियों के विवाह-पूर्व के जीवन का चित्रण बना कर बखानते

*कन्नड़ में श्रीनरसिंहस्वामीकृत एक लोकप्रिय शृंगारिक काव्य-संग्रह: 'मैसूर का बेला फूल' ।

गए थे। अबकी भी वही दुहराया। भागीरथी केवल 'हाँ' कहती जाती।

'इस्केटिंग की सुविधा, उन्मुक्त प्रेम की छूट आदि के अभाव में अपने यहाँ के युवती-युवा के जीवन का आधा भाग-आधा ही क्यों, तीन चौथाई ही-नीरस है, फीका हो उठा है, बल्कि सूख ही गया है। यौवन में धैर्य, स्वतंत्रता, पौरुष आ जाएँ, परिणाम चाहे जो हो, बला से, इनके अभाव में यह राष्ट्र प्रगति कैसे करेगा ?"

"अवश्य ये गुण होने चाहिए।"

"हाँ, अब देखो ! तुम इतनी जानकारी रखती हो-मेरी ही भाँति। हम दोनों को स्टेट्स में ही पैदा होना था, भागीरथी ! उस वक्त भला कितना आनंद आ जाता इस उम्र में, इस सुहानी साँझ में।"

"बदली छा गई है, हवा भी तेज़ हो उठी है, घर लौटना ही ठीक होगा।"

"कोई हर्ज नहीं, कोई हर्ज नहीं। पानी अभी दूर पड़ रहा है। वहीं से हवा के झोंके खा कर और कहीं बरसने लग जाए। हवा कितनी मज़ेदार है, कितनी नम है। यह वक्त, यह जगह, अपने लिए तो स्वर्गोपम है। यदि हम दोनों इस समय अपने को स्टेट्स में रहने वाले मान लें।·· वहाँ डेट तय करने वाले युवतियों-युवाओं पर कोई रोकथाम नहीं, भाग्यम् ! आलिंगन, चुंबन आदि की कोई मनाही नहीं। जब मैं न्यूयार्क में था, उस वक्त एक मनोविज्ञानिक ने छात्रों को प्रवचन देते समय कहा था, युवा-युवती दोनों का वैवाहिक जीवन सुखमय होना है तो—उन्हीं के शब्दों में वैज्ञानिक तरीके से ही कह दे रहा हूँ—विवाह के पूर्व ही लैंगिक अनुभव भी परम आवश्यक है। अमरीकी विज्ञानी कितनी दूर पहुँच जाते हैं। यही जताने के लिए कह रहा हूँ, मेरा और आशय नहीं है।"

कैंट साहब ने हाथ आगे बढ़ाया। वह आँचल में लगा ही था और वह उसके और निकट आते ही गए कि भागीरथी नागिन की भाँति फुफकारती हुई उठ खड़ी हुई।

"यह अमरीका नहीं, भारत का बेलगूर-प्रकाशवाड़ी है। हम उनके समान विज्ञानी नहीं, भले ही अज्ञानी रह जाएँ ! अपना हेल-मेल, बेमुरौवती आदि मित्रता तक ही सीमित हैं। हमारी पृष्ठभूमि इतनी पतित कभी नहीं रही है ! मैं अभी इतनी प्रगतिशील नहीं हो सकती !"

"ऐं, यह क्या हो गया भाग्यम् ! तुमने उन सबके बारे में पढ़ा ही होगा।"

"उतना ही पर्याप्त है !" कहती हुई भागीरथी तेज़ी से कदम बढ़ाने लगी।

"मैं भी चलूँगा। गलती मेरी माफ हो जाय !" कैंट साहब भी उठे।

"बूँदाबाँदी है। कपड़े भींग जाएँगे। ठहरो, भाग्यम्! सुनो तो! इस मंडप में थोड़ी देर रुक जाएँ। कैंट साहब चिल्लाते मन्दिर के सामने आ पहुँचे और मंडप में रुक गए। भागीरथी भींगती दूर सड़क पर बढ़ गई थी....बढ़ी जा रही थी। कैंट साहव अनमने हो वहीं ठहर गए। चेहरे पर के छींटे रूमाल से पोंछते एक खम्भे की आड़ में हो गए।

वहुतेरे कारीगर गाँव लौट आए थे। इस वक्त छिटफुट टोलियाँ हल्की बूँदाबाँदी की परवाह किए बगैर लौट रही थीं। कैंट साहब ने उन्हें देखा। थोड़ी देर बाद कोई दो आते दिखे, जो कुछ आगे वढ़ गए—कोई पुरुष, दूसरी स्त्री।

"हाय! भैया!"

"क्या हुआ पारी?"

"पैर में मोच आ गई।"

"अरे, यह कैसे?"

इन वातों को सुनते ही कैंट साहव उस ओर घूमे। पार्वती के पैर के पास बैठ कर गुण्ड उसे छूते, दबाते, इधर-उधर मोड़ते बैठा होगा, यह इनका अनुमान था।

"सुनो, मेरे कंधे पर बल दिए वह पैर धीरे-धीरे रखती चलने की कोशिश करो तो सही।" गुण्ड उठ खड़ा हुआ। वहन की वाँह अपने गले में डाल ली। उसकी कमर में सहारा दिए तनिक उठाने लगा। दोनों पैर वढ़ाने लगे।

"हाय, भैया! चल न पाऊँगी, गहरा दर्द है।"

"तब तुम्हें गोद में लिए हनुमानजी के मन्दिर में विठाऊँगा। तुरत गाँव से गाड़ी ले आने चल पड़ूँगा।" गुण्ड ने वहन को शिशु की भाँति उठा लिया।

कैंट साहब इसके बाद की वातचीत न सुन सके। लेकिन, उसे मन्दिर में बिठा कर गुण्ड का गाँव की ओर चल पड़ना धुँधला ही दिखाई दिया।

थोड़ी देर बाद बाँध की ओर से एक पुरुष आता दिखाई दिया। वह हनुमानजी के मन्दिर के पास पहुँचा ही था कि पानी तेज़ हो गया। वह मन्दिर में गया, कैंट साहब ने यह देखा।

यह और कोई नहीं, गंगाधर ही था। दूसरे दिन के काम की व्यवस्था कर उसके लौट आने में देर लग ही जाती थी। यह कोई नई घटना न रही। मन्दिर में कदम रखते ही, वहाँ पार्वती को देख वह अचम्भे में पड़ गया।

"यह क्या पारी, यहाँ अकेली, इस हालत में?"

पार्वती ने सारा किस्सा सुनाया ।

"सोच ही तो है ? यह लो, मैं छूमन्तर से उसे उड़ा दूँ ।" उसने विनोद-पूर्ण हँसी के साथ उसके पैर के निकट बैठते हुए कहा, "पैर इधर बढ़ाना तो ।" इतना कह उसने अपना हाथ आगे किया ।

"कोई चिंता नहीं, रहने दो ।"

"पैर बढ़ाने को कह रहा हूँ, हिचक रही है ? बुद्धू कहीं की !"

पैर बढ़ाने के बजाय पार्वती ने अपना हाथ बढ़ा उसके कपड़े छूए ।

"यह क्या, पानी चू रहा है । तुरंत कपड़े उतार कर निचोड़ लो, पानी गिरा दो ।"

"हट, यह कौन बड़ा उपद्रव है ।"

"ना-ना, कुछ हो जाएगा । सर्दी, बुखार···।"

"जिद्दी छोकरी !" गंगाधर ने शर्ट उतार कर उसे मींच दिया । पानी गिराया । उसी से बदन पोंछ कर उसे पहन लिया । जाँघियाँ को योंही कुछ मरोड़ कर पानी गिरा दिया । फिर बोला, "हाँ, अपना हाल ठीक हो गया । अब तुम्हारी सेवा···।"

"इस वक्त पानी कुछ थम गया है । तुम घर जाओ, कपड़े बदल लो ।"

"तुम्हें यहीं अकेली छोड़ कर ? यह कैसी बात !"

"भैया आता ही होगा ।"

"आने दो । इतने में गाड़ी की ज़रूरत ही न पड़े, ऐसा कर दूँ । अच्छा, पैर बढ़ाओ तो ।"

"जिद्दी कौन ?" हँसते हुए पार्वती ने पैर बढ़ा दिया ।

गंगाधर ने उसका पैर दबाते, सहलाते, ज़रा इधर-उधर घुमाते झटके से खींचा ।

"हाय, मर गई ।" वह दर्द खाए हँसी ।

"अब क्या हाल है ?"

"बता नहीं सकती ।"

"अच्छा, यहीं थोड़ा टहलने लगो तो ।" गंगाधर ने उसकी भुजाएँ थामे उसे उठाया । गुण्ड ने जिस भाँति सहारा देकर चलाया था, उसी प्रकार चलाने की कोशिश की ।

"थोड़ा-सा आराम है । पर दर्द अभी है ।"

"पैर बैठ तो गया होगा । पर दर्द तुरंत जाने का नहीं । दो-चार दिन घर

पड़ी रह जाओ, ठीक हो जाएगा।"

"दो-चार दिन! मतलब मैं काम पर···।"

"ह्‌ह्‌! ह्‌ह्‌ कुछ लोगों को काम से ही उदासी आ जाए, और कुछ लोगों को काम न रहे तो उदासी सताए! वाह, खूब!···अच्छा पारी! भागीरथी के मुलायम पैर मोच खा जाते, तो कोई आश्चर्य न होता। पर तुम्हारे ये मज़बूत पैर काम में लग कर भी···।"

"खुरदुरे पैर न जाने आँखें मूदे कहाँ रख दिए।"

"खुरदुरे पैर! मूर्ख! निरी मूर्ख! या यह तुम्हारी विनयशीलता हो? मिट्‌टी में इतना चलने पर भी ये कितने मृदुल हैं!"

थोड़ी देर मौन छाया रहा।

"पारी···"गंगाधर विचार में डूबा कहता गया,—"एक बात तुमसे कहने को जी कर रहा है। यह अपने अपराध से संबंध रखने वाली बात है···।"

"अपराध रहने दो।"

"हाँ, तुम्हारे साथ···।"

"हाय! यह क्या?"

"बीच में बोलो नहीं। मुझे टोको नहीं",···गंगाधर उसकी बग़ल में बैठा कहता जा रहा था, "मैं मुद्दत से भागीरथी के बनाव-सिगार पर मुग्ध हो तुम्हारा महत्व न जान पाया—कोई समुचित ध्यान न दिया। इसमें थोड़ी सी भूल तुम्हारी भी है। उसकी भाँति तुम मेरे समीप कभी आई भी तो नहीं। यही नहीं, पीछे ही पड़ी रहीं। उसकी मिलनसार प्रवृत्ति, झिड़की, फुर्ती आदि ने मुझे मोह लिया था। तुम्हारी मृदुता, भीरुता के आवरण में तुम्हें देखने, समझने में समय लग गया। तुम्हारा व्यक्तित्व क्रम से, पर निश्चय ही अभिभूत कर लेने वाला है, ठोस है। पारी! मैं तुमसे किस मुँह से कहूँ कि इस योजना के कार्यान्वित होने के समय से तुम्हारे असली रूप को अधिकाधिक देख तुम्हारे स्नेह, निष्ठा, सहनशीलता, शांति आदि गुणों पर कितना मुग्ध हो उठा हूँ। अपने हृदय में तुमसे अधिक ऊँचा स्थान और किसी का नहीं है···जो कुछ कहना था, कह चुका हूँ। अब अपने दिल का बोझ हल्का हो गया।"

गंगाधर चुप लगा गया, पर वह चिंतनशील ही बना रहा।

पार्वती ने तुरंत कोई उत्तर न दिया। उसका हृदय भर उठा था, मुँह पर आने लगा था। वह अपने को संयत कर बातें निकालने का अवसर ढूढ रही थी।

"अपनी कोई योग्यता रही भी, तो उसका सारा पुरस्कार इस समय पा

गई। हार्दिक प्रशंसा से अधिक की अपेक्षा भी कैसे की जा सके ? भागीरथी, जो दूसरों का मन हर ले पाती है, इसमें आश्चर्य कैसा ? वह रूपसी है, गुणसंपन्न भी। अपनी सहेली भी तो है ? उसे मैं भली-भाँति पहचानती हूँ। आज न सही, कल अवश्य ही अपने इस सत्प्रयास को आदर की दृष्टि से देखेगी ही। वह कम समझदार नहीं। उसे सर्वोच्च स्थान मिले, यह कई कारणों से न्यायसम्मत है भी। इससे मैं रंचमात्र भी असहमत नहीं, उसके प्रति मेरे मन में ईर्ष्या का कोई भाव नहीं। कभी लड़कपन में वह मनोभाव रहा हो, तो उसे मैं झुठला नहीं सकती, पर इस समय निश्चय ही कुछ नहीं है···'दो, माँगों मत' की सीख देने वाला यह कार्य अपने हक में तो अवश्य लाभप्रद सिद्ध हुआ है। स्वार्थी मनोवृत्ति को स्नेह में परिवर्तित करने का उदात्त ध्येय कितना कल्याणकारी हो पाता है, इसका मर्म खुल गया है··मुट्ठी भर मिट्टी बाँध में पड़ कर, बूँद भर पानी झील में विलीन हो कर अपना क्षुद्र अस्तित्व जिस प्रकार गँवा बैठता है, वही हाल मेरा भी हो गया है। ऐसा लग रहा है, मानो इस असाधारण कार्य की महानता में अपनी निजी लघुता विलीन हो उठी हो····इस समय यहाँ उपस्थित हो मैं ये बातें सुन पाई, इससे अधिक की कोई आकांक्षा नहीं, तसल्ली के लिए यही काफी है।"

"पारी ! तुम सहज मानवी नहीं, मनुष्यत्व देवत्व की प्राप्ति का अधिकारी बन पाता है, इसका यही प्रमाण है।" गंगाधर धीमे कहता गया। पार्वती का मन न जाने कहाँ पहुँच गया था। ये बातें उसे विचलित न कर पाईं। उससे कोई जवाब न मिला।

"भविष्य में मेरे लिए क्या छिपा पड़ा है, कैसे उसका स्वरूप स्थिर होगा, उसका सपना देखने, भविष्यवाणी सुनने का साहस नहीं कर पाता। आज की भाँति ही सब कुछ रह जाए, तो कितना भला हो ! कितनी ही बार विक्षिप्त की भाँति यह लालसा सताती रहती है—यह संभव न होगा, इसकी जानकारी होते हुए भी, किसी भी संपर्क में लालसा की अपेक्षा भावना ही प्रधान होगी···हाँ, भविष्य में चाहे जों हो जाए। अपने छोटे-मोटे निजी सुख-दुःख महत्व नहीं रखते। तुम्हारा यह कथन सही है। यही प्रत्येक के लिए सांत्वना प्रदान करने वाला सत्वपूर्ण विचार है। अवश्य ही किसी बड़े परिवार से संवद्ध न होने पर छोटे-मोटे व्यक्तिगत सुख-दुःख सहज ही मूल्यरहित हो जाएँ। यदि इस प्रकार का सम्बन्ध रहे, तो तुम्हारे कथनानुसार मुट्ठी भर मिट्टी बूँद भर पानी की भाँति ये सुख-दुःख सहज ही सूख जाएँगे, भुला दिए जाएँगे।····सच है पारी, इसे

हम ध्यान में रहने दें, ध्यान में रखकर ही जीवन-यापन करें।" गंगाधर कह गया। उसके स्वर में भावुकता थी।

गंगाधर ने अनजाने ही उसकी हथेली सहलाई, मानो अपनी गहरी आत्मीयता का स्पर्श होने दे रहा हो। अपना हाथ उसी पर रहने दिया। इस स्पर्श से वह रोमांचित न हुई, प्रस्वेदित न हुई, क्षुद्र विकार उत्पन्न न हुए, लज्जा एवं भीति के भाव न जगे, दर्द पर मलहम लगाने-भर का बोध हुआ।

इसके बाद मौन ही दोनों के बीच वार्तालाप का साधन बना। मुँह से कुछ कहने की आवश्यकता प्रतीत न हुई। यही दशा पर्याप्त हो गई थी।

इस प्रकार शिशुओं की भाँति हाथ-पर-हाथ दिए बैठे पल भर का समय कल्प में परिणत हुआ-सा लगा। दोनों को अपनी प्रकृत स्थिति का बोध ही न रहा। किसी गाड़ी की 'डक्-डक्' आवाज़ सुन वे होश में आए।

"भैया आया होगा।" पार्वती तनिक उठी, घायल पैर फर्श पर रखती बैठ गई। गंगाधर कुछ कहे बिना ही उठा और दरवाजे पर गया।

"यह कोई दूसरी गाड़ी थी। शीतलामाई के मंदिर की ओर से आ रही थी। वह निकट होती गई तो गंगाधर ने आवाज़ दी, "किसकी गाड़ी है भाई? दो जने के लिए जगह हो जाएगी? पार्वती की टाँग में चोट आ गई है।"

"चले आओ भैया, गंगाधरप्प ही तो?"

"हाँ, कौन, शिवण्ण?"

गाड़ी रुक गई। शिवण्ण नीचे कूद पड़ा। दोनों मन्दिर में गए। उसके प्रश्नों का उत्तर दे गंगाधर ने सब हाल कह दिया। शिवण्ण ने भी पार्वती के दोनों पैर देखे-भाले।

"ठीक बैठ गया तो लग रहा है। पर, काफी सूजन है। दर्द होगा ही। सौंफ पीस के पट्टी बाँध दें तो कम हो जाए। उठा ले जाकर ही गाड़ी में बिठा देना सही तरीका होगा। कहो बहन?"

पार्वती तुरंत तैयार न हुई। एक कदम उठा कर रखा, तो लड़खड़ा गई। दोनों ने हाथ का कुर्सीनुमा सहारा दिया और उसे गाड़ी में चढ़ा दिया।

"अरे, ये कौन? आप हैं, सर?" गंगाधर ने गाड़ी में बैठे कैंट साहब को पहचाना।

"हाँ, इन्होंने आवाज लगाई शीतलामाई के मन्दिर के भीतर से ही। बैठ जाने को कहा।"

पार्वती अन्दर बैठा दी गई। दोनों गाड़ी पर सवार हो गए, तो गंगाधर ने पूछा, "आप भी पानी में भींग गए ?"

"ऊहूँ।"

"शाम को टहलने आए थे क्या ?"

"हाँ।"

गाड़ी आगे बढ़ी जा रही, तो गंगाधर ने शिवण्ण से गाँव की चर्चा छेड़ा और बातें होती गईं। गुण्ड भी गाड़ी लिए आ रहा था। किले पर ही भेंट हो गई। इसी के संग वह भी लौट पड़ी।

हिरियण्णाजी के मकान के चबूतरे पर नंजत्ते खड़ी अपने लड़के की बाट जोह रही थीं। कैंट साहब को उतरते देखते ही यह उद्‌गार निकाल उनका स्वागत किया, "आ गए बेटा ! अब जान में जान आई। इतनी देर से जी घबरा उठा था, बड़ी बेचैन रही। एक तो अँधेरा, तिस पर पानी ! तुम्हारी दशा पर बड़ी चिंता हो गई थी। गाड़ी भिजवाने की बात भी सोच रही थी। ईश्वर की कृपा से कोई मिल तो गई, बड़ा अच्छा हुआ।" आगे कहती गई, "भागू आ गई। यों ही तुम्हारे पीछे से आने की बात कह के चली गई। और कोई बात कही ही नहीं। इतनी देर गए तुम्हारे न लौटने से मन घुट-घुट कर रह गया था, बड़ी अधीर हो उठी थी। उसकी भाँति तुम भी भींगे तो नहीं ? अच्छा ही किया। उसे क्यों पानी में भींगते आने दिया, समझाया क्यों नहीं ? यह आशंका सताने लगी है कि कल उसे क्या हो जाए ?"

"आशंका की कोई आवश्यकता नहीं, नंजत्ते ! भींगने पर उसका बुरा हाल नहीं होने का। वह गाँव की पली कुमारी है।" गंगाधर हँसता जवाब देने लगा।

"तुम कहाँ से टपक पड़े ? कहाँ से आ रहे हो ?"

"देखिए भला, सर्वांतर्यामी जो ठहरा !"

"अच्छा !"

गाड़ी के भीतर से पार्वती की हँसी सुनाई दी।

"गाड़ी में और कौन है ? पार्वती ? इतनी देर तक काम कर रहे थे क्या ?"

"हाँ, नंजत्ते ! कारीगरों के लिए देर-सबेर कहाँ ! पानी कैसा, प्रवाह कैसा ! चपला कैसी, बिजली कैसी !…"

"अब दया करो ! बस करो !"

"आपके लाड़ले सब बता ही देंगे, सुन लीजिएगा। चलो शिवण्ण ! नमस्कार, सर !" गाड़ी आगे बढ़ी।

अम्मा ने आत्मज से घुमा-फिरा कर पूछा, सब समझ गई। कैंट साहब भागीरथी की निस्बत सफाई देने लगे, "कोई विशेष बात नहीं हुई अम्मा। मैंने कोई असभ्य व्यवहार नहीं किया।"

"राम कहो, राम कहो। तुम और असभ्य व्यवहार करो, बेटा! अपना कुल ऋषियों का जो ठहरा।"

"थोड़ी सी बात पर बिगड़ कर लौट ही गई—मना करने पर भी कोई ध्यान न दिया। वह बड़ी तुनुकमिजाज है।"

"अच्छी बात है···सब सँभल जाएगा, धीरे-धीरे। सुना है कि मैं भी बड़ी गुस्सेवर रही। इस समय देखो तो सही परिवार के कोल्हू में पड़ जाने पर बड़प्पन, रिसावन सब पिस जाय। इस पर विशेष व्याकुल न हो।"

"वह पहले से ही अनमनी रही, अम्मा!"

"उसके लिए यह कोई नई चीज थोड़े ही है। हर बात में यही रुख है उसका, कोई चिंता नहीं···मैं सोचती थी कि तुम्हारे लौटने पर सब सुधर जाएगा। पर यह क्या झमेला खड़ा करती है? तुममें उसे कौन सी कमी नजर आ रही है? अच्छा?···हाँ देख लूँगी···उस गंगाधर में कौन विशेषता पा गई है कि उससे इतना हास-परिहास उसे पसंद है? वह तो दूसरी छोकरियों से बड़े हेल-मेल से रह रहा है। इतने पर भी इसे मालूम न पड़े? यह उस पार्वती के साथ कितनी देर तक रह जाता है, इतनी देर गए अँधेरे में, पानी में काम का बहाना खाक! यह पट्टी किसे पढ़ाएगा वह? ऐसे कितनों को मैं मुट्ठी में न कर चुकी हूँ! मेरी आँखों में ही धूल झोंके? अब मैं चुप न रहने वाली····।"

"ऐसी कोई बात नहीं, अम्मा! बेचारी! दोनों काम नहीं कर रहे। किस्सा यों हुआ···।"

कैंट साहब अपने जानते पूरा विवरण सुना गए।

"क्या कहा, और भी बढ़ गया! वे दोनों हनुमानजी के मंदिर में इतनी देर रह गए?"

"वह पीछे आया, अम्मा! पानी पड़ रहा था, सो अन्दर गया। गाड़ी के आने तक···।"

"तुम भोले हो, यह सब प्रपंच क्या जानो, अपनी ही भाँति सबको सीधा मान रखा है? पैर में मोच को बात कहाँ तक सच हो कौन जाने? गुण्ड को गाड़ी ले आने भेजना, गंगाधर का पीछे से वहाँ पहुँचना, यह सब पहले से ही तय किया कार्यक्रम ही होगा। हाँ, यदि नहीं तो फिर क्या····।"

"छी: ! यह गलत है अम्मा ! उसे गहरा दर्द है । गाड़ी में भी तनिक हिलडुल जाए तो चीख उठती थी ।"

"यह सारा नाटक न हो तो फिर लाज कैसे ढँके ? यह मैं भलीभाँति जानती हूँ । तुम चुप हो जाओ । अनीति की राह पर गुलछर्रे उड़ाने वाले इन गँवारों को मैं बचपन से ही देखती आई हूँ । उसका इस घर में पैर रखना बन्द हो जाना चाहिए''''तभी सब ठीक हो जाए ।" अम्मा आत्मज के संग अन्दर गई ।

नंजत्ते रसोई में गई, तो जयलक्ष्म्माजी आँच पर से दूध उतार रही थीं ।

"सुना जयलक्ष्मी ! अपने गंगाधर, पार्वती इन दोनों का पावन गुणगान ? लुके-छिपे कब से चला आया हो ?" नंजत्ते तेज़ आवाज़ से कहती गई ।

"यह क्या है, ननद ?" जयलक्ष्म्माजी को पहेली में बातचीत पसंद न रही ।

"राम कहो । राम कहो ! घोर अनर्थ ! यह सुनाया भी किस मुँह से जाए, इतनी भद'''।" इतना कह चुकने के बाद नंजत्ते ने बातें बनाकर खूब बढ़ा-चढ़ा वर्णन जारी किया, "बाप रे ! इतनी धूर्तता । कंठी अपनी आँखों से न देख लेता तो पता ही न चलता । अब तो कोई संदेह ही न रह गया ।"

"यह कैसी बात कर रही हो ननद ! कंठी ने देखा ही क्या ? सहज ही वैसा कोई व्यापार घटा होगा । यह संदेह उचित नहीं । उन दोनों को अपने भाग्य की भाँति पालने से ही पहचानती हूँ । ऐसे दूषित आचरण में उनकी प्रवृत्ति होगी ही नहीं । दूसरे से यह भूलकर भी मत कहना । कोई विश्वास न करेगा । केवल कटुता बढ़ेगी ।" जयलक्ष्म्माजी ने स्पष्ट रूप से कहा ।

"खूब सिखा रही भाभी ! अपने बेटे की बातें भी झूठ मानी जाएँ ?"

'झूठ न भी हों । पर उस आधार पर यह अनुमान लड़ाना अनर्गल मात्र होगा ।"

"वाह ! तुम लोगों की आँखें अंधी हो गई हैं । आज न सही, कभी और सही, भेद तो खुल ही जाएगा । उस समय भी तुम स्यात् ही मानने को तैयार होओगी । मैं तो उस गंगाधर की चाल से बिलकुल ऊब गई हूँ । भागू के साथ उसका मिलना-जुलना बड़ा भद्दा लगेगा !" नंजत्ते त्योरियाँ चढ़ा कर ही लौट गई । पहले सोचा था कि इसकी चर्चा अण्णाजी के सामने भी छेड़ दी जाए, पर पीछे से उन्होंने इरादा बदल दिया ।

गंगाधर घर पहुँचा, तो आनन्द की चिट्ठी देखने को मिली । दूसरे दिन

सुबह ही वह आने को लिख गया था ।

"शंकर ! कल निकासी पर बनने वाले पुल की सूराख के 'स्लैब' में छड़ें बाँधनी हैं, कांक्रीट भरने का प्रोग्राम बन गया है। आखिरी सूराख में सेंटरिंग-तख्ते—जोड़ना बाकी है। मेरा वहाँ रहना अनिवार्य है। तुम ही स्टेशन चले जाओ और उसे लिवा लाओ। मेरा सन्देसा कह देना। चेहरा दिलीपकुमार से मिलता-जुलता है, पहचानने में परेशानी नहीं होने की। जितने दिन वह यहाँ रहे, तुम उसके लिए कमरा खाली कर दो और अन्दर ही रह जाओ। मेरी अनुपस्थिति में उसकी व्यवस्था का ध्यान रहे, समझे।" गंगाधर ने छुट्टी के दिनों में आए अपने छोटे भाई से कहा।

"वही होगा, भैया।"

●●●

: ३३ :

सामने तेज़ी से हो रहे काँक्रीट के काम में गंगाधर तल्लीन हो उठा था। झौवे पर झौवा कांक्रीट गिराया जाता। छड़ों के बीच की खुली जगह भरती जाती। इधर-उधर दबा कर कोनों में, छेदों में कांक्रीट भरा जाता। सतह को सपाट करने वाली लकड़ी से पिटाई होती रहती। सिलमिट ठीक जमती जाती! काम होता जाता। फुट के हिसाब से कांक्रीट की पाटन बैठाई जा रही थी। ठीक पीछे निकासी के आखिरी सूराख पर बढ़ई तख्ते जोड़ रहे थे।

"प्यारे।" आनंद की आवाज़ काम से होते रहे शोर को भी चीर कर गंगाधर के कानों में पड़ी। उसने सिर ऊपर उठाया। सामने ही आनंद दौड़ता उसी ओर आता दिखाई दिया।

"आनंद !" गंगाधर छड़ों पर लगाए तख्तों पर डगमगाते तेज़ कदम बढ़ाने लगा।

दोनों साथी पुल के बीच मिले, एक दूसरे को कस लिया, गले मिले।

"यह स्नेहालिंगन कोई औपचारिक न मानो प्यारे! तुझसे मिलने पर बेहद खुशी हुई, सो तो है ही! अपने सीने में उमड़ती हुई तारीफ की उमंग तुम्हारे सीने में भी घर कर जाए, इसलिए भी···।" आनंद ने बाँहों में उसे कसकर ही कहा!

"धन्यवाद।"

"धत् तेरी की, यह क्या बके जा रहे हो! शनिश्चर का उपद्रव होगा,

वह दूर हो जाए तो सब दुरुस्त हो जाए, यही मैं सोच रहा हूँ। पर इधर तो तुमने यह शानदार बाँध उठा ही दिया! कितना रोबीला, कितना लुभावना दृश्य है यह! लबालब भरी यह झील, निकासी पर से मोटे काँच की तरह लुढ़क कर, फेनिल हो नीचे मिल कर गरजते आगे बढ़ता यह प्रवाह! भव्य है यह बाँध! कहो, प्यारे! लघु हीराकुड ही यहाँ खड़ा कर दिया है।" आनंद चारों ओर निगाहें फेरता हाथ हिलाने लगा। बोला, "यह उठा कैसे दिया भाई! मैं तो तुम्हें कोरा किताबी कीड़ा मान बैठा था। कितनी भारी भूल थी वह!"

"इसका हाल कई चिट्ठियों में लिखा तो था...।"

"वह चिट्ठी कहाँ, यह बाँध कहाँ!"

"धीरे-धीरे बाकी रही बातें भी सुना दूँगा!"

"भई वाह! तुम्हें देखते ही बरबस डाह पैदा होने लगी है।"

"कोई चिंता नहीं। तुम भी एक बाँध उठा दो। मना कौन कर रहा है। राष्ट्र में अवसर का अभाव कैसा?"

"बंदे से कोई काम न बनने का, प्यारे! तुमसे कुछ छिपा थोड़े ही है। खाली डाह कर पाता हूँ, बस!"

कह कर आनंद ज़ोरों से हँस पड़ा।

"वाहियात बात है! इसे रहने दो, यहाँ अभी आए किस लिए? गाँव पर जाते, थोड़ी देर आराम कर लेते, फिर यहाँ आ जाते।"

" 'आराम हराम है' नेहरूजी ने कहा नहीं?"

"वाह! खूब! तुम और सुभाषितों पर अमल करने वाले!'

"यह नहीं, प्रिय बंधु! मुझ-सरीखे दिली दोस्त से मिलने की फुरसत तुझे न मिले-तो मैं, जो रेल विभाग का इंजीनियर भी हूँ, और क्या कर पाता?"

"कहते विरहजन्य संताप असहनीय हो जाने पर मैं खुद आ पहुँचा हूँ।"

गंगाधर केवल हँस पड़ा।

"इसे रहने भी देते तुम तो वही सुदामा, तुझसे क्या मिलना-जुलना! पर तुम्हारा उठाया बाँध जब तक न देख लेता, तब तक अपने अंदर पड़े इंजीनियर की बेचैनी दूर क्योंकर हो पाती, सोचो तो सही?"

"अभी यह काम एक रूप धारण कर ले, तुम्हें चारों ओर एक बार घुमा लाऊँ।" गंगाधर सामने चलते काम की ओर देखने लगा।

"सब मेरा देखा हुआ है, प्यारे! तुम तो सिर झुकाए कांक्रीट ही देख रहे थे।"

"इतनी शीघ्रता से?"

"हाँ, कितनी देर लगेगी, कहो तो सही? उस भाखरा-नंगल योजना को ही दूर से पल भर ही में अपलक नयनों से देख लिया, आत्मसात् कर लिया-तुम लोग दिन भर परेशान होकर भी उसे समझने में विफल ही रह गए थे। दोनों की दी हुई रिपोर्ट में अंतर ही कितना रहा, बोलो तो! केवल दस ही नंबर तो?"

"यह संभव हुआ कैसे बताओगे भी"

"यह अपना गुर मंत्र है—स्पेशलिटी! मेरा मतलब इतना ही है कि मैं कोई अहमक नहीं। मैं चुटकी बजाते छप्पर तान दूँ। उँगली पकड़ाओ तो कलाई ही पा जाऊँ, पलक मारने भर में। भूल गए क्या? तुम पढ़ तो जाते, बंदा सिगरेट की कश खींचता, लेटे-लेटे सुनता जाता। अपना भी फर्स्ट क्लास आया। समझे! भूलना मत! चार साल के तुम्हारे नोटों को यों ही उलट-पुलट कर रेल विभाग की परीक्षा में रैंक......"

"बस करो! अपनी डफली, अपना राग! तुम तो अपने आगे किसी दूसरे को गिनते ही नहीं।"

"हट, तुम्हारे मुंह कौन लगे, असल में," आनंद ने गंभीर होकर कहा, "अव्वल दर्जे का गधा!" पद-समूह के साथ कथन पूरा किया।

"यह क्या? अभी-अभी डाह हो रही थी तुम्हें!" गंगाधर मुस्करा उठा। आनंद ने जवाब न दिया। अवाक् खड़ा रहा।

"हटाओ भी, गड़े-मुर्दे को उखाड़ने से फायदा—आँखों के सामने ही यह जो नया अध्याय शुरू हो चुका है। सुनो, लगता है कि सुख-दुःख, लाभ-हानि आदि का समान वितरण अपने जीवन में हुआ होगा। समय के साथ इनके अनुपात में थोड़ा हेरफेर होता होगा। बाहरी रंग-ढंग अलग रहते होंगे। संपत्ति न मिले तो आत्मतृप्ति ही सही, अधिकार न रहे तो प्रेम ही सही, भय न रहे तो परिश्रम ही सही। कुल जमा जोड़ तो एक-सा लगता है। हर एक को एक ही ढाँचे में रख कर नापना संभव न होगा। प्रत्येक को स्वानुभूति से इसका मर्म जानना होगा, इसका हिसाब......लगाना होगा।" गंगाधर ने निरूपण किया।

"भाई मेरे अपना यह तत्वदर्शन ताक पर रखो, आग में झोंक दो।...मैं भूल में हूँ, प्यारे! इसमें कोई सार अवश्य है, यही लगता है। इसी से तुम्हें बल मिला है, तुम्हारा निर्वाह सुगम हुआ है। अभी तक मैं एक ही ढाँचे में पड़ा, एक ही

नाप से नपा मानव ही बना हूँ, यह सही है !"

आनंद को इतनी गंभीरता से हामी भरते देख गंगाधर ठिठक गया। 'यह स्थान की महिमा तो नहीं ?' मन ही मन कहता गया।

भोजन का समय हो गया था। आनंद साथ ही भोजन करने की इच्छा प्रकट करने लगा।

"घर पर तेरी बाट जोहते होंगे। फिर स्नान·······।"

"स्नान तो फर्स्ट क्लास के शवर में ही हो चुका है। शंकर से घर संदेसा भेज दिया जाय।"

आनंद वहीं रह गया। भोजन के समय गंगाधर ने अपने समस्त साथियों का उससे परिचय कराया।

'मुफ़्त में यहाँ खाना न मिलने का ! उठो, सब दिखा आऊँ। तुमने अभी समझा ही क्या ?' गंगाधर खाना खा कर उठा।

"यह कहाँ का बलात् माघ नहाना ! देख लिया, कहने पर भी मानते ही नहीं। कालेज छूट जाने के बाद भी तुममें कोई प्रगति नहीं हुई। वही कच्चा नींबू। थोड़ा भी परिवर्तन नहीं। वही झोंटा-खसोटा, तोते की रट। दोपहर में लेटने की आदत डाल ली है, प्यारे !" आनन्द बोला।

"यह नखरा क्यों करता है रे ? होस्टल में भी तो मजे की नींद ही लेता रहा ! पहले पीरियड पर हमेशा गायब रहे।"

"और क्या, क्लास में सो जाने के बजाय, कमरे में ही सो लेना बेहतर मानता था। इसमें भूल कैसी ? वह 'मैथेमेटिक्स' पढ़ाने वाले महानुभाव कितना बोर कर देते थे भाई ! उन महानुभाव का घर आबाद रहे ! बैठ जाने पर आँख खोले नहीं रह पाता। तीन दिन लगातार यही रवैया रहता, तो उनके गणित-शास्त्र को दूर से ही नमस्कार करना पड़ गया।"

"नालायक कहीं के ! ठूँसकर खा लेते तो और होता क्या ? प्रोफेसर शरणजी कितने परिश्रम से पढ़ाते रहे बेचारे !"

"परिश्रम का नाम न लो, पसीना छूटने लग जाए ! उस मनहूस बनारस के जलवायु से ही तर-ब-तर हो जाते। तिस पर उन प्रोफेसरों की पीड़ा भी ! जेल से छुटकारा पाने की तसल्ली महसूस ही रहा था कि इस वक्त बाघ के कटघरे में पड़ गया हूँ। अपना अफसर हमेशा गुर्राता ही रहता है। वह और कुछ नहीं जानता। सर्विस में कोई चैन नहीं, प्यारे।"

"इतनी जल्दी अनुभव कर लिया ?"

"और क्या ? बाघ सब एक से ही तो होते हैं। दाँत पर हाथ रखकर परखने की जरूरत ? इसके लिए बंदे ने जो दवा निकाली हैं, यह भी वता दूँ ? जितना वन पड़े, उस गुर्राहट से घत्-हट मिला कर अपने अधीन काम करने वालों पर बिगड़ पड़ता हूँ। वे लोग उसमें नमक-मिर्च लगा कर और किसी पर—चाहे अपने बीवी-वालबच्चों पर ही, झल्ला उठें। मैं कोई मना करने का नहीं। यही अपनी नौकरी का नुस्खा समझ लो। इतना सीख लेना छोड़ इतने साल स्कूल, कालेज में क्या-क्या सीखना पड़ गया था, भाई ! वाप रे बाप ! वह पढ़ाई-लिखाई अभी पूरी भूली भी नहीं, तनिक रह-रह कर सताती जा रही है। और दो साल टल जाए, तो ठाट से रहा जाए। सर्विस में और कोई खास बात नहीं, प्यारे ! अफसर बन गया, तो बेड़ा पार। इसके वाद तो आराम से बैठे सिविल लिस्ट उलटते जाना ही एक मात्र काम रह जाए—ऊपर वाला कौन दम तोड़ गया, कौन धक्का खा गया, नसेनी के ऊपरी पायदान पर कब पैर धरना होगा, बस इतना ही। जीवित रहने का सौभाग्य रह जाए तो अनायास कोई दिन चीफ इंजीनियर, अथवा तकदीर ही लड़ गई और ऊपर वाले एक के बाद एक धरा-धाम से कूच कर गए, तो जनरल मैनेजर या रेलवे बोर्ड का मेंबर भी बन जाना कोई कठिन बात नहीं।"

"छीः ! तुम बड़े पापी हो ! तुम्हारी बातों में आ जाने वाला भोंदू मैं नहीं। सभी की यही दशा रहे, तो करोड़ों रुपयों का काम चल कैसे रहा है ? इन पाँच वर्षों में एक हज़ार एक सौ करोड़।"

"यही तो, कोई इसका मर्म नहीं जानता। समझे, यह अनबूझ पहेली है। पैसे का प्रभाव होगा। जितना भी बरबाद हो, थोड़ा-बहुत काम निकल ही आए, यही अंदाज लगाया होगा।"

"यह मैं कभी मानने को तैयार नहीं। पैसे के प्रभाव की अपेक्षा जनता की महिमा ही बलवती है। सभी प्रकार की सर्विसों में योग्य, समर्थ व्यक्ति होंगे ही।"

"हाँ, तुम्हारे सरीखे पोपटलाल जरूर हैं ! पर उनकी कोई उपयोगिता मेरे देखने में तो रही नहीं। उन सबके लिए, यह देखो, ऐसे कोल्हू ही ठीक पड़ेंगे। बनारस में हमने हर संभव तरीके से सिखाया था कि मित्रद्रोह अनुचित है। मैंने भी शुरू-शुरू में ईमानदारी से मिहनत करते कदम बढ़ाना शुरू किया—अपनी माँ की सौगंध, सच मानो ठेकेदारों को हड़पने का मौका ही न दिया। दस बोरी सिलमिट की माँग रही, तो केवल दस ही, पाँच भी नहीं, आठ भी नहीं। पाव इंची की छड़ दर्ज रही तो वही न कम, न बेशी। पर नतीजा ? किसी तजुर्बेकार

बुजुर्ग अधिकारी ने बुला भेजा और नसीहत दी—'अभी नए हो, यह उछलकूद न करो। अपने से ऊपर रहने वाली शीतलामाई की संतान की निगाहों का शिकार होना हितकर नहीं। और भी ज्यादा खेप लदवा देंगे या किसी कोने में धकिया देंगे।' अकेले का राग मानकर उसकी उपेक्षा की ओर अपना ताव दिखाता गया। बाकी दस आदमियों ने भी वही राग अलापा। तीन आदमियों के कहने पर ही ब्राह्मण का बकरा कूकर नहीं बन गया? आखिरकार एक ठेकेदार के सामने से हमला करने की हिम्मत न होने पर पीछे से धावा बोल दिया। अपने अफसर खुद बोले—'यह कैसी हरकत है, इतनी अड़चनें पैदा हों, तो काम कैसे चले?' इस पर कोई वार नहीं कर सका। दुम दबाये रह गया। इतना ही नहीं; और भी बहुत सी बातें हैं। धीरे-धीरे तुमसे कह दूँगा।"

"तुम पहले भी कहते रहे, मैं भी सुनता रहा। सहज ही किसी पर विश्वास नहीं हो पाता था। कितना विचित्र, विकृत, असंभव यही प्रतीत होता था। इस समय भी यह कोई विशिष्ट व्यक्तियों से संबद्ध ही मान कर तसल्ली पा लेता हूँ। ऐसी बातें सर्विस के सामान्य लक्षण हो जाएँ, तो देश की लुटिया ही डूब जाए। जितना भी बन जाय उतना कूड़े पर फेंका और बराबर हो जाए—कितनी बड़ी-बड़ी शाखा-प्रशाखाएँ, कैसी व्यवस्था, तैयारी, चुने गए अफसर, भरा-पूरा वेतन, बड़े पैमाने के कारीगर.......इन सबके अलावा भूल-सुधार का अधिकार......।"

"इतना सब कुछ है ही, प्यारे! इन्कार कौन कर रहा है। पर, बात यह है कि दिमाग तो है, दिलेरी नहीं—लड़की खूबसूरत तो है, पर आँखों से अन्धी है, का हाल है। कागज़ पर, जबानी, सब कुछ सुन्दर। काम की बात आने पर ही तो परेशानी मालूम हो जाय। अपनी शासन व्यवस्था भी ऊपर-ऊपर ही आदर्शपूर्ण है। अपना तत्व भी तो मुँह पर पुरस्कार, पीठ पीछे तिरस्कार का है। सामने दीनता की प्रतिमा, पीछे दानवता का साकार रूप! मातहतों का काम इसी प्रकार मानो""वही यहाँ देखता हूँ तो आश्चर्य हो जा रहा है। ये तुम्हें कितना प्यार करते हैं, प्यारे! आँखों से ही साफ है, आवाज़ से ही ज़ाहिर है।"

"इसका कारण जानते हो? यहाँ कोई किसी की मातहती में नहीं। 'काम हो गया पिण्ड छूटा' कहने वाले, मजूरी पगार दे दिया, कोई सरोकार नहीं मानने वाले, यहाँ कोई नहीं। जनता का अभिप्राय ही यहाँ मिला अधिकार है, उसकी प्रशंसा ही पुरस्कार है और प्रीति यहाँ लेन-देन की सामग्री है। मैं भी इन्हें उतना ही चाहता हूँ, उनके लिए जान भी देने को तैयार हूँ···।"

"ऊहुँ !···मैं भी विभाग के लिए अपना जीवनदान दे सकूँगा ? एं ?"

"देना होगा।"

"सच बात है। पर यह दिया क्यों कर जाए—हर कोई जो जहाँ पड़ा है, अपनी-अपनी जान बचाने के फेर में ही है, किसको गरज पड़ी है ?"

साथी यों ही बातें करते उठँगने पर चढ़े। कार्यक्षेत्र पूरा देख लिया गया। खाना लाई हुई सावित्री के साथ ही आनन्द भी गाड़ी पर चढ़ा।

"सावित्री से गाँव की ओर भी बातें भली-भाँति मालूम हो जाएँगी। घर पर जी भर सो लेना, कोई पाबन्दी नहीं। आज मेरे लौटने में शायद थोड़ी देर लग जाए। हिसाब-किताब कर लेना है। यहीं कैंप में रहनेवाले संगतराशों की मजूरी बाँटनी है।"

"आज भर के लिए अपने अनुशासन को ढील देकर जल्दी लौट आओ, भले आदमी, तुम तो अपने चीफ़ इंजीनियर बहादुर से भी दुर्लभ लग रहे हो। इतने दिनों बाद आया हूँ मैं, तुम्हारा परम प्रिय साथी !"

"वही होगा।"

गाड़ी निकल गई।

पंचमी का चन्द्रमा डूबने ही लगा था। इतनी देर तक मजूरी का बँटवारा जारी रहा।

"पेरुमाल !" गंगाधर ने लालटेन की रोशनी में बहीखाता देखकर आवाज़ दी।

"जी हुजूर !" छिटफुट सफेद केशों वाला घुटा हुआ सिर, झुर्रियों वाला सूखा चेहरा आदि से युक्त एक अधनंगा बूढ़ा आदमी आगे बढ़ा।

"तेईस रुपये बारह आने ठीक है ?"

"ठीक है, मालिक ! हिसाब आप लगा दें तो कोई गड़बड़ी थोड़े रहेगी ?" पेरुलाल ने खाते में टिकट पर अपने अँगूठे का निशान लगाया।

"शाबाश ! कारीगर के माने में तुम ही पक्के उतरते हो, पेरुमाल ! इस उम्र में भी कितना खटते हो, कितना पत्थर काट देते हो। तुम्हारे नाम एक पैसा भी पेशगी नहीं है। बड़े लायक आदमी हो। तबीयत खुश हो जाती है। तुम लंबे अरसे तक सुखी होकर जिओ।"

गंगाधर उसकी तारीफ में लगा रहा तो बगल में ही बैठा वीरप्प खुदरा नोट गिनकर पेरुमाल के हाथ पर रखता गया। पेरुमाल ने वह गिन लिया, अपने धोतीनुमा गमछे के छोर में लपेट कर गँठिया लिया और कमर में

खोंस लिया ।

"पोन्नासामी !"

"है नहीं, मालिक !" पेरुमाल इधर-उधर देखकर जवाब देने लगा ।

"सात रुपए चार आने । पेशगी तेईस रुपए आठ आने । उसके नाम इतना बाकी पड़ा है ''कहाँ है तुम्हारा लड़का ?"

"मैं क्या जानूँ, मालिक !"

"यह पोन्नासामी इतना पीछे क्यों पड़ा है ? काम ही करते नहीं दिखाता ? हमेशा कर्ज में डूबा रहता है ?"

"उससे न काम का नुकसान होने दिया जाएगा, न पैसे ही वसूले बिना रहेंगे । याद रहे ।" वीरप्प कहने लगा ।

"उसका बाप होकर भी तुम उसे समझाते क्यों नहीं ?" गंगाधर ने पूछा ।

"मेरे मालिक '' क्या बताऊँ ''।" बूढ़ा अपने को रोक कर आगे कहे बिना पीछे हट गया ।

कुराह पर चलने लगा होगा, यह सोचकर गंगाधर ने कोई दिलचस्पी न दिखाई, लेकिन इतना ज़रूर कहा—"उसे यहाँ भेज दो । हम लोग भी कुछ पता लगा लें और उसे राह पर ले आने की कोशिश करें ।" इतना कह, दूसरा नाम पुकारा, "वडवेलु ।"

और भी छह आदमी आए-गए । उस दिन का काम पूरा हुआ । गंगाधर ने बहीखाता बन्द किया । वीरप्प बाकी पैसे जेब में डालने लगा । पेरुमाल दरवाजे पर ही बैठा हुआ दिखाई दिया ।

पेरुमाल ! बैठे क्यों हो अभी तक ?" गंगाधर ने पूछा ।

"मालिक '' किस मुँह से कहूँ सरकार ''''।" पेरुमाल उद्विग्नता से कहने लगा । उसका सिर झुक गया था ।

"क्या हुआ पेरुमाल ? क्या बात है ?" गंगाधर ने व्याकुलता-सहानुभूति से पूछा । वीरप्प शंकित हो देखता रहा ।

"सच कहे देता हूँ, मालिक ! परमात्मा ही साक्षी है'''कोई कुकृत्य होना चाहता है, मालिक !''''पाँच रोज़ पहले, गाँव से बाहर, वह मरीगौड है तो, मुझे कहला भेजा था—मकान बनवाना है, पत्थर चाहिए, हाथ भर रकम दी जाएग , चले आना । यही संदेसा था ! शाम को वहाँ गया, तो गौडर क्या बोलने लगे ? कहे दे रहा हूँ । इधर उधर की बातें हो गईं । पीछे-पूछा—'तू पत्थर तोड़ने वाला है । अपना एक काम करेगा ? पेशगी सौ रुपए दे रहा हूँ,

काम पूरा हो जाए तो पाँच सौ और दे दूँगा, समझा !' मेरी भी आस जगेगी तो सरकार ? कौन जाने, क्या काम पड़े सोचकर 'हाँ' कह दिया । कसम खिलाने के बाद कहा—'उस करीगौड का बाँध बारूद से उड़ा देना···'।"

"क्या, बाँध बारूद से उड़ा दे ?" वीरप्प ने संदेह दूर कर लिया। साथियों ने एक दूसरे का चेहरा देखा।

"अच्छा, फिर ?" गंगाधर ने आतुरता से पूछा।

"गौडर बोले—'मकान बनवाना है, चट्टान उड़ानी होगी कहते बारूद, बत्ती सब मँगा दूँगा। मौका देख कर उड़ा देना, गाँव पर मुझसे मिल लेना, पैसे ले लेना, सीधे दस बजे वाली गाड़ी पकड़कर मद्रास भाग जाना।"

"खूब ! बड़ी तरकीब लड़ाई है। इधर बेचारे को कोई कामधाम नहीं। पार्टी वालों ने, करीब-करीब सबने, उन्हें दूर कर दिया है। इसलिए कोई दाल गलेगी नहीं, गाँव का भला हुआ, यही ख्याल था। पहले धमकाया था कि 'बाँध खुदवा दूँगा।' कोई किसान तैयार न हुआ, वह इरादा इरादा ही रह गया। अब इधर यह चाल चलने लगे हैं ?" वीरप्प ने विचार व्यक्त किया।

"पेरुमाल को पूरा कहने दो···अच्छा, कहते जाओ।" गंगाधर ने चेताया।

"मैं आशा में···छह सौ रुपए सरकार !—आशंका से पीड़ित हो उठा। आशा के फन्दे में पड़ कर यह काम पूरा कर देने को जी कड़ा कर लेता, तो इस कारीगर के दिल में रहने वाला परमात्मा मानता नहीं। 'मुझसे यह नहीं होगा, गौडर साब। जिस हाथ से उठाया है, उसी से उड़ा नहीं सकता।' यही कह दिया। गौडर तरह-तरह के ललचाने लगे—'बाँध उड़ गया, तो पैसे से यह बनेगा, वह बनेगा।' 'और भी ज्यादा दूँगा' का भरोसा दिया। मैंने साफ इन्कार कर दिया। आखिर में गौडर बोले,—'तब तो मुँह बन्द रखो, यह लो' कहते बीस रुपए दिए। 'मुँह खुला नहीं कि, जान की खैरियत नहीं' कहकर धमकाया। मैं पैसे ले आया···।" बूढ़ा थोड़ी देर रुका।

"अच्छा ! इतना ही तो ? ठीक ही किया।" गंगाधर आगे बढ़ा, बूढ़े की भुजाएँ ठोंकीं।

"यही नहीं, मालिक ! दूसरे दिन से ही यह अपना लड़का काम पर नहीं आ रहा है। उसके पास ढेर-ढेर पैसे हैं··।"

"क्या ? यह बात है ?' गंगाधर कह उठा।

"अरे, बदमाश !" वीरप्प कहता गया।

"अच्छी बात है ! आगे बताओ तो सही, क्या हुआ है ?"

"मैं पूछूँ तो डाँट देता है कि 'जबान बन्द कर ले। तेरा लड़का जेल की हवा खाएगा ? तेरे पोती-पोते दर-दर भीख माँगते फिरेंगे ?' मेरी अक्ल काम नहीं कर रही है। चुप लगाए हूँ।"

"यह मामला है !" गंगाधर की श्वास-क्रिया मन्द-सी पड़ गई।

"किस वक्त, क्या करने का इरादा है ?" वीरप्प ने पूछा।

"अपना लड़का रात पड़ने के बाद घर पर रहता ही नहीं। इसका इलाज क्या हो, इसी सोच में रात की नींद भी हराम हो गई है। यों ही करवटें बदलता रहता हूँ। कान लगाए रहता हूँ कि रात भर कट् कट् की हल्की आवाज़ सुनाई देती है। लगता है कि निकासी की दोनों जगहों पर मिट्टी हटाई गई और बन्द की गई होगी। बारूद, बत्ती, तार छिपाए रखता है। आज सुबह देखा; तो बारूद नदारद थी।"

"क्या ! क्या !!" दोनों युवक चौंके।

"इस वक्त तेरा लड़का होगा कहाँ ?" वीरप्प ने पूछा।

"शाम को तो घर पर ही रहा।"

"चलो, वहीं देख आएँ।" गंगाधर ने कदम बढ़ाए।

"पेट में बात हज्म न हो सकी। कह दी है सरकार ! अपने लड़के को जेल के हवाले न करें, मालिक ! पोती-पोते मर जाएँगे, हुजूर !" बूढ़ा धीरे-धीरे डग बढ़ाए गिड़गिड़ाता गया।

"वही होगा, घबराओ नहीं, कोई नुकसान नहीं होगा···जल्दी करो।" कहते गंगाधर और वीरप्प दोनों बूढ़े को तेज़ चलने को कहते तेजी से कदम बढ़ाते गए।

घर के अन्दर गया बूढ़ा तुरन्त दौड़ा बाहर आया।

"चलो सरकार ! चलो मालिक ! लड़का भी नहीं, बत्ती भी नहीं ! निकासी पर ! निकासी पर !"

"हाय रे !" गंगाधर भयभीत हुआ।

"दुर्घटना ! आज ही, अभी, उड़ाता होगा !" वीरप्प कह उठा।

तीनों सिर पर पाँव रखकर निकासी की ओर दौड़े। नवयुवक आगे बढ़ते जाते; बूढ़ा पीछे पड़ता जाता। चंद मिनटों में ही कैम्प में कोलाहल मच गया। 'क्या हुआ ?' 'क्या बात है,' 'क्या माज़रा है री' लोग तमिल में आपस में चिल्लाते पोन्नासामी के घर पर जमा हो गए। उसकी बीवी, चिन्नम्मा, दरवाजे पर खड़ी सबको जवाब दे रही थी—'कुछ नहीं तो···मैं क्या जानूँ···अपने

आदमी ने कोई उपद्रव नहीं किया""उनका बाप ही तो आंधी खड़ी कर रहा है।"

चन्द मर्द लोग बिना कुछ जाने-सुने बाँध की ओर दौड़े। चार-छह जनों के हाथ में लालटेनें थीं।

दोनों साथी निकासी से थोड़ी दूर पर ही होंगे कि इतने में उठँगने के पीछे की ढाल पर एक छोटी सी मशाल दिखाई दी। जिस आदमी के हाथ में मशाल थी, वह इधर-उधर भटकता सा लगा। युवकों ने चाल तेज़ की। मशालची ने पैरों की आहट पाते ही तुरन्त मशाल मिट्टी से छुवा दी। दो वत्तियाँ आतिशबाज़ी की तरह जल उठीं। मशालची दौड़ कर उठँगने पर आ गया।

"मालिक! नाश हो गया! बत्ती में आग धर दी! रुक जाइए! आगे न बढ़ें। खतरा!" पेरुमाल सहसा रुक गया, चिल्लाने लगा।

"रुक जाओ सरकार!' 'हट जाओ!' 'आगे मत बढ़ो!' दौड़कर आए कारीगर भी अपनी-अपनी जगह पर ही चिल्लाए। चट्टान उड़ाते समय बत्ती में आग दिखाने के बाद उससे दूर भाग जाना ही इनका अनुभव रहा, उसकी ओर लपकना ये नहीं जानते थे।

लेकिन गंगाधर और वीरप्प दोनों इनकी बातों पर कान दिए बिना ही बड़ी तेज़ी से दौड़े जा रहे थे। बत्ती की चिनगारियाँ प्रतिपल निकासी की जुड़ाई की ओर तेज़ी से बढ़ी जा रहीं थीं। इसे आँखों देखकर भी इनकी चाल नहीं रुकी। इसके विपरीत और तेज़ हो गई। वे खतरे से पूर्णतः निर्भय हो उठे थे। ये निकासी पर पहुँचे ही होंगे कि वह मशालची उठँगने पर चढ़ आया था और निकासी के पुल पर दौड़ने लगा।

"वीरप्प! उस तरफ! निकासी के उस बाजू! दौड़ो! उसे मौका न मिले""आग लगाने को!" हाथ दिखाते गंगाधर पुकार उठा और जलती वत्ती की ओर दौड़ पड़ा।

पानी में गिर पड़ने की परवाह किए बिना ही वीरप्प मशालची के पीछे दौड़ने लगा। बिलकुल अपने करीब और जुड़ाई से दो गज़ फासले पर रही जलती बत्ती की ओर गंगाधर कूद गया। दोनों जूतों से आग कुचल दी। जूते जल गए। पर, ज्वाला मंद पड़ गई। आग कम तो हो गई, पर सुलगती अवश्य रही। धीरे-धीरे बढ़ने के लक्षण दिखाई पड़े। पोन्नास्वामी की ढेर लगाई मिट्टी ही गंगाधर के लगभग बुझ गई बत्ती पर उठा कर गिराता गया और बार-बार पैरों से उसे दबाया। उसके बुझ जाने की सूचना से आश्वस्त हो वह

नीचे जलती हुई बत्ती की ओर लपका। पर इस बीच वह निकासी की बाजूवाली दीवार पर पहुँच चुकी थी। वीरप्प को पीछा करते देख पोन्नासामी ने मशाल झील में फेंक दी और चम्पत हो गया। उसी क्षण, कान के परदे फट जाएँ, ऐसा विस्फोट सुनाई दिया। वीरप्प रुक गया और तुरंत घूम कर निकास की ओर तेज़ी से बढ़ने लगा। डूबते हुए चंद्रमा की रोशनी में तभी की उड़ी मिट्टी बिखर कर बाँध के पीछे झील के पानी में गिर रही थी। बाजू वाली दीवार का एक हिस्सा भी पानी में धड़ाम से धँसता दिखाई दिया। धारा में गिरती मिट्टी के साथ ही एक नरदेह की धूमिल छाया भी भासित हुई। घप् की आवाज़ भी हुई, पानी में देह भी दिखाई पड़ी। वीरप्प उठँगने के पीछे छलाँग मारता उतरने गया। पर फिसलन के कारण लुढ़कता गया, धारा के फेंका गया। 'मालिक !' 'सरकार!' 'गंगाधरप्प !' 'धारा में !', उधर 'इस तरफ !', 'दौड़ो !' दौड़ो।' आए कारीगरों की ये आवाजें एक साथ सुनाई दीं। सब किनारे की ओर दौड़ आए। उस किनारे पर वीरप्प उठ खड़ा हुआ और धारा में कूद गया। यह देख कई कारीगर किनारे पर दौड़ते हुए 'उधर !' 'इस ओर !' की आवाज़ लगाते, हाथ से इशारा करते, अकेले या एक साथ सभी दिशाओं से धारा में कूद पड़े।

धारा की तीखी धार से देर तक जूझने के बाद वीरप्प गंगाधर की देह का पता लगा सका। पर पानी का खिचाव दोनों को बहा ले जाता था। वीरप्प पल-पल पस्त होने लगा था। डूबता-उतराता जा रहा था। लेकिन उसने अपने साथी का हाथ नहीं छोड़ा था। धार से होड़ लगाए रहा। इस समय तक मदद भी पहुँच गई। पानी में कूदे कारीगरों में से चंद लोग इन दोनों के पास तैरते आ गए थे। धारा के विरुद्ध हाथ मारते इन्हें बह जाने से रोक लिया। धीरे-धीरे सरकाते, खींचते दोनों को किनारे ले आए। किनारे पर पहुँचते ही तट पर जमा लोग एक साथ हर्षध्वनि करने लगे। सब इनकी तरफ दौड़ते आए। बाकी तैराक भी यहीं आ मिले। भारी भीड़ जमा हो गई।

"बदन गरम है, सरकार ! परमात्मा की कृपा" पेरुमाल गंगाधर की देह ऊपर-नीचे छू कर देखते हुए कहता गया।

"हाथ-पैर में चोट आई।" दूसरे ने कहा। इधर-उधर खुरचन से, धक्के से, चमड़ा उधड़ गया था।

"सिर पर भी खून, मालिक।" पेरुमाल चिंतित स्वर से बोला।

"नरगेरे दौड़ते जाइए, डाक्टर साहब"""लिंगेगौडर इन दोनों को इत्तला दीजिए""चंद लोग गाँव जाइए गाड़ी ले आइए"""जल्दी कीजिए ! जल्दी !"""कपड़ा

…'कंवल'…दवा…कैंप से…हवा लगने दीजिए। पीछे हट जाइए…हाँ दूर ही रहिए।"…लालटेन नज़दीक ले आइए…हाँ, निकासी की रखवाली पर कोई जाय!'…लालटेन नज़दीक ले आए तो…हाँ, निकासी की रखवाली पर कोई जाए!" खुद पस्त रह जाने पर भी, दो बार साँस ठीक करते वीरप्प जो सोचता जाता, कहता रहा। अपनी जानकारी भर प्राथमिक चिकित्सा पूरी की।

"इस मामले में कई कारीगर भी माहिर थे। आपस में ही सलाह-मशविरा करते हुए ये लोग वीरप्प को सुझाते गए 'नाक से, मुँह से, पानी निकाल दें मालिक!', 'जीभ खींची जाए, 'मुँह औंधा कर दिया जाय,' 'नीचे से ऊपर तक दबाया जाए, सरकार!' पानी निकल रहा है, पानी बाहर आने लगा है, 'कोई खतरा नहीं, मालिक! भला हुआ, भला, हुआ, 'अब मुँह ऊपर कर दिया जाए, 'सिरहाने खड़े हो जा, सरकार, 'दोनों हाथ इस तरह, हटो मालिक। मैं ही कर दूँ। ये मात्र सुझाव होते ही न थे, बल्कि स्वयं करते भी जाते। इस उधेड़बुन की हालत में वीरप्प से हो जा सकने वाली चूक, इनकी सामयिक चेतावनी से दूर हो जाती थी।

दो कारीगर निकासी की रखवाली में लग गए। निकासी की दूसरी ओर अधजली पड़ी दो बत्तियाँ ज़मीन से खींच लाए। चार-छह जने बेलगूर-प्रकाश-बाडी-रवाना हो गए। दो जने नरगेरे की ओर निकल पड़े। कैंप के कई घरों से कपड़े, कंबल आदि आ गए। दवा की पेटी ही उठा लाए। पानी भी गरम कर दिया। जो कोई कुछ कह देता, वह फ रन पूरा हो जाता। हर आवश्यकता अविलंब पूरी कर दी जाती।

● ● ●

:३४:

यह समाचार घर पहुँचने के समय दीक्षितजी आँगन में रसोई के फाटक के समीप दीवार के सहारे उकड़ूँ बैठे सुँघनी चढ़ा रहे थे। अचम्माजी देहली के पास बैठी सूजी छलनी में चला रही थीं। बच्चे किस्से-कहानियाँ सुन रहे थे। आनंद स्नानघर से बाहरी कमरे में जाते आँगन से गुज़रते हुए थोड़ी देर रुक गया।

"काफी देर हो गई श्रीमान्‌जी? गंगाधर अभी लौटा नहीं।"

"उसके बारे में कोई ठीक नहीं कहा जा सकता। उसकी चिंता न करना ही उचित प्रतीत होता है।"

"न जाने वहाँ क्या हुआ हो! काम ही तो ठहरा, कई चीजें उठ खड़ी होंगी।"

कहकर आनंद बाहर चला गया।

"हुँ......पुण्यात्मा का पुत्र है, यह।" दीक्षितजी ने लंबी साँस छोड़ी।

"हम भी तो पुण्यात्मा ही हैं। दोपहर को इसी लड़के के मुँह से सुना नहीं? कितनी प्रशंसा की—गंगाधर के इस बहुत बड़े कार्य की कितनी सराहना करता रहा!" अच्चम्माजी आश्वस्त हुईं।

"घर कौन बड़ी गठरी लाया है, बोलो तो। यह साढ़े तीन सौ महीना पाता है। दो तीन हजार तक की बढ़ती की संभावना है।"

"योग्यता की माप मोटी गठरी ही हो जाय अपने लिए भी? इस दृष्टि से देखने पर भी गाँव में यह घर उसी के कारण बसा हुआ मानिए।"

"पहले जैसे हम यहाँ रहे नहीं, जैसे हमें कोई जानता ही न रहा क्यों?"

"आज की भाँति इस ओर किसकी दृष्टि पड़ी रही? अब गाँव का गाँव ही प्रेम से यहाँ आ पहुँचता है।"

"यही तो। अपनों का गौरव भी बढ़ा ही है।" शंकर बीच में ही टपक पड़ा।

"इस रूखे-सूखे अभिमान से क्या मिल जाएगा? गौरव-प्रेम से पेट भी भर जाएगा?"

"वह भी हो ही रहा है।"

"भीख! राजा की भाँति शान से हुकूमत चलाए वेतन गिन लेना कहाँ, इस भीख से दिन काटते जाना कहाँ?"

यह भीख थोड़ी है; अप्पाजी! हमने किसी के सामने हाथ तो नहीं फैलाए। भैया ने अपने को ही गाँव के लिए उत्सर्ग कर रखा है। सो गाँव भी शक्ति भर दे रहा है।" सावित्री ने प्रतिवाद किया।

"इसमें कोई लज्जा नहीं दिखाई देती।" अम्मा ने गंभीर होकर कहा।

"आप सब एक तरफ। अकेला मैं दूसरी तरफ। लज्जित न होइए। सारी हेठी मेरी ही हो जाए!" दीक्षितजी नाक पोंछते ऊपर उठे।

"महाराज! महाराज!" बाहर से घबराहट की यह ध्वनि सुनाई दी।

"गंगाधरप्पा......पानी में......!" आगंतुक हाँफते हुए एक एक शब्द का ही तेज़ उच्चारण करता गया। आँगन ही उठकर फाटक पर आ गया। आनंद भी आया। पूछा-पाछा। कारीगर ने टूटे-फूटे शब्दों में ही किस्सा सुना दिया।

"हाय भगवान्! अब क्या होगा!" अम्मा छटपटा उठीं।

"यह भी अपनी आँखों से देखना बदा था!" दीक्षितजी चीखते सिर धुनने लगे, "हुँ, इसमें मत पड़ो, बेटा! मत जाओ। हाथ जोड़कर कितनी बार अनु-

नय विनय तक की !……कोई न कोई अविवेक इसी मेल का होगा, यह आशंका बनी रही……हाय ! राम, राम !"

"भैया !" पद्मा रो पड़ी।

"जिंदा है ?" शारदा ने सकपका कर पूछा।

"घबराइए नहीं। कह तो रहा है, बदन गरम था……सब ठीक हो जाएगा। फौरन चलना होगा। जो चलना चाहें, चलें। मैं आगे जा रहा हूँ।" आनंद स्वयं को सँभालते हुए कहने लगा और सीढ़ियों से उतरा। प्रतिमा की भांति खड़ा शंकर अंदर दौड़ता गया, लालटेन ले आया। सावित्री भी उसके साथ हो ली।

"घर की ओर निगोह रहे, तुरंत लौट आऊँगी।" अम्मा शारदा को सहेज कर चल पड़ी। अप्पाजी भी पीछे डग बढ़ाने लगे। इतनी देर में पास-पड़ोस के लोग जमा हो गए। कानों-कान खबर फैल गई। किसी ने आवाज दी, "रुकिए तो, गाड़ी आने वाली है।"

कोई गाड़ी के लिए दौड़कर गया। महादेवप्पा की गाड़ी आ ही गई। पाँचों उस पर चढ़े।

शानभोगजी के मकान पर, समाचार सुनते, सब पल भर के लिए सन्न रह गए। पैर के दर्द के मारे बिस्तर पर बैठी पार्वती ने अपना मुंह दीवार की ओर फेर लिया। उसके हृदय में झंझावात चल रहा था।

"कैसा होनहार लड़का ! हीरा था ! ईश्वर ही बचा ले !" वेंकम्माजी के उद्गार निकले।

शानभोगजी ने केवल अपनी नाक झाड़ दी। रंग अवाक् देखता ही रहा।

"मैं हो आऊंगा।" गुण्ड चल पड़ा।

"मैं भी चलूँगी भैया !… मुझे चलना ही होगा।" पार्वती मुँह फेरती कंपित स्वर से याचना करने लगी।

गुण्ड रुक गया।

"तुम वहाँ क्या कर पाओगी बिटिया ?" पिताजी ने पूछा।

"पैर इतना सूज गया है, दर्द से कराह रही हो बिट्टन !" अम्मा समवेदना प्रकट करने लगीं।

"गाड़ी में भी……।" गुण्ड आशंका सूचित करने लगा।

"कोई चिंता नहीं, भैया ! दर्द हो तो हो जाए, बला से……यहाँ न रह पाऊँगी, भैया !"

इस पर कोई बहस न हो सकी। 'गाड़ी ला रहा हूँ, कहते गुण्ड उठ कर चला।

हिरियण्णाजी घर पर सब चबूतरे पर आकर समाचार सुनने लगे। थोड़ी देर सन्नाटा छाया रहा। मौन भंग हुआ, तो पहले पहल भागीरथी बोल उठी—

"बच जाएगा तो, भाई।" कारीगर से आतंक-आशा से पूछा।

"हाँ, भैया! साँस चल रही होगी!"

"बड़ा अहित हुआ""जो भी हो, महान् साहसी है—जान पर भी खेल गया। मृत्यु के जबड़े में ही जलती बत्ती पर ही लपक गया!""बाँध पर तो सर्वस्व न्योछावर कर गया था""वह गंगाधरेश्वरजी ही पार लगाएँगे, हाथ नहीं खींच लेंगे।" जयलक्ष्म्माजी आह भरती कह गईं।

"बत्ती जला देने पर कम-से-कम छह सौ फुट की दूरी पर चले आना होगा, यही तो 'रूलस'-नियम है।" कैंट ने अपना अनुभव बताया।

"इस जानकारी के बिना ही—यही तो निरी मूर्खता है।"""अनुचित कदम उठाए तो अनहोनी होकर रहेगी, यह कभी मिथ्या न होगी। इनमें कोई आश्चर्य कैसा! मैं शुरू से ही अनुमान लगाती थी कि कोई-न-कोई उपद्रव मचेगा ही। इतनी देर तक टल गया, वही गनीमत समझो। और क्या!" नंजत्ते बोलीं। उनकी बातें उन्हीं को सोहती थीं।

"मादण्ण, गाड़ी तैयार करो। गद्दी वाला बिस्तर लपेट के रख लेना, कम्बल भी।" हिरियण्णाजी सोचते कहने लगे, "एक जोड़ी धोती, कमीज, तौलिया··· पीने के लिए पानी···"और भी याद करते जा रहे थे।

"ये सब मैं ला रही हूँ, अण्णाजी!" भागीरथी घर के अन्दर चली गई।

मादण्ण गोशाला में गया।

"आवश्यक होने पर नरगेरे अस्पताल भी हो आना होगा।" अण्णाजी जयलक्ष्म्माजी की ओर घूम कर कहते गए।

"ईश्वर की कृपा से उसकी नौबत न आवे, भगवान् करे, यहीं सब ठीक हो जाए।" भागीरथी के मुँह से निकल पड़ा।

"यही तो हम सबकी प्रार्थना है, बिटिया!" जयलक्ष्म्माजी ने भागरथी के स्वर से स्वर मिलाया।

गाड़ी की प्रतीक्षा में सब आँगन में पहुँचे।

तुरन्त भागीरथी एक मोटा बिस्तर कमरे से उठा लाई और बाहर फाटक

के पास ला रखा। रसोई से पानी भरा लोटा भी ले आई। दुबारा कमरे से हो आई, तो चप्पल पहने थी। हाथ पर दो दुशाले लटकाए रही। एक पिताजी को दिया।

वह बाहरी फाटक की देहली लाँघ रही थी तो नंजत्ते पूछती जा रही थीं, "क्यों भैया, तुम्हें वहाँ जाना ही होगा ?" अण्णाजी ने योंही सिर हिला दिया।

"पत्तल बिछ गई थी, परोस भी दिया है। यदि जाना ही है तो दो कौर खा लेना, फिर चल पड़ना।" नंजत्ते ने सुझाया।

"धत् ! खाना किसे रुचे, फूफी।" भागीरथी ने अवज्ञा व्यक्त की।

"तू भी जा रही भागू ?" नंजत्ते ने इस समय भागीरथी को देखा और साश्चर्य पूछा।

भागीरथी को उत्तर देने की कोई आवश्यकता प्रतीत न हुई।

"तू वहाँ क्यों जाएगी, कहो तो—किसी को कुछ हो गया तो क्या हुआ। तिस पर वह भी एक मर्द। नाता नहीं, रिश्ता नहीं। तू सयानी हो गई है, लड़की न रह गई। वहाँ उसके सामने जाओगी तो लोग क्या कहेंगे ? ठीक न रहेगा।" नंजत्ते ने आपत्ति उठाई।

"यह कैसी बात कह रही हो फूफी ? जन्म से हम दोनों साथी रहे !"

"बड़ा लायक साथी ! योग्य साथी ! जो भी हो। कंठी को यह कत्तई पसन्द नहीं। कहो तो लल्ला ? मुझे भी···।"

"पसंदगी-नापसन्दगी के लिए आप कौन होती हैं, आपका लल्ला कौन ?" भागीरथी बोली। उसे यह सब बर्दाश्त से बाहर हो गया था।

"यह क्या पूछ रही री ? जानती नहीं ? अपना कोई अधिकार नहीं ?"

"कदापि नहीं।" कड़ाई से जवाब मिला।

"खूब रही ! उस गंगाधर की चाल जानती हुई भी····।"

"वह चाल कहाँ ढील पड़ी है ?"

"कहाँ ढील पड़ी है ? तब सुन ले। रंच मात्र भी भली नहीं। समझी ? वह और वह पार्वती···हाय राम ! हाय राम ! किस मुँह से कहूँ। कहते मितली आ जाए। कंठी ने अपनी आँखों····।"

"चुप रहिए, फूफी ! आप शायद जानती ही न हों कि आप क्या बके जा रही हैं।" भागीरथी का संचित रोष एक झटके से फट पड़ा। उसके पैर हिल उठे। अंग-प्रत्यंग जैसे उष्ण हो उठा। पसीना छूटने लगा। माथे पर पसीने की बूदें झलक उठीं। आँखों से चिनगारी छूट रही थी। साँस धौंकनी की चाल चल

रही थी। बोली, "अपने साथियों का जो रिश्ता है, वही पार्वती और उसके बीच भी है। दोनों निर्दोष हैं। आपकी गन्दी बातें तक उनके दिमाग में जगह नहीं पाएँगी। चुगली खाना, बोली बोलना बन्द कीजिए। मैं पहले ही सब कुछ जान गई हूँ।" इन शब्दों में उसने नंजत्ते को खूब लथेड़ा। इस अवसर पर उसे रोक पाना वहाँ किसी के लिए संभव न रहा। इसीलिए माता-पिता चुप लगा गए। सच तो यह है कि नंजत्ते की बातों से वे भी ऊब गए थे।

"क्या कहा ! चुगली, बोली--मैं, तेरी फूफी खाए--बोले !"

"अवश्य। इतना ही आप से बने भी ! और क्या ? इससे कोई मतलब नहीं निकलने का। गाँव भर में कोई विश्वास न करेगा। देवोपम मानवों के बारे में इतनी कुत्सित धारणा जगाने में आपको शर्म नहीं आती ?" भागीरथी इस वक्त नंजत्ते के अनुरूप प्रतियोगी हो गई थी।

"क्या ! मुझी को धमका रही हो ? गाली दे रही हो ? बित्ता भर की बित्तन, सवा हाथ की डाढ़ी ! उम्र का, रिश्ते का लिहाज़ भी नहीं ?" नंजत्ते फुत्कारने लगी।

"उम्र का खयाल है, तो उम्र के हिसाब से बरताव करना सीखिए।"

"ओफ हो ! मेरा कहा न्यायोचित नहीं ? वे दोनों देवोपम ? अच्छी बात है, खैर····उस नीच गंगाधर को ही····।"

"छीः ! यह कैसी बात ननद !" ज़यलक्ष्म्माजी ने टोका।

"तू भी तरफदारी करती है, उसी की ? सामने ही लड़की से डाँट खिलाई, इससे जी न भरा ? खूब पाला-पोसा है ! लाख बुराई हो जाए····सही बात है। मैं सत्य का पल्ला नहीं छोड़ने वाली ! वह नीच है ही ! यह उसी से शादी कर लेगी। कंठी जैसा···।"

"फूफी ! इतनी क्षुद्रता····।"

"बिटिया ! भागू !" अण्णाजी बीच में बोले।

"बीच में न पड़िए, अण्णाजी ! उन दोनों के बारे में ये जो कुछ जलीकटी सुनाती गई, सब कुछ सहती गई···आज इनसे अपने मन की बात साफ कह ही दूँ। गंगाधर का हाथ थामने वाली बड़ी भाग्यशालिनी होगी ही। समझ गई ? मैं उससे शादी करूँ या नहीं, इससे आपका क्या सरोकार ? आपके लल्ला-सरीखे रीढ़-टूटे से तो कभी शादी न करने की। बात खोपड़ी में बैठी या नहीं ?"

"क्या ! मेरा लाड़ला--रीढ़-टूटा ?"

"हाँ, रीढ़···टूटा····आदमी···अपने से न सधे तो हर वक्त स्टेट्स वहाँ

इस तरह, यहाँ इस तरह ! यह ऐसों का काम, धूप, पानी, गरमी ! ऊपर वाले ऐसे, मातहती वैसे, पास-पड़ोस वाले बेबस ! आरामकुर्सी पर बैठे व्यर्थ की, सबकी, हर तरह की टीका-टिप्पणी ! सुनते-सुनते मेरी नाक में दम आ गया। उस स्टेट्स में ही जाकर क्यों नहीं बसते···।"

"री ! री !····"

"और क्या ? वहाँ जाने से कोई बैठे-बिठाए खिला देगा ? स्टेट्स कहीं कामचोरों, आलसियों को स्वर्ग नहीं। वे भी तो पुरुषार्थी हैं। उसी ढंग से प्रगति भी करते आए हैं। मैंने भी पढ़ा है, सुना है। मन्त्री बसप्पाजी ने भी यही कहा। कुछ अपवाद रहने भी दें, तो वहाँ से हो आए, सबका यही मत है। वहाँ भी खटे, तभी खाना मिले। भला ऐसा कोई देश है, जो मुफ्तखोरों को पाल कर प्रगति कर सका हो ?"

"तू बड़ी काम करने वाली बनी है ? तीनों पहर तान के सोना, साज-सजावट, हाव-भाव, तड़क-भड़क में पड़ी रहने वाली····।"

"ठीक है। मिहनत से जी चुरा रही थी। इसीलिये तो लज्जित हो उठी हूँ। सदा से अंदर यह रस्सा-कशी जारी है। अपने लाड़ले की शेखी ही मुझे इस हालत में रखने वाली सिद्ध हुई है। इसके लिए आप और आपके मुन्ना राजा दोनों कुछ हद तक जिम्मेदार हैं—असल में बुद्धू बनी मैं, गच्चा खा गई मैं। अपने को बदलने के लिए तैयार हूँ। इसमें आपकी हिदायत, शिकायत, सलाह, राय यह कुछ भी जरूरी न पड़ेगी। कृपा कीजिए, दूसरों की शिकायत, दूसरों को नसीहत इनसे हाथ समेट लीजिए और अपनी गंदगी पहले साफ कर लीजिए।"

"वाह री तुम्हारी हिमाकत ! मेरा ही अपमान, तिरस्कार ? भैया, यह तुम्हें उचित लग रहा है ?"

"नंजू ! इतनी दूर तक बात बढ़ने न देनी थी।"

"क्या ? मेरा कहा ही गलत था ? सच बोलना भी ? तू भी लड़की का पक्ष ही ग्रहण करने लगा ? तुम सब लोग मिल कर अपने लल्ला के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे हो ?"

"उसकी आवश्यकता ही कहाँ ?" भागीरथी ने पूछा।

"तुझसे कौन पूछ रही है, री ! आवश्यकता है या नहीं, तुम लोग जानो ! मैं तो पल भर के लिए भी यहाँ न रहने की।"

"दोनों का भला होगा।"

"बोलो, भैया ?"

"तुम्हारी मर्ज़ी, बहन !"

"यहाँ सुनो....।" नंजत्तो अपना कथन पूरा करना ही चाहती थी कि गाड़ी की आवाज़ सुनाई दी। माता-पिता, कन्या ये तीनों बाहर निकले।

"अम्मा !" कैंट साहब धीमी आवाज़ से कहने लगे।

"कहो, लल्ला ?"

"उसका कहा सही है, अम्मा ! यहाँ रहने का कोई अधिकार अपना नहीं है।"

"अपने भैया के यहाँ रहने का भी अधिकार नहीं ?"

"ऊ हुँ ! कितने दिन बैठा रहा जाए ? मैं कोई नौकरी कर लूँगा। कल यहाँ से निकल जाएँ।"

"वही सही। मैं भी तो वही कह चुकी हूँ। पल भर के लिए यहाँ न रहने वाली, यह धमकी भी तो दी है। लेकिन इस प्रकार की कहासुनी से रिश्ता छूट न जाय, इसका ख्याल रखना होगा। वह तो छोकरी ठहरी, उस तरह बक दे तो....।"

"यह नहीं हो सकता, अम्मा ! मैं नहीं रहने का ! सामान ठीक कर लो।"

"तू चुप रह। मेरा कहा मान कर चल।"

"यह नहीं होने का, अम्मा ! इतने दिनों तक मान लिया, बस।"

"यह क्या कहने लगा रे ! मेरी बातें मानने से तेरा कोई नुकसान भी है ?"

"अवश्य अम्मा ! मेरी इज्ज़त धूल में मिल गई।" उपेक्षा से कैंट साहब ने उत्तर दिया।

"तू भी यही कहने लगा ! तू भी मुझे और जलाने लगा ? क्या उसका कहना मेरे लिए काफी नहीं था ?"

इस पर कैंट साहब मौन रहे।

"वह मनचली धारा भी तो आड़े आई है। कैसे जाया जाए ?"

"घूम के जाएँगे—वंडीकोप्प के पुल पर से। किसी भी सूरत से कल निकल पड़ना तो तय है। यही निष्कर्ष है।" कैंट साहब स्पष्ट ही कहते हुए कमरे की ओर बढ़े।

अम्मा के सिर का यह प्रतिवाद नया अनुभव था। वह आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगीं। संसार ही उनके लिए शून्य-सा प्रतीत हो उठा।

बाहर गाड़ी आगे बढ़ी। थोड़ी ही दूर गई होगी कि भागीरथी का हाथ दाएँ कान पर लगा तो उस पर रहे लोलक के कहीं गिर पड़ने का भान हुआ। क्षण भर के लिए हाथ गाड़ी में ही उसे ढूँढता-सा दिखाई पड़ा। दूसरे ही क्षण वह जागरूक हो उठी, बाएँ कान का लोलक भी उतार दिया और गाड़ी से बाहर अँधेरे में फेंक दिया।

बाँध पर तो उस दिन रात में आधा गाँव ही आ जुटा था। गौरी मन्दिर से चारों ओर खड़ी गाड़ियों के समूह में और भी गाड़ियाँ आ कर मिल जाने लगी थीं। लोग अकेले, झुण्ड बाँध कर, पैदल ही, साइकिलों पर आते ही रहे। सैकड़ों लालटेनें टिपटिमा उठी थीं। उनकी रोशनी झील के पानी में झिलमलाती रही। लंबी कालीं छायाएँ चारों ओर चलायमान थीं। लोगों की धीमी आवाज़ मंथर गति से बहते समीर की सायँ-सायँ से मिल गई थी। इससे ऐसा भासित होता, मानो समूचा बाँध ही वेदना से कराहते करवटें बदल रहा हो।

चिकित्सा के फलस्वरूप गंगाधर धीरे-धीरे साँस लेने लगा था। शरीर का ताप बढ़ गया था। दो-एक चम्मच गरम पानी गले के नीचे उतार सका था। सिर पर खून के धब्बे थे, उस पर सफेद पट्टियाँ बाँध दी गई थीं। कारीगरों के कंबल से तन ढक गया था। उसे तख्ते पर लिटाया गया। नीचे से सहारा दिए लोग उसे निकासी के पास उठा लाए और उठँगने पर रुके। इस वक्त उसकी आँखें आधी ही खुलीं, फिर बंद हो गईं। ओठ दो-एक बार हिले।

"बेटा! बेटा!" पास ही रहीं अम्मा ने कंपित स्वर से उसके कान के समीप धीमे से पुकारा।

मानो लंबी अवधि बीत चुकी हो, ऐसा भासित होने लगा। थोड़ी ही देर में गंगाधर के ओठ दुबारा हिल उठे।

"प्रज्ञा होगी तो अण्णाजी?" भागीरथी ने पिताजी से धीमी आवाज से पूछा।

"कोई निश्चय नहीं बेटी!"

"कितनी चोट आई है, भैया!" गुण्ड के सहारे खड़ी पार्वती ने व्यथित स्वर से उसके कान में कहा, "न जाने ठीक होने में कितने दिन लगें?"

गुण्ड ने यों ही इधर-उधर सिर हिलाया। दीक्षितजी का नाक झाड़ना सुनाई दिया। शिवप्पाजी ने खखारना शुरू किया। भीमण्ण ने लंबी आह भरी। रेवती, चन्नेगौड और बाकी साथी सिर झुकाए देखते ही रह गए। करीगौडर लोगों से रास्ता छोड़ने को कह रहे थे। आनंद इस दृश्य में मूक रह गया था।

वीरप्पा पूरा हार गया था, बैठ गया था। रेवती और भागीरथी दोनों ने

उसके घाव धोये थे, दवा लगाई थी, पट्टियाँ बाँध चुकी थीं। कपड़े बदलने में शिवप्पाजी और भीमण्ण दोनों मदद पहुँचा रहे थे। न जाने कितनों ने अब तक उसकी पीठ ठोंकी होगी। अच्चम्माजी ने भी प्रशंसा-कृतज्ञता व्यक्त की।

उपस्थित प्रोढ़ों और साथियों ने भावी कार्यक्रम पर विचार किया। गंगाधर को इस स्थिति में दूर नरगेरे अस्पताल गाड़ी पर ले जाना उचित न लगा। वहाँ पहुँचने पर भी डाक्टरी चिकित्सा के लिए भोर तक प्रतीक्षा करनी पड़ती। इसके बजाय यही सही लगा कि कोई साईकिल पर नरगेरे जाए, कार से डाक्टर साहब को निकासी के उस किनारे पर ले आए तो जाँच, इलाज और जल्द हो सकने की संभावना है।

"उनके आने के बाद उनकी राय के अनुसार किया जाय।" हिरियण्णाजी ने चर्चा पूरी की।

भीमण्ण और गुण्ड दोनों साइकिल ले आए। लेकिन, चन्नेगौड ने गुण्ड से साइकिल छीन ली और कहा,—"पार्वती को सँभाल लो।"

इतना कह वह भीमण्ण के पीछे चल पड़ा।

"फिलहाल गौरी मंदिर में जाया जाए।" शिवप्पाजी बोले।

"मैं वहाँ जाकर बिस्तर ठीक कर दूं।" भागीरथी तेज कदम बढ़ाती गई।

दोनों ओर जमा लोगों की गहरी भीड़ के बीच से गंगाधर को गौरी मंदिर ले जाया गया।

अब लोगों का ध्यान निकासी की ओर जा लगा। बारूद के फटने का परिणाम कहिए, ज्वालामुखी के घेरे की भाँति रहे गड्ढे के किनारे खड़े लोग निरीक्षण करने लगे थे। धारा में गिरे बाजू की दीवार का हिस्सा भी देखने लगे थे।

"बाप रे! इतना बड़ा नुकसान!"

"और भी तेज धक्का पहुँचता, तो चिकनी मिट्टी की दीवार में भी छेद हो जाता।"

"उस दशा में क्या होता, शिवजी ही जानें।"

"यहाँ आकर देख लेना!" रखवाली करते रहे संगतराश ने लोगों को उठँगने के ऊपर चढ़ने को कहा। हाथ में अधजली बत्ती लिये, उसने वह जगह भी दिखाई, जहाँ वह मिली थी।

"गंगाधरप्पा जान पर खेल कर बत्ती न बुझा देता तो……" कारीगर ने छलांग मार कर वह दृश्य दिखाया और अभिनय द्वारा उसका वर्णन किया—वीरप्प दौड़ लगाए पोन्नासामी को यों न पकड़ लेता तो निकासी और जुड़ाई

दोनों ही उड़ जातीं। उठँगना धँस पड़ता, पानी घुस जाता, सब कुछ बरबाद हो जाता।"

परमात्मा ने उन्हें सुबुद्धि दी, धीरज दिया, बचा लिया।" उसने बात पूरी कर दी और आकाश की ओर देखते आखें बंद कर हाथ जोड़े।

"ठीक कहता है भाई! ऐसा न हुआ होता तो इतने दिनों के सारे किए-कराए पर पानी फिर जाता।"

"झील में बूँद भर पानी रहता?"

"फिर वही पुरानी धारा! हम वे ही पुराने आदमी।"

"अपने सारे मनसूबे सपने ही रह जाते।"

"वह पोन्नासामी पकड़ा जाए···हाँ, चीर देना चाहिए।"

"वह तो पैसे के लिए गंदगी चाटने वाला! मूल प्रेरक कौन रहा, वही मरीगौड तो।"

"हाँ, वही तो! उसकी मरम्मत करनी होगी!"

"धज्जियाँ उड़ा देनी चाहिए!"

"दम टूट जाए, बला से!"

"आग लगा देनी होगी, उसके घर में!"

"हाँ! नामोनिशान मिटा देना चाहिए!"

"गाँव से उसकी हस्ती ही मिटा देनी चाहिए!"

गाँव का शत्रु!"

"शुरू से ही गाँव उजाड़ दिया, दो हिस्सों में बाँट कर!"

दूसरा दल आ पहुँचा। तीसरा, चौथा, इन सबको विषय की भड़कीली जानकारी कराने वाले भी नए सिरे से तैयार होते गए। इस प्रकार एक दल की प्रतिक्रिया ही करीब-करीब दूसरे की भी होती गई। थोड़ी देर में ही सब पर भेद खुल गया। सभी मरीगौड से जले-भुने रह गए। चारों ओर का वातावरण उत्तेजित हो उठा, जोरदार बहसें जारी हो गईं।

लगभग सवा बारह बजे निकासी के उस पार दो कारों की बत्तियाँ दिखाई दीं, तो सब आश्चर्य में पड़े गए, आनंदित भी हुए। पहले ही दौड़े गए संगतराश नरगेरे पहुँचे थे। लिंगेगौडर तथा डाक्टर दोनों को समाचार मिलते ही वे आपस में सोच-विचार कर एक बड़ी कार में स्ट्रेचर, दवा और बाकी सामान रख चुके। संगतराशों को उस पर बैठने को कह दिया। स्वयं गौडर की जीप से रवाना हो गए। भीमण्णा और चन्नेगौड से रास्ते में ही भेंट हो गई। उन दोनों को साथ

ही लिवा लाए।

डाक्टर साहब ने गंगाधर की जाँच की। सुइयाँ दीं। चिकित्सा के पौन घंटे के बाद गंगाधर ने चार-छह बार आँखें खोलीं और बंद कीं। वातावरण को पहचान लेने के आसार दिखाई देने लगे। डाक्टर ने निर्णय दिया कि अब नरगेरे ले जाने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई। गंगाधर के होश में आ जाने और क्रम से सँभल जाने का आश्वासन भी दिया। मलिन पड़े रहे चेहरे, भले ही चमक न उठे, पर इस समय तसल्ली से वह मलिनता धुल जरूर गई थी। कितने ही हाथ गौरी माई को लक्ष्य कर जोड़े हुए दिखे। कितने ही कंठों से प्रार्थना, मनौती की गई।

"भगवती मैया, तू नें बचा लिया माई !" अच्चम्पाजी की आँखें छलछला गई।

"लगता है, एक अनहोनी टल जरूर गई।" भागीरथी प्रसन्न हो अपने से कह गई।

"अपनी जान फिर से लौट आई, है न भैया ?" पार्वती ने फुसफुसाया।

दीक्षितजी इतनी देर में, इसी वक्त सुँघनी की डिबिया निकालने लगे। वीरप्प ने अपने लिए थर्मस में आया दूध पी लिया। भीभण्ण, चन्नेगौड आदि साथी एक दूसरे की भुजाएँ ठोंकने लगे। करीगौडर आगे के कार्यक्रम की प्रतीक्षा करने लगे थे।

"अण्णाजी ! अपने ही यहाँ आ जाए।"भागीरथी बोली।

"दीक्षितजी, आपकी राय क्या है ? आप लोग भी अपने यहाँ रह जाइए।" हिरियण्णाजी ने पूछा। गंगाधर के यहाँ जगह की कमी का भी उन्हें ख्याल था।

"इसमें बाधा कैसी, आपकी जैसी इच्छा। वहाँ से दूसरा योग्य स्थान ही कहाँ होगा ? दीक्षितजी ने नाक रगड़ते हुए कहा।"

"हम पहले ही पहुँच कर व्यवस्था कर देंगी !" कहती भागीरथी उसी गाड़ी पर चढ़ी, जिसमें पार्वती बैठी थी। रेवती, नागव्वा आदि सहेलियाँ भी इसी में चढ़ गई। गाड़ी तेज़ चल पड़ी।

वीरप्प शिवप्पाजी की गाड़ी में लेटा।

साथी और बाकी लोगों में से कइयों ने गंगाधर की गाड़ी के आगे-पीछे चलते बारी-बारी से गाड़ी खींचना शुरू किया। लिगेगौडर, डाक्टर अन्य लोगों के साथ बातें करते गाड़ी के पीछे चले आए।

जयलक्ष्म्मा जी मकान के चबूतरे पर ही लालटेन लिए बाट जोह रही थीं।

भागीरथी से समाचार सुनते ही हर्षित हो उठीं। मन ही मन कहा--'सब उस गंगाधरेश्वरजी की कृपा है।''

गंगाधर को भली-भाँति होश आ गया और वह सो गया। बाद को डाक्टर भी हिरियण्णाजी के यहाँ सोए। लिंगेगौडर को दूसरे दिन सबेरे ही जरूरी काम था। दुबारा दूसरे दिन की साँझ में आने की बात कहते वे लौट गए। यहीं देर तक रुके, बाकी लोग भी अपने-अपने घर लौटे। जयलक्ष्माजी के अनुरोध पर भागीरथी, पार्वती, गुण्ड और आनंद, ये लोग भी सोने चले गए।

गाँव लौटे एक दल के लोगों में ही बाजार में बातें हो रही थीं। किसी ने बड़े उद्रेक से कह दिया, "उस मरीगौड का मकान ढहा दिया जाय।"

दूसरा तेज आवाज में चिल्लाया, "मरीगौड का सत्यानाश हो!"

तीसरे ने ऊँचे स्वर से कहा, "मरीगौड के मकान में आग लग जाय!"

ये लोग भी भड़क गए, बौखला गए। यही आवाज कई बार सुनाई दी। और भी लोग जमा हो गए।

"गाँव का द्रोही।"

"उसकी बोटी-बोटी काट दी जाए।"

फिर क्या था। जुलूस चल पड़ा। लोग गलियों से, मकानों से जत्थे बाँधकर बाहर आने लगे। जन के पीछे जन, पुकार-पर-पुकार, अविवेक पर अतिरेक, थोड़ी देर में ही एक विशाल जन-समूह ने मरीगौड का मकान घेर लिया।

"मरीगौड!'--बाहर निकलो।"

"घर में आग!'.....'गले में फाँसी!"

'गाँव का द्रोही!'...'बलि दी जाए!'

'बाँध का बैरी!'--'झील में गिराओ!'

कई प्रकार के नारे गाँव भर में गूँजने लगे। घर में आग लगाने की तैयारी में कोई मशाल ठीक कर रहा था। किन्तु, जनसमूह निर्णय न कर पाया था कि कौन सी सजा दी जाए। मरीगौड किवाड़ लगाये अंदर ही छिपे हुए थे। उनका साला पिछवाड़े से बाहर आकर भीड़ को संबोधित कर कहने लगा, "यहाँ जमा होकर क्यों यह शोर मचा रहे हैं आप लोग? अपने बहनोई का कहना है कि जो भी हो गया, उनका कोई सरोकार नहीं।"

'झूठ!' 'चोर है!' 'वही बाहर आकर कहे!' 'उसी को आना होगा!' 'किवाड़ तोड़ा जाय!' 'बाहर खींचा जाय उसे!' 'रौंद दे!'

'साला यों ही धीरे से खिसक गया।'

इतने जोर का हल्ला मचा कि सभी सोए लोग भी जग पड़े। भयंकर उत्पात की आशंका से गाँव के मुखिया लोग, गंगाधर के साथी सब दौड़े आए और भीड़ को शांत करने के प्रयत्न में लग गए। हिरियण्णाजी, शिवप्पाजी, करीगौडर तीनों मरीगौडर के चबूतरे पर खड़े हो गए। कोई खुराफात न हो जाए, इस आशय से सभी साथी मकान के चारों ओर फैल गए।

"सुनिए, भाइयो ! आप लोग शांतिपूर्वक अपने-अपने घर लौटिए !' करीगौंडर कहने लगे।

"नहीं लौटेंगे। हम मरीगौड का सिर उछालेंगे !" 'और क्या !' 'जरूर !'

"वह कौन कह रहा, भाई ! तुम जानते हो तुम क्या माँग रहे हो ? गाँव का सर्वनाश !...."

'क्या ?' 'यह कैसा !'

"हाँ ! आवेश से अनाचार के सिवा और कुछ न हाथ लगने का...यह सही है, मरीगौड से भूल हुई...।"

"भूल ! घोर पाप है !" 'पाप ही तो !' 'हाँ।'

"यही सही। लेकिन एक पाप से दूसरा पाप नहीं मिटने का।"

"यहाँ सही-गलत का सवाल ही नहीं !"

"हाँ !"

"ठीक ही तो !"

"इस हालत में परिणाम जो होगा, वह भी मालूम है ?..."

"होगा क्या ? मरीगौड मरेगा ! मरने दो ! मिट जाने दो !"

इतना ही नहीं ! वह इतने दिनों तक जिस दिशा में यत्नशील है, वह सारा नुक़सान होके रहेगा...।"

"क्या ? यह बात ?"

"हाँ ! पहली बात यह कि सरकार फैसला दे सकती है कि यह कुकर्म ही इन सबकी जड़ है और आगे का काम रोक दे सकेगी......।"

"कदापि नहीं ! यह न होने देंगे !' 'ना-ना,' 'नहीं-नहीं,' 'ऊहुँ,' 'हम न मानेंगे,' 'हाँ' 'इतना तो तय है।"

"सरकार हमसे ताकतवर है। यह तो मानेंगे। यह भी जाने दीजिए। माना कि इसे उठाने में वह मदद पहुँचा रही है, पर इस घटना से अपना बाँध सरकार के हवाले हो जाएगा। आज तक यह बाँध अपना ही रहा, भविष्य में अपना नहीं रह जाएगा। उस गर्व से भी हमें हाथ धोना पड़ेगा। इसके लिए

इतनी मिहनत करने वाले आप-हम राजी हैं ?'

"नहीं ! नहीं !"

"और भी सुनिए । मरीगौड का कोई नुकसान हो जाए तो मुखिया बने हम, गंगाधरप्प और उसके साथी, आप में से भी कई—हम सब इस धाँधली में शरीक माने जाएँगे और हम सबको तकलीफ भोगनी जरूर पड़ेगी । इससे जीत मरीगौड की ही होगी ।"

'ऊहुँ !' 'ना-ना ।', यह कैसे ?', 'वही तो पाजी !'

"जो जितना भी पाजीपन कर ले, उसे इस रीति से दंडित करने का अधिकार हममें से किसी को नहीं मिला है । यह काम केवल अपनी सरकार ही कर सकती है । अपने अपराध का दंड हमें खुद भी भोगना पड़ेगा ।"

'ठीक बात है !' 'ठीक है !' 'उसके खिलाफ शिकायत की जाय !' 'सरकार ही उसे जेल भेज का मजा चखाए !' 'हाँ !' 'जो चाहे कर ले ।'

"अन्त में बुराई से गाँव में इस वक्त दबती जा रही विषमता मुँह बाए खड़ी हो जाएगी । मरीगौड के प्रति कुछ लोगों की सहानुभूति जगेगी । फिर से पार्टी फन काढ़ उठेगी ।"

'ठीक कह रहे हो भैया !' 'गंदी पार्टीबन्दी फिर सिर न उठाए !' 'हरगिज़ नहीं ।' 'ऊहुँ !' 'कितना नुकसान उठाना पड़ा है उससे !' 'उसके टूट जाने से कितना भला हुआ है ।' 'कभी नहीं ।' 'फिर से उसे उठने न देना होगा ।' 'पनपने न् देना है !'

"तब तो शांति से अपने-अपने घर जाइए ! दो-एक घंटे ही तो सोने के रह गए हैं । सुबह बाँध पर ढेर काम करना है । आज जो उजड़ गया है, सो ठीक करना है, नया काम आगे बढ़ाना है !"

"सही बात है !' 'खरी बात है !' 'भारी गड्ढा हो गया है—भरना होगा !' 'गिराए को उठाना है !' 'आखिरी सूराख में कांक्रीट भरना है ।' 'गंगाधरप्प नहीं तो ।'

"कुछ दिन तक उसके साथी इंजीनियर साहब जो आए हैं, वे ही काम सँभालने वाले हैं ।"

"अच्छा ! वे ही उसे उठाते—उतारते जो रहे !' 'हाँ ! मैंने भी देखा है !' 'फिर मरीगौड की बात ?' 'उसका क्या होगा ?' 'बताइये न ?'

"जब सब शांत हो जाए, तो उस पर विचार किया जाएगा । फिलहाल उसका पाप ही उसे खा ले तो अच्छा है ।"

'ठीक है !', 'वही हो ?' 'वह छूट थोड़े जाएगा ?' 'इतनी देर में ही उसकी सिट्टी भूल गई होगी !' 'यही पक्की रही !' 'ये बड़े लोग कह रहे हैं तो और क्या रह गया !' 'यही सही है !' 'चल, चलें !' 'चलिये सब।'

थोड़ी देर बाद ही भीड़ जैसे जमा हो गई थी, वैसे ही छँट भी गई।

● ● ●

:३५:

दूसरे दिन तड़के ही भागीरथी की नींद खुल गई। सदा की भाँति, दुबारा आँखें बन्द किए पैर पसारे बिना ही, वह झट उठ बैठी। पिछली रात की थकान और नींद न आने से बदन दुख रहा था। लेकिन उसने उस ओर ध्यान न दिया। केश हाथों से ही पीछे करते वह गंगाधर के कमरे में आई, तो देखती क्या है कि आनन्द साथी की बगल में ही बैठा हुआ है। हमेशा की तरह अपने बनाव-सिंगार के बिना ही इस वेश में वहाँ आ पहुँची थी, इस विचार ने क्षण भर के लिए उसे व्यथित किया अवश्य। पर, उसने इसकी भी उपेक्षा कर दी। इस अस्तव्यस्त अवस्था में भी उसका आकर्षण कम न था। आनन्द के विस्फारित नेत्र ही इसके साक्षी थे। गंगाधर की दृष्टि भी उसकी ओर गई। उसके मुँह के कोरों से हल्की मुस्कान झलक उठी। दृष्टि उसकी ओर से होती हुई आनन्द को देखने लगी—मानो परिचय कराना चाह रही हो।

"अब कोई खतरा नहीं। भली-भाँति सँभल रहा है।" आनन्द ने भागीरथी को निगाहों से व्यक्त जिज्ञासा का, मुस्कान-सहित उत्तर दिया। बोला, "डाक्टर ने भी देख लिया। आवश्यक चिकित्सा कर दी है और लौटे हैं। शाम को आने वाले हैं।"

भागीरथी की अलसाई आँखों वाला अधखुला आनन धीरे-धीरे खिल उठा। प्रसन्नता की मुस्कराहट बिखर गई। आनन्द उसे देखने लगा था, सो उसकी दृष्टि नीची हुई और उसकी पोशाक पर गई। वह खाकी जंघई, सफेद कमीज पहने था। जाँघों पर 'हैट' रख ली थी। पैरों में 'स्टाकिंग' और 'शू'। कमीज की दोनों जेबों में छोटी-सी डायरी, पेंसिल, फीता आदि चीजें थीं। हूबहू काम पर निकले गंगाधर ही ! हाँ, यह अभी काम पर निकल पड़ा था ! उसे याद हो आया। पिछले दिन ही यह कहा था कि सब कुछ ठीक हो जाए, तो गंगाधर की जगह मैं काम कर लूँगा थोड़े समय तक ! भागीरथी को यह याद आते ही फौरन वहाँ से हट गई। शीघ्रता से अपनी तैयारी पूरी कर ली।

आईने के सामने गई, तो उसने सीने में धड़कन तेज़ हो गई। प्रसावन की लालसा जगी, बढ़ी, तीव्र हो उठी। लेकिन उसने इत्र की सीसी, पाउडर, पफ़, नेल पालिश, स्ट्रे आदि प्रसाधन की सामग्रियों को एक-एक करके हाथ में उठाया, उसे थोड़ी देर रखे रही और उसे एक कोने में रखती गई। लचीले लम्बे केशों में थोड़ा तेल लगा लिया, त्वरा से ही कंघी कर ली और उसे केवल गँठिया लिया। वेणी-विन्यास के लिए अवकाश न रहा। केसरिया रंग की साड़ी, सफेद ब्लाउज ही उपयुक्त जँचा। इन्हें सावित्री को देने के लिए अलग निकाल रखा था, पर अभी दिया न था। बाटा कंपनी की लेडी शू एक कोने में सरका दी, चप्पल ही पहन ली। स्वयं को आईने में और एक बार निहार लिया, तो उसे लगा कि किसी जादू के असर से तितली की सी तरुणी, पकने को आये फल-सरीखी प्रौढ़ा में परिवर्तित हो उठी है। यह वेश-भूषा उसे रुची, इससे वह तृप्त हो सकी, प्रसन्न रही या खिन्न हुई? भागीरथी इन प्रश्नों का उत्तर देने की स्थिति में न थी। उत्तर की कोई अपेक्षा भी प्रतीत न हुई। पर इतना तो सही है कि वह चित्रवत् खड़ी रह गई थी।

"ठीक है प्यारे! अपना काम मैं देख लूँगा—चिंता न करो। इतने में तुम्हारा काम स्वास्थ्यलाभ करना ढीला न पड़ जाय। मेरी परेशानी न बताओ।" आँगन में कही गई आनन्द की ये बातें भागीरथी को भी सुनाई दीं।

वह भी सावधान हो गई। आँगन में गई। सदर दरवाजे के पीछे पड़ा रहा झौवा उठा लिया। वर्षगाँठ पर गंगाधर से मिली भेंट यही थी। रोज़ मादण्ण झाड़ू देने के बाद कूड़ा-कचरा इसी में भर लेता और बाहर फेंकने ले जाता रहा। इस वक्त भागीरथी ने उसे उठा लिया और पोंछ-पोंछ कर कमरे में ले गई। कोने में जमा रखी प्रसाधन-सामग्रियाँ झौवे में रख लीं, उसे सिर पर उठा लिया और आँगन में आ पहुँची। नंजत्ते इसे देखती बैठी थीं। पर, बोलीं नहीं। केवल अपना मुँह फेर लिया।

"अम्मा! अपना खाना भी भेज देना!" भागीरथी ने रसोई की ओर आवाज़ लगाई।

जयलक्ष्म्माजी सहसा आँगन में आईं तो केवल उन्हें उसकी पीठ ही दिखाई पड़ी। मुस्कराकर अन्दर चली गईं। बाहर चबूतरे पर रहे अण्णाजी लड़की को देखकर थोड़ी देर चुप लगाए रहे।

"काम करते बनेगा बिटिया?" सड़क पर वह पैर रखने लगी थी, तो प्यार से पूछा।

"आदत पड़ जाएगी, अण्णाजी—उस मरीगौड की कृपा से पड़ गया भारी गड्ढा भर देना होगा, मैं भी इसमें लग जाऊँगी !" कहती आगे बढ़ गई।

यह थोड़ी दूर गई होगी कि जूते में फँसी कंकड़ी निकालने के लिए पैर उठाए रुका आनंद पीछे मुड़ा। इसे देखते ही खड़ा रह गया।

"इस गाँव में न जाने कैसे-कैसे जीव भी परिश्रम करते हैं !" समीप भागीरथी को देखते आश्चर्य से बोल उठा, "मैं भी साथ चल सकता हूँ ?"

"अवश्य !" मुस्कराकर ही कहा।

बाकी कारीगरों के साथ ये भी बढ़ते गए।

"कैसा काम करेंगी आप ?" इसने प्रश्न किया।

"मिट्टी का, और कैसा काम ?"

"कांक्रीट का, पत्थर की जुड़ाई......।"

"ज़रूरत पड़ने पर कांक्रीट भी ढोऊँगी।"

"अच्छा ! लेकिन जागरूक रहना होगा। सिलमिट उँगली में लग जाए तो जला दे। निकासी के पुल पर अभी घेरा भी नहीं लगाया गया। हवा तेज़ चलेगी।"

"बाकी लोग भी तो करते हैं।"

"सही है। सही है।"

"आप लोग रहेंगे ही—गिर जाऊँ तो उठा ही लेंगे। गंगाधर को जैसे उठा लिया, वैसे ही।" भागीरथी हँस पड़ी।

"क्यों नहीं ! क्यों नहीं ! पर, इसके लिए मौका ही न दिया जाएगा। लपक कर पकड़ लिया जाएगा।" वह भी हँसा।

यों परिचय हो जाने पर दोनों में सहज ही बातें होने लगीं।

"इस झोवे में खनखनाहट कैसी ?"

"अपने लिए प्रिय वस्तुएँ !" झोवा नीचे उतार कर दिखाया।

"बाँध पर जाते वक्त इनकी आवश्यकता ?" आनंद ने साश्चर्य पूछा।

"इनके बिना न रह पाऊँगी।"

"यह बात।......पर इनकी आवश्यकता कहाँ पड़ेगी ?" वह ध्यान से उसे परखते पूछने लगा।

"ये......इस समय...... बेकार हो गई हैं......अपने लिए।"

"अच्छा !......यह हाल है ?......इसमें कोई राज होगा ही।" आनंद गंभीर हो कहता गया।

"है तो·······।" भागीरथी ने सारा हाल कह सुनाया।

आनंद मौन हो सुनता जा रहा था।

"एक दृष्टि से अपना भी तो यही हाल है।" आनंद धीरे-धीरे विचार करते कह उठा। लगे हाथों अपने सुखी जीवन का वृत्तांत भी सुना दिया।

ये दोनों एक दूसरे के अधिक निकट होते आ रहे। बाँध भी नजदीक हो गया।

"कांक्रीट के काम में कुछ समय लगेगा। छड़ें वगैरह बँध जानी हैं। तब तक मिट्टी का काम होता जाय, तो ठीक रहेगा।" वह सोचते हुए कहता गया।

"जो आज्ञा! आज आप ही तो नेता हैं।"

"जी? यह तो अपने लिए गर्व की बात है······ रेल की सर्विस छोड़ कर इसी में लग जाने की उमंग हो आती है······कल मैंने जो दृश्य देखा, जो बातें सुनीं, जो भावना अनुभव करने को मिली, इन्हें याद कर लेने पर तो और भी ·······।"आनंद गंभीर होकर कहता गया।

"ठीक ही तो है, इससे कोई नुकसान होने वाला नहीं है।" भागीरथी ने मन में सहसा हुआ निर्णय सुना ही दिया। यह उसका स्वभाव भी रहा। वह शिष्टता-संदेह के झमेले में पड़ती ही न थी।

"क्या?" आनंद आश्चर्य में पड़ गया। आकांक्षा से अपरिचित अपनी अस्पष्ट भावना तथा कहीं से भटक आए विचारोन्मेष के लिए कितना अविचलित एवं स्पष्ट समर्थन प्राप्त हो उठा? इसी प्रकार भागीरथी की ये भोली-भाली बातें नावक के तीर की तरह दिल में धँस गईं·······"ऐसा·······हो सकेगा?" इस वक्त वह तल्लीन हो परखने लगा था।

इतनी देर में दोनों बाँध पर पहुँच गए।

"बाकी कामों का इंतजाम किए आता रहूँगा—गड्ढे के पास। मैं भी मिट्टी ढोने में साथ दूँगा-गंगाधर यह भी तो करता सुना जाता है— भले ही और कुछ न सध सके।"

"यहाँ कोई काम नहीं, जो वह करता न गया हो। कुली वही, इंजीनियर भी वही, नेता तो था ही। बुद्धि एवं परिश्रम का दान किया है। उसका मन उदार, व्यंग्य और प्रशंसा दोनों करने में समान गति है। जो भी हो, मुँह में राम, बगल में छुरी रखने वाली बुद्धि नहीं है।"

"ये बातें सुनकर मेरी दशा क्या हो गई है, बता दूँ?···अपने पुराने साथी को सदा के लिए सीने में कसके बाँध लूँ और उसमें खुद समा जाऊँ या उसे

अपने में समा लूं। गरज दोनों एक हो जाएँ, एक ही रह जाएँ !" कहते हुए आनंद का चेहरा चमक उठा। उसने आगे कहा, "इसमें दूसरी खास बात यह कि पीछे से हाथ मलने की नौबत ही न रह जाएगी, डाह करने की स्थिति ही न आएगी।" और हँस पड़ा।

"साथियों का लक्षण ?"

उस दिन कही बातें आनन्द ने रखीं ही। मौका निकाल कर कभी-कभी भागीरथी के पास आता और उसके साथ ही खुदाई-ढुलाई में लगा रहता। गंगाधर की भाँति ही कारीगरों से घुलमिल कर रहा। वे भी खुश हो गए। भागीरथी को, इतने दिनों के बाद, इस शक्ल में, काम पर आया देख, कारीगरों में—विशेषकर स्त्रियों में—हलचल ही मच गई।

"अणदय्याजी की बिटिया भी तो आ गई जी।"

"यही तो ! वह गंगाधर के साथ रहने पर इस वक्त तक क्यों घर में पड़ी रही ?"

"पता नहीं, किसी संकोचवश नहीं आ सकी हो।"

"बाँध बड़ा जबरदस्त है। किसी को दूर नहीं रहने देगा, खींच ही लेगा।"

"मैं भी तो शुरू-शुरू में आगा-पीछा ही करता रहा। आखिर जीत तो इस बाँध की ही हुई न।"

"यह बाँध गाँव में ऊँच-नीच के भेद को मिटाने वाला है।"

"इसने आपस की मेल-मुहब्बत बढ़ा दी है।"

"काहिली, चुगुलखोरी, झगड़ा-फसाद और निराशा को तो इस बाँध ने जैसे झाड़-बुहार कर गाँव से बाहर फेंक दिया है।"

आज कारीगरों को एक विचित्र दृश्य देखने को मिला। बाँध से आध मील फासले पर मछुए झील में मछली मारने लगे, तो मरीगौडर की लाश उतराती दिखाई पड़ी। खबर के फैल जाने में कोई देर नहीं लगी।

"जैसा किया वैसा भोगा !"

"गाँव का गलीज साफ हो गया कहो, निशान भी बाकी न रहा।"

"अब चैन से रहा जाएगा। गाँव, बाँध इनके लिए कोई खतरा नहीं।"

"और क्या ! आखिर बाँध के लिए बलि हो ही गई !"

"फिर, बाँध को छेड़ कर बच जा सकेगा ? तुरन्त आहुति ले ही ली।"

"इतने लोगों की मिहनत धूल में मिला देने की हिमाकत ? ऐसे पापी के सिर पर ही-भूत की तरह वह नाचा न करें ?"

"जो भी हो, शुरू में बलि न चढ़ाई गई तो अंत में वह रस्म भी पूरी हो गई।"

"बलि के असल माने यही है भाई ! बेचारी मुर्गी, भेड़ आदि को काटना नहीं। कोई भला होना है, तो शुरू में कोई बुराई काट फेंक देनी होगी ही।"

शाम तक नरगेरे से पुलिस आ गई। उसने लाश अपने कब्जे में ले ली। पंचनामा हुआ। कइयों के बयान लिए गए। मरीगौडर का साला अपने बयान में रात की घटनाओं का जिक्र करता बोला, "अपने बहनोई की बड़ी बेइज्जती हो गई। 'करीगौड की कृपा से जान बची, इतनी तौहीनी के बाद मेरा जीना बेकार', पागल की तरह यही रात भर रटते रहे। हम लोगों की आँखें लग गईं। न जाने कब वे घर से बाहर हो गए ! पिछवाड़े की कुंडी लगाए सोए थे। सुबह देखा, तो कुंडी खुली पाई गई। मरीगौडर की बीबी ने भी यही बयान दिया। दूसरों के बयानों के जरिये मरीगौडर का कच्चा चिट्ठा खुल गया। पुलिस ने जाँच के लिए लाश नरगेरे अस्पताल भेज दी !

फरार पोन्नासामी की गिरफ्तारी में अपनी सारी ताकत लगा देने का भरोसा पुलिस अधिकारियों से मिल गया।

उस शाम को भागीरथी घर लौटी, तो नंजत्त खंभे के सहारे आँगन में बैठी नज़र न आई। भागीरथी की दृष्टि कैंट के कमरे की ओर गई तो कमरा खुला दिखाई दिया। माँ-बेटा दोनों ने दोपहर को खाना खा लिया। खाने के बाद नंजत्त ने आवाज़ दी, "रे माद ! गाड़ी तैयार कर दे।" अण्णाजी वहीं थे, पर कोई बात मुँह से निकाली नहीं।

"तुमने भी हमें घर से बाहर कर दिया, भैया ?" नंजत्त के अभियोग में दीनता भी रही।

"यह कैसी बात कह रही नंजू ! यह विचार मन से दूर कर दो। समय पर सब ठीक हो जाएगा। जीवन में ऐसी अनहोनियाँ कोई नई नहीं तो ? जीवन गणित के बराबर थोड़े है, जो निश्चित परिणाम दे सके ! कोई कारण होता है, कोई परिणाम निकल पड़ता है इसका कौन ठिकाना ? हमें चुपचाप सह लेना होगा, कर्त्तव्य कर देना होगा।"

"भैया ! सुन लो ! भागू को बहू के रूप में देखने को मन बहुत चाहता था। स्वप्न में भी ऐसे उफनज के उठ जाने का अनुमान न रहा। इस वक्त तो कंठी ने भी पूरा असंतोष व्यक्त कर ही दिया है, बिलकुल शादी न कर लेने की ठान ली है।"

"ठीक ही तो है। वे दोनों आपस में एक दूसरे को पसंद न करें तो, झमेला ही दूर हो गया।"

"मैं इसे किसी सूरत से राह पर लाती भी, ला भी सकती हूँ। पर तुम भी भागू से तनिक कहते, तो काम बन जाता! इस समय भी…।"

"नंजू! भागू कोई दुधमुँही बच्ची नहीं। अब वह अपना बुरा-भला समझने लायक हो ही गई है। बालिग् सन्तान पर ऐसे मामलों में दबाव डालन सर्वथा अनुचित है।"

इसके बाद सहज ही बिदाई का वक्त आ गया। आँचल के छोर से नंजत्ते ने आँख-नाक दोनों पोंछ ली थीं।

"अच्छा, में चली जयलक्ष्मी। याद बनी रहे।"

"यह कैसा अनर्थ कह रही हो, ननद! सकुशल पहुँच जाने के सूचनार्थ पत्र डलवा देना।"

हिरियण्णाजी गाड़ी के साथ किले तक छोड़ने गए।

"विषकंठ! आगे का अपना कार्यक्रम लिखते रहो भी!"

"अच्छी बात है।"

"अच्छा नंजू! मैं चला!"

नाक पोंछ लेने की आवाज़ से ही नंजत्ते ने जवाब दिया।

घर लौटी भागीरथी जानबूझ कर सीधे गंगाधर के कमरे में गई। उल्लास से बिखरी लटें, सिलमिट की दागवाली केसरिया साड़ी, मटमैली सफेद ब्लाउज, की हँसी, से उमड़ा चेहरा, चुहल-भरी नजर, इन सबको देखते ही गंगाधर की आँखें चौड़ी हो गईं।

'भागीरथी!' क्षीण ध्वनि फूट पड़ी।

वह उसके पास जा बैठी। पूछा "अब तबीयत कैसी है?"

गंगाधर ने जवाब न दिया! सोचने लगा। 'पसीने की बदबू। दूर हो जा।' मुस्कराते गंगाधर ने धीमी आवाज़ से ही कहा।

"यह तुम्हारी दवा की गंध….।" भागीरथी ने दोहरे अर्थों में कहा था।

"आज से तुम्हें गुड्डी कहकर नहीं पुकारूँगा। तुम भागीरथी…।"

"अपने को भागीरथ गिन रहे हो?"

"तुम्हें यों देख मैं बड़ा गर्व करने लगा हूँ।"

"पहले की सी घृणा बराबर, या उससे भी अधिक?"

"घृणा नहीं; वह जाने दो। लेकिन आज भागीरथी को देखने पर कितना गर्व ! पहले थोड़ी-बहुत चुभन रही हो, कह नहीं सकता। अगर रही भी, तो वह सब गायब हो गई है। पारी निश्चित रूप से कह रही है कि एक-न-एक दिन तुम यही करोगी। तुम पर जमी उसकी आस्था कभी डिगी ही नहीं।"

"अच्छा !" भागीरथी गंभीर हो उठी।

"हाँ। यह भी सुन ले तो न जाने कितनी प्रसन्न हो जाए। इस दिशा में विचार-साम्य के कारण तुम दोनों आत्मीय हो गई हो।"

"वह कहाँ···मैं कहाँ !' सिर नीचा किए फर्श देखकर भागीरथी कहने लगी।

"हट, बुद्ध कहीं की ! तुम दोनों एक ही धातु के बने हो। प्रवृत्ति थोड़ी-बहुत भलेही घटी-बढ़ी हो, मगर कोई विशेष फर्क नहीं।"

"नहीं··गंगाधर ! आत्मवंचना क्योंकर कर लूँ, कहो तो ?"

"नासमझी का नतीजा है। जीवन में अभी भोर हुई कहाँ ? आगे न जाने और भी कितने बड़े-बड़े काम कब तक करते जाने को पड़े हों। इतने में ही आगे-पीछे कैसे ? हम साथ रहे, रहेंगे।" उसकी आँखें भागीरथी की आँखों से मिलीं, उसके हाथ भागीरथी के हाथ उठाने लगे। उसने कहा "यह उदासी भरी भंगिमा तुम्हें शोभा नहीं देती भागीरथी। हँसी या मोद ही तुम्हारे लिए आभूषण है ! अपना आकर्षण है ! तुम बड़ी ठोस जनमी हो--भूलो नहीं ! तुमसे बड़ी कार्य-सिद्धि होने को है। इस तरह मुंह लटकाए बैठी रहने से भला काम चलेगा, पगली।"

"अच्छी बात है !···ठीक है···बीता, सो गया। रुआँसा चेहरा क्यों—आज के सुदिन पर।" खिन्नता को धो लेने की भाँति भागीरथी हँस पड़ी।

"बाँध को पहुँची क्षति की पूर्ति हो गई या नहीं ?" उसने प्रसंग बदल दिया। समाचार भी सुनना था।

"क्यों नहीं, फिर मैं जाऊँ और काम अधूरा ही रह जाय ?"

"तुम्हें मिट्टी ढोते देखने की बड़ी लालसा है मेरी !"

"तुम्हीं ढोवा देते-और भी आनंद आ जाए।"

"तब तो बस अभी उठ पड़ा देख।" गंगाधर ने विनोद के लिए अपना शरीर हिलाया।

"छि: तुमको इतना महामूर्ख मैं जानती ही न रही।" कहती हुई भागीरथी उसे न उठने देने के लिए उस पर हाथ आडे ले आई।

''यह देखें अपनी मनपसंद का दृश्य ।'' कहकर हँसती हुई भागीरथी झौवा सिर पर उठाए नृत्य मुद्रा में बाहर निकल गई ।

गंगाधर भी हँसा । पर, हँसी धीरे-धीरे शीघ्र विलीन हो गई । मुखमुद्रा गंभीर हो उठी । वह विचारों में डूब गया ।

● ● ●

:३६:

गंगाधर के बाँध के काम पर जाने योग्य होने तक आनंद ने छुट्टी ले रखी थी । वह वहीं रह गया था । शाम के वक्त नवयुवक गंगाधर से मिलने आते, तो एक छोटी सी गोष्ठी ही जम जाती । अवसर पर इधर-उधर की बातों के साथ ही उस रोज़ के काम की रिपोर्ट भो मिल जाती । दूसरे दिन की तैयारियाँ, और भी कई योजनाओं आदि पर चर्चा होती । विकारहीन विनोद, अहिंस्र व्यंग्य, निश्छल हृदय, अहं से अनावृत बुद्धि, समान ध्येय, समभाव आदि से निर्मित इस स्नेह-शृंखला में आनंद तथा भागीरथी को नई कड़ियाँ भी जुड़ गईं । भागीरथी अपना नया जोश सब में बाँटने लगी । हँसमुख चेहरा, निराली सूझ, उड़ान की बातें, इन गुणों से अलंकृत आनंद आकर्षण का केन्द्र हो उठा था । कठिनाइयों की उपेक्षा ही, उन पर विनोद का बाना पहना देने वाला उसका कौशल काम को अनायास पूरा कर देने में प्रेरक बन गया था । अपने में होते रहे आंतरिक परिवर्तनों की सूचनाएँ उसे अस्पष्ट लगने पर भी, उसमें अवश्य ही विस्मय जगाती जातीं ।

एक दिन, आनंद ने सुबह के वक्त, काम पर आते समय, हिरियण्णाजी का मकान पार किया ही होगा कि पीछे से सुपरिचित ध्वनियाँ सुनाई दीं । आधी पी सिगरेट फेंक दी और पीछे मुड़ कर देखा । भागीरथी और पार्वती दोनों ही अण्णाजी के यहाँ से झौवे लिए बाहर निकल रही थीं । वह उनके आने तक रुक गया । ऐसी मुलाकातें कोई असाधारण न थीं । ऐसे अवसरों पर वे साथ ही बातें करते जाया करते थे ।

''अखबारों में तो विशेष रूप से निकल रहा है कि सिगरेट पीने से 'कैंसर' हो जाता है ?'' दोनों उसके समीप आ गईं तो भागीरथी ने कहना शुरू किया ।

"होने दीजिए न ! मैं तो तैयार हूँ हीं । कैंसर के होने में तीस वर्ष आवश्यक बताए जाते हैं । होने के बाद भी चार-चार-छह साल की मुहलत किसी सूरत से मिल ही जाती है ? दस-बीस साल पहले ही नमो नमो कूच-कर

जाएँ तो बेहतर होगा !" हँसते हुए आनन्द कहता गया।

"छिः ! यह क्यों ? जीवन की इतनी उपेक्षा ?" भागीरथी ने विरोध किया।

"शक्तिशाली अधिकाधिक जीवित रहकर सेवा करें राष्ट्र की।" पार्वती ने कहा।

"सेवा-मेवा का हाल, अरे भाई मैं तो उसका ककहरा तक नहीं जानता। ठाट से पड़ा रहा। यहाँ आने के बाद आप लोगों की प्रेरणा से यह जुर्म बन पड़ा है। यहाँ से कदम हटा लेते ही; यह सब भूल जाएँगे, इसका पूरा भरोसा है। रह गई शक्ति की बात ! उसका नाम लेना और खाक छानना दोनों बराबर हैं। यह सब गंगाधर के बारे में कहिए तो जँचे भी। यहाँ तो "सत्य कहौं लिखि कागद कोरे।"

"अपनी शक्ति का वोध स्वयं को नहीं होता।" भागीरथी का तर्क हुआ।

"यह बात है ? मेरी बीमारी आपको मालूम हो गई हो, तो ठीक, मान लूँगा। आप इतना आग्रह कर रही हैं, तो यह अभागा जीव भी !" पुनः आनंद ने सिगरेट की डिबिया जेब से निकाली और कहा, "यह भी, उन प्रसाधन सामग्रियों की भाँति ही झौवे में राहत पा जाए।"

भागीरथी के झौवे में रखने को हाथ बढ़ाया।

"खूब रही ! लोग समझने लगें कि मैं ही पीती हूँ ! अच्छा तो यही है कि यह डिब्बी यहीं फेंक दी जाए।" कह कर हँसती हुई भागीरथी जरा पीछे हटी।

"ना-ना ! यह लत दूसरों को क्यों लगाई जाए भला ? यहीं बुरे की, बुराई की आहुति बाँध के लिए ही होनी चाहिए ? झौवा मैं ही ले चलूँ।" भागीरथी के सिर पर से आहिस्ते आनन्द ने झौवा ले लिया।

"इस अकेले पैकेट की यह गति होगी तो ?" भागीरथी ने पूछा।

"छिः छिः ! मैं कोई धोखेबाज नहीं—भले ही वैसे दिखाई पड़ जाऊँ ! बातें बढ़ बढ़के भले ही कर लूँ, पर हूँ मै भी बड़ा जिद्दी !…मौके पर आप देख लीजिएगा !"

"यह देखिए। आपने मना कर दिया न। मैंने "हाँ" कह तो दिया। मामला साफ हो गया। कभी आइंदा उस पर हाथ न लगाने का आप जिससे नफरत करें, मैं भी उससे कोसों दूर !" आनन्द ने पैकेट झौवे में रख दी।

"आप तथा गंगाधर प्राणों से प्यारे साथी ठहरे…लेकिन…स्वभाव में इतना अन्तर क्यों ?" पार्वती ने धीरे से पूछा।

"प्राणों से प्यारे के मानी आप शायद नहीं जानती ? उसका मतलब है—एक दूसरे के प्राण खाने वाले। यह प्रयोग हम—इसमें भी विशेषतः गंगाधर—दोनों ने यथेष्ट किए हैं। लेकिन अनुकूल परिणाम जहाँ नहीं हुआ, उसमें यह सिगरेट की लत मान लीजिए। फिर, स्वभाव में अन्तर की बात लें, तो विरोधाभास ही जीवन का रहस्य जान पड़ता है! उसमें पनपी दोस्ती के लिए यही पोख्ता पाया समझिए। यह विज्ञान ही चिल्ला कर कह रहा तो, फिर क्या है ?"

"इतने पर भी यह योजना आपको आकर्षित करने वाली बनी है। विज्ञान के सिद्धांत के विरुद्ध, दोनों में आकर्षण रहने पर भी इस बिन्दु पर मतभेद हो रहे हैं।" भागीरथी ने अपना मत प्रकट किया।

"बाप रे! बेचारे ने इसके लिए कितनी झंझटें उठाईं! कितना समझाया, परमात्मा ही जाने। 'बस करो भैया! हाथ जोड़ता हूँ। दम लेने दो।' कहने पर भी बाज़ न आने वाला। कॉलेज में चार साल तक छेदक लगाये मेरे बदन भर छेद ही छेद हो गए—उस सहस्राक्ष के शरीर की तरह। आखिरकार बनारस से अलग होते समय तो बकते-बकते वही बौरा गया या सुनते-सुनते मैं ही सनकी हो उठा, यह मैं बता नहीं सकता। मतलब यह कि समझाते-समझाते उसने मुझे झुका ही लिया था। दिल्ली की ओर निकल पड़नेवाला मैं भी बेलगूर-प्रकाशवाड़ी का रास्ता ही नापने लग जाता। ग़नीमत इतनी ही रही कि एक दिन पहले ही दिल्ली का टिकट कटा लिया था। पल्ले में पैसे भी न थे। समझा आपने, बाल-बाल बच निकला !····उस वक्त जो भी सुनता, सहज ही विश्वास नहीं कर पाता। अन्यथा खतरा मेरे लिए तभी मुँह बाए खड़ा रह जाता शायद। उस वक्त समझा कर जो झुका न सका, सो इस वक्त करके दिखा कर धूल झोंक रहा है। यहाँ की माया के फेर में पड़ने के बाद तो मुझे कोई राह ही नहीं सूझ रही है। मेरा तरीका सही या उसका, यह सवाल भूत की तरह सामने उठा दिया है। मेरे प्राण ही इस वक्त संकट में पड़ गए हैं। बड़ा डर लगने लगा है कि कहीं जीत उसी की न हो जाए ! भगवान् ही बेड़ा पार लगावे। अपने बाँध पर की निकासी पर खड़े रहने वाले का सा हाल है अब मेरा। एक ओर झील, दूसरी ओर धारा। आप जैसे लोग़ मुझे जिधर खींच लें, उधर ही गिर जाने का सा हाल है मेरा····।" आनन्द अपना दुखड़ा रोने लगा।

"अपनी तरफ ही गिरना होगा !" भागीरथी ने सुझाया।

"क्या कहा ?···इसका नतीजा, जानती हैं, क्या होगा ?····थोड़ी देर दिमाग लड़ा लूँ, सब्र करें। हाँ, आज मैं प्राबेशनर इंजीनियर तो हूँ ? मानेंगी ? कल

असिस्टेंट इंजीनियर। परसों डिवीजनल इंजीनियर। तरसों चीफ इंजीनियर। बाद को जनरल मैनेजर, रेलवे बोर्ड का मेंबर, चेयरमैन—इस सिलसिले में चुटकी बजाते तरक्की-पर-तरक्की करता जाऊँगा।" उसने चुटकी बजाई भी। आगे कहता रहा, "इसका नतीजा? चार संख्या का वेतन, छह संख्या-तकदीर चमक उठे तो सात वाला भी। बैंक का खाता। दिल्ली में डेरा। तीनों पहर मंत्रियों के इर्दगिर्द ही मँडराते रह जाना। जहाँ कहीं भी फल पके, सीधे मुँह में आ गिरे। साल में बीसियों 'कान्फ्रेंस, 'डेलिगेशन'। यूरप, अमरीका, रूस, जापान, आस्ट्रेलिया दुनियाँ की कई जगहों की सैर! भोजनागार से स्नानागार और वहाँ से शयनागार में आने-जाने की सुविधा के समान सैर का मज़ा लूटते लौटा जा सकेगा। ईश्वर जाने इस राष्ट्र को जीवित रखने के बारे में कितने ही भाषण सुनने को मिल जाएँ, व्याख्यान झाड़ने के मौके मिल जाएँ! हर रोज़ सुबह-शाम 'डिनर', टी-पार्टी, अन्य कई पार्टियाँ, शिलान्यास, उद्घाटन, फोटो, अखबारों में रिपोर्ट···ओफ ओह! अपनी तस्वीरें आप देख लें, अपना व्याख्यान आप पढ़ लें तो बस, सुख-ही-सुख। इनके अलावा फुटकल मद में, सर्वत्र सलामी की बौछार, आलीशान दस-बीस कमरों वाली कोठी, हाथ-पैर दोनों के लिए नौकर! चाहूँ तो सिगरेट की कश खींचूँ या वाइन की चुस्की लूँ, कोई मनाही नहीं। शायद अपनी आय से अधिक ही खुल कर खर्च करने वाली सहधर्मिणी, एक पूरी बटालियन संतान····।"

लड़कियों की हँसी रोके न रुकी। वे खिलखिला कर हँस पड़ीं।

"जी हाँ, सच मानिए। ईश्वर की सौगंध···यह सब। इतने कुल का नुकसान हो जाएगा। अपने माँ-बाप तो आँखें मूँद ही लेंगे—निराशा से। संक्षेप में कह दूँ, तो सर्वनाश ही हो जाय····।"

"यह एक पहलू हुआ। पर सादगी में भी सुख है न?" भागीरथी ने पूछा।

"हाँ, हाँ···क्यों नहीं।' आनन्द ने आवाज़ खींचते कहा, "इसमें भी रोचकता है ही, भले आदमियों का साथ रहे तो। मैं तो संभावित नुकसान की सूची भर तैयार कर रहा, समझी।···यदि आप शर्त बद लें, तो सादगी में भी मैं गंगाधर को मात कर दूँ, तय मानिए आप! और क्या, आखिर मुझे चाहिए ही क्या! दो रुचिकर भोजन-नाश्ते, तीन या चार डोज़ काफी, दिन में एक टिन सिगरेट-ऊहुँ, यह अब छूट गया तो, इसके बाद आठ-दस जोड़े मतलब के कपड़े, मुझे कतई तंग न करने वाली, सब कुछ सँभाल ले सकने वाली, मेरी देखरेख भी करने वाली रूपसी अर्द्धांगिनी, गोद में खेलने के लिए चार बच्चे कोई बात नहीं,

दो ही सही, शाम को थोड़ा-बहुत मनोरंजन……।"

"ठेठ सादगी का नमूना।" पार्वती हँसी।

"हाँ, इतना ही काफी है ? मानव को दुराशा में पड़ जाना उचित नहीं, इतना तो मैं कबूल लूँगा। पर इसमें एक खामी है, जानिएगा। उतना भोग त्याग दिया, इतना योग मोल लिया। इस पर मेरे गले में गजरा कौन डाले, हाथ में गुलदस्ता कौन थमाए ? यह कोई स्वतंत्रता का आंदोलन भी है भला ? उन दिनों बेचारों ने इसीलिए 'प्रैक्टिस' छोड़ी, नौकरी त्याग दी, जेल गए, चोटें खाईं, मुसीबतें झेलीं। यह सब सही है। उसी अनुपात में वीराधिवीर के रूप में सम्मानित हुए, मंत्री मुत्सद्दी नाते नद्दी की शोभा बढ़ाई, अधिकार चलाया, और कई ऐसे भी महानुभाव हैं, जिन्होंने जितनी संपत्ति त्याग दी, उसे सूद-दर-सूद समेत जुगाड़ ही ली। न्यायोचित ही है………मुसीबत के मुताबिक कीमत भी तो चाहिए ?"

"छिः छिः ? उनके साथ अन्याय न कीजिए। उन्हें इसका पता ही कहाँ था कि हालत इतनी तेजी से यहाँ तक पहुँच जाएगी ?" पार्वती ने विरोध किया।

"यह कब कहा मैंने ? जो रंग दिखाई दिया, वही कहता गया। बस ? न्यायोचित कहा भी तो……इसे रहने दीजिए। अब मेरी बात पर आइए न ? उतना बड़ा साहब बने रहकर शान से उछलना-कूदना छोड़ दूँ और इस खूसट कोने पर के कूड़े में पड़ जाऊँ तो मेरे हाथ लगेगा ही क्या ? खैर, धन, पद, अधिकार आदि को तिलांजलि देकर कितना बड़ा साहस दिखाया बेचारे ने ? इसका ध्यान रखकर किस इतिहास में मेरा नाम दर्ज मिलेगा ? किस शिलालेख में खुदा रहेगा ? कौन कवि मेरा गुणगान करेगा ? जीवित रहते कोई जुलूस नहीं, करने पर तो शोर किए बिना ही कंधे पर उठा ले जाएँगे। किस्सा खत्म है न ? इस पर क्या कहेंगी आप लोग।"

"स्वाधीनता संग्राम में शरीक हुए सबको यही फल भोगने को मिला है ? देश को आजादी मिलने के पहले ही न जाने कितने चल बसे होंगे। प्रति नामी नेता पीछे अनेक अनामधेय हैं ही। इस समय अधिकारासीन दस व्यक्तियों के पीछे दस हजार ही क्यों, कई लाख व्यक्ति कहीं कोने में पड़े हैं। इन दसों में भी; आपके कहे अनुसार, स्वार्थ का शिकार हुए दो-एक होंगे या नहीं भी। मेरा तो दावा है कि सेवा के रूप में अधिकार ग्रहण करने वाले ही अधिकांश हैं। यहाँ पर भी तो अपना स्वाधीनता-संग्राम ही चल रहा है न। हमें पूरी आजादी—गरीबी से, अशिक्षा से-कहाँ मिली है अभी ? इस संग्राम की कहानी का हाल भी उस

आंदोलन की कहानी का हाल भी उस आंदोलन की कहानी के अनुरूप ही होगा। हम भी उन अनेक अनामधेयों में शरीक हो जाएँ, कौन जाने? वैसा हो सकने वाले न रहें तो काम क्या बने? सैनिकों के बिना सेनानियों की ही टुकड़ी क्या कर सकेगी भला?" पार्वती कहती जा रही थी, तो आनंद ध्यान से उसे देखता रहा, मुस्कराता रहा।

"खूब! आप भी जबरदस्त लेक्चर झाड़ती हैं।"

"पार्वती ठीक कह रही है। हमसे वास्तविक स्वराज्य स्वरूप धारण करेगा, देश भर में क्रान्ति फैलेगी, इतनी तृप्ति ही पर्याप्त नहीं?" भागीरथी ने समर्थन किया।

"रेलवे बोर्ड के ज़रिए मेरे लिए स्वराज्य स्थापित कर सकना, सेवा अर्पित करना क्या संभव न होगा? संन्यासी बनकर ही साधना करनी होगी?"

"असंभव की बात ही नहीं यहाँ पर। सभी अवस्थाओं-स्थितियों में रहने-वालों के लिए संभव है ही—बशर्ते हर कोई अपना-अपना काम भली भाँति निभा ले जाए। पर सेक्रेटेरिएट के जरिए कार्यसिद्धि के लिए अगणित व्यक्ति 'मैं आगे' की रट लगाये एक दूसरे पर ही चढ़ बैठने वाले हैं—कांपिटेटिव परीक्षाएँ, आवेदन, सिफारिश, चाचा मामा की मार्फत आदि तरीकों से......।" पार्वती कहती गई।

"अच्छा!" आनंद का उद्‌गार फूटा।

"यह सच है, वहाँ के काम आपकी ही भाँति निगरानी से करने वाले, और भी विलक्षणता से करने वाले भी होंगे। आपके बताए आकर्षण बने रहने तक उस काम के रुकने का अवसर भी नहीं के बराबर होगा। गंगाधर का कथन इस माने में सही है कि शक्तिसंपन्नों के लिए वास्तविक दरिद्रता यहीं रहेगी, इन जैसे प्रयासों में ही रहेगी।" भागीरथी ने याद करते हुए कहा।

"वाह खूब रही।" आनंद ने दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा, "उसने आप लोगों को खूब घोल कर पिला दिया है, पागल बना दिया है। शाम के वक्त सबक भी सिखाता रहा क्या? आप-जैसी एजेंटों के रहते उसने यह बाँध उठा दिया तो कोई ताज्जुब की बात नहीं......मेरा ख्याल है कि आप सब एक होकर मेरी आशाओं पर पानी फेर दे रही हैं......तब तो यह क्षणिक तृप्ति ही पर्याप्त कहे देती है। क्यों?"

"वह वणिक् वृत्ति क्यों बने? हरियाली से हरा-भरा वृक्ष हो, तो उसकी छाया में सदा शीतलता प्राप्त होगी ही।" पार्वती ने संशोधन किया।

"इसके अलावा अपने गाँव का जीवन भी तो है। यह आपको पसन्द नहीं ?" हँसते भागीरथी ने पूछा।

"क्या ?·········हाँ, हाँ !" आनन्द मान गया। बोला, "आपका यह गाँव बड़ा रमणीय है। ग्रामवासी-आप भी स्पृहणीय हैं। गंगाधर के यहीं चिपके रहने में कोई आश्चर्य भी नहीं। उसके दृढ़ निश्चय के लिए यह भी एक महान् कारण होगा। चार रोज रह गया, तो खुद महसूस करने लगा हूँ कि 'लो, गंगाधर कितनी तेजी से चंगा होने लग गया। मुझे गाँव छोड़ना पड़ रहा है।" कहते हुए आनन्द खूब हँसा।

"छोड़ या रह जाना आपके निर्णय के अधीन ही तो है ?" भागीरथी के प्रश्न में प्रोत्साहन का पुट भी था।

"अवश्य, सच कह रही हैं आप····मैं दोनों पलड़ों को देखता ही जा रहा हूँ। इस वक्त डाँडी सम पर है। यदि और थोड़ा दबाव पड़े, तो लगता है यहीं का पलड़ा भारी हो जाएगा···बात यह है कि मैं तनिक दबाव-अंकुश का प्रेमी हूँ। काशी में लगातार गंगाधर का दबाव न होता, तो शायद मैं गंगाजी की गोद में ही रह जाता !"

"तब तो हमें भी रहस्य विदित हो ही गया। हममें से कोई वह काम कर लेगी।" कहते भागीरथी हँस पड़ी।

"बड़े प्रेम से। धन्यावाद ! अभी से वह करने ही लगी हैं।" आनंद ने बात पूरी की।

यों ही बातें करते तीनों बढ़े। ऐसे कई दिन गुज़रे थे। काम पर, खाते वक्त, यह हेलमेल बढ़ता ही जा रहा था।

आनंद गाँव से चल पड़ा। स्टेशन पर विदा लेते हुए उसने गंगाधर से कहा, "सुनो प्यारे ! चोंच से बच कर निरापद रहने तुम्हारे गाँव आया, तो कैंची में फँस गया न ?"

"मतलब ?"

"मतलब पूछ रहे हो ? क्या तुम नहीं जानते ?"

"साफ-साफ कहते क्यों नहीं, भले आदमी ?"

"वही तो। वैजयंती माला, सुचित्रा सेन दोनों तुम्हारे गाँव ही में हैं !"

"ओफ हो····ऐसा !"

"कैंची की दो धारियाँ नहीं वे···मुस्टंडे मर्द के लिए ?"

"तो फिर ?"

"फिर क्या ? उनके लिए वर तय हुए हैं।"

"मैं क्या जानूँ !"

"खूब, मैं क्या जानूँ ! बड़ा नादान जो ठहरे ! सताओ नहीं। कहते क्यों नहीं ?"

"अभी तय हुआ-सा नहीं लगता, भाई !"

"तुम भी एक प्रतियोगी हो, सच है न ?"

"क्या ?···अहं !"

"सफेद झूठ ! किसे चुना है-अथवा प्रस्ताव किस ओर से हुआ है?"

"तुम किसी को भी चाहे पसंद कर लो अपने मां बाप से कह दो।"

"यही तो झमेला हो गया है। इतने दिन के बाद भी मैं तो कुछ समझ ही नहीं पा रहा हूँ। यही परेशानी तुम्हारी भी होगी। दो गट्ठर घास के बीच फँसे गधे का सा हाल है। किस पर मुँह चलाऊँ, इसी उधेड़बुन में बेचारा भूख के मारे मर गया। सोचते-सोचते क्वाँरा ही रह जाऊँगा।"

गंगाधर जोरों से हँसा।

"पहले तुम्हारी शादी हो जाए, फर्स्ट रैंक तो तुम्हारा निश्चित है ही। पहले चुनाव तुम्हारा ही हो जाए।"

"यह रही तुम्हारी चालाकी, भाई जान ! उनमें से किसी से भी ब्याह कर ले सकना हँसी-ठट्ठा नहीं। पहले अपनी नौकरी को हाथ जोड़ के आ जाओ। पीछे देखा जाएगा। भागीरथी ने तभी एक नौकरी पेशेवाले को दरवाजा दिखा दिया है। पारी तो ऐसों की ओर निगाह ही नहीं फेरती। कितने नासमझ हो, आजकल की लड़कियों की मनोवृत्ति से भी अनजान !"

"क्या····समझा कर जाल में फँसा न सके तो धमकी देने लगे क्या ? या उन पुराने पादरियों के बारे में जैसा प्रसिद्ध है, मतपरिवर्तन के लिए व्याह का लालच दे रहो हो क्या ?"

"लालची तुम ही गए हो। इसीलिए तो सही बात बता दी।"

'ठीक है, तुम्हारे कथन में सत्य अवश्य है। हाल में ही उनसे बात हो रही थी। तिल का ताड़ बना कर अपनी नौकरी का बखान किया। पर खोदा पहाड़ निकली चुहिया, का हाल ही रहा। दोनों में से कोई भी प्रभावित न हुई। उल्टे मुझे ही रास्ते पर ले आने की सूझ कारगर होनेवाली दिखी।··· अच्छा सुनो ! मान लो नौकरी से भी हाथ धो लिया, किसी का हाथ थाम भी लिया। पर कान

उमेठे कर्टन लेक्चर झाड़ने वाली बीवी से बचाव कैसे होगा, भाई ! बोलो तो।"

"उसी तरह, तुम्हें नकेल के सहारे बढ़ा ले जाने वाली बीवी मिल गई, तो बच जाओगे, बच्चू।"

"अच्छी बात है, बंधु ! अब प्राण संकट से खाली नहीं। ठीक है, कॉलेज में मैं परेल खेल ही चुका हूँ। जरूरत पड़ गई, तो यहाँ भी एक हाथ चला कर देख लूँगा। जो भी हो जाय !"

"साथी विदा हो गए। आनन्द भविष्य में भी यदाकदा बेलगूर-प्रकाश-बाड़ी जाता ही रहा।

●●●

:३७:

भागीरथी का खाना खत्म होने को आया था। अण्णाजी पहले ही भोजन कर चुके थे। जयलक्ष्म्माजी अपने लिए परोसते वहीं बैठी रहीं।

"सुना है, चन्नेगौड-रेवती का ब्याह होना निश्चित हुआ है....!" अम्मा ने कहना शुरू किया।

"हाँ, अम्मा ! शायद भीमण्ण-नागव्वा का ब्याह भी हो जाए।"

"पार साल रुकी पड़ी शादियाँ भी अबकी हो हीं जाएँ...तुम्हारी कई सहे-लियों का ब्याह....भाग्य...तुम्हारी सगाई की चिंता भी तो करनी ही होगी।"

"छोड़ो अम्मा ! इन बातों को....हो जाएगी...इसमें कौन बड़ी बात है ?"

"तुम्हारे अण्णाजी कल-परसों में ही दीक्षितजी से बात करने की सोच रहे हैं।"

"मतलब ?"

"मतलब यह....गंगाधर तुमको बहू के रूप में ग्रहण करेंगे।" मुस्कराकर अम्मा कहती गईं—

"यह केवल औपचारिकता मात्र समझ लो। इनकार थोड़े करेंगे वे ?...गंगाधर भी...।"

"अम्मा....।" भागीरथी ने माँ को आगे कुछ कहने न दिया। माँ सिर ऊँचा किए सशंक हो, उसे देखने लगीं।

"गंगाधर के अनुकूल वधू मैं नहीं हूँ, अम्मा !" भागीरथी ने धीरे से वाक्य पूरा किया।

"यह क्या कह रही हो भाग्य !" अम्मा अचंभे में पड़ गईं। यह क्या शालीनता होगी ? का संदेह उपजा। शुरू से ही एक दूसरे के लिए बने-बनाए-से हैं। सारा गाँव कितनी बार यही कहता आया है ? बोलीं, "तुम्हारे अण्णाजी और मैं, दोनों को भी यही विश्वास हो आया है। यह सब पर विदित भी हो चुका है।"

"नहीं अम्मा''''पार्वती ही मेरी अपेक्षा उसके लिए अधिक योग्य होगी।"

अम्मा को इस आघात से सँभल जाने में कुछ समय लग ही गया। वे बात टटोलने लगीं।

"पार्वती भी स्वर्ण-सरीखी सुकन्या है, मानती हूँ। वह भी अपने लिए तुम्हारे बराबर ही है। किसी संभ्रांत परिवार में उसका भी जाना अपनी आकांक्षा है'''।"

"गंगाधर को ही वरे, अम्मा''''यही धर्म है।"

"यह कैसी बहकी-बहकी बातें कर रही हो, भाग्य ?'''तुम्हें यह सम्बन्ध पसन्द नहीं-कोई कारण भी कहो ?"

"पसन्द आ जाने से क्या होगा अम्मा ? योग्यता भी तो हो ? पार्वती में वह गुण है। मुझमें उतना नहीं। रहा-सहा भी मैं गँवा बैठी'''सच मानो अम्मा। अपने तईं मैं सजग हो जाऊँ, उपस्थित अनुकूल अवसर का लाभ उठा लूँ, तुम्हारा आग्रह मान बैठूँ तो जानते हुए उसके प्रति अपराध हो जाएगा। यह बिल्कुल नहीं शोभता। कभी भी मेरी टीस दूर न होगी'''बाहरी वातावरण को अनुकूल बना लेने में सुख कहाँ, अम्मा ? वह तो मानसिक अवस्था की सम्पत्ति है, बोलो ?"

अम्मा ने छूटते ही जवाब न दिया।

कुछ सोचकर बोलीं, "मुझे कोई दूसरी बात भी कहने लायक न रहने दे रही है, बिटिया''''तुम्हारा स्नेह अवश्य मानने योग्य है। स्वार्थ की उपेक्षा की सलाह दी जा सकेगी, कदापि नहीं। पर, पार्वती के मन में बात इतने में बैठ गई हो, ऐसा नहीं माना जा सकता, कारण इतना ही है कि उसे यह संभावना अच्छी तरह स्पष्ट ही हुई होगी।"

"स्त्री के हृदय में आशा न लहराए, यह हो सकेगा अम्मा ? रहने पर भी उसने दबा लिया होगा, मेरे कारण। उसके बराबर दूसरा कोई यहाँ है भी ? सच्चे उत्साह से उसकी छाया बनी, प्राणों का बलिदान करने में भी नहीं

हिचकी। दोनों का मन हो उठा है—मज़बूती से जुड़ गया है, दोनों बचपन से ही उसके प्रति वही समान रुख रखते आए हैं। मैं ही दोनों से नाहक उलझ पड़ती रही। अमीर घराने की मान कर वही बराबर मुझसे हार मान जाती। फक् होकर मुँह बन्द कर लेती, बेचारी! इससे अपना भ्रम बढ़ता ही गया कि मैं ही अधिक योग्यता रखने वाली हूँ। अभी हाल तक यही भ्रम बना भी रहा। उनके घुले-मिले काम में लगे रहने पर भी जल उठती ही रही, भले ही पार्वती की सी धृति-आसक्ति मुझमें न रही हो और गंगाधर को प्रसन्न देखने की शुभेच्छा न हुई हो, मैं जैसी हूँ, उसी रूप में वह आसक्त हो, अनुरक्त होगा ही, यही अहमियत अपनी रही। अपनी खोखली जिन्दगी में उसे घसीट लेने का दुराग्रह, उसकी अवज्ञा पर आक्रोश ही रहा। यह सब बीच में गया…पहले अल्हड़पन के अज्ञान में उसके हाथ से कन्हैया की गुड़िया झटक लेने की भाँति। इस घड़ी ज्ञानोदय के बाद भी, वही शरारत की जा सके, अम्मा…ऊहुँ…उचित आकांक्षा को फलने-फूलने का अवसर मिलना चाहिए, उसे मसल देना, कुचल देना ठीक न होगा।"

"तुम्हारी अल्हड़पन की ये बातें अब बीत गईं इस समय तुम भी…।"

"इतने पर भी अपने और पार्वती के बीच का अन्तर कोई विशेष कम नहीं लगता। कोई भी इसे सहज ही पहचान लेगा।"

"यह सब मैं क्या जानूँ…मेरा प्रतिवाद उचित नहीं होगा। लेकिन माँ-बाप बने हम सही या गलत, निश्चित कैसे रह जाएँ, बेटी? यह कोई खिलौने का खेल नहीं। जीवन का प्रश्न है। शांत होकर…।"

"यह मैं जानती हूँ, अम्मा! यही कारण है कि कई दिनों तक सोच विचार करने पर ही मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ।"

"अच्छा…।" माँ से लम्बा निश्वास छूटा। उनके हाथ का कौर कभी का नीचे गिर गया था। बोलीं, "तुम दोनों में कितनी घनिष्ठता, कितनी आत्मीयता है! यदि तुम्हारे विचार के अनुसार ही यह सम्बन्ध छूट गया तो तुम सुखी कैसी रहोगी मुन्नी, इस ओर भी ध्यान दिया है?"

"ध्यान गए बिना रहेगा कैसे, अम्मा? आज का नाता ही बना रह जाए, तो मैं संतुष्ट रह जाऊँ। पति-पत्नी के संबन्ध के स्थान पर भाई-बहन का रिश्ता क्यों न रहे?" कह कर भागीरथी सहसा उठकर चली गई! अम्मा उसकी आकृति देख न पाईं।

"अच्छी बात है, बिटिया ! इसके बाद अपने लिए कहने को रह ही क्या गया ?" अम्मा ने अन्नसमेत पत्तल समेट ली।

उस रात को माता-पिता आपस में देर तक बातें करते रहे। कन्या भी करवटें लेती रही। आँखें कब लगीं, पता न चला।

एक हफ्ते के बाद पिताजी ने पूछा, "बेटी ! उस दिन अपनी अम्मा से हुई चर्चा पर तुम्हें और कुछ कहना नहीं है ?"

"नहीं अण्णाजी !···वही तय रहा।"

पिताजी कुछ नहीं बोले।

"आप इससे बड़े असंतुष्ट हैं, अण्णाजी ?" भागीरथी ने पूछा।

"कदापि नहीं, बेटी ! तुम्हारे से हमें कभी कोई असंतोष नहीं। तुम्हारे इस निष्कर्ष को सदोष कहने का साहस भी हममें नहीं है। पर थोड़ी निराशा अवश्य हुई है। वह छिपाए नहीं छिपेगी।"

"मैं मानती हूँ, अण्णाजी ! पर, इतने के लिए गलत कदम उठाने को जी नहीं करता।"

"कोई बात नहीं, बेटी ! यह तुम्हारा व्यक्तिगत मामला है। आगे तुम व्यथित न रह जाओ, इतना ही हम चाहते हैं····तुम्हारी इच्छा रखने भर का उद्योग हमारे जिम्मे है, बस····कुछ समय और चाहिए क्या ?"

"···कोई प्रयोजन न् निकलने का, अण्णाजी !" भागीरथी बोली।

"पार्वती भी अगर यही रुख अपनाए तो ?" पिताजी आशंकित हो उठे।

"ये सारी बातें प्रकट हो जाएँ, तो कह अवश्य देगी। यों ही मान जावे वाली लड़की थोड़ी है ?" अम्माजी ने भी अपनी ओर से कड़ी जोड़ी।

"वह भी मुँह मोड़ ले, इसके लिए वास्तव में कोई कारण नहीं। पर मेरे हक में अवश्य ही अपना हित न गिनने वाली····" भागीरथी भी सोचती जा रही थी। 'हाँ, अम्मा का कहना सोलह आने सच है···यह भेद उस पर कभी न खुले···ऊहुँ····उसमें अभिमान की बू भी रह जाएगी। उसे दुख भी होगा। कोई दूसरा बहाना बनाना होगा····अच्छा, 'मैं गंगाधर को बड़ा भाई मानती हूँ,' इतने से काम न चल जाएगा ?······इस समय की अपनी धारणा भी तो वही है।"

अब कोई मीन-मेष न रह गया। तीनों मौन थे। पिताजी के हाथ रद्दे अखबार के पन्नों की फरफर, माँ-बेटी की ओर से पत्तल की जोड़ाई होती रही, सींक की 'चट-चट' की आवाज़ देर तक सुनाई दे रही थी।

"तब तो हमें दूसरी जगह वर ढूँढना होगा ?" पिताजी ने अखबार की आड़ से ही पूछा। वे अखबार देखते ही न रहे।

"इसमें जल्दी कैसी, अण्णाजी !"

"वह आनंद भी तुम्हारे लिए सुयोग्य वर है। उसके लिए बातें की जाएँ तो ?" अम्मा ने सुझाया।

कुछ देर बीत गई।

"तुम्हारी राय क्या है, बेटी ?" पिता ने पुत्री से पूछा।

"गंगाधर के समान ही जीवन-यापन के लिए वे भी तैयार हों, तब न, अण्णाजी !"

माँ-बाप इसका क्या जवाब दें ? इस पर दोनों मुस्करा उठे।

"लड़की वाले हो कर हम कोई पाबंदी डाल सकेंगे, भाग्य ?" अम्मा खुल कर हँसीं।

"अम्मा ! समय-समय पर की उनकी बातें, यहाँ लगातार आ कर अपने इन कामों में दिखाई देने वाली उनकी आसक्ति-अभिरुचि आदि का विचार कर लेने पर लगते हैं कि उन्हे यह जीवन-क्रम कोई अरुचिकर प्रतीत न हुआ होगा।"

"तो ठीक है। आगे आप ही तय कर लीजिए। वह कोई कपिसृष्टि का कुल-तिलक नहीं दिखाई देता। अपनी राह पर उसे न ला सकेंगे ?" कहती भागी-रथी भी हँस पड़ी।

"और यदि वह न माने, तो ? ऊँचे ओहदे पर है, उसकी उम्मीदें क्या-क्या हैं, कौन बताए ?" पिताजी ने गंभीर हो कर कहा।

"कोई चिन्ता नहीं, अण्णाजी ! पार्वती की भाँति ही मैं भी कस्तूरबा शिविर में शामिल हो जाऊँगी। यह भी आवश्यक न पड़े, यदि अपनी सारी योजनाएँ सफल होतीं जाएँ, तो यही गाँव एक बड़े शिविर का रूप धारण कर ले। काम की कमी ही न रहें…।"

"अच्छी बात है, बेटी ! लगता है, सभी पहलुओं पर तुमने विचार कर लिया है। कोई हर्ज नहीं। अच्छा। आगे जैसे होता जाए, प्रतीक्षा कर ली जाएगी।" अम्मा ने कहा। भागीरथी के वहाँ से हटने के बाद बोलीं, "अब रह क्या गया, गंगाधर से बड़ी सावधानी से व्यवहार करते जाना होगा। इस लड़की की दलीलें उसके सामने रखने से बड़ी भद होगी।"

"हाँ…आखिर, कैसा उत्तम संबंध।"

"किया क्या जाए ? कोई चिंता नहीं। पार्वती का भला ही तो होगा !

इतने ही से तसल्ली कर लें। वह भी अपनी दूसरी लड़की के समान ही है। वह बेचारी भी मलिन पड़ जाती, तो उसे देखकर सहते जाना कोई सरल काम न रहता। उसके हिस्से का खेत इसके बाँटे पड़ गया। बस !"

"सही है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि हम दोनों की अपेक्षा भाग्य ने ज्यादा दूर की सोची है, ठीक ही है।"

"ऐसे माता-पिता ही कहाँ मिलें जो थोड़े-बहुत अन्धे न रह जाएँ ! यह कोई अस्वाभाविक भी नहीं...ठीक है, तय हो गया न ! आनन्द भी तेजस्वी तरुण है। बाहर से मनमौजी लगने पर भी, अन्दर से ठोस है—गंगाधर की ही तरह। इस समय थोड़ी सी खिन्नता भले ही रहे, धीरे-धीरे वह भूल जाएगी, भाग्य सुखी रहेगी। उसके माँ-बाप से पत्र-व्यवहार करना होगा।"

"इससे पूर्व दीक्षित जी से कुंडली माँग लेनी होगी। कुछ समय टल जाने पर 'अपने परिचित प्रख्यात ज्योतिषीजी को दिखाने पर पता चला कि कुंडलियाँ मिलती नहीं' आदि कोई कारण दे कर इसे समाप्त कर लेना होगा।"

"आपका कहना सहज सत्य है। कुण्डलियाँ मिल जातीं, तो यह मानसिक अवरोध पैदा कैसे होता ? वास्तव में योग्य नहीं है।"

माता-पिता ने इस प्रकार निर्णय कर मन को सहला लिया।

● ● ●

:३८:

बाँध की दूसरी तरफ नंदनवन सज गया था। वहाँ नाडहब्ब-राष्ट्रीय पर्व-का समारोह हो रहा था। नंदनवन 'वृन्दावन' की भाँति न तो भड़कीला था और न खर्चीला ही। पर धारा के तट पर सहज ही शोभित मधुर मनोहर उद्यान था। किनारे पर की गन्ने की खेती में ईख पेरी जा रही थी। कड़ाही में रस खौल रहा था। ताज़े गुड़ की मीठी सुगंध सोने की ढेरी-सरीखी लगायी धान की गमक से मिल कर शीतल मंथर हवा पर थिरकती आ रही थी, मिठास सरसा रही थी। चाँदनी की रजत-कुटी इस उद्यान-मंडप में देवता के लिए सुलगाए धूप का काम देने लगी थी। अभिषेक का जल झीलरूपी पात्र से दुग्ध-धारा की भाँति दमक-चमक से उछल-उछल कर लुढ़कता जा रहा था। आस-पास के गाँवों से आ जुटे जन-समूह का हर्षोद्गार, उल्लासपूर्ण कंठ से फूट पड़ी लावनी, स्फुरित हास की उत्ताल तरंगें, नाचते पैरों के पायल की रुनझुन, हाथ की लकड़ियों के खनकने की ताल आदि ही मंगल मंत्रपाठ का स्थान ग्रहण कर

ली है, इसकी घोषणा करते मुझे बड़ी तृप्ति हो रही है, प्रसन्नता और गर्व भी हो रहा है।·······।"

गौडजी की बात दीर्घ करताडन में विलीन हो गई। वे अपनी जगह पर अभी गए ही थे कि वीरप्प, जो बाहर गया हुआ था, सहसा सभा के सामने आ धमका। उसके हाथ में पालिश किया हुआ चपटा शिला-फलक था। वह कहने लगा, "एक और काम रह गया है। हम रजत-करंडों में अभिनन्दन पत्र-अर्पित करने वाले जीव नहीं। बेलगूर के इस शिलाफलक पर एक गीत, सुभाषित का वाक्य दोनों ही उत्कीर्ण मिलेंगे। गंगाधर के अत्यन्त प्रिय उसके जीवन के बीज-मन्त्र बने हुए ये दोनों आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ:

सरोवर का जल सरसी में गिरा
वरदान पात्र तू बन जाय।
हरि-कृपा से पाया भाग्य
हरि समर्पण करने योग्य ॥'

····और सेवा के माध्यम से ही सुजन अपनी अर्थसिद्धि में आस्थावान् होते हैं।"

····इस अवसर पर ये उक्तियाँ उसे अर्पित करने की अनुमति माँगता हूँ।"

करतलध्वनि के बीच वीरप्प द्वारा बढ़ाया शिलाफलक गंगाधर ने आश्चर्य एवं आनन्द से ले लिया। थोड़ी देर मौन छाया रहा, तत्पश्चात् गंगाधर ने कहना शुरू किया:

"आज पहली बार मैं अपने साथियों की ओर से रचे षड्यन्त्र का शिकार हो रहा हूँ।·······मिट्टी-मिट्टी से ताल्लुक रखे इस जन को यह शिला-फलक बड़ा ही प्रिय है। यह सिर-आँखों पर चढ़ा ले रहा हूँ।" गंगाधर ने वैसा ही किया।

यह हम सबकी सम्पत्ति है। देखने वालों को स्फूर्ति देने लायक शिलालेख के रूप में यह बाँध पर ही शोभित रह सकेगा।"

हर्षध्वनि होने लगी, तो गंगाधर ने फलक सिद्दगाडौर को सौंप दिया।

पहाड़ सरीखा काम पड़ा है, कहते हिम्मत हार माने रहने वाले लोगों में से हम नहीं। खोदते जाइए तो पहाड़ भी ढह कर मैदान होता चला जाए। कर्मशील रहने तक गाँव का स्वास्थ्य विकृत न होगा, यह तथ्य हम पर प्रगट हो चुका है। काम तो सदा रहेगा ही। कार्य की परिपूर्णता की संभावना ही कहाँ! दद्दाजी के ही सुन्दर शब्दों में कहना हो, तो जीवन सर्वांगीण उन्नति कर सके,

इसलिए सभी क्षेत्रों में प्रतिपाल परिश्रम करना होगा। अकेले इंजीनियर ही नहीं, अन्य अनेक उद्योगों में जानकारी रखनेवालों को भी यहाँ अवसर के द्वार खुले पड़े हैं। उनका भी हृदय से स्वागत करें। ऐसे लोगों की संख्या ज्यों-ज्यों बढ़ती जाएगी, त्यों-त्यों अधिकाधिक क्षेत्रों में यह प्रयास फैलाया जा सकेगा। इस क्षण आप लोगों को एक शुभ सन्देश सुनाने का सौभाग्य मुझे मिला है अपने आनन्द भी इसी ढंग के कार्यक्षेत्र में कदम बढ़ाने वाले हैं।"

हर्षध्वनि होने लगी, तो गंगाधर ने प्रसन्नता से आनन्द की ओर देखा। भागीरथी का चेहरा खिल उठा था, यह भी भाँप लिया।

"संक्षेप में कहना हो तो अपनी शक्ति भर कर्तव्यपालन में लगे रह जाने पर ही हम देश के ऋण-भार से आक्रांत न होंगे। तभी अपना तथा देश का भला हो सकेगा। राजनीति की दृष्टि से देश परतंत्रता से मुक्त भले हो जाए, पर इतने से ही हम स्वतंत्र नहीं हो पाए हैं। अपने पैरों पर खड़े हो सकेंगे, प्रगति कर पाएँगे, इसका बोध होने के बाद ही हम स्वतन्त्र कहलाने योग्य बनेंगे। यह अनोखा अनुभव हमें थोड़ा-बहुत हुआ भी है। हम स्वतन्त्र ही बने रहे। रह गई अपनी बात। मेरा आपके साथ ही रहना सहज है। अन्यत्र जाऊँ कहाँ? कैसे जाऊँ?"

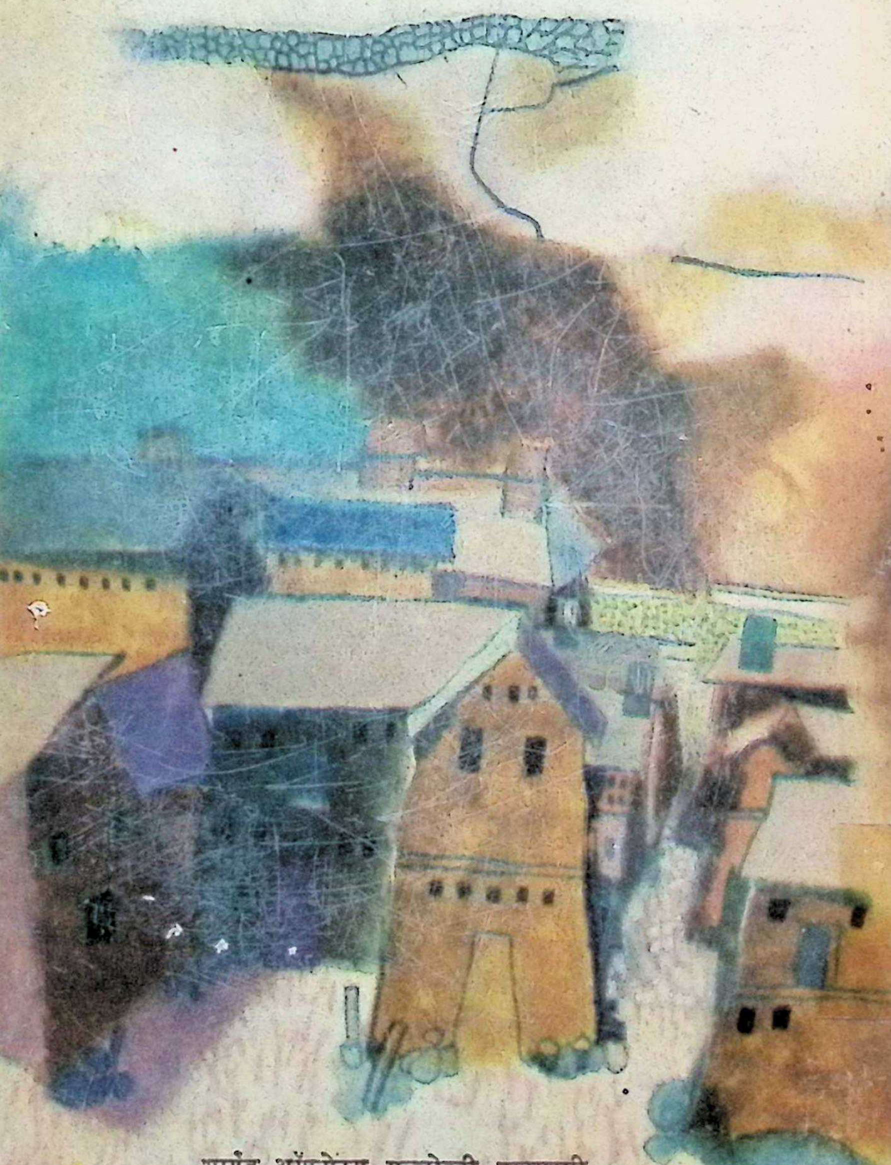
करतलध्वनि से नभ मण्डल गूँजता ही रहा। आपस में हँसी-खुशी की बातें जारी रहीं। सदानन्द फिर गा उठा:

इस ग्रामोदय की गाथा
भारत के घर-घर में गूँजे।

बाजे बज उठे। समवेत स्वर से गायन होने लगा—

हर ग्रामीण हो ग्राम देवता,
गाए कर्म योग का ज्ञान।
गूँजे भारत के कण-कण में,
शान्ति-स्नेह-समता का गान।

मुद्रक—भार्गव भूषण प्रेस, त्रिलोचन, वाराणसी।
१८/८—७६



भार्गव ऑफसेट्स मच्छोदरी, वाराणसी